सचित्र आयुर्वेद

जून, १९५४

आयुर्वेद और सरकारी रुख

भारत के मन्त्रशास्त्र, तन्त्रशास्त्र और यन्त्रशास्त्र से अनभिज्ञ रहने के कारण यहाँ के सभी गुणों को विदेशियों ने अन्धविश्वास की संज्ञा दे दी और आध्यात्मिक तथा आधिदैविक शक्ति-सम्पन्न भारतीयों ने भी पाश्चात्य शासकों के उपेक्षापूर्ण मनोभाव के कारण अपनी अलौकिक शक्ति को भुला दिया। यूरोप और अमेरिका में आज मनोवैज्ञानिक चिकित्सा-प्रणाली काफी चल रही है। भारत की मन्त्र-तन्त्र चिकित्सा भी उसी प्रकार की एक वैज्ञानिक चिकित्सा है। इसको जाने बिना यदि हम अन्धविश्वास कहें तो यह हमारी भारतीयता पर कलंक होगा। अपने घर की अच्छाई को भी खराब कहना और बाहर से आनेवाली हर चीज को अच्छा कहना उचित नहीं हैं। सरकार को चाहिए कि वह हर चीज की अच्छाई और बुराई पर ध्यान दे और इसी आधार पर कोई नियम बनाये। विदेशी सरकार की भाँति हमारी राष्ट्रिय सरकार भी देशी चिकित्सा-प्रणाली आयुर्वेद के प्रति सौतेली मां के जैसा वर्ताव कर रही है। केन्द्रीय सरकार में जबतक एलोपैथ चिकित्सकों का प्राधान्य रहेगा, आयुर्वेद के प्रति न्याय नहीं होगा।

— पण्डित नन्दलाल शर्मा, एम० पी०

(लोकसभा में भारत की स्वास्थ्यमन्त्रिणी के वक्तव्य के विरोध में पण्डित नन्दलाल शर्मा ने जो भाषण दिया, उसका सारांश यहाँ उद्धृत किया गया है। —सं०)

...क-

बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि...

सुप्रसिद्ध विद्वान् वैद्यों की दृष्टि म

वैद्यनाथ-प्रकाशन

वैद्यनाथ प्रकाशनात् पुस्तकानामुपलब्धिः

श्री वैद्यनाथायुर्वेदभवन लिमिटेडसंस्था ओषधीनां प्रचारे कतिचिद्दिनेभ्यः प्रभूतं यशोऽर्जयति । एतस्याः प्रचार-विभाग एतावान् प्रबलो येनान्यापि काचित्संस्था देशे औषधानां प्रचारं करोतीति न प्रतीयते । उक्ता संस्था स्वकार्ये साफल्य-मपि लभते । तत्र कारणं प्रचारेण सह प्रत्येकवस्तुनः सुयोग्यतया स्थापनमस्ति । कथनस्यावश्यकता नास्ति यदुक्त संस्थाया आयुर्वेदीय ग्रन्थप्रकाशनविभागोऽपि साधारणो नास्ति । एतस्मात्प्रकाशितानां कतिचन ग्रन्थानां सम्बन्धे 'संस्कृतम्' पत्रे मम विचाराः प्रकाशित पूर्वाः । अद्य द्वयोर्ग्रन्थयोः सम्बन्धे पुनर्लेखनावसरोऽधिगतः । तयोः प्रथमः—

संक्रामक-रोग-विज्ञान

एतद्ग्रन्थस्य लेखकः **कविराज श्रीबालकरामशुक्लायुर्वेदशास्त्राचार्य्यमहोदयः**, प्रकाशकः **श्री वैद्यनाथायुर्वेदभवन लिमिटेड, कलकत्ता** इति, मूल्यं ६) मुद्राः, पृष्ठसंख्या च प्रायः १२००, कागजो, मुद्रणं, पुस्तकबन्धनञ्चात्यपीच्यम् ।

एककालावच्छेदेन समस्तनगरजनपदेशेषु संक्रमणकारी रोगः समुपसर्गपूर्वकपादविक्षेपाथकक्रमुधातोर्निष्पन्नः संक्रामकः कैः कैः कारणैः सञ्जायमानः, किं किं लक्षणवान् ; कः कः, कथं कथञ्चिकित्स्यः, केषां केषां पूर्वरूपाणां, रूपाणां, निदानाना-माधारेणेति विवेचयता लेखकेन एलोपैथ्या, आयुर्वेदीयपद्धतेश्च पर्य्यवेक्षणं प्रकुर्वता तुलनात्मकं ज्ञानमाविष्कृतं तेन विज्ञान शब्दस्य साधुचारितार्थ्यमत्राभूदिति निस्सन्देहम् । मूलहीनं तु किमपि न भवति । अथापि विवेच्यवस्तूनां स्वरूपेण स्थापनं पृथग्देशेभ्य एकस्मिन् स्थाने मूलत्वेनैवाद्रियते इति स्वविषय को मौलिकोऽपि यथासम्भवं परिपूर्णोऽयं 'संक्रामकरोगविज्ञान-ग्रन्थः' प्रत्येक चिकित्सकेन स्वज्ञानवृद्ध्यै पठनीय इति मे मतम् ।

यूनानी चिकित्सासार

एतस्य लेखकः **वैद्यराज हकीम दलजीतसिंहः**, प्रकाशकः **श्री वैद्यनाथायुर्वेदभवनलिमिटेड, कलकत्ता**, मूल्यं ४।।) मुद्राः, पृष्ठसंख्या ४५० इति, मुद्रणं, कागजो, बन्धनमत्यपाच्यम् ।

समयः परिवर्तितः । इदानीं स्वतन्त्रे भारते सर्वविधं वैदुष्यं समेधते । अधुना यो यस्मिन् कार्ये संलग्नस्तेन तस्य पूर्णमधिकाधिकं वा ज्ञानमर्जनीयमेव । भारते चतुर्विधा चिकित्सा चलति एलोपैथी, होम्योपैथी, यूनानी, आयुर्वेदीया च । चतुर्विधैरपि चिकित्सकैः स्वचिकित्सया सहान्यचिकित्सानामप्यध्ययनमवश्यमनुष्ठेयमात्मविषयदार्ढ्याय, यतस्तासां तथ्यतैव ताश्चिरन्तनाः सम्पादयति । प्रस्तुतं पुस्तकं यूनानीयचिकित्सापद्धतेर्ज्ञानाय सुन्दरं साधनम् । अत्र यूनानीमतेन आशिरः पाद सर्वरोगनिदानचिकित्सादिकं वर्त्तते । सर्वविधान् चिकित्सकान् 'यूनानीचिकित्सासार' उपकरिष्यतीति मे मतम् ।

इहैतत्कथनमावश्यकं यदुक्तं पुस्तकद्वयं हिन्दीभाषायामिति विहारोत्तरप्रदेशराजस्थानमध्यभारतमध्यप्रदेशीयचि-कित्सकानामन्यप्रान्तीयचिकित्सकापेक्षयाधिकं हिताधायकमिति ।

यूनानी चिकित्सा सार

वैद्यराज दलजीतसिंह आयुर्वेद जगत् में सुपरिचित हैं। आपका प्रथम ग्रन्थ "आयुर्वेदीय विश्वकोष" हमारे सामने आया और इससे हमें इनकी विद्वत्ता का परिचय मिला। इस विश्वकोष के दो भाग प्रकाशित हुए हैं; लेकिन इसके बाद से यह काम बन्द पड़ा हुआ है। फिर भी, विश्वकोष से हमें लेखक के दिल और दिमाग का अच्छा परिचय मिला है। इसके बाद इनके 'सर्पविष विज्ञान', 'यूनानी सिद्धयोग संग्रह' आदि ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। तत्पश्चात् 'यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान' नाम का, ८०० पृष्ठों का, इनका एक वृहत् ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, जो हमारी दृष्टि में आया है। इस ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध में यूनानी सिद्धान्त और कल्प का सरस परिचय दिया गया है। उत्तरार्ध में अकारादिक्रम से ५३० द्रव्यों का निघण्टु वर्णित है। यह ग्रन्थ वैद्यों के लिए अत्यधिक उपयोगी है।

देश में आज जिस प्रकार ऐलोपैथी का प्रचार है, उसी प्रकार किसी समय यहाँ यूनानी चिकित्सा-पद्धति का व्यापक प्रचार था। यूनानी वैद्यक वस्तुतः ग्रीस देश का वद्यक है। यूनानियों ने यह वैद्यक-ज्ञान मिस्र से प्राप्त किया था, यह इतिहास-प्रसिद्ध बात है। मिस्रवासियों को यह ज्ञान भारत से मिला था। बौद्धभिक्षुओं ने आयुर्वेद का ज्ञान मिस्र में पहुँचाया और मिस्र से यह ज्ञान यूनान पहुँचा। यूनानियों से अरबों को यह ज्ञान प्राप्त हुआ। अतः आज की यूनानी चिकित्सा-पद्धति वास्तव में यूनानी-अरबी चिकित्सा-पद्धति है। अरबों से इस चिकित्सा-विद्या का सारे यूरोप में प्रसार हुआ। मुसलमानी शासनकाल में हकीमों को राज्य-मान्यता मिली हुई थी, अतएव इसका ठीक-ठीक विकास हुआ। इस चिकित्सा-पद्धति से वैद्यों का परिचय होना जरूरी है। वैद्यों को यह विद्या जरूर सीखनी चाहिए। यूनानी चिकित्सा का इतिहास बड़ा ही मनोरंजक है। प्राच्य और पाश्चात्य पद्धतियों का यह सन्धिस्थल है। इसी मिलन से नई पद्धति का जन्म हुआ, जो सारे विश्व में फैला है।

बगदाद के खलीफा विद्या के बड़े उपासक हुए हैं। उन्हों ने यूनानी, असीरियन, ईरानी तथा प्राचीन भारतीय वांङ्मय का अरबी भाषा में अनुवाद कराया था। उनकी छत्रच्छाया में यूनानी चिकित्सा-पद्धति फूलती-फलती रही है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में शरीर के सभी रोगों पर सूक्ष्म विचार किया गया है। वर्तमान ऐलोपैथी को यदि Indo greek Egyptian Arabic medicine कहें, तो गलत नहीं होगा। इस ग्रन्थ में जिन रोगों के नाम आये हैं, वे एलोपैथी में अरबी से लिये गए हैं, ऐसा लगता है। यथा मालीबोलिया को मेलंकोलिया, कतरकता को कैटेरेक्ट, स्करबूत को स्कर्वी आदि कहा जाता है, जो अरबी से ऐलोपैथी में लिया गया है।

इस ग्रन्थ में हर एक रोग का नाम अरबी, फारसी, यूनानी, उर्दू, हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषा में दिया गया है। आरम्भ शिरोरोग से किया गया है। शिरःशूल को अरबी में 'सुहाय' कहते हैं। लेखक ने इस 'सुहाय' रोग के २८ प्रकार से भेदों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इसमें उनके अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द भी दिये गये हैं। रोगों के नाम, उनके कारण और निदान, लक्षण, असंसृष्ट द्रव्योपचार, एक द्रव्य का उपचार (Single drug treatment), संसृष्ट द्रव्योपचार (दवाओं के योग) और वक्तव्य—इस प्रकार प्रत्येक रोग पर सुन्दर ढंग से विचार किया गया है।

शिरोरोग के बाद कर्णरोग, नेत्ररोग, नासा-रोग, मुखरोग—यह क्रम लेखक ने रखा है। अरबी मूल ग्रन्थ में ऐसा क्रम है या नहीं, यह हमें ज्ञात नहीं है। लेकिन प्रत्येक रोग का विशद रूप से वर्णन किया गया है। चिकित्सा यूनानी है। वैद्यों के लिए यूनानी द्रव्यों का परिचय आवश्यक प्रतीत होता है।

ग्रन्थ में दो परिशिष्ट हैं—(१) **ज्वराधिकार** (२) **योग**। अब तक हकीमों के लिए हिन्दी में जो ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, वे हमारे लिए बोधगम्य नहीं हैं, क्योंकि उनकी भाषा उर्दू है। लेकिन यह ग्रन्थ सरल हिन्दी भाषा में लिखा गया है, जो सुवाच्य है। लेखक ने प्रस्तावना में लिखा है कि "इस प्रकार का ग्रन्थ अब तक हिन्दी में प्रकाशित नहीं हुआ है।" अर्थात् इस विषय पर अब तक जितने ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, उनमें यह ग्रन्थ अपने ढंग का सर्वप्रथम है। इस अक्षुण्ण पथ पर विजयी स्थान के लिए लेखक हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। यूनानी वैद्यों को सरल हिन्दी और सुवाच्य शैली में लिखने के लिए लेखक प्रशंसा के पात्र हैं। लेखक Voluminous Writer हैं और लेखनकला में सिद्धहस्त हैं। इस विद्वान्

ने यूनानी चिकित्सा पर कई ग्रन्थ लिखे हैं, यह उनकी प्रस्तावना से ज्ञात होता है। प्रकाशक श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के लिए दो शब्द लिखना जरूरी है--इस संस्था की ग्रन्थ-प्रकाशन-वृत्ति क्रमशः बढ़ रही है और यह प्रशंसनीय है। ५०० पृष्ठों के इस विशाल ग्रन्थ का मूल्य मात्र ४।।) रख कर संस्था ने सारे वैद्यसमाज को अपना ऋणी बना लिया है।

"संक्रामक रोग विज्ञान" नाम की लगभग ११०० पृष्ठों की पुस्तक भी प्रकाशित हुई है, जिसका मूल्य ६) है। हिन्दी में वैद्यक-साहित्य का विकास हो रहा है और हमें इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० नामक संस्था विद्वानों के ग्रन्थों के प्रकाशन में सदा तत्पर रहती है। इससे आयुर्वेद का भविष्य बहुत सुन्दर प्रतीत होता है। गुजराती में ऐसे ग्रन्थों का बड़ा अभाव है। हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा है। कुछ समय के बाद हिन्दी का खूब प्रचार-प्रसार होगा। हिन्दी में प्रकाशित साहित्य का सारे भारत में प्रचार होगा, ऐसी आशा है।

--'भिषग्भारती'

× × × ×

यूनानी चिकित्सा-सार--ले० वैद्यराज हकीम ठा० दलजीतसिंहजी, आयुर्वेद-बृहस्पति। प्रकाशक--श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड, कलकत्ता। डिमाई अठपेजी साइज के ५६४ पृष्ठ, छपाई व कागज उत्तम, सजिल्द पुस्तक का मूल्य ४।।)

इसके लेखक यूनानी तिब्ब के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् हैं। आपने इससे पूर्व भी अनेक पुस्तकें लिखी हैं। इस पुस्तक में सिर से पाँव तक होने वाले प्रायः सभी रोगों के लक्षण, निदान और चिकित्सा बहुत ही सुन्दर ढंग से लिखी है। रोग शीर्षक के नीचे अर्बी, फारसी, अंग्रेजी और आयुर्वेदिक नाम लिखकर प्रथम हेतु लक्षण और फिर उपचार व चिकित्सा लिखी है। यूनानी योगों के द्रव्यों के प्रचलित और आयुर्वेदिक नाम तथा निर्माण-विधि बड़े ही सुन्दर ढंग से समझाई है। यूनानी विषयक अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए वैद्यगण इस पुस्तक से पूरा लाभ उठा सकते हैं।

--'रसायन'

× × × ×

'यूनानी चिकित्सा-सार'--ग्रन्थ यूनानी चिकित्सा पर बहुत उत्तम रीति से प्रसिद्ध लेखक दलजीतसिंहजी की ओजस्वी लेखनी से प्रस्तुत हुआ है। ग्रन्थ की लेखन-शैली सरल, सुगम और हृदयग्राही हैं। इस ग्रन्थ के पठनपाठन से वैद्यों का बड़ा ही उपकार होगा। चिकित्सा में योग और चिकित्सा-सूत्रों के ज्ञान की बड़ी आवश्यकता है। वह आवश्यकता इस ग्रन्थ के पढ़ने से अनेकांश में पूर्ण हो जाती है। आशा है, वैद्य-समाज इसको अपनाकर लेखक और प्रकाशकों का उत्साह अभिवर्द्धन करेंगे।

--वैद्यराज क. प्रतापसिंह

× × × ×

यूनानी चिकित्सा-सार--हकीम दलजीतसिंहजी की प्रौढ़ लेखनी का चमत्कार है। इसमें संक्षिप्त, अथ च प्रामाणिक यूनानी रीति से सरल हिन्दी में निदान-चिकित्सा वर्णित है। ग्रन्थ के अन्त में यूनानी चिकित्सा के परम्परा प्राप्त प्रसिद्ध अनुभूत योग दिये गये हैं। इससे पुस्तक की आभा बढ़ गई है। इसमें मालती वसन्त का भी उल्लेख है, पर मालती वसन्त में खर्पर के स्थानपर 'सङ्गबसरी' लिखी है। सम्भवतः आपने मेरी खर्पर पर रसेन्द्रसार संग्रह की टीका नहीं देखी हैं, इसमें मैंने सप्रमाण खर्पर निर्णय दिया है, तब से खर्पर पर किसी भी सन्देह का स्थान नहीं रहा है। पुस्तक यूनानी चिकित्सा जिज्ञासुओं के लिए अतीव उपयोगी है--पाठ्य पुस्तकों में स्थान पाने योग्य है। श्री दलजीतसिंहजी ने यूनानी के और भी अनेक ग्रन्थ हिन्दी में लिखे हैं।

--वैद्य घनानन्द पन्त

× × × ×

--वैद्य श्री हकीम दलजीतसिंहजी की सुन्दर कृति **'यूनानी चिकित्सा-सार'** को साद्योपान्त पढ़ा। ग्रन्थ में संक्षेप रूप से यूनानी चिकित्सा का तत्त्व सम्यक्तया प्रतिपादित किया गया है। आयुर्वेदज्ञों की अरबी-उर्दूभाषा की कठिनाई के कारण यूनानी से परिचय प्राप्त करना कठिन होता था; परन्तु अब वह बहुत सुगम हो गया है और वैद्य-बन्धु इससे अवश्य लाभ उठायेंगे।

--कविराज महेन्द्रकुमार शास्त्री

"सचित्र आयुर्वेद" के प्रेमी ग्राहकों से

जिन ग्राहकों का चन्दा जुलाई, १९५३ से जून १९५४ तक जमा था, इस (जून) अंक के साथ पूरा हो जायगा। यद्यपि चन्दा पूरा हो जाने की सूचना गतांक में भी दी गई है तथा पृथक कार्ड द्वारा भी सूचित किया गया है, फिर भी उनकी सुविधा के लिए इस अंक में मनी आर्डर फार्म भी छपवा कर लगा दिया गया है। वे उसे भरकर ४) शीघ्रातिशीघ्र भेजने की कृपा करें।

जो सज्जन ४) पहले भेजकर ग्राहक नहीं बन पायंगे, उनको शायद विशेषांक से वंचित होना पड़ेगा; क्योंकि इस विशेषांक की माँग दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। अतः जिन नये-पुराने सज्जनों को ग्राहक बनना हो, वे इस अंक में लगे हुए मनी आर्डर फार्म द्वारा ४) शीघ्र भेजकर अपने विशेषांक की प्रति सुरक्षित करा लें। जो ग्राहक रजिस्ट्री से विशेषांक "राजयक्ष्मा-अंक" मँगाना चाहें, वे चन्दे के साथ रजिस्ट्री खर्च के लिए पृथक् ।।-) भेज दें। बिना सूचना के वी० पी० द्वारा विशेषांक प्राप्त करने की प्रतीक्षा करने वाले सभी ग्राहकों को समय पर विशेषांक मिल ही जायगा, यह कहना कठिन है; क्योंकि सर्वप्रथम जिनके रुपये या वी० पी० भेजने की सूचना प्राप्त होगी, उन्हें भेजने के बाद यदि विशेषांक की प्रतियाँ बचेंगी, तो भेज दी जायँगी, अन्यथा नहीं। अतः अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए रुपये या सूचना १५ जुलाई, १९५४ तक अवश्य भेजें।

वी० पी० मँगवाते या रुपये भेजते समय पत्र और मनी आर्डर के कूपन पर अपना नाम, पता, ग्राम, मुहल्ला, पोस्ट आफिस, जिला, प्रान्त आदि सब हिन्दी या अंग्रेजी अक्षरों में स्पष्ट लिखना चाहिए। यदि आप पुराने ग्राहक हैं, तो मनी आर्डर कूपन पर अपना पुराना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखने की कृपा करें। यदि ग्राहक नम्बर याद न हो तो "पुराना ग्राहक" या नये ग्राहक हों तो "नया ग्राहक" लिखना न भूलें; क्योंकि ग्राहक नम्बर नहीं लिखने से आपका नाम नये ग्राहकों में लिख लिया जायगा। इससे आपकी सेवा में विशेषांक नये नम्बरों से पहुँच जायगा और पुराने नम्बरों की वी० पी० दुबारा जायगी। ऐसा भी सम्भव है कि उधर से आपने रुपये भेजे हों और उसके हमारे पास पहुँचने के पहले ही आपके नाम से वी० पी० चली जाये। दोनों स्थिति में आपसे प्रार्थना है कि कृपया वी० पी० वापस न करें, प्रयत्न करके नये ग्राहक बनाकर, उनका पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखकर कार्यालय में भेज दें। इसके लिए "सचित्र आयुर्वेद" आपका सदा आभारी रहेगा।

जिन महानुभावों को किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक अस्वीकृति-कार्ड लिखकर भेज दें। इस तरह आपके सिर्फ तीन पैसे खर्च होंगे, परन्तु "सचित्र आयुर्वेद" व्यर्थ के अर्थ व्यय और समय के व्यय से बच जायेगा।

— **व्यवस्थापक**

"सचित्र आयुर्वेद" का महत्त्वपूर्ण विशेषांक

"राजयक्ष्मा-अंक"

"सचित्र आयुर्वेद" के षष्ठम् वर्ष का बारहवाँ अंक आप के हाथ में है। अब आगामी जुलाई, १९५४ से सचित्र आयुर्वेद का सप्तम वर्ष (नवीन वर्ष) प्रारम्भ होगा। सप्तम वर्ष का प्रथम और द्वितीय अंक (जुलाई-अगस्त १९५४ का) विशेषांक "राजयक्ष्मा-अंक" प्रकाशित होगा। "राजयक्ष्मा-अंक" विशेषांक में प्रकाशित होने वाले महत्त्वपूर्ण लेख, चित्र आदि उपयोगी वस्तुओं के साथ-साथ इस विशेषांक की उपयोगिता आदि के सम्बन्ध में "सचित्र आयुर्वेद" के गतांकों में काफी उल्लेख किया जा चुका है जिसे आपने पढ़ा ही होगा। "राजयक्ष्मा-अंक" को सर्वाङ्गपूर्ण बनाने के लिए केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों से लेकर भारत के प्रमुख यक्ष्मा-विशेषज्ञ वैद्यों, हकीमों तथा डॉक्टरों का पूरा सहयोग मिल रहा है। इस विशेषांक के लिए अब तक जितने लेख-चित्रादि मिले हैं, उन्हें देखते हुए हम अपने पाठकों को विश्वास दिला सकते हैं कि यह विशेषांक अपने विषय का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण-अंक होगा। कहना न होगा कि राजयक्ष्मा जैसे भयंकर व्याधि की उत्पत्ति, निदान, लक्षण, चिकित्सा आदि विषयों का आयुर्वेदीय, यूनानी और आधुनिक मतानुसार राजयक्ष्मा के विशेषज्ञों द्वारा अनुभवपूर्ण लेखों के साथ-साथ सैकड़ों सादे और रंगीनचित्रयुक्त—यह महत्त्वपूर्ण विशेषांक अपने विषय का एक ही होगा। यदि आप राजयक्ष्मा सम्बन्धी विस्तृत साहित्य की जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं, तो ४) मनीआर्डर से भेजकर यह विशेषांक प्राप्त करने का अवसर न चूकें।

माननीय लेखकों से

"राजयक्ष्मा-अंक" के लिए जिन सम्माननीय लेखकों के लेख अब तक नहीं आये हैं, कृपया वे अपने लेख-चित्रादि इस अंक के मिलते ही शीघ्रातिशीघ्र भेज दें, जिससे लेख-संचयन में सुविधा हो और आपका लेख उचित स्थान में प्रकाशित हो सके; क्योंकि विशेषांक की छपाई प्रारम्भ हो गई है।

– व्यवस्थापक

वार्षिक मूल्य ४) साधारण एक प्रति का ।=)

विषय-सूची

आयुर्वेद विश्वविद्यालय, झाँसी

श्रीमती राजकुमारी अमृतकौर आयुर्वेद अनुसन्धान भवन के

M.Sc.,A. (शालाक्य) रिसर्च स्कालर्स के ग्रूप

सन् १९५४

ऊपर की पँक्ति में बाएँ से दाएँ–रिसर्च स्कालर––आयुर्वेदाचार्य कविराज हरिनन्दन मिश्र B.I.M.S.MSc.,A, (असिस्टैण्ट हास्पिटल सुपरिण्टेंडेण्ट), आयुर्वेदाचार्य डा० शिवप्रसाद शर्मा MSc.,A, आयुर्वेदाचार्य डा० अमरनाथ शास्त्री MSc.,A, आयुर्वेदाचार्य डा० प्रभाकर मिश्र B.I.M.S. MSc.,A, आयुर्वेदाचार्य डा० सुरेशचन्द्र शास्त्री B.I.M.S. MSe.,A,

नीचे की पँक्ति में–बाएँ से दाएँ–MSc.,A, **स्टाफ तथा कुछ मान्य अतिथि–**डा० दि० बि० गँजीवाले (डिप्टी रजिष्ट्रार), आयुर्वेद वाचस्पति डा० रामनारायण सक्सेना L.S.M.F. MSc.,A, (वाइस प्रिंसिपल), आयुर्वेदाचार्य डा० विष्णु दामोदर धुलेकर A.M.S. MSc.,A, (प्रिंसिपल), आयुर्वेद वाचस्पति डा० लक्ष्मन दास सद्दी L.A.M.S. MSc.,A, शालाक्य आचार्य (हास्पिटल सुपरिण्टेण्डेण्ट), श्री लक्ष्मीनारायण राजपाली B.A.L.B.B. (रजिष्ट्रार), आयुर्वेदरत्न श्री सीतावर पन्त (मेम्बर, बोर्ड आफ इंडियन मेडीशन यू० पी०), आयुर्वेद पंचानन पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल D.Sc. साहित्य वाचस्पति (वाइसचान्सलर), आयुर्वेदाचार्य डा० बलदेव शर्मा B.A.DSc. M.N.M.S (बर्लिन) M.I.P.A, (वियेना), प्रो० वाइसचान्सलर आयुर्वेद वृहस्पति पं० गोपाल शास्त्री ग़ोडवोले प्राणाचार्य DSc.,A. (अध्यक्ष MSc.A. डिपार्टमेन्ट), आयुर्वेद वृहस्पति पं० रामनारायण जी शर्मा वैद्य शास्त्री DSc.,A. (मैनेजिंग डाइरेक्टर श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०), आयुर्वेदालंकार पं० चन्द्रभानु जी शास्त्री, आयुर्वेद वाचस्पति, स्नातक, ऋषिकुल, हरद्वार ।

।। श्री धन्वन्तरये नमः ।।

आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन समादृत और सर्वाधिक बिक्री होनेवाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख मासिक पत्र

सचित्र आयुर्वेद

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष ६ | कलकत्ता, जून, १९५४ | अंक १२

नववर्षारम्भ के उपलक्ष में "सचित्र आयुर्वेद" का

महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक विशेषांक

राजयक्ष्मा-अंक

अनेक उपयोगी एवं विद्वत्तापूर्ण लेखों तथा चित्रों के साथ

अगस्त, १९५४ में प्रकाशित होगा

जुलाई, १९५४ से 'सचित्र आयुर्वेद' सातवें वर्ष में पदार्पण करेगा । इस नवीन वर्ष के उपलक्ष में जुलाई-अगस्त १९५४ का संयुक्तांक **"राजयक्ष्मा-अंक"** विशेषांक के रूप में अगस्त, १९५४ में प्रकाशित होगा । इस प्रकार आपको सिर्फ जुलाई, १९५४ के ही अंक से वंचित रहना पड़ेगा, अगस्त में तो यह वृहदाकार विशेषांक आपकी सेवा में पहुँचेगा ही । 'सचित्र आयुर्वेद' के सभी ग्राहकों से प्रार्थना है, कि तब तक वे धैर्य रखें और इस बात को नोट कर लें ; ताकि जुलाई, १९५४ का अंक न मिलने पर, व्यर्थ के पत्राचार से कार्यालय तथा ग्राहक, अर्थ और समय की हानि न उठावें ।

— व्यवस्थापक

आयुर्वेदिक शारीर शब्द-संग्रह

आयुर्वेद के अध्ययन-अध्यापन के क्षेत्र में शरीरावयव-वाचक शब्दों और वनौषधि-वाचक शब्दों के अर्थ आज भी मनमाने चल रहे हैं। बहुत-से लोग 'वृक्क' शब्द का अर्थ 'गुर्दा' करते हैं; किन्तु बहुत-से इस अर्थ को अशुद्ध कहते हैं। कुछ लोग पित्ताशय, अग्न्याशय और ग्रहणी—इन तीनों शब्दों को पर्याय कहते हैं, तो कुछ लोग इस बात का उपहास करते हैं। 'हृदय' जैसे अति प्रसिद्ध शब्द का ठीक-ठीक अर्थ करने में बड़ा विवाद उपस्थित होता है। चेतना-स्थान मस्तिष्क है, कि हृदय यह भी अभी तक सुनिश्चित नहीं है। सिरा, स्नायु, एवं धमनी का ठीक-ठीक परिज्ञान अब तक नहीं है।

इस प्रकार की अस्त-व्यस्तताओं के कारण आयुर्वेद के अध्ययन-अध्यापन में बड़ी गड़बड़ी चल रही है। अब समय आ गया है कि वैद्यों के हाथ में भी शस्त्र-क्रिया के लिए चाकू-कैंची-शलाका होना अपराध नहीं गिना जायगा। वे भी शस्त्र-क्रिया करके रोगियों को नीरोग कर सकेंगे। इसलिए, आयुर्वेदीय शारीर में कोई शब्द अज्ञानार्थ या सन्दिग्धार्थ अब नहीं रह जाना चाहिए। इस कार्य के लिए यह आवश्यक है कि आयुर्वेद के सभी संहिता-ग्रन्थों से शरीरावयव-वाचक शब्दों का संग्रह करके अर्थ निश्चित कर लिया जाय।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन ने गतवर्ष हरिद्वार में जो शास्त्र-चर्चा-परिषद् का द्वितीय अधिवेशन बुलाया था, उसमें इस महत्त्वपूर्ण कार्य पर विचार किया गया और एक उपसमिति बनाकर यह कार्य उसे सौंप दिया था। पं० चन्द्रभानु शास्त्री को शब्द-संग्रह करने के लिए नियुक्त किया गया था। पं० चन्द्रभानु शास्त्री ने शब्द-संग्रह-कार्य प्रायः समाप्त कर लिया है। उपसमिति द्वारा इन शब्दों के अर्थों का निर्णय कराना मात्र शेष है। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के मैनेजिंग डाइरेक्टर श्रीमान् पं० रामदयालजी जोशी और पं० रामनारायणजी वैद्यशास्त्री के पाँच-छः मास के लम्बे समय तक अनुपस्थित रहने के कारण उपसमिति की घोषित बैठक गत वर्ष समय पर नहीं हो सकी। किन्तु, इस वर्ष यह कार्य सम्पन्न हो जायगा।

शब्द-संग्रह केवल एक व्यक्ति के द्वारा कराने की अपेक्षा अनेक व्यक्तियों के द्वारा सम्पन्न कराया जाकर तुलना में आने से अधिक प्रामाणिक होगा, ऐसा हमारा ध्यान है। हमने यह सुना है कि अन्य विद्वानों ने भी इस दिशा में प्रयत्न किये हैं। हम उन विद्वानों से, जिन्होंने इस दिशा में कुछ भी प्रयत्न किया है, प्रार्थना करते हैं कि वे अपना-अपना संग्रह, हम पर विश्वास करके, हमारे पास भेजने की कृपा करें। हम उसे देखकर वापस कर देंगे और कृतज्ञता-पूर्वक उनका नाम अपने संग्रह-ग्रन्थ में प्रकाशित करेंगे। इससे आयुर्वेद के अध्ययन-अध्यापन में प्रचलित अव्यवस्था दूर होगी। आशा है, विद्वान् वैद्य हमारी जन-कल्याणकारी प्रार्थना पर ध्यान देंगे।

शरीरावयव-वाचक शब्दों का संग्रह-कार्य सम्पन्न होने के अनन्तर वनौषधि-वाचक शब्द संग्रह किये जायँगे।

मैनेजिंग डायरेक्टर,

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०,

कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर।

राज्य का निन्दनीय रुख

स्वास्थ्य-मन्त्रिणी राजकुमारी श्रीमती अमृतकौर ने आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति के विरुद्ध जो दूषित विचारों का उद्वमन किया है, उससे जनता में उनके प्रति बहुत असन्तोष फैल गया है। श्रीमती अमृतकौर के भाषणों का न केवल वैयक्तिक, अपितु सामूहिक रूप में भी जनता ने जहाँ-तहाँ विरोध किया है।

सत्य से परे

बहुत-से पत्रकारों ने तो उनके भाषणों को सत्य से परे कहा है। वस्तुतः प्रतीत भी ऐसा ही होता है। जिस चिकित्सा-पद्धति का इतिहास, सृष्टि के इतिहास का सहोदर हो और वह चिकित्सा-पद्धति आज तक अक्षुण्ण हो, उसकी इतनी लम्बी आयु ही उसके वैज्ञानिक होने का अकाट्य प्रमाण है। फिर उसे कोई लाख अवैज्ञानिक कहे, क्या होता है। ऐसा व्यक्ति अपने भाषणों को स्वयमेव सत्य से परे सिद्ध करता है।

औचित्य

जो चिकित्सा-पद्धति सात-आठ सौ वर्षों से विदेशी शासकों द्वारा अनादृत, कानूनों से प्रतिबद्ध, अतएव प्रगति प्रतिरुद्ध पड़ी हो; स्वराज्य प्राप्त होने के बाद, उचित-तो यह था कि खद्दर-उद्योग की तरह, उसे राज्य की सहायता प्राप्त होती, कानूनी बन्धनों से मुक्ति मिलती और राष्ट्रिय चिकित्सा-पद्धति के सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित होती, जिससे सदियों से रुका हुआ उसका विकास, पूर्णता को प्राप्त होता। औषध-निर्माण और रोगी-परीक्षण आदि में आपेक्षिक सुधार होते। किन्तु खेद है और दुःख के साथ कहना पड़ता है कि "अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी अंग्रेजियत से हमारा पिण्ड नहीं छूटा।" कहने मात्र के लिए हम स्वतन्त्र हुए हैं; गति में हमारा मुँह अभी पश्चिम की ओर ही है। हमें—

आवश्यकता

किस बात की है? यह प्रश्न और इसके उत्तर की पूर्ति के शब्द संसद-सदस्य श्री ठाकुरदास भार्गव ने अखिल भारतीय मेडिकल लाइसेंसिएट्स ऐसोसिएशन की पंजाब शाखा के १९ वें वार्षिकोत्सव का उद्घाटन करते हुए कहे—

"आज आवश्यकता इस बात की है कि ऐलोपैथ डाक्टर अपना दृष्टिकोण बदलें। उन्हें सिर्फ पश्चिमी चिकित्सा-विज्ञान पर ही निर्भर न रहकर भारत की आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति का भी पूरा ज्ञान होना चाहिए।" आगे श्री भार्गव ने करोड़ों रुपये की दवाइयाँ विदेशों से मँगाये जाने पर खेद प्रकट किया, जब कि भारत में उन सब वानस्पतिक ओषधियों का खजाना भरा पड़ा है, जिनसे वे दवाइयाँ बनी हैं। इस प्रकार एलोपैथ डॉक्टरों को इस बात की आवश्यकता है कि वे जल्दी-से-जल्दी भारतीय आयुर्वेदिक चिकित्सा सीखें और वैद्य महानुभावों के लिए आवश्यकता इस बात की है, कि नाक-भौं सिकोड़ना छोड़कर चाकू-छुरी हाथ में लें और अच्छे सर्जनों की देख-रेख में सड़े-गले फोड़े-फुन्सियों का ऑपरेशन और मरहम-पट्टी करना सीखें, जिससे चिकित्सा के सर्वाङ्गों की पूर्ति हो।"

श्रीमती अमृतकौर की विपरीत दृष्टि

किन्तु श्रीमती अमृतकौर की दृष्टि इससे सर्वथा विपरीत है। वे सदा वैद्यों को सम्बोधन करके उन्हें अपना दृष्टिकोण बदलने के लिए कहती रहती हैं और आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली को छोड़कर एलोपैथी चिकित्सा-प्रणाली अपनाने पर, पूरी शक्ति लगाकर, जोर देती रहती हैं। एसेम्बली हॉल में और बाहर भी श्रीमती अमृतकौर के इस प्रकार के भाषणों का प्रायः सर्वत्र ही जनता ने विरोध किया है।

बड़े-बड़े नगरों में

आम सभा करके जनता ने स्वास्थ्य मन्त्रिणी के उस भाषण का विरोध किया है, जो संसद में उन्होंने आयुर्वेद-प्रणाली के विरोध में दिया था। अलीगढ़ में २२ अप्रैल सन् '५४ की एक आम सभा में—जिसमें नगर के प्रायः सभी प्रतिष्ठित सज्जन उपस्थित थे—नगर के प्रसिद्ध एडवोकेट श्री विद्याधर चतुर्वेदी जिसका सभापतित्व कर रहे थे, श्री आनन्दस्वरूप बिस्मिल, नगर कांग्रेस कमेटी के प्रधान श्री वर्माजी, वयोवृद्ध हकीम शेरवानी साहब तथा स्पेशल मजिस्ट्रेट श्री रामलाल जैन आदि महानुभावों ने अपने

भाषणों में राजकुमारी श्रीमती अमृतकौर के मत का विरोध किया।

उन्होंने कहा—'स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी अंग्रेजियत से हमारा पिण्ड नहीं छूटा।' जिनके अधीन स्वास्थ्य-विभाग है, उनकी आयुर्वेद के बारे में अनभिज्ञता एक प्रकार से लज्जा की ही बात है। सरकार एलोपैथी को जितना प्रोत्साहन देती है, यदि उसका आधा भी देशी चिकित्सा-पद्धति को दे,तो एक बड़ी समस्या हल हो जाय।'

सक्रिय साप्ताहिक विरोध

केवल भाषणों से विरोध प्रकट करके जनता को सन्तोष नहीं हुआ। यह याद रखने की बात है कि दृढ़ विरोध प्रकट करने के लिए, जनता ने एक—'देशी इलाज-पद्धति सप्ताह' मनाया, जिसमें आवश्यकता पड़ने पर बड़े-छोटे हिन्दू-मुसलमान सब ने भारतीय चिकित्सा से ही लाभ उठाया। २२ अप्रैल से २ मई तक यह सप्ताह मनाया गया एवं और भी कई नगरों में देशी चिकित्सा-सप्ताह मनाया गया। झाँसी में भी आमसभा करके जनता ने श्रीमती अमृतकौर के भाषणों का विरोध किया। बहुत लोगों ने तो आजीवन देशी औषध-सेवन का व्रत ले लिया।

देश को परतन्त्रता से मुक्त कराने के लिए जिन महानुभावों ने एक क्षण भी प्राणों का मिथ्या मोह नहीं किया, उनके प्राणों की रक्षा का भार विदेशी चिकित्सा-पद्धति को सौंपा जाय—जब कि देश में सर्वाङ्ग सम्पन्न स्वदेशी चिकित्सा-पद्धति विद्यमान हो—यह महान् दुःख की बात है।

संघ शक्ति से ही सफलता की आशा

अब वैद्यों के सामने एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित है। जिस प्रकार अलीगढ़ आदि बड़े-बड़े नगरों में सामूहिक रूप से जनता ने सभाओं और देशी चिकित्सा-सप्ताहों द्वारा राजकुमारी श्रीमती अमृतकौर के भाषणों का विरोध किया है, उसी प्रकार भारत के छोटे-बड़े ग्रामों और कसबों में और नगरों में भी जहाँ कहीं आवश्यकता समझें, सभा करके श्रीमती अमृतकौर के भाषणों का विरोध करें और निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार कर उसकी तीन प्रतिलिपियाँ करके निम्नलिखित पतों पर भेजें:—

(१) स्वास्थ्य मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

(२) सभापतिजी—निखिल भारतीय आयुर्वेद महा-सम्मेलन, महालक्ष्मी मारकेट, चाँदनी चौक, देहली–६।

(३) सम्पादक—सचित्र आयुर्वेद, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, १ गुप्ता लेन, जोड़ासांकू—कलकत्ता–६।

आजकल एक व्यक्ति की आवाज कोई सुनने को तैयार नहीं है। इसलिए राज्य से उचित कार्य कराने के लिए हमें सामूहिक रूप से ही कहना चाहिए।

प्रस्ताव का स्वरूप

"यह सार्वजनिक सभा राजकुमारी श्रीमती अमृतकौर के उन भाषणों का जोरदार विरोध करती है, जिन भाषणों में उन्होंने आयुर्वैदिक चिकित्सा को अवैज्ञानिक कहा है। यह सभा देश में आयुर्वैदिक चिकित्सा को राष्ट्रिय चिकित्सा-पद्धति का सम्मानित पद प्राप्त होने की माँग करती है और सरकार से अनुरोध करती है कि आयुर्वैदिक चिकित्सा-पद्धति के विकास और संरक्षण पर एलोपैथी जैसा खर्च करे।"

---:o:---

क्या आयुर्वेद अवैज्ञानिक है?

सरकार द्वारा सञ्चालित विभागों में स्वास्थ्य-विभाग अपना विशेष महत्त्व रखता है। स्वस्थ मनुष्य ही किसी कार्य का सुचारु-सञ्चालन कर सकता है; बीमार नहीं। प्रत्येक मनुष्य को स्वास्थ्य की सब से अधिक कामना रहती है। यह कामना स्वास्थ्य के नियमों का सावधानी से पालन करने पर ही पूर्ण होती है। स्वास्थ्य के लिए व्यक्तिगत प्रयत्नों के साथ-साथ सामूहिक प्रयत्नों की भी अधिक आवश्यकता है। अपना-अपना घर सभी लोग बुहारते हैं; किन्तु जहाँ वह बुहारन फेंकी जाती है, उसे यदि कोई साफ न करे, तो घर साफ करना बहुत फलदायक सिद्ध नहीं होता; किन्तु उस कूड़े के ढेर को साफ कौन करे? वैयक्तिक आवश्यकता तो घर की सफाई से पूर्ण हो गई। अब कोई व्यक्ति क्यों चाहेगा कि आम रास्ते पर या सड़क पर अथवा मुश्तर्का सहन में फेंका हुआ कूड़ा वहाँ न रहे, भले ही उससे तकलीफ हो। वह भी तो मुश्तर्का—सब में समान रूप से है; इसलिए सभी उसे सहन करते रहते

हैं। इस प्रकार के दुःखों से बचने के लिए मनुष्य को सामूहिक शक्ति की कल्पना करनी पड़ती है। राज्य भी सामूहिक दुःखों का निवारण करने के लिए स्वयं कल्पित एक सामूहिक शक्ति का नाम है। इसके अतिरिक्त राज्य कोई नवीन चीज नहीं है।

ऐसी स्थिति में राज्य का कर्त्तव्य हो जाता है कि सामूहिक कार्यों का योग्यतापूर्वक संचालन और सामूहिक दुःखों को योग्यतापूर्वक दूर करे। योग्यता का सब से उत्कृष्ट लक्षण है––पराश्रित न होना। नैतिक स्वत्व और परत्व को प्रायः सब ही जानते हैं, और प्रत्येक व्यक्ति तथा समूह भी 'स्व' से प्रेम करता है, 'पर' से नहीं। मनुष्य के लिए 'स्व' बहुत ही प्यारा शब्द है। इसका अर्थ तो इतना प्यारा है कि मनुष्य अन्य सारे प्यार उस पर न्योछावर कर देता है। 'स्व' में यदि कुछ दोष हों, तो भी 'पर' से अच्छा ही लगता है। अपना पुत्र अपना ही है और पराया, पराया ही। अपने को उन्नत करने की चाह प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में स्वाभाविक रूप से रहती है। 'स्व' के सामने 'पर' सदा नीचे ही रहता है। जहाँ ऐसा नहीं, वहाँ स्वत्व डूब जाता है। उसके अकेले के डूबने से सब कुछ नष्ट हो जाता है, कुछ बचता ही नहीं। जो बचता है, वह सब परत्व के रूप में। जैसे अपनी आँखें फूटने पर––भले ही सब की आँखें रहें––सारा संसार अन्धकार-पूर्ण हो जाता है। यही स्थिति स्वत्व के नष्ट होने पर होती है। इसलिए, सब कुछ खो कर भी स्वत्व की रक्षा करने में बुद्धिमानी और योग्यता सिद्ध होती है।

इस सिद्धान्त से आयुर्वेद के विषय में जब हम अपनी केन्द्रीय सरकार का रुख देखते हैं, तब हमें दुःख और आश्चर्य होता है। हमारी केन्द्रीय सरकार की स्वास्थ्य मन्त्रिणी श्रीमती अमृतकौर के भाषणों में ऐलोपैथी चिकित्सा-पद्धति को अपनाने और आयुर्वैदिक चिकित्सा-पद्धति को छोड़ने की अति कटु सिफारिश जब हम सुनते हैं, तब हमें उन की भ्रान्त बुद्धि पर बड़ा दुःख होता है। न जाने उनके दिमाग में यह भ्रम किसने भर दिया है कि आयुर्वैदिक चिकित्सा अवैज्ञानिक है और एलोपैथी चिकित्सा वैज्ञानिक। विज्ञान का अर्थ तो किसी चीज को 'निर्भ्रान्त जानना' ही है। इस सिद्धान्त को जैसा आयुर्वेद-चिकित्सा-पद्धति स्वीकार करती है, वैसा अन्य चिकित्सा-पद्धतियाँ नहीं करती होंगी; क्योंकि निर्भ्रान्त प्रत्यक्ष के [illegible] में [illegible] हैं। **प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द।** आयुर्वेद जब इन चारों प्रमाणों से वस्तु-परीक्षा कराने का कायल है, तब उसे अवैज्ञानिक कहने का अपराध कोई क्योंकर करता है? अपराधी वह हो सकता है, जो इन प्रमाणों से परीक्षा कराने में डरे, या मैदान छोड़कर भागे। आयुर्वेद में ज्ञान की पुष्टि और अज्ञान की जितनी निन्दा है––केवल शाब्दिक नहीं, राजदण्ड की व्यवस्था के साथ; राजदण्ड भी छोटा-मोटा नहीं, प्राण दण्ड की व्यवस्था––ऐसी व्यवस्था अन्यत्र कहाँ मिलेगी। भारतीय चिकित्सा-क्षेत्र में अज्ञान जितना भयानक अपराध माना गया है, उतना कोई दूसरा अपराध नहीं माना गया। चिकित्सा-विज्ञान के दो विभाग किये हैं––(१) शास्त्रीय ज्ञान और (२) कर्माभ्यासीयानुभव, अर्थात् Theoretical and practical Science ये दोनों ही प्रकार के ज्ञान वैद्यों के लिए आवश्यक माने गये हैं। दोनों प्रकार के ज्ञानों में से एक की भी कमी होने पर वैद्य न केवल चिकित्सा का अनधिकारी ठहराया गया है, बल्कि ऐसा अनधिकारी चिकित्सा-क्षेत्रों में आकर चिकित्सक होने का यदि अपराध करता है, तो खूनी अपराधी के समान प्राण-दण्ड का भागी होता है। ऐसी व्यवस्था अनेक उपलब्ध होती हैं। नीचे उद्धृत सूत्र इस बात के साधक हैं––

यस्तु केवल शास्त्रज्ञः कर्मस्वपरिनिष्ठितः।
समुह्यत्यातुरं प्राप्य प्राप्यभीरुरिवाहवम्। सु.सू. ३-४८
उभावेतावनिपुणावसमर्थौ स्वकर्मणि।
अर्धवेद धराणेतावेकपक्षाविवद्विजौ।। सु० सू० ३-५०
यस्तु कर्मसुनिष्णातो धाष्ट्र्याच्छास्त्र बहिष्कृतः।
स सत्सु पूजां नाप्नोति वधं चार्हति राजतः।

––सु० सू० ३––४९

आयुर्वेद में अज्ञ वैद्यों की घोर निन्दा की गई है; उन्हें चोर, डाकू और हिंसक कहा गया है। उनके साथ उठ-बैठ तो अलग, उनसे सम्भाषण करनेवालों को भी 'नरकगामी' कहा गया है। अशिक्षित अथवा अर्ध-शिक्षित यदि चिकित्सा-क्षेत्र में आते हैं, तो यह राजा की लापरवाही मानी गई है।

स्नेहादिष्वनभिज्ञाये छेद्यादिषु च कर्मसु।
ते निहन्ति जनं लोभात् कुवैद्यानृपदोषतः।

सु० सू० अ० ३-५२

ऐसे कुवैद्यों को प्राणदण्ड के सिवाय दूसरा दण्ड नहीं।

जिस चिकित्सा-प्रणाली में अनधिकारियों को प्राणदण्ड की व्यवस्था हो, उस चिकित्सा-पद्धति को अवैज्ञानिक कहने का साहस भी वैसा ही पाप है, जैसा अनधिकारी डॉक्टर-वैद्य का चिकित्सा-क्षेत्र में कार्य करना।

गुरु-परम्परा से शास्त्र का अर्थावबोध पर्यन्त अध्ययन करके कर्माभ्यास में सर्वतोभावेन पुण्य प्राप्त किया हुआ वैद्य चिकित्सा करने का अधिकारी होता है, अन्यथा वैद्य नहीं 'चोर' है।

"शास्त्रं गुरुमुखोद्गीर्णमादायोपास्यचासकृत्।
यः कर्म कुरुते वैद्यः सवैद्योऽन्ये तु तस्कराः।

—सु. सू. ४-८

इस प्रकार चिकित्सा-क्षेत्र में एक मात्र ज्ञान-विज्ञान को अतिशय महत्त्व देनेवाली चिकित्सा-पद्धति को उदरम्भरी लोगों ने अवैज्ञानिक कहकर उस कामधेनु का सारा चारा बकरी को चराकर पुष्ट कर दिया, उस कामधेनु को अपने खेत से निकाल बाहर किया। इस घोर अन्याय के मूल में जिनका हाथ प्रधान था, उन्हों ने अपनी करतूत का फल पा लिया। उस कुफल से एक भारी शिक्षा हमें प्राप्त होती है—

"अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः।
त्रिणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्।"

इस प्रकार के भयानक वज्रपातों से अधिकारी बचे रहें; इसलिए हम उनसे विनयपूर्वक प्रार्थना करते हैं कि आयुर्वेद-चिकित्सा-प्रणाली के साथ अंग्रेजों के समय से जो अन्याय अब तक होता चला आ रहा है, वह अब समाप्त होना चाहिए। इस चिकित्सा-प्रणाली में केवल रोगों की चिकित्सा मात्र हो, ऐसा नहीं; इसमें आयुसम्बन्धी विज्ञान भरा पड़ा है। पुरुष क्या है? आयु क्या है? मनुष्य को पूर्णायु कैसे प्राप्त हो सकती है? आयु से हित-साधन कैसे होता है? किन असावधानियों के कारण आयु अहितकर होती है? रोगों को सर्वथा दूर करने के उपाय क्या हैं? इन महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का वैज्ञानिक उत्तर आयुर्वेद में मिलता है। सदा स्वस्थ, सबल और सुन्दर रहने के सरल उपाय आयुर्वेद बतलाता है। आयु को बढ़ाने के सरल और सुलभ उपाय आयुर्वेद में मिलते हैं। रोगों को नष्ट करने की अच्छी ओषधि आयुर्वेद बतलाता है। आयुर्वेद में सिर्फ सोंठ, मिर्च, पीपर और हरड़, बहेड़ा, आँवला ही है और कुछ नहीं, यह धारणा बहकाये हुए लोगों की है। सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, लोहा, सीसा, जस्ता और राँगा इस प्रकार सात धातु और काँसा, पीतल आदि सात उपधातुओं की भस्म; हीरा, पन्ना, माणिक्य, पुखराज, नीलम आदि जवाहरातों की भस्म और पिष्टी; पारा, गन्धक, हरताल और मनःसिला आदि खनिज द्रव्य; रस कपूर, दालचिकना, संखिया, हलाहल, सिंगिया आदि स्थावर और उद्भिज विषों के सफल प्रयोग; सर्प, वृश्चिक आदि महाविषैले जङ्गम जानवरों के विषों के प्रयोग; सूअर, भैंसा आदि के पित्ते; नाकू आदि का शुक्र; भैंसा, सूअर और बकरा आदि के अण्डकोष; इनके मांस, रुधिर-चर्बी आदि; कहाँ तक गिनाएँ, जिधर देखो उधर ही सब जाति के सब द्रव्यों का औषध के रूप में यथार्थ प्रयोग कर के आयुर्वेद के आचार्यों ने सफलता प्राप्त की थी और "नानौषधिभूतं द्रव्यं किञ्चिदस्ति' 'संसार में कोई चीज ऐसी नहीं, जो औषध न हो' की आश्चर्यमयी घोषणा की थी। उनके विशाल विज्ञान की तुलना में कौन-से नये विज्ञान को खड़ा किया जाय? बहुत-से विज्ञ अंग्रेज आयुर्वेद-विज्ञान के कायल हैं। कितने ही उदार हृदय के अंग्रेजों ने संकुचित दृष्टि को दूर करके आयुर्वेद की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। कितनों ने तो यहाँ तक कहा है कि चरकोक्त चिकित्सा का प्रचार यदि देश में हो, तो इंगलैंड में कब्र खोदनेवालों की संख्या में भारी कमी हो सकती है। बहुत-से अंग्रेज उदार डॉक्टरों का कहना है कि ऐलोपैथी को वैज्ञानिक कहना निरा ढोंग है। केवल अपनी दवाओं का व्यापार बढ़ाने के लिए ऐलोपैथी को वैज्ञानिक और उससे भिन्न चिकित्सा-पद्धतियों को अवैज्ञानिक कहा जाता है। आयुर्वेद को अवैज्ञानिक कहना आसान है; किन्तु इसे सिद्ध करना उतना ही कठिन है, जितना धूल की एक मुट्ठी से सूर्य्य को ढँकना।

आयुर्वेद आठ महाव्याधियों को असाध्य बताता है—

वातव्याधिः प्रमेहश्च कुष्ठमर्शो भगन्दरम्।
अश्मरी मूढगर्भश्च तथैवोदरमष्टमम्॥
अष्टावेते प्रकृत्यैव दुश्चिकित्स्या महा गदाः।

सुश्रुत सूत्र स्थान ३३ अ०

आयुर्वेद ने, बहुत बढ़ी हुई विकृत अवस्था के (प्रारम्भिक अवस्था के नहीं) इन आठ महारोगों को प्रत्यक्षादि प्रमाणों से असाध्य सिद्ध किया है। यह आयुर्वेद के आचार्यों का अनुभव है। इसे कोई चिकित्सा-पद्धति

झूठा करके दिखावें, तो आयुर्वेद सोलह आने झूठा, नहीं तो 'वैज्ञानिक' होने का दावा करनेवाले महा झूठे। जिन विशिष्ट अवस्थाओं में ये रोग सर्वथा असाध्य होते हैं, लेख अति विस्तृत होने के भय से, उन अवस्थाओं का वर्णन हम यहाँ छोड़ रहे हैं। जो जानना चाहें, हमसे पत्र द्वारा पूछ लें या सुश्रुत-संहिता सूत्रस्थान के ३३ वें अध्याय में देख लें।

श्वास का रोगी प्रतिदिन दिन के पूर्व भाग में भोजन करके दिन के दूसरे भाग में यदि वमन कर दे तथा ज्वर और खाँसी से पीड़ित रहे, तो बच नहीं सकता।—सुश्रुत सूत्र-स्थान ३२ अध्याय। यह आयुर्वेद-चिकित्सा-पद्धति से प्रमाणित बातें हैं। इस प्रकार की एक दो नहीं, सैकड़ों बातें हैं। उनमें से किसी एक बात को भी यदि कोई चिकित्सा-पद्धति झूठी सिद्ध कर दे, तो हम भी आयुर्वेद को अवैज्ञानिक, अर्थात् अंट-शंट बकनेवाला कहने लगेंगे। यदि ऐसा न करके कोई आयुर्वेद को अवैज्ञानिक कहने का अपराध करता है, तो वह अपने आपको कितना ही समुन्नत समझता हो, हम तो उसे अंट-शंट बकनेवाला ही समझेंगे। इस प्रकार की बकवास अंग्रेजों के जमाने में मन के दुर्वल, कुछ एलोपैथ डॉक्टर, अंग्रेजों के सिखाने-बहकाने से, किया करते थे। यह पाप अंग्रेज अधिकारी पेट के लिए और उनके पिट्ठू भारतीय एलोपैथ डॉक्टर दासता की मनोवृत्ति के वशीभूत होकर, कोई ऊँचा पद प्राप्त करने की लालसा से किया करते थे।

परन्तु, अब वह स्थिति नहीं है। सौभाग्य से अब देश स्वतन्त्र है। अब अंग्रेजों की उन बदबू से भरी कुत्सित स्वार्थ के अंजीर्ण की डकारों को दोहराते रहने का समय नहीं है। हमारे देशवासियों के मनों में अब दासता के विकार नहीं रहने चाहिए। अब सच्चा और झूठा पह-चानने के लिए हमें अपनी बुद्धि होनी चाहिए। ऊँचे स्थान से गिरने में बहुत चोट लगती है। इसे न भूलना चाहिए। ऊँचे स्थान पर अपने आप को सँभाले रखने के लिए योग्यता की बड़ी आवश्यकता है। अयोग्य आदमी ऐसे पद पर किसी की कृपा से आरूढ़ होकर भी अपने को स्वतन्त्रतया स्थिर नहीं कर पाता। वह सदा ही दूसरों के मुँह से बोलता, दूसरों के कानों से सुनता और दूसरों के मन से विचार करता है। यह मनुष्यता से बाहर की बात है और एक बुद्धिमान के लिए, इससे अधिक लज्जा की बात दूसरी नहीं कही जा सकती। "मूढ़ः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः।" एक साधारण मनुष्य साधारण स्थिति में ऐसा कर दे, तो उससे कोई बड़ा अनिष्ट नहीं होता। किन्तु किसी असा-धारण उत्तरदायित्वपूर्ण पद का उपभोग करता हुआ कोई व्यक्ति वैसा करता है, तो घोर अन्याय करता है। उतना बड़ा अन्याय उच्च अधिकारी को नहीं करना चाहिए। जिनकी कृपा से यह अन्याय निभता था, वह आज, इस देश में ऐसा अन्याय करनेवाले की कोई सहायता नहीं कर सकते; इसलिए अब आयुर्वेद के सम्बन्ध में जो कुछ कहना हो, अपने दिमाग से कहना चाहिए।

अभी उत्तर प्रदेश विधानसभा के चालू अधिवेशन में बहुत बड़ी संख्या में मेम्बरों ने आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति के साथ उचित न्याय-व्यवस्था की माँग की है।

विधानसभा में माननीय मन्त्री महोदय ने बड़े दुःख के साथ यह स्वीकार किया है कि एलोपैथ डॉक्टर आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति के साथ समुचित व्यवहार नहीं करते। उदाहरण उपस्थित करते हुए मन्त्री महोदय ने भरी विधान-सभा में यह कहा कि लखनऊ का आयुर्वेदिक कॉलेज इसलिए बन्द कर देना पड़ा कि लखनऊ के मेडिकल कॉलेज के प्रोफे-सरों ने आयुर्वेदिक कॉलेज को उचित सहायता नहीं दी। कितने दुःख की बात है।

उन डॉक्टरों को शायद यह भय है कि वैद्य हमारी जड़ काट देंगे। इस कारण, वह वैद्यों को सुहृद्भाव से नहीं देखते, परन्तु यह भय यदि उनका सत्य हो, तो भी इस प्रकार इस भय से डॉक्टरों की आत्मरक्षा कब तक होगी? इस भय से आत्म-रक्षा का उचित उपाय तो यह है कि डॉक्टर आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करें और वैद्य एलोपैथी के सिद्धान्तों को जानें। तब, दोनों का परस्पर मेल हो जायगा।

बिना सोचे-समझे आयुर्वेद और आयुर्वेदज्ञों से शत्रुता मानकर चलने का जमाना अब नहीं रहा। अब तो विज्ञान को तोलना पड़ेगा और विज्ञान-भरे आयुर्वेद की महत्ता स्वीकार करनी पड़ेगी।

---:०:---

मधुमेह

साहित्याचार्य वैद्य घनानन्द पन्त, विद्यार्णव

विदित होता है कि मधुमेह का प्रथम वर्णन आत्रेय संहिता (लुप्त) में होगा। आत्रेय के व्याख्यानों का संग्रह उनके शिष्य अग्निवेश की संहिता (लुप्त) है। इसके कुछ उद्धरण यत्र-तत्र मिलते हैं। यथा——आयुर्वेद प्रकाश शिलाजतु शोधन प्रकरण में 'ग्रीष्मेऽथ काले रवितापयुक्ते'——इत्यादि श्लोक अग्निवेश के नाम से उद्धृत हैं। उक्त श्लोक चरक के शिलाजतु शोधन प्रकरण में नहीं मिलते। शोधन प्रक्रिया में भी दोनों में कुछ भेद है। सम्भवतः चरक को उक्त अग्निवेश के श्लोक न मिले हों, किसी ग्रन्थान्तर से पूर्ति की गई हो, अस्तु। जब कालान्तर में अग्निवेश संहिता भी छिन्न-भिन्न लुप्तप्राय हो गई, तब चरक ने अग्निवेश संहिता का पुनरुद्धार किया।

कल्पादि में ब्रह्माजी ने वेद के स्मरण की भाँति आयुर्वेद का भी स्मरण किया, न कि नवीन रचना। इससे आयुर्वेद का अनादित्व सिद्ध होता है। स्यादेतत्——इससे यह विदित होता है कि मधुमेह का इतिहास भी आयुर्वेद में ब्रह्मसंहिता के समय से होना चाहिए। जैसा कि——

ब्रह्मास्मृत्वायुषोर्वेदं प्रजापतिमजिग्रहत्।
सोऽश्विनौ तौ सहस्राक्षं सोऽत्रिपुत्रादिकान् मुनीन॥

यह आयुर्वेद की उत्पत्ति की परम्परा है। चरक में जो मधुमेह के निदान चिकित्सादि हैं, वे परम्परा-प्राप्त (ब्रह्मसंहिता से) हैं।

मूत्र में मीठा स्वाद होने से इसका नाम मधुमेह या इक्षुमेह दिया गया। इधर यूरोपीय लेखकों को १६७० ई० में मूत्र में मधुर स्वाद का ज्ञान हुआ। फिर १७७६ ई० में——डा० मैथ्यू ने मूत्र में मधुरता का प्रदर्शन उत्सेचन प्रक्रिया से सिद्ध किया। अस्तु। पर केवल इन्सूलीन के मधुमेह की चिकित्सा पाश्चात्य मत में दूसरी नहीं है। हाँ, आजकल इन्सूलीन के प्रभाव को अधिक काल तक स्थाई बनाने के लिए (२४ घण्टे से ३६ घण्टे तक) प्रोटामिन जिङ्क इन्सूलीन नवीन प्रयोग में आया है। केवल इन्सूलीन का असर ८ घण्टे ही रहता है। यद्यपि मधुमेही की शस्त्र-क्रियादि में उक्त इन्सूलीन के प्रयोगों से बड़ा उपकार होता है, तथापि इन्सूलीन चिकित्सा मधुमेही के लिए कोई सिद्ध (स्थाई) चिकित्सा नहीं है। इधर सुश्रुत ने बहु-काल पूर्व मधुमेह को असाध्य रोग मानकर सालसारादिगण के सहयोग से मधुमेह की चिकित्सा में लिखा है कि——

उपयुज्य तुलामेवं गिरिजादमृतोपमात्।
वपुर्वर्ण वलोपेतो मधुमेह विवर्जितः॥
जीवेद्वर्षशतं पूर्णं पूर्णमजरोमरसन्निभः॥
——सु० चि० १३-११

यह प्रतिज्ञा सुश्रुत की है। मैं भी कुछ समय से मधुमेह पर कुछ अभ्यास कर रहा हूँ। अर्थात् सालसारादि गण की दवाओं के यथामिलित दवाओं से भी बिना शिलाजतु की सहायता से ही कुछ सोपद्रव मधुमेह के रोगी (एलव्युमेन, विचर्चिका, प्रमेहपिडका तथा अति-तृषा—६-७ सेर प्रतिदिन जल पीना और इतना ही मूत्र होना, अनिद्रा, ज्वर, कासादि उपद्रव) अच्छे होते हैं, तोल भी बढ़ जाता है। पुनः परीक्षा करने पर मूत्र में मधु का भाग लेशमात्र भी नहीं मिलता है। यदि इसके बाद भी रोगी नियमपूर्वक रहता है, तो रोग याप्यावस्था में रहता है और रोगी अपना सब कारोबार कर सकता है।

सालसारादिगण नीचे लिखते हैं——

१. सालसार——इसको भाषा में साल कहते हैं, इसकी लकड़ी मकानों में काम आती है। २. अजकर्ण——यह भी जिस जङ्गल में साल का पेड़ होता है उसके साथ ही साल के समान बड़ा वृक्ष होता है। ३. खदिर प्रसिद्ध है। ४. कदर खदिर-भेद दुर्गन्धि खदिर कहलाता है। ५. कालस्कन्ध=तमाल? ६. क्रमुक=सुपारी का पेड़। ७. भूर्ज=जिसके भोजपत्र मिलते हैं, चकरौता आदि पर्वतीय स्थानों में बड़ा ऊँचा वृक्ष होता है। ८. मेषश्रृङ्ग? ९. तिनिश=साधन। १०. श्वेतचन्दन। ११. कुचन्दन=लालचन्दन। १२. शिंसपा=शीसम। १३. सिरीश=सिरम। १४. असन=विजयसार। १५. धव=धायवृक्ष। १६. अर्जुन। १७. ताल प्रसिद्ध। १८. शाक=सागवान। १९. नक्तमाल। २०. पूतीक करंज भेद। २१. अश्वकर्ण? २२. कालीयक=पीतचन्दन। प्रश्न चिह्नवाले द्रव्य हमें अभी तक ठीक नहीं मिले हैं। इनके अलावा मधुमेह-चिकित्सा में काम आनेवाले द्रव्य गुड़मार, बेलपत्र, गूलर, बट, जम्बु, जयन्ती, नीम और ढाक के पत्ते इन दो का वर्णन डा० महस्कर ने अपने रिसर्च में मधुमेह के लिए किया है। सालसारादिगण के प्रश्न-चिह्नित द्रव्य किसी को निश्चित विदित हों, तो हमें लिखने की कृपा करें।

नात्मानमवसादयेत् !

वैद्य रणजितराय

स्थान——नगर की सीमा पर स्थित एक पुल। एक तरुण, जिसकी मसें अभी भींगी नहीं है, बैठा एक रद्दी कागज के टुकड़े पर दृष्टि फिरा रहा है। अकस्मात् उसके मुख-मण्डल पर स्मित का उदय होता है। इस स्मित के पीछे छुपा हुआ है उसके जीवन की दिशा के परिवर्तन का तत्काल उदित हुआ निश्चय। और उसका कारण था वह रद्दी कागज का टुकड़ा।

यह तरुण नगर से कुछ दूर स्थित एक मठ का शिक्षार्थी था। ईसाइयत के सिद्धान्तों का आमूल अवगाहन कर उसी के प्रचार में समग्र जीवन व्यतीत कर देना ही उसकी महत्त्वाकांक्षा थी। इसी के अनुसार उसकी अब तक की चर्या बीती थी। महीने में एकाधवार विद्यार्थियों को नगर में आने की अनुज्ञा मिलती थी। उसी के प्रसंग में यह तरुण भी अपने सतीर्थ्यों (सहपाठियों) के साथ आया था। लौटते हुए वह कुछ जल्दी निकल पड़ा और इस पुल पर बैठा साथियों की बाट देख रहा था। लौटते समय चना-चबेना ले आया था। उसको न्याय देने से बचे समय का उपयोग करने की दृष्टि से वह उस रद्दी कागज को बाँचने लगा, जिसमें चना-चबेना बाँधकर दूकानदार ने दिया था।

यह रद्दी कागज भी अद्भुत था। इसमें साम्यवाद के उस काल के नवोदित सिद्धान्त की बातें अङ्कित थीं। पद्धति कुछ ऐसी थी कि तरुण पढ़ता गया और बातें उसकी बुद्धि में जमती गयीं। कागज़ समाप्त हुआ और तरुण के जीवन की दिशा को पलटाता गया। समाप्ति के पश्चात् आविर्भूत स्मित इसी परिवर्तन का सूचक था।

पीछे इस तरुण ने अपने साथियों के साथ इस विषय की चर्चा की। अपना स्वाध्याय बढ़ाया। साम्यवादी दल का सक्रिय सदस्य बना और अपनी निष्ठा और अध्यवसाय के बल पर बढ़ता-बढ़ता अन्त को दल के सर्वोपरि पद पर प्रतिष्ठित हुआ।

वाचकों को इस तरुण का स्टेलिन नाम अविदित नहीं होगा। स्टेलिन के कार्यों से तो कोई भी वाचक अपरिचित नहीं होंगे। पर बात जो कहने की है, वह यह कि स्टेलिन को स्टेलिन बनानेवाला कारण था, वह रद्दी कागज़ का टुकड़ा, जिसमें उस दिन दूकानदार ने उसे चना-चबेना बाँध दिया था।

वह कागज़ का टुकड़ा साम्यवादी दल के प्रचार-कार्य का एक नमूना था। दल अपना साहित्य अन्य रूपों में तो वितरित करता ही था, रद्दी कागज़ के रूप में भी दूकानदारों को सस्ते में दे आता था। और इस प्रकार अगोचर भाव से दल के सिद्धान्त घर-घर में और गली-कूचे में व्याप्त होते जा रहे थे।

इस प्रचार का ही प्रभाव है कि, साम्यवाद के विरोधी देशों ने साम्यवाद को कुचलने के लिए जो एटम-बम बनाया था, उसका आविष्कर्त्ता ही साम्यवाद का पक्षपाती निकला। दो-एक वर्ष पूर्व फ्रांस के इस विद्या के सर्वोत्कृष्ट विद्वान् प्रोफेसर क्यू री को साम्यवाद के पक्षपात के कारण ही पद-भ्रष्ट किया गया था; यह भी वाचकों को स्मरण होगा।

यह महिमा प्रचार की है। प्रतिस्पर्धी देश हजार झख मारें, साम्यवाद अपने सिद्धान्तों की विशेषता और प्रचार के बल पर आज फैलता जा रहा है और फैलता जाएगा। देश-भेद से उसका स्वरूप-भेद होता रहे, यह और बात है।

आयुर्वेद की एक मासिकपत्रिका में साम्यवाद के प्रचार की परिपाटी के उल्लेख का कुछ अर्थ है। और वह यह कि आयुर्वेद को सर्व चिकित्सा-पद्धतियों में मूर्धन्य पद पर प्रतिष्ठित करने का प्रमुख उपायों में एक यह प्रचार ही है—होना चाहिए। आयुर्वेद के लिए यों भी प्रचार की आवश्यकता है। पर यह आवश्यकता आज विशेष महत्त्व की हो गयी है। कोई विद्यार्थी आयुर्वेद पढ़ना चाहे, तो वह इन्टर-साइन्स उत्तीर्ण होने के अनन्तर ही पढ़ सकता है। प्रायः सभी राज्यों ने आयुर्वेदिक शिक्षा की प्रवेश-योग्यता यही निर्धारित की है। सो आयुर्वेद तो विद्यार्थी वय की अमुक मर्यादा बीतने के पश्चात् पढ़ेगा, पर उसके चित्त पर आयुर्वेद-विरोधी सिद्धान्तों के संस्कार

विद्याभ्यास के प्रारम्भ से ही पड़ने लगते हैं। रोगों के आविर्भाव में जीवाणुओं का अग्र पद, आहार का प्रोटीन- कार्बोहाइड्रेट आदि के रूप में विवेचन, अन्नपान के पचन में पेन्क्रियास आदि का उल्लेख; पेनिसिलिन, क्वीनाइन आदि द्रव्यों के आविष्कार का इतिहास तथा इनकी महत्ता; इन तथा अन्य विषयों पर लेख पाठमालाओं में तो बड़ी संख्या में होते ही हैं, शालाओं में पाठ्य-विषयों के अङ्गभूत विज्ञान, हाई-जीन, फिज़ियॉलॉजी आदि के ग्रन्थों में इन विषयों का विशद विवेचन होता है। ये संस्कार लेकर आए विद्यार्थियों को आयुर्वेद की महत्ता जताने के लिए कितना परिश्रम आवश्यक है, इसकी कल्पना की जा सकती है।

आशय यह है कि, आयुर्वेद के रहस्यों को बचपन से ही समझाने के लिए ठेठ पाठमालाओं से प्रचार का सूत्र पकड़ने की आवश्यकता है। साधारण जनता भी आयुर्वेद के सिद्धान्तों को समझे और आचरण में लाए, इस हेतु सरल भाषा में पत्र-पत्रिकाओं में लेख, छोटी-छोटी पुस्तिकाओं, भाषणों, चर्चाओं आदि की आयोजना होनी चाहिए। साधारण जनता आयुर्वेद से कितनी दूर जा पड़ी है, इसका छोटा-सा उदाहरण देता हूँ।

एक व्यक्ति, बी० ए० उत्तीर्ण। आयुर्वेद के वातावरण से सर्वथा अलिप्त तो नहीं। प्रति वर्ष इन्हें प्रतिश्याय, कास, मन्दज्वर के वेग हो आते। आधुनिक परीक्षा से जिसे 'ईयोसिनोफीलिआ' कहते हैं उस रोग से आक्रान्त। इन्हें अन्य सूचनाओं के साथ दूध के त्याग की भी सूचना दी गयी। कारण, दूध, विशेषतः महिषी-दूध। कफवर्द्धक है और ईयोसिनोफिल तथा अन्य श्वेत या क्षत्र कण मेरे नम्र मत से कफ के ही स्वरूप-विशेष हैं। अतः इसमें अपने गुरु, पिच्छिल, मन्द, शीत आदि गुणों से दूध कफ के सर्व गुणों की वृद्धि करनेवाला होने से ईयोसिनोफिलिआ में विरुद्ध (अपथ्य) है। विशेषकर आनूप देश में। रोगी को इस उपचार से लाभ होने का अनुभव भी था। नाम प्रतिवर्ष सोमल के इंजेक्शन लेने पड़ते थे सो इस तथा अन्य उपचार से न लेने पड़े। इस वर्ष भी पुनः वेग हुआ और रोगी को दुग्ध के परिवर्जन का स्मरण कराया गया। रोगी ने दूध छोड़ दिया, पर उसके स्थान पर मठा पीना चालू किया, वह भी प्रातः-काल, आठ-नौ बजे से पहले। परिणाम की कल्पना की जा सकती है।

यह दशा एक शिक्षित व्यक्ति की है। इस प्रकार के अगणित उदाहरण वाचकों की दृष्टि में प्रत्यह आते होंगे। इन्हें अपने समक्ष रख विचार कीजिए, आयुर्वेद को यदि हमें सचमुच आगे लाना है, उसे लोकप्रिय बनाना है तो, उसके सिद्धान्तों को, साथ ही उसकी शास्त्रोक्त तथा अनुभव सिद्ध विशेषताओं को जनता में प्रचलित करने के लिए कितने व्यापक और गम्भीर प्रचार की आवश्यकता है। आयुर्वेद का हित करने की आकांक्षा जिनके मनमें है, वे इस अवस्था को ध्यान में रख अपने कर्त्तव्य के स्वरूप, क्षेत्र और प्रमाण का विचार स्वयं कर लें।

दैवगत्या स्थिति कुछ ऐसी हो गयी है कि अपने को वैद्य कहलाने में हमें लज्जा अनुभव होती है। कोई 'डाक्टर साहब' कह कर बुलाए, तो उल्लास-सा होता है। पुड़िया के स्थान पर पेय औषध (मिक्श्चर), गोली के स्थान पर टिकिया (टेबलेट) और साथ-साथ सदा नहीं तो यदा-कदा सूचीवस्ति (इंजेक्शन) देना सामान्य वैद्य चिकित्सक की बात जाने दें, आयुर्वेदाध्यापक प्रेक्टिशनरों का भी यह धर्म-सा हो गया है। आयुर्वेदाध्यापक विद्यार्थियों के आगे भाषण देते आयुर्वेद की महत्ता बताएँगे पर, व्यवहार में उससे सर्वथा विपरीत होंगे। आयुर्वेद के कई नेताओं की भी यही बात हैं। मैं मानता हूँ कि इसके अपवाद भी हैं और इन अपवाद-भूत कतिपय तपस्वियों की तपस्या के बल पर ही आयुर्वेद टिका है और आगे भी अपना उचित पद प्राप्त करेगा।

स्पष्ट कह दूँ, यह किसी पर दोषारोप नहीं है। यह तो स्वभावोक्ति है—वस्तुस्थिति का यथास्थित चित्रण है। इसलिए कि हम अपने कर्त्तव्य का निर्धारण योग्य प्रकार से कर सकें। सहस्रों वर्षों से परम्परा टूट जाने से आठ अङ्गों में केवल काय-चिकित्सा से हमारा सम्बन्ध रह गया है, वह भी अधूरा। शास्त्रों के आमूल अवगाहन, प्रयोग-परीक्षण; परस्पर-संभाषा तथा प्रचार के द्वारा जबतक हम आयुर्वेद के सिद्ध सूत्रों को जनता के समक्ष रखेंगे नहीं, जनता को हृदयङ्गम नहीं कराएँगे, और इससे भी बढ़कर विशेषतया इतर पद्धतियों के चिकित्सकों को अपने शास्त्र का महत्त्व प्रत्यक्ष करके नहीं बताएँगे, तब तक हमारा यह आत्म-दैन्य दूर न होगा। अपने शास्त्र पर हमारा ही विश्वास जो चलित-सा हो गया है, वह तब तक पुनः दृढ़ न होगा।

पिछले कुछ वर्षों के अपने अनुभव से मैं समझ सका हूँ कि, आयुर्वेद के अवगाहन और उस पर प्रयोग का कार्य विशेषतया आयुर्वेद-महाविद्यालयों से संबद्ध चिकित्सालयों में अधिक अच्छी तरह हो सकता है, और विशेषतया उन्हें करना भी चाहिए। शास्त्र में अनिवार्यतया निमग्न रहने का कार्य करनेवाले विद्यालयाध्यापकों तथा उन्हें कोई नवीन तत्त्व मिले, तो उसके प्रयोग का कार्य करनेवाले आतुरालय के कार्यकर्त्ताओं का एकत्र संगम ऐसी संस्थाओं में होने से अन्वेषण-कार्य अधिक सुगम होता है। शेष स्वतन्त्र व्यवसाय करनेवाले चिकित्सकों द्वारा अन्वेषण कार्य तो आकस्मिक ही होना प्रायः संभव होता है।

अन्वेषण के लिए आवश्यकता है केवल इच्छा, प्रतिभा और साहस की। इस विषय में कुछ विचार मैं अपने गत अङ्क के लेख में दर्शा आया हूँ। जो महानुभाव इस दिशा में यत्किंचित् भी प्रवृत्त हैं, वे इस बात को स्वयं अच्छी तरह समझ सकते हैं। इन अन्वेषणों के परिणाम स्वरूप हम आयुर्वेद के वचनों को जितना अधिक समझते जाएंगे, उनका आचरण जितना बढ़ाते जाएंगे, उतनी ही हमारी दृष्टि विस्तृत होगी, नई-नई दिशाएँ हमें सूझेंगी, शास्त्र पर तथा उसकी पद्धतियों पर हमारा विश्वास बढ़ेगा और यदि हम अध्यापक होंगे तो अपने विद्यार्थियों को भी आयुर्वेद की सचाइयों की ओर अधिक सफलता से आकृष्ट कर सकेंगे, और यदि हम चिकित्सक होंगे तो अपने विचारों और चिकित्सा-परिपाटी अपने ग्राहकों—रोगियों को अधिक दृढ़ता से समझा सकेंगे।

इसका एक और शुभ परिणाम भी मैं देख रहा हूँ। आज हम समन्वय की सर्वत्र घोषणा सुन रहे हैं। मुझे यह अपने आत्म-दैन्य का ही एक रूप प्रतीत होता है। मैं नहीं कहता कि सत्य जहाँ से मिले वहाँ से स्वीकार नहीं करना चाहिए। मैं यह भी कब कहता हूँ कि हमें अपनी दृष्टि संकुचित रखनी चाहिए। मैं यही चाहता और कहता हूँ कि कठिनाई उपस्थित होने पर उसका समाधान, उसका हल पहले आयुर्वेद में ढूँढना चाहिए। आज नहीं कल, आयुर्वेद में से उसका उत्तर अवश्य मिलेगा। आज भी मिल सकता है, पर हो सकता है वह हमसे दूर किसी अन्य ग्राम, नगर या राज्य में किसी अन्य वैद्य के पास हो। वह हमें भी सुलभ हो, हमारा अनुभव अन्य स्थानों के वैद्यों को अवगत हो और इस प्रकार आयुर्वेद संपूर्णता की ओर बढ़ता जाए, इसी के लिए तो प्रचार की आवश्यकता है। यह प्रचार सहस्रों रूप धारण कर सकता है, यह बात लेख के आदि में दिये निदर्शन से विदित हो सकती है।

मैं समझता हूँ, आयुर्वेद इस पद्धति से पढ़ा और आचरण में लाया जाए तो समन्वय की आवश्यकता कुछ कम हो जाएगी। एलोपेथी, यूनानी, होमियोपेथी तथा अन्य पेथियाँ सब सत्य हैं। परन्तु अपने को अपरिचित रोग उपस्थित होने पर उसका निदान-लक्षण-चिकित्सा आयुर्वेद में से ढूँढने का प्रयत्न न कर—पर शास्त्र का सहारा लिया जाय, तो इसे मैं आयुर्वेद की प्रगति का अवरोधक मानूँगा। मुझे भय है, समन्वय के रोचक नाम की घोषणा कर आयुर्वेद की प्रगति को हम अवरुद्ध कर रहे हैं। कठिनाई उपस्थित होने पर आयुर्वेद से ही हल ढूँढने का यह प्रयत्न वे वैद्य विशेषतया कर सकते हैं, जिन्हें केवल आयुर्वेद की शिक्षा मिली हो। कम-से-कम उनसे ऐसी आशा अवश्य की जा सकती है। यदि केवल (शुद्ध) आयुर्वेद के अध्यापकों और अध्येताओं में यह दृष्टि हो, तो वे आयुर्वेद से लोकोपयोगी तत्त्वों का आविर्भाव-पुनराविर्भाव कर आयुर्वेद की श्री-वृद्धि कर सकेंगे। केवल इसी दृष्टि से मैं स्वयं तो शुद्धायुर्वेद का पक्षपाती हूँ। बाकी यह शंका कोई न करे कि शुद्धायुर्वेद के विद्यार्थी नव्य विज्ञान से अलिप्त रह जायँगे। विद्यापीठ आदि के केवलायुर्वेद पढ़े विद्यार्थी भी एलोपेथी आदि की औषधों का कम उपयोग नहीं करते। ऐलोपेथी का प्रचार ही आज इतना अधिक हो गया है कि जनता तक उनसे परिचित हो चुकी है। अतः शुद्धायुर्वेद के पक्षपातियों पर विद्यार्थियों को नवीन विज्ञान से अलिप्त रखने का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

——:०:——

क्या वैद्य-समाज नव्य ज्ञान-विज्ञान का पिपासु नहीं ?

———0———

मनुष्य यदि पूर्ण ज्ञान प्राप्त किये जन्म लेता, तो शायद उस स्थिति में कुछ सीखने की आवश्यकता न होती, पर ऐसा तो देखा नहीं जाता। इसके विपरीत यह देखते हैं कि वह जन्म से लेकर मरण पर्यन्त जरा-सी सांसारिक व व्यावहारिक बातें सीखता ही रहता है और उसे पढ़ाया-लिखाया न जाय, तो उसे कुछ नहीं आता, वह निरा मूर्ख एक पशु के तुल्य रहता है। कहावत है—"विद्या विहीना पशुः" हाँ, मनुष्य में अनुकरण करने की प्रवृत्ति स्वभावतः पाई जाती है और जिस अनुकरण द्वारा उसे कुछ लाभ होने का अनुभव हो रहा हो, वह उस ओर अवश्य ही जाता है। आप उसे उस ओर जाने से हटाने की लाख चेष्टा करिये, किन्तु वह नहीं हटेगा।

अनुकरण करने की प्रवृत्ति का उदय उसके जीवन के अस्तित्व की घटना से सम्बन्धित एक नैसर्गिक क्रिया मानी जाती है। यह उसके विकास की वास्तविक सीढ़ी है। मानव प्राणी ने जब से विचार पूर्वक काम करना सीखा है, तब से वह इस विचार रूपी सीढ़ी के सहारे ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र की ओर कदम-ब-कदम आगे बढ़ता ही चला आया है, किन्तु जबसे इसने पारस्परिक सहयोग से काम लेना सीखा और उससे अधिक लाभ दिखाई दिया, तब से इस क्षेत्र में वह अधिक तेजी से बढ़ने में समर्थ हुआ। मनुष्य जब किसी काम को करने लगता है, धीरे-धीरे उसमें ऐसा अभ्यास हो जाता है कि वह फिर उसे कभी नहीं भूलता, प्रत्युत उस अभ्यसित काम की बारीकियों को धीरे-धीरे अच्छी तरह समझकर उसे और सुन्दर ढंग से करने की इच्छा उसमें जाग्रत हो जाती है। किन्तु इन कामों को करने के समय वह जो धारणा बना लेता है, उसकी वह धारणा जल्दी बदलती नहीं। इस तरह पारिवारिक जीवन और शिक्षा से वह जो कुछ सीखता है अथवा उसे जिस बात पर विश्वास कराया जाता है, वे भावनाएँ उसके भीतर ऐसी घर कर जाती हैं कि वह उन्हें ठीक ही मानता रहता है। हमारे वैद्य समाज पर उक्त मानवीय प्रवृत्तियों का यह रूप पूर्णतया स्फुट होता है।

भारतीय वैद्य-समाज की शिक्षा व दीक्षा ऐसे वातावरण में होती है, उसे बारम्बार यह अनुभव कराया जाता है कि जो कुछ शिक्षा व दीक्षा तुम ले रहे हो, यह उन पूर्व पुरुषों की थाती व कृति है, जो त्रिकाल-दर्शी थे। उनका ज्ञान निर्भ्रम व संशय रहित था। उसमें त्रुटि देखना पाप है। उन त्रिकालदर्शी महापुरुषों का इसमें अपमान है। वैद्य धीरे-धीरे इन विचारों के इतने अभ्यस्त हो जाते हैं और उनके अन्दर यह विचार ऐसे जमकर घर कर जाते हैं कि वह इन्हें पूर्णतया सत्य मान बैठता है, इसीलिए वह इन भावनाओं के भावुक होकर उनके प्रति श्रद्धा लिये हुए सदा वैसे ही विचार प्रकट करते हैं और आचरण भी उनके वैसे ही देखे जाते हैं। खैर, उनके यह विचार यदि धार्मिक सीमा तक रहते, व्यावहारिक जगत् में उन्हें आगे न लाते, तो शायद कोई अड़चन भी न आती; किन्तु भावुकतावश वे अपने विचारों को दबा नहीं सकते। व्यवहार में भी इनको आगे लाते हैं।

पूर्व काल में आयुर्वेदिक-चिकित्सा व्यवसाय की दृष्टि से नहीं की जाती थी। उस समय तो प्रत्येक चिकित्सक इस विद्या को इसलिए सीखता था कि वह दुखी जन-समाज के दुखों को निवृत्त करके उनके जीवन को सुखमय बनावे। उस समय उन व्यक्तियों के अन्दर परोपकार की भावना स्वभावतः विद्यमान थी। उस समय उन सबों की जो परिषदें होती थीं, उनमें जो विचार रखे जाते थे, जो चर्चाएँ होती थीं, उनको देखने से स्पष्ट होता है कि उस समय उन का चिकित्सा व्यवसाय न था, प्रत्युत् चिकित्सावृत्ति द्वारा जन-समाज की दुःख-निवृत्ति था। इतिहास के उपलब्ध पन्नों से ज्ञात होता है कि यह स्थिति १६ वीं १७ वीं शताब्दि तक बनी रही। इसके बाद विदेशी आक्रमणों व पारस्परिक संघर्ष ने उनके विचारों को प्रभावित किया, जीवन-निर्वाह में कठिनता हो गई, जन-समाज की भावनाएँ भी बहुत कुछ बदल गई, जीवन निर्वाह के कठिन हो जाने से उन वीत-रागी परोपकारी व्यक्तियों के विचारों में बहुत कुछ परिवर्तन आ गया। उक्त विचारों का स्थान ऐसे विचारों ने ले लिया, जो

चिकित्सा द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करना चाहते थे, बस उस ध्येय के बदलने से सारी स्थिति ही बदल गई और वह परोपकार की दृष्टि से की जाने वाली चिकित्सा-व्यवसाय के रूप में परिणत हो गई है। अब वैद्यों की आय का प्रधान साधन यह चिकित्सा-पद्धति है, यदि वे ऐसा न करें, तो भूखों मर जाएँ। इसीलिए हम सब चिकित्सा को वैद्यक-वृत्ति बना बैठे हैं और जिस तरह से संसार में अन्य व्यवसाय हैं, उसी तरह यह हमारा चिकित्सा-व्यवसाय है। उदर-पूर्ति के लिए जब मनुष्य कोई व्यवसाय करता है, तो उसी व्यवसाय में लगे अन्य व्यक्तियों से उसकी स्पर्धा हो जाती है, इस समय हमारी स्पर्द्धा केवल वैद्यों से ही नहीं; प्रत्युत् डाक्टरों से अधिक है। वे डाक्टर भी कैसे हैं, जिनके पास जन-समाज को अपनी ओर आकर्षित करने के इतने अधिक वैज्ञानिक साधन हैं, उनके ऐसे क्रम हैं, जो जनता को अपनी ओर अवश्य ही आकर्षित कर लेते हैं। इस स्थिति में हमारा चिकित्सा-व्यवसाय तभी सफल हो सकता है, यदि हमारे पास भी जन-समाज को अपनी ओर आकर्षित करने के अधिक साधन हों। इस समय तक चिकित्सा-व्यवसाय में हमारे पास एक साधन बहुत बड़ा यह है कि हमारी चिकित्सा-पद्धति आज कई सहस्र वर्ष की पुरानी है। इसीलिए उसके कारण हमारा अनुभव अधिक है। असाध्य रोगों को दूर करने की जितनी अच्छी सफल चिकित्सा हमारे पास है, उतनी अच्छी अन्य चिकित्सकों के पास नहीं। इसीलिए हम उस चिकित्सा-साफल्य के बल पर अपने सिद्धान्तों के सम्बन्ध में जो कुछ कहते थे, लोग और सहयोगी चिकित्सक विश्वास करते थे; किन्तु अब स्थिति बदल गई है। अब हमारे प्रतिस्पर्द्धियों ने भी अनेक व्याधियों की सफल चिकित्सा ज्ञात कर ली है; इसलिए अब संघर्ष और भी अधिक हो गया है। क्योंकि अब आयुर्वेद को जन समाज के आदमी या परम्परा प्राप्त विद्यावाले व्यक्ति भी चिकित्सा-व्यवसाय के निमित्त पढ़ते हैं और उनमें देखा जाता है कि जो धनपति के पुत्र हैं वह अपने पुत्रों को डाक्टरी पढ़ाते हैं। स्वयम् आयुर्वेद के महा हितैषी आयुर्वेद महामण्डल के कई वर्षों से बनते चले आ रहे विद्यमान प्रधान तक अपने पुत्रों को डाक्टरी पढ़ाते हैं। देखा जाता है कि जो व्यक्ति चिकित्सा-शिक्षा का यह भारी व्यय उठाने में समर्थ नहीं है, वही अपने बालकों को आयुर्वेद की शिक्षा दिलाते हैं। इस समय इस व्यवसाय में धनपतियों के पुत्र प्रवेश नहीं करते, क्योंकि जितनी आय इस समय एक डाक्टर की है, उसकी तुलना में एक वैद्य को नहीं हो पाती। इस स्थिति में आयुर्वेदिक चिकित्सा-व्यवसाय में हम अधिक सफल कैसे हो सकते हैं? हम इस चिकित्सा-व्यवसाय द्वारा किस प्रकार से अधिक धनोपार्जन कर सकते हैं? इस बात की ओर हम सबों का ध्यान अधिक रहता है; क्योंकि जिस तरह से जीवन-निर्वाह का प्रश्न संसार के जन-समाज के सामने है, उसी तरह जीवन-निर्वाह का प्रश्न वैद्य-समाज के सामने है। एक आयुर्वेद के ज्ञाता के पास और कोई आय का मार्ग तो होता ही नहीं, न कहीं से पूर्व के युगवत् राजाओं की ओर से उस चिकित्सक के परिवार को पेन्शन के लग जाने की आशा है। इसीलिए यदि उसने इस व्यवसाय को ग्रहण किया है, तो आखिरकार इसी व्यवसाय के द्वारा उदर-पूर्ति करनी है और अब संघर्ष 'वैद्यो-वैद्यः' तक न रह कर "डाक्टरो सर्जनो वा" तक पहुँच गया है तो, इस स्थिति में एक वैद्य जब तक वह डाक्टर सर्जन जैसा ही निपुण न हो, तो क्या इस संघर्ष के युग में ठहर सकेगा? यह एक विचारणीय समस्या सदा ही आयुर्वेद विद्वानों को परेशान कर रही है।

कई वैद्य पूछेंगे कि यह किस तरह? इसे निम्न उदाहरण से समझियेगा—किसी व्यक्ति को ज्वर हो गया, वैद्य को उसने दिखाया, वैद्य ने नाड़ी देखकर कहा—ज्वर है, किन्तु आज कल का साधारण व्यक्ति इस बात से परिचित है कि शरीर में इस ज्वर को नापा भी जाता है इस लिये वह वैद्य से पूछता है कि ज्वर कितनी मात्रा में है। नाड़ी ज्वर की मात्रा को थोड़े ही बतलाती है, वैद्य तो शरीर के स्पर्श से ही मन्द व तीव्र का ज्ञान रखता है, किन्तु वह हाथ के स्पर्श से रोगी का सन्तोष पूर्ण नहीं कर सकता, इसलिए या तो विवश होकर वैद्य को थर्मामीटर रखना पड़ता है या रोगी स्वयम् ही बाजार से मँगाकर देख लेता है। वैद्यों ने इस त्रुटि को अनुभव किया, इसीलिए अब शायद ही कोई ऐसा वैद्य होगा, जो थर्मामीटर न रखता हो। इस समय यह आयुर्वेद की वस्तु न होने पर भी, एक आवश्यक और चमत्कारी चीज हो पड़ी है।

उस ज्वरी रोगी को खाँसी भी आती है, पार्श्व स्थान में दर्द भी होता है। यदि फुफ्फुस में कोई नुक्स है, तो वैद्य के पास उसे जाँचने का कोई अच्छा साधन नहीं। डाक्टरों के पास फुफ्फुस को देखने व उसके भीतर होनेवाली त्रुटियों को

समझने के कई साधन हैं। वह रोगी जब वैद्य और डाक्टर दोनों को दिखाता है, तब जो देखने के साधन एक डाक्टर प्रयोग में लाता है, वह साधन रोगी को अधिक प्रभावित करते हैं। चिकित्सा-व्यवसाय में यह त्रुटि वैद्यों को खटकती रहती है। इसीलिए बहुत-से वैद्य स्टेथिस्कोप का भी उपयोग करने लगे हैं। एक और सबसे भारी त्रुटि हम में यह है कि एक रोगी चार वैद्यों को दिखाता है, तो प्रायः देखा जाता है कि वैद्यों के पास रोग-निर्णय के अच्छे साधन न होने से वह अनुमान से अधिक काम लेता है, इसलिए चार वैद्यों की परस्पर सम्मतियाँ नहीं मिलतीं। इसके विपरीत चार डाक्टर, रोग को समझने व जानने के एक-से साधनों का प्रयोग करते हैं; क्योंकि उन्होंने एक ही ढंग से उन रोगों को देखने व समझने की शिक्षा पाई है; इसलिए उन चारों की सम्मति एक होती है।

बहुसम्मत बात को जन-समाज जल्दी स्वीकार कर लेता है। इस तरह रोगी वैद्यों के हाथ से निकल जाता है। इस त्रुटि को भी वैद्य अनुभव करते हैं, इसीलिए जब रोगी हाथ से निकल जाता है, तो वैद्य अपनी आय में धक्का लगता देखकर वह अपनी आय को स्थिर रखने के साधन ढूँढ़ता है। सिवाय इसके और क्या हो सकता है कि वह अपने प्रतिस्पर्द्धी डाक्टर की नव्य रोग जानने की पद्धति की ओर अधिक झुके; क्योंकि यह नव्य साधन ही ऐसे हैं, जो प्रत्यक्ष में लोगों के हृदय में विश्वास पैदा करने के साधन हैं। यदि किसी वैद्य के पास किसी रोग को जानने के ये नव्य साधन हों, तो वह भी एक डाक्टरवत् रोगी को विश्वास दिलाने में समर्थ हो सकता है और ऐसे साधन-सम्पन्न होने से उस पर जब रोगी का विश्वास बना रहेगा, तो वैद्य की रोजी भी बनी रहेगी। इसलिए वैद्यों को आप लाख मना करिये कि वह इन नव्य साधनों का उपयोग न करें, तो उनकी इस बात को वही मानेगा, जो इस व्यवसाय से उदर-पूर्त्ति न करना चाहता होगा।

इस समय, नव्य शिक्षा के कारण, पहले से जन-समाज का मानदण्ड काफी ऊँचा है और नव्य वैज्ञानिक साधनों पर उसका विश्वास बढ़ा हुआ है। यदि कोई वैद्य थर्मामीटर, स्टेथिस्कोप, रक्तचाप-दर्शक आदि यन्त्रों से सुसज्जित होता है, तो रोगी यह समझ लेता है कि वैद्य को आधुनिक पद्धति का भी ज्ञान है, वह नव्य पद्धति से भी रोग को समझ सकेगा, यह उसे नव्य यन्त्रों की धारणा से बहुत कुछ विश्वास हो जाता है। ये आधुनिक विशेष ज्ञान के सूचक यन्त्र ही वैद्य की स्थिति को अच्छी दिशा की ओर ले जाते हैं और उस से ही उसकी आजीविका पर प्रभाव पड़ते देखा जाता है। तो, क्या नव्य ज्ञान-विज्ञान उस की आय को बढ़ाने में सहायक नहीं हो सकता? इस से कोई विचारवान् इनकार नहीं कर सकता। हम देखते हैं कि जो वैद्य नव्य ज्ञान-विज्ञान से पूर्ण हैं, इस समय उनकी वैद्य-समाज में भी प्रतिष्ठा है और उनकी आय भी अन्यों की अपेक्षा बहुत ही अधिक है। इसे देखते हुए वह व्यक्ति आँख का अंधा ही होगा और अकल का ठूँठ, जो इस स्थिति की उपेक्षा करेगा। इसीलिए तो हम देखते हैं कि महामण्डल के नेतागण या दकियानूसी विचार के व्यक्ति वैद्य को नव्य विचार ग्रहण करने व सीखने से बाज़ रखने की लाख चेष्टा करते हैं; पर उनके लाख सिर पटकने पर भी वैद्यों की रुचि इस ओर बढ़ती ही दिखाई देती है। यही एक कारण ऐसा नहीं, प्रत्युत् उससे भी जबर्दस्त कारण तो यह देखा जाता है कि उन नेतागणों की करनियाँ कथनी के विरोध में जाती हैं, तो मानना पड़ता है कि आन्तरिक रूप में वह भी इस स्थिति से प्रभावित हैं, किन्तु कुछ नेतागिरी जैसे ही कारण ऐसे हैं जिन से विवश हो वह नव्य ज्ञान-विज्ञान का विरोध जारी रखे हुए हैं। अब समय वह आ रहा है कि रोटी के लिए सिद्धान्त क्या इससे भी बड़ी चीज हो, तो उसकी भी लोग परवाह नहीं करेंगे, उसे भी छोड़ देंगे। हमारा आयुर्वेद चिकित्सा-व्यवसाय बन जाने से वैद्यों के सामने सिद्धान्त की अपेक्षा आज सब से बड़ा प्रश्न रोटी का है, क्योंकि इस समय चिकित्सा-व्यवसाय के अंग प्रसूती, शल्य, शालाक्य तथा न्याय वैद्यक तो बिल्कुल ही वैद्यों के हाथ से निकल गये हैं। प्रसूतिकाल में मूढ गर्भ हो, तो उसे डाक्टर सँभालता है। पेट में कोई व्रण हो, कैंसर हो, विद्रधि हो, तो ऐसे रोगी भी डाक्टर के पास जाते हैं। बहुधा आँख, कान, मस्तिष्क सम्बन्धी कोई रोग हो, तो वह रोगी भी डाक्टर के ही पास जाता है, और अब इन दो-चार वर्षों के अन्दर ही यह स्थिति उत्पन्न हो गई है कि न्यूमोनिया, कुष्ठ, प्लेग, विशूचिका, विषम ज्वर, मंथर ज्वर आदि जैसे रोगों के रोगी भी डाक्टरों के पास अधिक जाने लगे हैं। कारण यह है कि इस समय सल्फाड्रग, पैंनिसिलीन जैसी त्वरित प्रभाव कारी ओषधियों का उनके यहाँ आविष्कार हो गया है और इनसे लाभ भी त्वरित ही होते देखा जाता है, इस कारण से वैद्यों के

(शेषांश पृष्ठ ११३९ पर)

द्रव्यगुण-विमर्श

सोमदेव शर्मा सारस्वत, साहित्य-आयुर्वेदाचार्य, ए. एम. एस.

भारतीय दर्शन-शास्त्रज्ञों और उनके अनुयायी आयुर्वेद के आचार्यों का सिद्धान्त है कि स्थूल रूप से दृष्टिगोचर होनेवाला यह संसार और उसकी प्रत्येक वस्तु पाँच महाभूतों--पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश--से बनी होने के कारण पाञ्चभौतिक हैं। इसी सिद्धान्त के अनुसार मानव जाति तथा अन्य प्राणियों की स्वास्थ्य-रक्षा तथा चिकित्सार्थ सिद्ध होनेवाले सभी द्रव्य पाञ्चभौतिक सिद्ध होते हैं। दार्शनिक भाषा में इनकी कार्य द्रव्य, संज्ञा भी है। इनसे भिन्न 'कारण द्रव्य' (सूक्ष्म द्रव्य) भी होते हैं, परन्तु, उनका उपयोग चिकित्सा में नहीं होता है। आयुर्वेद-शास्त्र में इन्हीं पाञ्चभौतिक (कार्य) द्रव्यों का वर्णन किया गया है। सुश्रुत-संहिता में यह **'द्रव्य'** शब्द ओषधि का पर्याय-वाचक माना गया है। चरक के मत में 'द्रव्य' चेतन (सेन्द्रिय) द्रव्य तथा अचेतन (निरिन्द्रिय) द्रव्य-भेद से दो प्रकार के होते हैं। इनमें से चेतन द्रव्य दो प्रकार के होते हैं:--

(१) **जंगम** (बहिरन्तश्चेतन--मनुष्य, पशु-पक्षी आदि प्राणी)।

(२) **औद्भिद्** (अन्तश्चेतन--वृक्ष, पौधे आदि) आस्थावर।

अचेतन द्रव्य को पार्थिव द्रव्य भी कहते हैं।

इसी वर्गीकरण (Classification) के आधार पर महर्षि चरक ने द्रव्य के **जाङ्गम, औद्भिद् और पार्थिव** ये तीन भेद बतलाये हैं।

पञ्चमहाभूत और मन, आत्मा, दिशा और काल ये नौ "द्रव्य" गणना में लिये गये हैं। इनमें से यद्यपि सेन्द्रिय चेतन द्रव्यों में पञ्चभूतों के अतिरिक्त आत्मा और मन भी होता है, तथापि स्वास्थ्य-रक्षा और चिकित्सा के लिए आत्मा और मन से रहित चेतन द्रव्य का अंश प्रयुक्त होता है। अतः वे भी पाञ्चभौतिक ही कहलाते हैं। काल और दिशा की गणना द्रव्यों में होते हुए भी वे वस्तुओं के समवायी (उपादान) कारण न होकर केवल निमित्त कारण होते हैं। इसलिए प्रत्यक्ष रूप से पाँच महाभूतों के अंश का ही उपयोग स्वास्थ्य-रक्षा एवं चिकित्सा-उपयोगी द्रव्यों में होता है; अतः हम उन को पाञ्चभौतिक (अथवा पंचभूतात्मक) कहते हैं।

यहाँ जिस द्रव्य का उल्लेख किया गया है, वैशेषिक दर्शन और चरक-संहिता के अनुसार एक सत्तावाला पदार्थ है। उस द्रव्य का विचार करने से पूर्व उसका लक्षण और निरुक्ति जानना आवश्यक है। इसलिए उनका निर्देश यहाँ किया जाता है।

द्रव्य का लक्षण

जिस पदार्थ में कर्म और गुण समवाय सम्बन्ध (नित्य-सम्बन्ध) से आश्रित हों और जो उत्पन्न होनेवाले कार्य (द्रव्य, गुण, कर्म) का समवायी (उपादन) कारण हो, वह द्रव्य कहलाता है; जैसे--अपामार्ग।

इस अपामार्ग ओषधि में शिरोविरेचन कर्म और उष्ण गुण समवाय सम्बन्ध से रहते हैं और यह उत्पन्न होनेवाले कार्य अपामार्ग-क्षार आदि का समवायी कारण है; इसलिए यह अपामार्ग एक द्रव्य कहलाता है।

द्रव्य की निरुक्ति

यह द्रव्य शब्द, गति अर्थवाली 'द्रु' धातु (द्रु गतौ) शब्द से बनता है (द्रूयते गम्यते रसादिभिरिति द्रव्यम्)। अर्थात् रस आदि (गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव) के द्वारा जो जाना जाता है (जिसका ज्ञान होता है) वह 'द्रव्य' कहलाता है। यहाँ पर गति शब्द (द्रु गतौ) से ज्ञान अर्थ लिया गया है।

द्रव्य के गुण तथा कर्म

प्रत्येक वस्तु का ज्ञान उसके गुण--(धर्म) द्वारा होता है। इसी प्रकार द्रव्यों के कर्म भी उनके गुणों से ज्ञात होते हैं। स्वास्थ्य-रक्षा के लिए प्रयुक्त आहार-द्रव्यों तथा चिकित्सा में प्रयुक्त औषध-द्रव्यों का परिचय भी उनके गुण तथा कर्म से मिला करता है। यहाँ पर गुण शब्द से गुरु, लघु, उष्ण, शीत आदि २० गुणों के साथ-साथ रस (मधुर आदि छै रस) वीर्य तथा विपाक का भी ग्रहण होता है और कर्म शब्द से प्रभाव का भी ग्रहण होता है, यह ध्यान में

रखना चाहिए। प्रायः आहार-द्रव्यों को रस-प्रधान तथा औषध-द्रव्यों को वीर्य-प्रधान माना जाता है। इस लिए आहार-द्रव्यों एवं औषध-द्रव्यों का ज्ञान उनमें स्थित गुण, रस, वीर्य, विपाक तथा प्रभाव द्वारा होता है, यह आयुर्वेद शास्त्र का सिद्धान्त है। इन गुण तथा रस आदि का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

गुण—कर्त्ता स्वरूप प्रधान द्रव्य की अपेक्षा उसके आश्रय में रहनेवाले लघु, गुरु आदि धर्म गौण (अप्रधान) होने के कारण **'गण'** कहलाते हैं। चिकित्सा-शास्त्र में द्रव्य में लघु, गुरु, उष्ण, शीत आदि २० गुण लिखे हैं।

रस—रसनेन्द्रिय (जिह्वा या जीभ) के ऊपर किसी द्रव्य के डालने पर उस द्रव्य का जो अंश रसनेन्द्रिय से ग्रहण किया जाता है, वह **'रस'** कहलाता है। वह रस मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय के भेद से ६ प्रकार के होते हैं।

विपाक—खाये गये द्रव्य के मधुर आदि रसों का जठराग्नि द्वारा परिपाक होने पर अन्त में जो विशेष रस उत्पन्न होता है, वह उस द्रव्य का **विपाक** कहलाता है। यह विपाक, अवस्थापाक तथा निष्ठापाक भेद से दो प्रकार का होता है।

१—वीर्य—द्रव्य जिस शक्ति के द्वारा कार्य करता है वह **वीर्य** है। जैसे—येन कुर्वन्ति तद्वीर्यम्।

—चरक० सू० अ० २६।१३, सु०सू० अ० ४१।५

२—वीर्यंतु क्रियते येन या क्रिया।
नावीर्यं कुरुते किञ्चित्सर्वा वीर्य कृता क्रिया।

—च. सू. अ. २६।७०

इस लक्षण में द्रव्य की शक्ति को **'वीर्य'** कहा गया है। इसलिए इसके आधार पर रस, गुण, विपाक, प्रभाव इन में कार्य करने की शक्ति होने के कारण 'वीर्य' शब्द से पुकारे जा सकते हैं। यह चरक का मत है। यह 'बहु वीर्य बादी' अथवा शक्ति वीर्यवादी है। इस मत में 'वीर्यतेऽनेनेति वीर्यम्' यह वीर्य शब्द की निरुक्ति है।

२ (अ) अन्य आचार्य गुरु, लघु, स्निग्ध, रूक्ष, शीत, उष्ण, तीक्ष्ण, मन्द इन आठ गुणों के अन्य गुणों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होने से एवं रस, विपाक तथा अन्य गुणों के कार्य को अभिभूत करने (दबा देने) से गुरु, लघु, स्निग्ध, रूक्ष, शीत, उष्ण, तीक्ष्ण, मन्द नाम के आठ प्रकार के 'वीर्य' मानते हैं। इनके मत में 'वरत्वात् (अन्य रस विपाकाद्यपेक्षया श्रेष्ठत्वात्) 'वीर्यम्' यह वीर्य शब्द की निरुक्ति होती है।

(आ) अन्य कुछ आचार्य सम्पूर्ण संसार के शीत तथा उष्ण होने के कारण शीत और उष्ण भेद से दो प्रकार के वीर्य मानते हैं। नम्बर २ के दोनों मत वालों को "पारिभाषिक वीर्यवादी" अथवा "गुणवीर्यवादी" कहा जाता है। सुश्रुत, वृद्ध वाग्भट्ट तथा वाग्भट इन मतों के अनुयायी हैं।

३—भदन्त नागार्जुन 'कर्म (फल) लक्षणं वीर्यम्' रस वै० सू० अ० १।१६९ यह वीर्य का लक्षण मानते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिकों का मत

वीर्य को आधुनिक वैज्ञानिकों के मत में एक्टिव प्रिन्सिपल (Active Principle) कहा जा सकता है।

प्रभाव

सामान रस, वीर्य और विपाकवाले द्रव्यों में विशिष्ट कर्म जिसके द्वारा होते हैं, वह प्रभाव (अचिन्त्य वीर्य या अमीमांस्य वीर्य) कहलाता है। जैसे—रस, वीर्य और विपाक में समान होते हुए भी चित्रक, दीपन और पाचन है; परन्तु दन्ती रेचक है।

द्रव्य के कर्म का निर्देश

यदि द्रव्य के रस, वीर्य तथा विपाक समान हों, तो उसका कर्म रस के द्वारा निर्देश किया जा सकता है। परन्तु यदि रस के विपरीत विपाक तथा वीर्य हो, तो फिर उस का कर्म, रस से बलवान विपाक द्वारा, रस और विपाक दोनों से बलवान् वीर्य द्वारा तथा रस, वीर्य, विपाक इन तीनों से बलवान् प्रभाव बताया जा सकता है। साधारणतया आहार द्रव्यों का कर्म उनके रस द्वारा तथा औषध-द्रव्यों का कर्म वीर्य द्वारा बताया जाता है।

अनुक्त गुण-कर्मवाले द्रव्यों के गुण तथा कर्म जानने की विधि

जिन औषधि-द्रव्यों तथा आहार-द्रव्यों के गुण और कर्म किसी भी शास्त्र में नहीं लिखे हुए हैं, अथवा सिनकोना आदि जिन औषधियों के गुण-कर्म अन्य (एलोपैथी) पैथियों में प्रसिद्ध हैं; परन्तु आयुर्वेदिक पद्धति से अज्ञात है, उनके गुण तथा कर्म निम्नलिखित विधियों से जाने जा सकते हैं।

(१) पंच महाभूतों[1] के गुणों द्वारा।
(२) रस द्वारा।

पञ्च महाभूतों के गुणों द्वारा अनुक्त द्रव्य के गुण-कर्म का निर्देश

यद्यपि सब ओषधि तथा आहार-द्रव्य पृथिवी आदि पाँच महाभूतों के अंश से बने हैं, तथापि उनमें पृथिवी आदि जिस महाभूत का अंश अधिक होता है, उसी के आधार पर उसको पार्थिव आदि के नाम से पुकारा जाता है। उस द्रव्य के गुण तथा कर्म का ज्ञान उस द्रव्य में विद्यमान पंच-महाभूतों के गुणों का ग्रहण करने के द्वारा निम्नलिखित[2] प्रकार से हो सकता है—

(अ) प्रत्यक्ष द्वारा महाभूतों के कुछ गुणों का ग्रहण होता है।

(आ) जहाँ पर जो द्रव्य उत्पन्न होता है, वहाँ उसको उपयोग में लानेवाले पुरुषों के कथन द्वारा महाभूतों के कुछ गुण ग्रहण किये जाते हैं।

(इ) उपयोग द्वारा महाभूतों के कुछ गुण ग्रहण किये जाते हैं।

जैसे—

(१) जो द्रव्य देखने में गुरु, खर, कठिन, मन्द, स्थिर, विशद, सांद्र, स्थूल तथा अधिकतर गन्ध गुण से युक्त हो, वह पार्थिव होता है। उस द्रव्य के उपयोग से शरीर में गुरुता, दृढ़ता, पुष्टि, बल, स्थूलता और कठिनता होती है। इस प्रकार का द्रव्य विशेषतया अधोगामी स्वभाव का होता है।

(२) जो द्रव्य शीत, द्रव, स्निग्ध, शीतल, मन्द, सान्द्र, मृदु, सर, पिच्छिल, गुरु तथा अधिकतर मधुर रस और कुछ-कुछ कषाय, अम्ल तथा लवण रस वाला हो, वह "आप्य (जलीय)" द्रव्य होता है। उसके उपयोग करने से शरीर में स्नेह, मृदुता तथा इन्द्रियों की तृप्ति होती है। वह अनुलोमन और स्रोतों में स्राव उत्पन्न करनेवाला तथा बाँधनेवाला होता है।

(३) जो द्रव्य उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, रूक्ष, खर, लघु, विशद, तथा रूप गुणयुक्त होता है, वह आग्नेय (तैजस) द्रव्य होता है। उसके उपयोग से शरीर में दाह, पाक ताप प्रभा (कान्ति) तथा गौर वर्ण होता है।

(४) जो द्रव्य लघु, शीत, रूक्ष, खर, विशद, सूक्ष्म तथा विशेषतया स्पर्श गुणयुक्त और कुछ तिक्त तथा अधिकतर कषैला होता है, वह 'वायव्य' द्रव्य होता है और उसके उपयोग करने से शरीर में रूक्षता, ग्लानि, लघुता, विशदता तथा शारीरिक चेष्टाओं की वृद्धि हो जाती है।

(५) जो द्रव्य मृदु, सूक्ष्म, लघु, श्लक्ष्ण, विशद, व्यवायी, अव्यक्त-रस तथा विशेषतया स्पर्श गुणयुक्त होता है वह आकाशीय (नाभस) द्रव्य होता है। उपयोग करने पर वह शरीर में कोमलता, सुषिरता तथा लघुता उत्पन्न करनेवाला होता है।

(६) अधिक तर विरेचक, वृंहण, वृश्य, रसायन तथा वातनाशक द्रव्यों में विशेषतया पृथिवी और जल महाभूत के गुण अधिक होते हैं। क्योंकि पृथ्वी तथा जल महाभूत गुरु और स्थिर गुणयुक्त होने तथा अधोगामी स्वभाव के होने से रेचन आदि क्रियाएँ करते हैं।

(७) सामान्यतया वमन आदि क्रियाएँ करनेवाले द्रव्य अग्नि तथा वायु महाभूत के अंशवाले होते हैं। क्योंकि वे लघु, उष्ण, आदि गुणयुक्त होते हैं।

(८) विरेचन तथा वमन करानेवाले द्रव्य पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु महाभूत के गुणों से युक्त होते हैं।

(९) संशमन (दोषशमन) क्रिया करनेवाले द्रव्यों में आकाश महाभूत के गुणों की अधिकता हुआ करती है।

१—धान्येषु मांसेषु फलेषु चैव शाकेषु चानुक्तमिहा प्रमेयात्।
आस्वादतो भूत गुणैश्च मत्वा तदादिशेद्द्रव्यमनल्पबुद्धिः॥
सु० सू० अ० ४६।३३२

२— (क) भूत गुण ग्रहणं च किञ्चित्प्रत्यक्षतः, किञ्चित्तु उपयोक्तृवचनतः, किञ्चित्तदुपयोगतश्च गृहीतुं शक्यमेव। (सुश्रुत के ऊपर के श्लोक की चक्रपाणि की भानुमती टीका)

(ख) यथानानौषधं किञ्चिद्देशजानां वचो यथा।
द्रव्यं तत्तथावाच्यमनुक्तमिह यद्भवेत्॥
च. सू. अ. २७।३३२

(ग) ततश्चानुक्त द्रव्यं तेनैव गुरु खरादिना गुणेन पार्थिवत्वादि प्रतिपद्य यथोक्तोपचयादि कर्म कर्तृ कत्वा व्यपदेशमित्यर्थ। तदेवानिर्दिष्टस्य द्रव्यस्य गुरु खरत्वादि कथं ज्ञेयमित्याह—देशजानां वचो यथेति देशजाः देशान्त-रीयाः, तद्देशीय वचनात्ते ते गुरु खरत्वादयो ज्ञेया इत्यर्थः। किंवा देशजा यथा तत्तद् द्रव्यं व्यवहरन्ति इदं मधुरमम्ल-मित्यादि तत्प्रतिपद्य मधुरत्वाम्लत्वादि प्रतिपन्न पृथिव्या-द्यस्य कारणमिति पृथिव्यादीनां गुर्वादि गुणगणनेन कर्मणा च रसोक्तेन तत्तद् वक्तव्यमित्यर्थः। (चरक संहिता के ऊपर के श्लोक की चक्रपाणि की व्याख्या)

(१०) साधारणतया संग्राही द्रव्यों में, वायु महाभूत के गुण अधिक होते हैं।

(११) दीपन द्रव्यों में अग्निमहाभूत के गुणों की अधिकता होती है।

(१२) प्रायः लेखन क्रिया करनेवाले द्रव्यों में वायु तथा अग्नि महाभूत के गुणों की अधिकता होती हैं।

रस द्वारा अनुक्त द्रव्यों के गुण तथा कर्म का निर्देश

यह विधि विशेषतया अनुक्त आहारद्रव्यों के गुण और कर्म जानने में उपयोगी है। क्योंकि आहार-द्रव्य रस-प्रधान हुआ करते हैं। इसलिए उनके द्वारा ज्ञात हुए रस उनके गुण, वीर्य तथा विपाक का ज्ञान भलीभाँति हो सकता है।

आहार द्रव्य और औषधद्रव्यों के रस-परिज्ञान की विधि

कफ तथा मुख की लाला (लार) द्वारा उसके तरल रूप में होने पर जिह्वा के स्वादांकुर (Circumvallate Papillae) तथा स्वादकोष, उत्तेजना होने पर उत्पन्न हुए रस का ज्ञान, मूल में विद्यमान सूक्ष्म रस-संग्राहिणी नाड़ी-प्रतान द्वारा मस्तिष्क में पहुँचाते हैं।

मधुर रस का ज्ञान जिह्वा के अग्र भाग में और तिक्त रस का ज्ञान जिह्वा के मूल में विशेषतया होता है।

जिह्वा के स्वादांकुरों में अम्ल रस का ज्ञान, दोनों पार्श्वों में लवण रस का ज्ञान, पार्श्वों और अग्र भाग में कटु रस का ज्ञान तथा मूल एवं दोनों पार्श्वों में कषाय रस का ज्ञान होता है।

रस द्वारा अनुक्त द्रव्यों के विपाक का परिज्ञान

उक्त प्रकार से द्रव्य के रस का परिज्ञान हो जाने पर उस रस के द्वारा द्रव्य के विपाक का ज्ञान निम्न प्रकार से होता है—

(१) मधुर तथा लवण रसवाले द्रव्यों का विपाक 'मधुर' होता है, जिससे वह द्रव्य, गुरु, कफकारक, वीर्योत्पादक और मल-मूत्र लाने वाला होता है।

(२) अम्ल रसवाले द्रव्य का विपाक अम्ल होता है, जिससे वह द्रव्य पित्तकारक, वीर्यनाशक तथा मल-मूत्र को लानेवाला होता है।

(३) कटु, तिक्त तथा कषाय रसवाले द्रव्य का विपाक प्रायः 'कटु' होता है, जिससे वह द्रव्य लघु वीर्यनाशक तथा मल-मूत्र को रोकनेवाला होता है।

रस द्वारा अनुक्त द्रव्यों के वीर्य का ज्ञान

१. मधुर रस तथा मधुर विपाकवाले द्रव्यों का वीर्य 'शीत' होता है।

२. अम्ल रस तथा अम्ल विपाकवाले द्रव्यों का वीर्य 'उष्ण' होता है।

३. कटु रस तथा कटु विपाकवाले द्रव्यों का वीर्य 'उष्ण' होता है।

रस द्वारा अनुक्त द्रव्यों के गुणों का परिज्ञान

१. तिक्त, कषाय और मधुर रसवाले द्रव्य सौम्य होने से उत्तरोत्तर शीतल होते हैं।

२. कटु, अम्ल तथा लवण रसवाले द्रव्य आग्नेय होने से उत्तरोत्तर उष्ण होते हैं।

३. मधुर, अम्ल और लवण रसवाले द्रव्य क्रमशः स्निग्धतम, स्निग्धतर और स्निग्ध होते हैं और इसी प्रकार पूर्व-पूर्व के रस अधिक गुरु होते हैं। अर्थात् मधुर गुरुतम, अम्ल गुरुतर तथा लवण द्रव्य गुरु होता है।

(४) तिक्त, कटु, कषाय रसवाले द्रव्य क्रमशः रूक्ष, रूक्षतर, रूक्षतम और इसी प्रकार लघु, लघुतर तथा लघुतम होने से उत्तम होते हैं।

(५) लवण, कषाय और मधुर रसवाले द्रव्य क्रमशः अधिक गुरु (भारी) होते हैं।

(६) अम्ल, कटु और तिक्त रसवाले द्रव्य क्रमशः अधिक लघु होते हैं।

ज्ञातव्य—रस द्वारा केवल उन द्रव्यों के गुणों का ही ज्ञान हो सकता है, जो वीर्य तथा विपाक में भी रस के अनुकूल हों; जैसे—

१. जो द्रव्य वीर्य में शीत हो तथा रस और विपाक में मधुर हो, उसके गुण मधुर रसवाले द्रव्य के गुणों के समान जानने चाहिए; जैसे—दूध और घृत।

२. जो द्रव्य वीर्य में उष्ण तथा रस और विपाक में अम्ल हो, उसके गुण अम्ल रसवाले द्रव्य के गुणों के समान जानने चाहिए।

३. जो द्रव्य वीर्य में उष्ण और रस तथा विपाक में कटु हो, तो उसके गुण कटु रसवाले द्रव्य के गुणों के समान जानने चाहिए; जैसे—चव्य और चित्रक।

रस द्वारा अनुक्त द्रव्य के कर्म का ज्ञान

१. सामान्य कार्य का ज्ञान

(अ) मधुर, अम्ल और लवण रसवाले द्रव्य स्निग्ध

होने के कारण, वात शामक, कफ कारक, अपान वायु, मल (टट्टी) तथा मूत्र का त्याग सुख-पूर्वक कराते हैं।

(आ) कषाय, कटु और तिक्त रसवाले द्रव्य रूक्ष होने के कारण कफशामक, वातवर्द्धक तथा अपान वायु, मल और मूत्र के त्याग में रुकावट डालते हैं।

(इ) कषाय, तिक्त और मधुर रसवाले द्रव्य शीतल होने के कारण पित्तनाशक होते हैं।

(ई) कटु, अम्ल तथा लवण रसवाले द्रव्य उष्ण होने के कारण पित्तवर्द्धक होते हैं।

विशेष कर्म का ज्ञान

(क) मधुर रसवाला द्रव्य वात-पित्त, तृष्णा, दाह, विष और मूर्च्छानाशक, कफकारक, आयु, बल, वर्ण, केश तथा स्त्रियों के स्तनों में दुग्ध का वर्द्धक, तृप्तिकारक, प्रिय, जीवनशक्ति-दायक, बृंहण, स्थिरता लानेवाला, धातु-पोषक, क्षीण पुरुष के घाव को भरनेवाला, त्वचा तथा कण्ठ के लिए हितकर होता है।

(ख) अम्ल रसवाला द्रव्य, वातनाशक, कफपित्त-वर्द्धक, दह्य, दीपन, पाचन तथा रुचिकर होता है।

(ग) लवण रसवाला द्रव्य वातनाशक, कफ-पित्त-कारक, पाचन, दीपन, भेदन, छेदन, रेचक तथा शरीर को मृदु करनेवाला होता है।

(घ) तिक्त रसवाला द्रव्य--कफ-पित्तनाशक, वात-पित्तकारक, दीपन, रुचिकर, शोधन, छेदन, लेखन, त्वचा और मांस को स्थिर करनेवाला, ज्वर, अरुचि, विष क्रिमि, मूर्च्छा, दाह, खुजली, कुष्ठ और तृष्णानाशक, स्त्रियों के स्तनों में दूध लानेवाला, अवृष्य और बुद्धि के लिए हितकर है।

(ङ) कटु रसवाला द्रव्य--कफ नाशक, वात-पित्त-कारक तथा विशेषतया पित्तवर्द्धक, मुखशोधक, दीपन, पाचन, रुचिकर, अलसक, शोथ, उदर्द, अभिस्यन्दन, कुष्ठ रोग, व्रण, कृमि, स्थूलता, विष तथा कण्डू नाशक वीर्य तथा स्तन्यनाशक, मल-मूत्र, स्वेद, क्लेद मेद, वसा, मज्जा, तथा लसीका का शोषक होता है।

(च) कषाय रसवाला द्रव्य--कफ-पित्तनाशक, अत्यन्त रूक्ष होने से विशेषतया वातवर्द्धक, संग्राही, व्रण- रोपण, शोधन, लेखन, स्तम्भन तथा संधानकर है।

इस उपर्युक्त पद्धति से रस द्वारा, अज्ञात गुण-कर्मवाले आहार-द्रव्यों के गुण तथा कर्म का निश्चय किया जा सकता है। ओषधि-द्रव्यों के रस के साथ-साथ उसके विपाक, वीर्य तथा प्रभाव ही अधिक कार्य करते हैं। क्योंकि कोई ओषधि-द्रव्य कुछ कार्य रस[1] द्वारा, कुछ कार्य विपाक द्वारा कुछ कार्य गुरु आदि गुणों द्वारा, कुछ कार्य वीर्य द्वारा तथा कुछ कार्य प्रभाव द्वारा किया करता है और इन रस-वीर्य-विपाक-प्रभाव में भी जो बलवान् होता है, वह दूसरे की शक्ति को क्षीण कर अपनी शक्ति से कार्य किया करता है। इसलिए ओषध-द्रव्यों का गुण कर्म जानने के लिए, उसके रस-वीर्य-विपाक-गुण तथा प्रभाव का मनोयोग-पूर्वक निरीक्षण कर उनके आधार पर अनुक्त द्रव्यों के गुण-कर्म निश्चित करने में अवश्य सफलता मिलती है।

१-(अ) तद्द्रव्यमात्मना किञ्चित्किञ्चिद्वीर्येण सेवितम्।
किंचिद्रस विपाकाभ्यां दोषं हन्ति करोति च।।
सु० सू० अ० ४०।१२

(आ)......तत्र द्रव्यं शुभाशुभम्।
किंचिद्रसेन कुरुते कर्म पाकेन चापरम्।
गुणान्तरेण वीर्याणाम् प्रभावेणैव किञ्चना।
यद्यद्द्रव्ये रसादीनां बलवत्वेन वर्तते।
अभिभूयोतरांस्तत्तत्कारणत्वं प्रपद्यते।।
अ० हृ० सू० अ० ९। २२-२३-२४

आयुर्वेद का भविष्य और हम

श्री हर्षवर्द्धन गुप्त, ए० एम० एस०

आज मैं, 'सचित्र आयुर्वेद' के स्तम्भों में, अपने कतिपय विचार माननीय विद्वज्जनों की दृष्टि आकर्षित करने के लिए लिखने बैठा हूँ। इसका कारण यह है कि आज वह समय आया प्रतीत होता है, जब हमें अपने अस्तित्व पर ही खतरा उत्पन्न हुआ जान पड़ता है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व शायद आयुर्वेद का भविष्य इतना अधिक अन्धकारमय नहीं था, जितना आज प्रतीत हो रहा है। इसका एक मुख्य कारण यह है कि केन्द्रीय स्वास्थ्य-सचिवालय की नीति पूर्णरूपेण आयुर्वेद की स्वतन्त्र सत्ता को समाप्त करने की चल रही है। अभी हाल ही में राजकुमारी अमृतकौर ने संसद् में स्वास्थ्य-बजट प्रस्तुत करते हुए अपने आन्तरिक उद्गार प्रकट किये हैं, जो समाचार पत्रों में स्थूलाक्षरों में प्रकाशित हुए हैं। वे कहती हैं—

"आयुर्वेद को अपनाना, देश के स्वास्थ्य को खतरे में डाल देना है। देश में वैज्ञानिक कसौटी पर कसी गई सार्वभौम चिकित्सा-पद्धति (Allopathy) ही केवल मान्य रहेगी। हो सकता है, आयुर्वेद किसी युग में बहुत उन्नत रहा हो; परन्तु अब तो वह जड़वत्, स्थिर और अप्रगतिशील होने के कारण मान्य नहीं हो सकता। कोई चिकित्सा-पद्धति बहुत सस्ती होने के कारण ही केवल मान्य नहीं हो सकती। यदि इस में कोई विशिष्ट तत्त्व हैं, तो उन्हें विज्ञान की तुला पर तोलकर नव्य चिकित्सा में ही समाविष्ट कर लिया जावेगा। समस्त देश में, विशेषतया उत्तर प्रदेश में, जो नव्य - पुरातन चिकित्सा-प्रणाली के मिश्रीकरण के अर्धपक्व या अपक्व प्रयोग नाना विद्यालयों में चल रहे हैं, वे राष्ट्र-हित के लिए अत्यन्त घातक हैं। इस पठन-प्रणाली को रोकना ही श्रेयस्कर है।"

राजकुमारीजी के ये विचार कोई नये नहीं हैं। और चूंकि वे स्वयं चिकित्सा - शास्त्र की पारङ्गत नहीं हैं, इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि उनके द्वारा पाश्चात्य चिकित्सकों की एजेण्ट इण्डियन मेडिकल कौन्सिल अपना दृष्टिकोण रख रही है या वे स्वयं उपेक्षा बुद्धि से आयुर्वेद के महत्व को अस्वीकार ही नहीं कर रहीं, अपितु उसकी प्रगति को अवरुद्ध एवं निरर्थक भी करना चाहती हैं।

खैर, जो कुछ भी हो। आज हमें परस्पर के सभी संघर्षों एवं विवादों को दूर कर, एक मन होकर आयुर्वेद के भविष्य पर दृष्टिपात करना चाहिए। आयुर्वेद की जो रूपरेखा हमारे सामने है, उसको आधारभूत मानकर, राष्ट्रीय जीवन के विकास में उसके सक्रिय रूप का अवलोकन कर तथा दैनन्दिन उसकी अनन्त कलाओं में वृद्धि करते हुए, उसे अक्षय रूप देकर आयुर्वेद के आदि पुरस्कर्त्ता के इन वाक्यों को सत्य सिद्ध करना चाहिए—"सोऽयमायुर्वेदः शाश्वतो निर्दिश्यते, अनादित्वात्, स्वभाव संसिद्ध लक्षणत्वात् भाव स्वभाव नित्यत्वाच्च।"

अष्टाङ्ग आयुर्वेद की विशुद्ध शिक्षण-प्रणाली के आधार पर हम आयुर्वेद को जीवित ही नहीं रख सकते, अपितु परिवृद्ध कर तदुपदिष्ट नाना प्रायोगिक पद्धतियों का सफल उपयोग कर विज्ञान की कसौटी पर खरा भी उतार सकते हैं। वास्तव में राजकुमारीजी का यह कहना सत्य है कि जब दोनों चिकित्सा-प्रणालियों के मूल दृष्टिकोण में कोई समानता नहीं, तो फिर उसका सामञ्जस्य किस प्रकार हो सकता है? इस प्रकार की शिक्षण संस्थाओं से जो स्नातक निकलते हैं, प्रायः उनकी आस्था आयुर्वेद पर तो होती नहीं और नव्य चिकित्सा-प्रणाली का शिक्षण-स्तर अत्यन्त निम्न होने के कारण वे उसमें भी पारङ्गत होते नहीं, तो फिर येनकेन प्रकारेण जीविकोपार्जन की पद्धति का अनुसरण कर जीवनयापन करते हैं। राष्ट्र के जीवन में उनके द्वारा जो चैतन्य आना चाहिए था, वह नहीं आता। स्थान-स्थान पर बिना उचित सम्भार आदि के केवल विद्यार्थियों को घेर कर पढ़ाने की प्रवृत्ति तथा राजकीय प्रबन्ध समितियों द्वारा उनकी मान्यता, जो आज दृष्टिगोचर हो रही है, वह ही, हम समझते हैं, कालान्तर में आयुर्वेद के ह्रास का कारण बनेगी। आयुर्वेद के प्रति जब हमारा ही यह रुख रहेगा, तब इसकी रक्षा कौन कर सकता है?

आज संसार के सभी देशों में वैज्ञानिक प्रगति की होड़-सी लग रही है, और प्रत्येक देश के शासक अपने सभी विभागों को अधिक-से-अधिक नूतन साधनों से सज्जित करने में लगे हुए हैं। ऐसी मनोवृत्ति का हमारे देश के शासकों में भी होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यही कारण है कि उन्हें आयुर्वेद के त्रिकालाबाधित सिद्धान्त बीते युग की यादगार मात्र दिखाई देते हैं तथा इस पद्धति के द्वारा की गई चिकित्सा निरर्थक, हानिप्रद एवं त्याज्य प्रतीत होती है। युग-परिवर्त्तन के साथ-साथ आज मनुष्य के स्वभाव, रहन-सहन, आहार-विहार एवं शारीरिक तथा मानसिक बल में भी पर्याप्त परिवर्त्तन हो गया है। जीवन अधिक संघर्षमय और पेचीदा होता जाता है, सुख और शान्ति किनारा काटते जाते हैं। इसका एक मात्र कारण जीवन का पाश्चात्यीकरण है, जिससे मनुष्य का स्वयं के प्रति दृष्टिकोण ही बदल गया है। हम प्रत्येक समस्या का निर्धारण भौतिक-दृष्ट्या करने के आदी हो गए हैं। उसमें आध्यात्मिक (Spiritual) विचार-धारा को कोई स्थान नहीं।

चिकित्सा-प्रणाली के क्षेत्र में भी जो आज तक उन्नति हुई है, अनेक नवीन अन्वेषण हुए हैं (यान्त्रिक, आनुसान्धानिक, एवं औषधिक), उनके परिणामस्वरूप जो चिकित्सा वक्ष की अनेक शाखा प्रशाखाएँ पल्लवित हुई हैं, वे यद्यपि आज मानव को प्रभावित कर रही हैं; लेकिन इस उन्नति से आज मनुष्य के स्वास्थ्य को कोई नवीन चेतना मिली हो, यह बात नहीं है। क्यों कि, पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति केवल मानव के अस्थिपञ्जर, सप्तधातु निर्मित केवल भौतिक शरीर को ही देखती है। जिस विशिष्ट वस्तु से इस शरीर में चैतन्य का प्रवाह हो रहा है तथा रोम-रोम परिप्लावित हो रहा है, उस तक इसकी कल्पना ही नहीं जाती। इसके विपरीत भारतीय विचारधारा के अनुकूल आत्मा, मन और दशेन्द्रियों का समुदायभूत मानव चाहे वह स्वस्थ हो या रुग्ण, इसी समष्टि के रूप में आयुर्वेद का स्वस्थ पुरुष तथा चिकित्स्य अभीष्ट है।

एक सत्य को हम मानने से इंकार नहीं करते कि शल्य-शालाक्यादि क्रिया कौशल के क्षेत्र में पिछले कई दशकों में जो आशातीत उन्नति हुई है, हम आयुर्वेद के उपासक आदर-भाव से उसकी प्रशंसा ही नहीं करते, अपितु उस पर अमल भी करना चाहते हैं। आयुर्वेद का हजारों वर्षों के व्यवधान के कारण तथा अनेक राजनैतिक, सामाजिक तथा वैयक्तिक (धार्मिक) विचारों में उथल-पुथल के कारण रुद्धगति ही नहीं हुआ, अपितु ह्रसित भी हुआ। इस बीच में पश्चिम के सुदूर देशों में जो शल्य-क्रान्ति हुई, वह वास्तव में मनन का विषय है। लेकिन शल्य-चिकित्सा का क्षेत्र काय-चिकित्सा की अपेक्षा अल्प होने के कारण, प्रायः काय-चिकित्सकों (Physicians) की ही बहुलता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है।

इस काय-चिकित्सा के क्षेत्र में, आज भी आयुर्वेद कोई पिछड़ा हुआ या अवैज्ञानिक, केवल गोपालकों के गीतों का संग्रह मात्र नहीं है। अपितु, राष्ट्र को चिरन्तन स्वास्थ्य प्रदान करने के लिए हमारे दृष्टिबिन्दु में यह अपना सानी नहीं रखता। राजकुमारीजी ने अपने उद्गारों में यह प्रकट किया है कि राष्ट्र के स्वास्थ्य की संरक्षा आयुर्वेद से सम्भव नहीं। सो, हम उन्हें यह स्पष्ट चुनौती देते हैं कि वे प्रगाढ़तम विज्ञान की दुर्लभतम कसौटी पर, यदि योग्यता रखती हैं तो, इसे कसें। आयुर्वेदोपदिष्ट स्वस्थवृत्त (Hygiene) और उसके लिए निर्दिष्ट विस्तृत उपायों को, केवल हवा, पानी, और खाद्य पेय पदार्थों के स्थूल रूप ही उन्होंने देखे हैं और मॉडर्न हायजीन के द्वारा उनका प्रतिपादन किया है। कतिपय संक्रामक रोगों से बचने के उपायों का वर्णन करने मात्र से राष्ट्र के स्वास्थ्य की संरक्षा करना, एक विडम्बना मात्र है।

यही कारण है कि जितना प्रचार आज इस हेल्थ सर्विस का होता जाता है, उतनी ही जनस्वास्थ्य-संरक्षण की समस्या उग्र होती जाती है। इसके विपरीत सरसरी तौर पर आयुर्वेदोपदिष्ट शाश्वत सिद्धान्तों को मनन कर जाइए। वहाँ हवा, पानी और अग्नि, मानव के रोम-रोम में व्याप्त हो रहे हैं। सृष्टि के चराचर यावत् पदार्थों में मूर्त्तिमान हो रहे हैं। इस देश की प्रत्येक वस्तु में आस्था रखनेवाला मनुष्य, ब्राह्म-मुहूर्त की पावन वेला में प्राच्याभिमुख होकर "अग्निर्वै देवता, वायुर्वै देवता, वरुणो देवता" के वैदिक गान से इनकी अनादि काल से स्तुति करता आ रहा है। भारतीय दर्शनों की सृष्ट्युत्पत्ति की कल्पना, सांख्य-कणाद-गौतम की विचार-परम्परा और सुश्रुत की सक्रिय विचारधारा, सभी इन पाञ्चभौतिक तत्त्वों को मानव का जनक मानते हैं। यही कारण है कि उन्होंने प्रकृति के गम्भीरतम रहस्य को मानव के सामने खोलकर रख दिया है, शरीर

स्वास्थ्य के संरक्षण के लिए। इसलिए, आयुर्वेद में जो सामग्री आज भी उपलब्ध होती है, उसे नेत्रहीन न देखें, श्रोत्रहीन न सुनें तथा समवेदनाहीन अनुभव न करें, तो हमें कोई गिला नहीं। आज भी राष्ट्र के जाज्वल्यमान मध्याह्न-मार्तण्ड के समान अपनी ज्ञान-रश्मियों से विश्व को ही चकाचौंध करनेवाले परमादरणीय डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् उच्च घोष के साथ गर्जना कर कह रहे हैं कि आयुर्वेद में न केवल जीवन के रहस्य का उद्‌घाटन करने वाले तत्त्व हैं, अपितु जीवन को सुखी, समृद्ध एवं नीरोग बनाने के लिए ही जैसे इस शास्त्र का भूपर अवतरण हुआ है। उनके इन उद्‌गारों को माननीया स्वास्थ्य मंत्रिणी महोदया मनन करें, साथ ही भारत की आत्मा और प्राण सस्कृत भाषा का अध्ययन करें, तब उन्हें पता चलेगा कि राष्ट्र के स्वास्थ्य-संरक्षण के लिए जिन अप्रतिहार्य विषयों की आवश्यकता है, उनका प्रतिपादन कहाँ हुआ है। ब्राह्म मुहूर्त्त में शय्या-त्याग से लेकर रात्रि में शयनकक्ष प्रवेश तक की मानव की नाना चेष्टाओं का नियंत्रण तथा मानव-प्रकृति के साथ उनका सामञ्जस्य, इन दोनों बातों पर आयुर्वेद का स्वस्थवृत्त जितना गम्भीर है, दूसरा हो नहीं सकता। इसीलिए, आगे चलकर वहाँ लिखा है कि जीवन को यम-नियमों के अनुसार व्यतीत न करनेवाले प्राणी, अल्पायुष्य के भागी होंगे, नाना दोषज, आगन्तुक एवं कर्मज व्याधियों से आक्रान्त होते रहेंगे।

हम अधिक विस्तार में नहीं जाना चाहते। केवल अपने वैद्य-समाज से यह निवेदन करना चाहते हैं कि वर्तमान परिस्थितियों में हम कैसे आयुर्वेद में जीवन तत्त्व (Vital Force) उत्पन्न कर सकते हैं। इसके लिए मेरा यह विनम्र निवेदन है कि हमें आयुर्वेद-शिक्षण के पाठ्यक्रम में आमूल चूल परिवर्तन करना चाहिए। बॉम्बे सरकार की भाँति हमें भी विशुद्ध आयुर्वेदीय पद्धति पर आश्रित पाठ्यक्रम वाले विद्यालयों की स्थापना करनी चाहिए, जहाँ प्रत्येक विषय के कर्माभ्यास की समस्त सुविधाएँ प्राप्त हों। इस विषय में हमें वर्तमान शासकों से अधिक प्रोत्साहन व आर्थिक सहायता नहीं मिल सकेगी। फिर जन-स्वास्थ्य की दृष्टि से इन विद्यालयों में विशिष्ट अध्ययन की सुविधा करनी होगी। साथ ही, जैसा कि पञ्चवर्षीय योजना में अलग-अलग क्षेत्र-उपक्षेत्र विभक्त कर रीजनल बेसिस पर प्रत्येक की दशा में उन्नति की कल्पना की गई है, ठीक इसी प्रकार जन-संख्या के आधार पर राष्ट्र को भिन्न-भिन्न इकाइयों में विभक्त कर उनके स्वास्थ्य के लिए आयुर्वेदीय पद्धति से सभी उपायों का प्रचार व प्रसार करना होगा। वैयक्तिक स्वास्थ्य को (मनसा, वाचा, कर्मणा) आयुर्वेद में बहुत महत्त्व दिया गया है; क्योंकि इसी पर समाज और नगर के स्वास्थ्य अवलम्बित होते हैं और व्यक्ति के अन्दर स्वस्थ रहने की भावना का उद्‌बोधन कराना ही, उन्हें उन्नति के मार्ग पर डालना है।

किस प्रकार शरीर में रहनेवाले तीनों दोष, वात, पित्त और कफ, साम्यावस्था में रह सकते हैं, किस प्रकार के उचित आहार-विहार से जठराग्नि प्रदीप्त रह सकती है, शरीर के निर्मायक भाव सप्तधातुओं का कार्य ठीक रह सकता है, मलों का उत्सर्जन भलीभाँति हो सकता है, तथा ज्ञान, कर्मेन्द्रिय सहित मन और आत्मा प्रसन्न रह सकते हैं, इन सब बातों का ज्ञान जनसाधारण को करा के ही उसके स्वास्थ्य को ठीक रखा जा सकता है। और जब व्यक्ति स्वस्थ रहेगा, तब उसके पीरसरीय प्रदेश भी स्वच्छ एवं स्वास्थ्यप्रद रहेंगे। इस प्रकार "स्वस्थस्य स्वास्थ्य संरक्षणम्" भी आयुर्वेद की प्रथम प्रतिज्ञादर्श हो सकती है।

साथ ही एक बात पर मैं और बल देना चाहता हूँ कि जो विद्यार्थी आयुर्वेद का अध्ययन करें, उनको अन्य भाषाओं की योग्यता के अतिरिक्त संस्कृत की मातृभाषावत् असन्दिग्ध योग्यता होनी चाहिए, तभी आयुर्वेदाम्बुधि में पैठ करके अनमोल रत्न निकाल सकेंगे, आयुर्वेद की आत्मा का साक्षात्कार कर सकेंगे। फिर आज का यह कहना कि आयुर्वेद अतीत की वस्तु बन गया, वर्तमान के साथ उसका उसका कोई मेल नहीं, एक नितान्त असत्य सिद्ध हो जायेगा।

—००—

केन्द्रीय स्वास्थ्य-मन्त्रालय और आयुर्वेद

कविराज श्रीनारायण शर्मा, एम. ए. एस. एफ., वैद्यशिरोमणि

यह जान कर प्रसन्नता होती है कि देश की स्वास्थ्य-समस्या को हल करने के सम्बन्ध में केन्द्रीय असेम्वली के सभी वर्गों के सदस्यों ने एक साथ मिलकर सरकार पर आयुर्वेद को मान्यता देने एवं उन्नत करने के सम्बन्ध में, इस वार स्वास्थ्य एवं चिकित्सा पर सरकारी बजट के ऊपर बहस के दौरान में सरकार की आयुर्वेद के प्रति बर्ती जाने वाली उपेक्षा नीति की कटु आलोचना की।

इस सम्बन्ध में दलगत घेरा तोड़कर भी विरोधी पक्ष तथा कांग्रेस के सदस्यों ने एकमत से आयुर्वेद के लिए दिल खोलकर केन्द्रीय स्वास्थ्य-विभाग पर दबाव डाला। इससे यह अनुभव होता है कि जनता जागरूक है। यदि केन्द्रीय स्वास्थ्य-विभाग ने अपना रवैया नहीं बदला, तो सम्भव है इस प्रश्न को लेकर भीषण विरोध का सामना करना पड़ेगा।

इस सम्बन्ध में केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रिणी राजकुमारी अमृतकौर ने अपने भाषण के दौरान में कहा कि जहाँ भी देशी चिकित्सा के सम्बन्ध में अच्छा काम हो रहा है, वहाँ सरकारी सहायता दी जा रही है। गवेषणा कार्य के लिए एक अच्छी रकम अलग दी गयी है। आयुर्वेदीय चिकित्सा सस्ती है, इसी देश में पनपी है, इसलिए इस को सर्वश्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता है। यदि आयुर्वेद की पढ़ाई पोस्ट ग्रैजुएट स्तर की उन्नत कर दी जायगी, तो इसके द्वारा आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के लिए अच्छी देन होगी, क्योंकि आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान की कोई सीमा सम्बन्धी रोकथाम नहीं है। साधारण रोगों में आयुर्वेद की दवाइयाँ अच्छी हैं, पर कठिन व्याधियों के लिए आधुनिक डाक्टर की जरूरत है। आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान पहले के चिकित्सा विज्ञानों से ही उत्पन्न है। उत्तर प्रदेश में आयुर्वेद के चिकित्सालय बढ़ाएँ जा रहे हैं, पर जनता आधुनिक डाक्टरों की माँग करती है।

स्वास्थ्य मन्त्रिणीजी के भाषण में एक जिद मालूम होती है। १९४८ ई० में केन्द्रीय स्वास्थ्य-विभाग द्वारा ही श्री. आर. एन. चोपड़ा एवं अन्य सदस्यों की एक जो रिपोर्ट निकाली गयी थी, उसमें चिकित्सा-विज्ञान पर शास्त्र एवं व्यवहार की दृष्टि से बोलने योग्य अधिकारी व्यक्तियों ने रिपोर्ट में लिखा है—"आयुर्वेद जो कि वेदों पर आधारित है, क्रम से वैज्ञानिक प्रणाली से आज से तीन हजार वर्ष से भी अधिक पहले उन्नत हो गया था। इस चिकित्सा विज्ञान ने सभी तरह के रोगों की चिकित्सा एवं जनस्वास्थ्य-रक्षा के क्षेत्र में महान् उन्नति की है। सरकार द्वारा प्रतिपादित एवं संरक्षित डाक्टरी चिकित्सा द्वारा २० प्रतिशत से अधिक आदमी लाभ नहीं उठा पाते हैं। देश के अस्सी प्रतिशत से अधिक सभी वर्ग के लोगों में यह चिकित्सा-प्रणाली प्रचलित है। जनता में यह चिकित्सा बहुत मान्य एवं प्रभावशाली है। बिना सरकारी सहयोग के भी इसकी देन महान् है। आयुर्वेद की उन्नति में वाधा देश के गुलाम होने से आयी है।" इसके अलावा बंगाल, मद्रास, बम्बई, बर्मा, सीलोन, सी० पी०, एवं बरार, यू० पी०, आसाम, उड़ीसा एवं मैसूर आदि प्रदेशों की सरकारों ने आयुर्वेद के सम्बन्ध में समितियों का गठन किया तथा सभी समितियों ने अपनी राय में आयुर्वेद की वैज्ञानिकता, चिकित्सा-विशेषता, उपयोगिता एवं जनता की माँग के बारे में उत्साहवर्धक समर्थन दिया है तथा इस चिकित्सा-विज्ञान को मान्यता देने एवं उन्नत करने की सिफारिश की है।

इसलिए आयुर्वेद के बारे में जनस्वास्थ्य एवं चिकित्सा सम्बन्धी विषयों को लेकर आधुनिक वैज्ञानिकों के मत से भी पूरा समर्थन है। हिन्दुस्तान में अभी अपनी चीज की कद्र करने की बुद्धि पूरी जागरूक नहीं हुई है। आयुर्वेद के बारे में विदेशी वैज्ञानिकों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अमेरिका के महान् चिकित्सावेत्ता डाक्टर होर्न ने कहा है—"यदि हम लोग चरक के रास्ते से चिकित्सा करें, एवं आधुनिक दवाओं के उपयोग को स्थगित कर दें, तो रोगी शीघ्र पूर्ण नीरोग हो जायगा तथा बाद में तरह-तरह की व्याधियाँ उत्पन्न होनी कम हो जायँगी, लोग बीमार भी कम पड़ेंगे।" अमेरिका, रूस एवं जर्मनी

आदि स्थानों में भारतीय चिकित्सा-प्रणाली के तरीकों को अपनाने की चेष्टा हो रही है, पर यह दुर्भाग्य का विषय है कि हिन्दुस्थान में व्यर्थ के वाद-विवाद द्वारा शक्ति का ह्रास हो रहा है। जब केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों द्वारा स्थापित विशेषज्ञ-समितियों ने आयुर्वेद की वैज्ञानिकता, सब तरह के कठिन एवं साधारण रोगों में चिकित्सा-उपयोगिता, सस्तापन और विशिष्टता को स्वीकार किया है तथा इसको उन्नत करने एवं मान्यता देने की जोरदार सिफारिश की है, तब केन्द्रीय स्वास्थ्य-मंत्रालय का यह कर्तव्य है कि उन समितियों की सिफारिश के अनुसार साहस एवं ईमानदारी के साथ जन-कल्याण के लिए आयुर्वेद को प्रमुख स्थान दे।

इसी देश में यह चिकित्सा-प्रणाली पनपी है, यह गौरव का विषय है। इसकी सर्वश्रेष्ठता देशी चिकित्सा होने में नहीं है, बल्कि इस बात में है कि जहाँ डाक्टरी प्रणाली के जरिये राज्य की स्वास्थ्य-समस्या का समाधान होकर सिर्फ ३२ वर्ष की औसत आयु हिन्दुस्थान में है, वहाँ आत्रेय-काल में जब देश की स्वास्थ्य-समस्या का हल आयुर्वेद-प्रणाली से किया जाता था, तब साधारण आयु १०० एक सौ वर्ष थी तथा रसायन के सेवन से लोग पूर्ण नीरोग रहकर शारीरिक बल एवं बुद्धि से युक्त होकर भारत के गौरव को उन्नत करते थे। अशोक एवं चन्द्र-गुप्त के काल तक यहाँ के तक्षशिला एवं नालन्दा आदि विश्वविद्यालयों में आयुर्वेद की पढ़ाई सभी विषयों में होती थी। सर्जरी के काम में भी आयुर्वेद कम नहीं था। जीवक नामक सर्जन ने अशोक के समय में मस्तिष्क की सफल शल्य-क्रिया की थी। इसलिए आयुर्वेद अपनी वैज्ञानिकता तथा उपयोगिता के कारण श्रेष्ठ है। देश की गुलामी के कारण हिन्दुस्थान की हर चीज का पतन हुआ, फिर भी यहाँ के लोगों में अपनी उपयोगिता के बल पर बिना सहयोग के भी अधिकांश जनता में यह चिकित्सा-प्रणाली प्रचलित रही। जहाँ तक आधुनिक विज्ञान को आयुर्वेद की देन का प्रश्न है, वहाँ तक यह कहा जा सकता है कि अरब एवं ग्रीस के रास्ते से आयुर्वेद के आंशिक ज्ञान की रेखा ही आधुनिक विज्ञान का श्रोत रही है। देशी ट्रोपीकल स्कूल ऑफ़ मेडिसिन कलकत्ता एवं अन्य ऐलो-पेथी की चिकित्सा संस्थाओं में जो भी अन्वेषण कार्य हुआ है, उसका आधार ऋषियों की पूर्व संचित देन ही रही है तथा ऋषियों की खोज आधुनिक विज्ञान की रोशनी में भी साफ उतरी है। आधुनिक विज्ञान की सर्जरी की उन्नति में भी सुश्रुतकालीन यन्त्रों तथा शल्यक्रिया विधियों का बहुत प्रभाव पड़ा है। इसलिए हम राजकुमारीजी की इस बात से सहमत हैं कि आयुर्वेद आधुनिक विज्ञान को बहुत देन दे सकता है। पोस्ट ग्रैजुएट स्तर पर आयुर्वेद की पढ़ाई हो, इसका स्वागत है। जिस प्रकार डाक्टरी कालेजों के लिए प्रचुर परिमाण में धनराशि खर्च की जाती है, उसी प्रकार आयुर्वेद के कालेजों में एक हजार शय्या के अस्पताल की व्यवस्था हो, शिक्षक पूर्ण रूप से आयुर्वेद के विद्वान् हों एवं उनका आधुनिक विज्ञान के साथ संयुक्त अध्ययन हो, तो बहुत उत्तम रहे। सर्वसाधन-सम्पन्न जड़ीबूटी-उद्यानशाला, रसायनशाला, शवच्छेदन व्यवस्था, एवं चिकित्सा के अन्य सभी उप-करणों की व्यवस्था रहे, जिनकी आज के युग में आवश्यकता समझी जाती है। पढ़ाई का माध्यम हिन्दी कर दिया जाय। ऐसा होने से डाक्टरी के अनेक विषयों का आसानी से आयुर्वेदीय-करण हो सकेगा।

प्रत्येक महाविद्यालय के साथ एक गवेषणागार की व्यवस्था रहे, जहाँ आयुर्वेदीय सिद्धान्तों की खोज हो तथा आयुर्वेदीय चिकित्सा की व्यावहारिकता को आँका जा सके। ऐसा होने से सजीव एवं उन्नत आयुर्वेद चिकित्सा-विज्ञान सम्पूर्ण विश्व को जनस्वास्थ्य के बारे में अनमोल देन दे सकता है एवं देश को चिकित्सा के बारे में स्वा-वलम्बी बनाया जा सकता है। आयुर्वेद जीवनशास्त्र है। इसमें कोई छोटेपन की सीमा नहीं है। क्रम से अनेक काल में इसकी निधि भरी गयी है। उपयो-गिता की कोई भी चीज आज भी आयुर्वेद अपने सिद्धान्त एवं तरीके से आत्मसात् करने योग्य है।

उत्तर प्रदेश में आयुर्वेदीय चिकित्सालय बड़े ही उपयोगी साबित हुए हैं। उनकी उपयोगिता के बारे में उत्तर प्रदेश के स्वास्थ्य मंत्री श्री सी० बी० गुप्त ने २५ अप्रैल को बरेली में कहा है—"इस समय लोग देश में चिकि-त्सा की देशी पद्धति को अधिक पसन्द करते हैं। सरकार भी इसमें पुनः जान फूँकने की कोशिश कर रही है। पिछले चार वर्षों में सरकार ने इस दिशा में दुगुना खर्च करना आरम्भ कर दिया है। देशी दवाओं की फारमेसी खोली गयी है, इससे राज्य के ५३६ आयुर्वेदीय सरकारी चिकि-

त्सालयों की आवश्यकता पूरी हो जाती है। दूसरी पंचवर्षीय योजना में आयुर्वेद को विशेष स्थान दिया जायगा।" इसलिए उत्तर प्रदेश में आयुर्वेद की ख्याति एवं उपयोगिता के बारे में वहाँ के स्वास्थ्य मंत्रीजी का वक्तव्य विशेष प्रकाश डालता है। राजकुमारीजी को इसके बाद अन्य प्रान्तों में भी आयुर्वेदीय औषधालय खुलवाने चाहिए। आयुर्वेदीय औषधालयों में अच्छे चिकित्सक, सहायक, उपकरण एवं अच्छी दवाओं का संकलन होने पर किसी भी डाक्टरी समकक्ष चिकित्सालय से अधिक ख्याति प्राप्त करने की क्षमता है।

डाक्टर एन० एम० जयसूर्य ने, जो स्वयं आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान के डाक्टर हैं, केन्द्रीय पार्लामेंट में बहस के दौरान में गत १२ अप्रेल को तालियों की गड़गड़ाहट के बीच कहा--"जब तक आयुर्वेद को मान्यता एवं उन्नति का अवसर न दिया जायगा, तब तक ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सा व्यवस्था सम्भव नहीं है। एलोपेथिक दवाइयाँ ३० करोड़ जनता को तो छूती भी नहीं हैं। एक पाई भी प्रान्तीय एवं केन्द्रीय स्वास्थ्य-विभाग से पच्चासी प्रतिशत जनता को लाभ नहीं मिलता है। डाक्टर जयसूर्य ने वैज्ञानिक अधिकारी की हैसियत से जोर देकर कहा कि आयुर्वेद चिकित्सा-विज्ञान अधिक सस्ता, सीधा और लाभदायक है। इसको मान्यता देनी ही होगी। अगर आप इसको न कर सकेंगी, तो उस हालत में जनता बाध्य करके जल्दी या देरी से करा लेगी।" कांग्रेस सदस्यों ने भी डाक्टर जयसूर्य को धन्यवाद दिया। जयसूर्य साहब ने सरकारी उपेक्षा नीति के विरोध में कटौती के प्रस्ताव भी रखे। श्री आर० जी० धुलेकर, कांग्रेस सदस्य ने जोरदार शब्दों में कहा "ऐलोपैथी देश की स्वास्थ्य समस्या हल नहीं कर सकती है। मैं ऐलोपैथी के दरवाजे पर यह दावा करता हूँ कि दिन-पर-दिन हमारा राष्ट्र बीमारियों का शिकार होता जा रहा है। हजारों बीमारियाँ जो पहले नहीं थीं वे हिन्दुस्थान में आ गयीं हैं। स्वास्थ्य-विभाग के अन्तर्गत अलग आयुर्वेद-विभाग की स्थापना की जाय। योजना कमीशन के फंड से कम-से-कम पांच करोड़ रुपये आयुर्वेद की उन्नति के लिए खर्च होने चाहिए।"

इस तरह जन प्रतिनिधियों की आवाज दिन-पर-दिन आयुर्वेद के लिए बुलन्द होती जा रही है। स्वास्थ्य-मंत्रणालय को जनता की माँग का आदर करना चाहिए। केन्द्र के अन्तर्गत शीघ्र देशी चिकित्सा परिषद् की स्थापना की जाय। इसके अन्तरगत दो विभाग होने चाहिए। एक विभाग वैद्यों एवं हकीमों के रजिस्ट्रेशन एवं शासन सम्बन्धी कार्यों की व्यवस्था करे तथा दूसरा विभाग शिक्षा, पाठ्यक्रम, एवं परीक्षा सम्बन्धी विषयों का नियंत्रण करे। इसके सदस्य अधिकतर आयुर्वेद के विद्वान् हों। साथ-ही साथ एक केन्द्रीय गवेषणा परिषद् की स्थापना भी की जाय, जिसमें आयुर्वेद विषय की खोज हो। इसके साथ पाँच सौ रोगी शय्या का अस्पताल, लेबोरेटरी, रसायनशाला, पुस्तकालय, जड़ीबूटी-उद्यानशाला एवं आँकड़ा गणना विभाग रहे। प्रान्तीय गवेषणा-केन्द्रों के साथ केन्द्र का सम्बन्ध एवं संयोग रहना चाहिए। आशा है, केन्द्रीय स्वास्थ्य-मंत्रालय देश को स्वास्थ्य के मामले में स्वावलम्बी बनाने के लिए तथा स्वास्थ्य-समस्या हल करने के लिए आयुर्वेद को सब तरह से उन्नत करने एवं मान्यता देने में उत्साहवर्धक रुख अख्तियार करेगा।

---:०:---

(पृष्ठ ११२८ का शेषांश)

पास रोगियों की संख्या और भी घटती दिखाई दे रही है। इन औषधियों का प्रभाव वैद्य भी देख रहे हैं, तभी तो वह भी इनसे प्रभावित हो गये हैं, और कई स्थानों पर खुले रूपमें सरकार से यह माँग कर रहे हैं कि वैद्यों को भी सल्फाड्रग जैसी औषधियों के व्यवहार की छूट दी जाय। डाक्टरों से बचे-खुचे या जिन ग्रामों तक डाक्टरों की पहुँच नहीं वह रोगी वैद्यों के पास आते हैं। यदि इनके पास अच्छे सहयोग भी न हों, तो उनकी रोटी भी नहीं चलती। इन बातों को देखकर आयुर्वेद के विचारशील व्यक्तियों ने विद्यमान आयुर्वेद विद्यालय में ऐलोपैथी के शरीर विज्ञान, निदान शास्त्र, प्रसूति तन्त्र, न्याय वैद्यक आदि विषयों को पढ़ने का क्रम स्वीकार किया, जिनमें आयुर्वेद-विरोधी सिद्धान्त भरे पड़े हैं, उन्हें धीरे-धीरे पाठ्य ग्रन्थों में भी सम्मिलित कर लिया है। स्वयं महामण्डल द्वारा संचालित विद्यापीठ भी इन विषयों को पढ़ाने के लिए कोर्स ग्रन्थों में स्थान दे चुका है, यह किसी से छिपा नहीं, यहीं तक नव्य ज्ञान-विज्ञान को लेने का आभास नहीं मिल रहा, प्रत्युत् नव्य ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त करने की बढ़ी हुई वैद्य-समाज की जिज्ञासा का सब से प्रबल प्रमाण यह है कि रूढ़िवादी पत्र पत्रिकाएँ भी नव्य विषयों के ज्ञान-विज्ञान को वैद्यों तक सदा ही पहुँचाने की चेष्टा करती रहती हैं, और कई पत्र व पत्रिकाएँ तो वर्ष में एक आध विशेष अंक निकालकर नव्य ज्ञान-विज्ञान की काफी जानकारी वैद्यों तक पहुँचाती हैं, जिन में आधे से अधिक विषय एलोपैथी सिद्धान्त के भरे हुए होते हैं। नव्य सिद्धान्त को वह इसीलिए देते हैं, कि वैद्यों की आन्तरिक प्रवृत्ति इस ओर बढ़ी हुई पाई जाती है और इससे वैद्य-समाज को लाभ भी पहुँचता है। वैद्य यदि एलोपैथी के समतुल्य पहुँचने के लिए प्रयत्नशील हैं, तो इसीलिए कि इस संघर्ष में वह डाक्टरों के मुकाबले ठहर सकें। ऐसा वह परिस्थिति वश कर रहे हैं और उन्हें ऐसा करना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करते, तो इस संघर्षशील संसार में अपने प्रतिस्पर्द्धियों के सामने रह भी सकेंगे, यह देखने वाली बात है।

(आयुर्वेद-विज्ञान से)

मलेरिया का मूल कारण मच्छर नहीं

मुन्शी आनन्दीलाल माथुर, आयुर्वेदरत्न

सृष्टि के नियमानुसार आर्द्रता तथा गर्मी का शेष अन्य भौतिक तत्त्वों के साथ संयोग होने पर, क्षारीय अथवा अम्लीय प्रतिक्रिया होती है। क्षारीय प्रतिक्रिया प्राणिमात्र की उत्पत्ति में सहायक होती है। यदि यही प्रतिक्रिया अम्लीय होगी, तो उत्पन्न हुए प्राणियों का भी विनाश कर देगी। सुरा बनाते समय यौगिक द्रव्य में अनेक जीव उत्पन्न होते हैं। वे कुछ समय के बाद उस द्रव में अम्लता का प्रादुर्भाव होते ही, शीघ्र नष्ट हो जाते, और बाद में पात्र के पैंदे में नीचे जम जाते हैं। पुनः दूसरी बार सुरा बनाते समय, पहले तैयार की गई सुरा का कुछ अंश नये पात्र में डालने पर, वे मृत जीवाणु, जिनको सुरा-बीज की संज्ञा दी जाती है, अम्लता के अभाव में पुनः आर्द्रता और गर्मी का सहयोग पाकर नये जीवों की उत्पत्ति में सहायक बन जाते हैं।

मानव-शरीर में आहार-द्रव्यों का वही परिणाम होता है, जो सुरा बनाते समय होता है; परन्तु आमाशय की अम्लता, जीवों के लिए घातक बन जाती है। ग्रहणी में पहुँचने पर भोजन की वह अम्लता नष्ट हो जाती है। पक्वाशय में भोजन का पाक होने पर जो रस बनता है, वह रसवाही श्रोतों द्वारा शोषित होकर रक्त में मिल जाता है। महुआ इत्यादि द्रव्यों का सार जिस प्रकार सुरा है, ठीक इसी प्रकार भोजन का सार रस बनता है।

ग्रहणी की अग्नि की प्रचण्डता से परे अन्त्रों में आर्द्रता, गर्मी और अन्य भौतिक तत्त्व, जो कभी सम्पूर्ण रूप से शोषित नहीं हो पाते, विद्यमान रहते हैं। इस स्थान पर समान वायु की उपस्थिति में उपरोक्त कथित वातावरण के कारण, अनेक नये प्राणियों की सृष्टि होती है। यही दोषों के कुपित होने का मूल स्थान है।

अविकृत और विकृत भेद से दोष दो प्रकार के कहे गये हैं, जो "सर्वेषां सर्वदा बुद्धिस्तुल्यकर्मगुणक्रियैः" के सिद्धान्त के अनुसार स्वस्थ और अस्वस्थ अवस्थाओं में उत्पन्न होकर वृद्धि और नाश को प्राप्त होते रहते हैं। स्वस्थ मनुष्य में समान अग्नि के कारण जो दोष उत्पन्न होंगे, वे शरीर की रक्षा करते हुए शरीर को धारण करनेवाले होते हैं, इसी कारण वे धातु कहलाते हैं। पुनः वही दोष मिथ्या आहार-विहार से अग्निमान्द्य की अवस्था में उत्पन्न होंगे, वे विकृत होंगे और आम अर्थात् विष के उत्पादक होंगे। यह विष शरीर की धातुओं को दूषित कर उनका विनाश करनेवाला होगा। भोजन के साथ जो कीटाणु शरीर में प्रवेश करते हैं, उनका आमाशय में पूर्णरूपेण नाश नहीं हो पाता। ग्रहणी की प्रचण्ड अग्नि उनका पूर्ण रूप से विनाश कर देती है, इसी कारण अग्निमान्द्य की अवस्था में अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है।

आम से दूषित दोष और धातुओं से मल अवश्य दूषित होते हैं। मानव शरीर से बाहर निकलने के बाद वे मल जब तक आर्द्र रहते हैं, तब तक वायु को दूषित करते हैं, शुष्क हो जाने पर निष्क्रिय हो जाते हैं। वर्षाऋतु आने पर वही शुष्क मल पुनः आर्द्रता और गर्मी का सहयोग पाकर सुरा—बीज की तरह नये जीवों में उत्पत्ति कर स्वयं केन्द्र बन जाते हैं। इस अवस्था में वे असंख्य जीव जलवायु को दूषित करने में पूर्ण समर्थ होते हैं। नाना प्रकार के साधन और उपकरणों द्वारा अनेक रूप धारण कर, अनेक प्रकार की संक्रामक व्याधियों को उत्पन्न करते हैं।

केवल मनुष्य के मल ही नहीं, समस्त प्राणियों द्वारा त्यागे हुए मल से भी भाँति-भाँति के जीवों की सृष्टि होती है और इनके कारण प्राणीमात्र अनेक संक्रामक रोगों से कष्ट पाते हैं। मृत मनुष्य और अन्य प्राणियों के शव भी मल की तरह आर्द्रता और गर्मी का सहयोग पाकर असंख्य जीवों की उत्पत्ति के केन्द्र बन जाते हैं; अतएव युद्ध की समाप्ति के बाद उस प्रदेश का जलवायु भयंकर रूप से दूषित होने पर, महामारी के रूप में संक्रामक व्याधियाँ उग्र रूप धारण कर लेती हैं।

पुनः वही मल पदार्थ यदि गंदगी से बचने के साथ-ही-साथ, खाद्य के रूप में प्रयुक्त कर लिये जाते हैं, तो पृथ्वी की उत्पादन-शक्ति को बढ़ाते हैं। इस प्रकार जलवायु भी दूषित होने से बच जाता है।

इन उपरोक्त तथ्यों के अलावा, दूषित मल का एक तीसरा कार्यक्षेत्र भी है, वह है मनुष्य का शरीर। इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्राचीन आयुर्वेदिक शास्त्रों का सहारा लेना पड़ता है। पाश्चात्य विज्ञान अभी इतना समर्थ नहीं हो पाया है, जो इस गुप्त रहस्य को स्वयं समझ सके और दूसरों को समझा सके।

कृशानां व्याधिमुक्तानां मिथ्याहारादिसेविनाम्।
अल्पोऽपि दोषो दूष्यादेर्लब्ध्वाऽन्यतमतोबलम्।।
सविपक्षो ज्वरं कुर्याद्विषमं क्षय वृद्धि भाक्।
दोष: प्रवर्तते तेषां स्वे काले ज्वरयन् बली।।

वा. भ. नि. अ. २ श्लोक ६४-६५

अर्थात्--ज्वर से मुक्त होने के बाद भी कुछ दूषित मल-पदार्थ मनुष्य के पेट में शेष रह जाते हैं। उनको विरेचन द्वारा बाहर निकालकर कोष्ठ की शुद्धि कर लेनी चाहिए, ऐसा चिकित्सा विधान महर्षियों ने बतलाया है। उस मल के अन्दर जो दोष विद्यमान रहते हैं, रस के साथ शोषित होकर शरीर की भिन्न-भिन्न धातुओं में पहुँच जाते और काल पाकर पुन: मिथ्या आहार के कारण उत्पन्न हुए दूषित वातावरण का बल पाकर विषम ज्वर को उत्पन्न करते हैं।

जिस प्रकार क्षेत्र में नीचे दबी हुई मिट्टी को ऊपर वायु द्वारा शुद्ध होने के लिए ; और ऊपर की मिट्टी जो, वायु द्वारा शुद्ध हो चुकी है, उसको नीचे दबाकर, क्षेत्रका शोधन किये बिना ही, उसमें दूसरी बार बीज बो दिये जायँ, तो जो फसल उस क्षेत्र में उत्पन्न होगी, वह सर्वत्र समान रूप में नहीं होगी। ठीक इसी प्रकार विषम ज्वर की उत्पत्ति समझनी चाहिए। विविध धातुओं के दूषित होने से विषम ज्वर में भिन्न-भिन्न लक्षण प्रकट होते हैं। इस तरह विषम ज्वर के पृथक्-पृथक् नामकरण किये गये हैं।

किसी मनुष्य को ज्वर आने पर लेबोरेट्री में परीक्षा करने के लिए रक्त निकालने के बाद आधुनिक डॉक्टरों द्वारा कुनैन का इंजेक्शन लगा दिया जाता है। कुनैन से ज्वर शान्त हो जाने पर मलेरिया अर्थात् विषम ज्वर का Therapentic Diagnosis यानी उपशयात्मक निदान निश्चय हो जाता है। परन्तु दूसरे दिन लेबोरेट्री से जवाब मिलता है कि रक्त के अन्दर मलेरिया के जीवाणु नहीं मिले। इसका समाधान डॉक्टर साहब यों कह कर करते हैं कि अल्पायु के कारण मलेरिया के जीवाणु रक्त में नहीं दिखाई दिये। दूसरी ओर वही डॉक्टर ऐसा भी मानते हैं कि मलेरिया के जीवाणु सबल होने पर ही रक्ताणुओं को विदीर्ण कर जब रक्त में परिभ्रमण करते हैं, तब ज्वर उत्पन्न होता है। जब वह जीवाणु कमजोर हो जाने पर, ज्वर उत्पन्न करने में समर्थ नहीं रहते, तब वे मच्छर के पेट में पहुँच, वहाँ पर मैथुनि-चक्र द्वारा वृद्धि को प्राप्त होकर सबल होने के बाद पुन: मनुष्य के रक्त में पहुँचते हैं। रक्त में पहुँचने पर शीघ्र ही रक्ताणुओं में घुसकर वहाँ अमैथुनि-चक्र द्वारा वृद्धि को प्राप्त हो, सबल रूप में रक्ताणुओं के बाहर निकल कर ज्वर को उत्पन्न करते हैं।

यदि यह कथन सत्य है कि सबल जीवाणु रक्त में परिभ्रमण करेंगे, तभी ज्वर उत्पन्न होगा, तो वह रक्त, जो परीक्षा के लिए ज्वरावस्था में लिया गया था, उसमें मलेरिया के जीवाणु अवश्य मिलने चाहिए थे। लेकिन, जीवाणुओं के उस रक्त में नहीं मिलने पर भी ज्वर कुनैन द्वारा शान्त होने पर मलेरिया का Therapentic Diagnosis याने उपशयात्मक निदान निश्चय हो चुका, वह अवश्य भ्रमोत्पादक होना चाहिए। यदि मान लिया जाए, कि उपशयात्मक निदान सत्य है, तो अन्वेषणात्मक निदान, जो लेबोरेट्री द्वारा घोषित हो चुका, उसे किस आधार पर असत्य कह सकते हैं? क्योंकि मलेरिया के जीवाणु सबल होने पर ही रक्ताणुओं के बाहर निकल कर ज्वर को उत्पन्न करते हैं। दोनों निदानों में से कौन-सा निदान सत्य और कौन-सा असत्य है?

और भी देखिये--डॉक्टर स्वयं मानते हैं कि मलेरिया के जीवाणु, मच्छर के पेट में पैदा नहीं होते। तब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि मलेरिया के जीवाणु आये कहाँ से? अवश्य ही यह जीवाणु किसी दूसरे स्थान से मच्छर के पेट में पहुँचते हैं। जब मलेरिया के जीवाणु मच्छर के पेट में पैदा ही नहीं होते, तब मच्छर को मलेरिया का मूल कारण कैसे मान लिया जाए।

वास्तव में आयुर्वेद का सिद्धान्त सर्वथा सत्य है। ये जीवाणु विकृत दोषों के कारण मनुष्य के पेट में ही पैदा होते हैं, जैसा कि आप सुरा बनाते समय देखते हैं। ज्वर-मुक्त रोगी के शरीर में, असमर्थ अवस्था में शोषित रस का सहारा पाकर, शरीर की भिन्न-भिन्न धातुओं में पहुँचते हैं। बाद में पुन: दूषित वातावरण में बल पाकर रस-

रक्तादि धातुओं को दूषित कर विषम ज्वर को उत्पन्न करते हैं। परीक्षा करने पर उस समय रक्त में नहीं दिखाई देते; पर बाद में जब वे मच्छर के पेट में पहुँच जाते हैं, तब वे जीवाणुओं का रूप धारण कर लेते हैं। पुनः मनुष्य के रक्त में पहुँचने पर रक्त की परीक्षा करते समय न्यूनाधिक मात्रा में दृष्टिगोचर होते हैं। देखिये Devlopment of life के विषय में पंडित जवाहरलाल नेहरू क्या कहते हैं:—

"Animals are always trying to adopt themselves to their surroundings. In trying to do so they have devloped many new qualities and have become higher and more complicated animals."

अर्थात्—प्रारम्भिक अवस्था से लेकर जीवन में उत्तरोत्तर वृद्धि करना ही जीवन-विकास कहलाता है। जीव सदा अपने वातावरण के अनुसार अपने को बनाने का प्रयत्न करते हैं। रंग-परिवर्तन के साथ-साथ उनमें और भी परिवर्तन होते रहते हैं। इस प्रकार वे और भी अनेक प्रकार के जीवों में परिवर्तित होकर और भी उच्च कोटि को प्राप्त कर अधिक पूर्ण और सुदृढ़ हो जाते हैं।"

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मलेरिया का मूल कारण मच्छर कदापि नहीं, अपितु यह तो केवल मलेरिया के कीटाणुओं को जीवाणुरूप देनेवाला और उनको एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य के रक्त में पहुँचाने का साधन मात्र है, जिस को आज कल के विद्वान् भ्रमवश मलेरिया का मूल कारण मान बैठे हैं। मलेरिया के सहस्रों नवीन रोगियों में रक्त-परीक्षा करने पर मलेरिया के जीवाणु नहीं मिलते; परन्तु कुनैन द्वारा उन रोगियों का ज्वर शान्त हो जाता है। अतः मलेरिया का निदान याने Diagnosis तो हो ही जाता है। मलेरिया से आक्रान्त होने के एक लम्बे समय बाद ही रक्त में मलेरिया के जीवाणु यदा-कदा मिलते हैं। इनकी उत्पत्ति का प्रधान स्थान (Place of origin) पाश्चात्य विद्वानों को अभी तक मालूम नहीं हो पाया है; अतः इस विषय में वे अभी तक अनभिज्ञ ही हैं।

विषम ज्वर के मूल कारणों को लेकर डॉक्टरों और वैद्यों में जो संघर्ष चल रहा है, उसके साथ यह शब्द भी सुनाई पड़ते हैं कि कुनैन एक ऐलोपैथी औषध है; इसके बराबर आयुर्वेद में कोई दूसरी औषध नहीं।

प्यारे पाठको, महर्षि चरक ने पहले सिद्धान्त स्थिर किये और उसके बाद उन सिद्धान्तों के आधार पर चिकित्सा का मार्ग दिखाया। उन अनेक अव्यर्थ सिद्धान्तों में एक सिद्धान्त यह है कि तिक्त (कडुए) रस-प्रधान द्रव्य ज्वर-नाशक होते हैं। चिरायता, नीम और गिलोय इत्यादि तिक्तरस-प्रधान द्रव्य हैं और कुनैन भी तिक्तरस-प्रधान है। यदि तिक्त-रस-प्रधान कुनैन ज्वर का नाश करती है, तो इसमें नई बात कौन-सी है। इस भूतल पर उत्पन्न किसी द्रव्य-विशेष पर अपना एकाधिकार बताना, कहाँ तक शोभनीय है।

एक द्रव्य से लाभ नहीं होता तो दूसरा और दूसरा भी लाभ न करे, तो तीसरा द्रव्य लेने का विधान महर्षि बता चुके हैं। पाली, मारवाड़ में मलेरिया के रोगियों के लिए कुनैन एक विफल औषध घोषित हो चुकी है, ऐसा डाक्टरों के मुख से बराबर सुनते हैं। पेलुड्रीन भी जवाब दे चुकी और अब कामाक्विन एवं निवाक्विन के परीक्षण किये जा रहे हैं; परन्तु ऐसा सुनाई पड़ता है कि ये नवीन परीक्षण भी संतोषदायक नहीं हैं। अतएव, इस विषय में अभिमान करना वृथा है। आसाम में एक वैद्यराज कुनैन से निराश हुए रोगियों को—अभी इस युग में—गिलोय से ठीक कर रहे हैं। जहाँ बड़ी-बड़ी प्रसिद्ध मूल्यवान् विदेशी औषधियाँ विफल हो चुकी हैं, वहाँ पर मामूली देशी औषधियों ने ही रोगियों को जीवनदान दिया है।

आज इस बात की पूर्ण आवश्यकता है कि हम आयुर्वेद की महत्ता को समझकर आगे कदम बढ़ावें और उसकी उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए आयुर्वेद की प्रखर तेजस्विता को प्रकाश में लावें। मुझे आशा है, अन्य विज्ञजन भी इस विषय पर प्रकाश डालेंगे।

त्रिदोषस्वरूप-विज्ञान के साधन

वैद्य छविदत्त शर्मा, आयुर्वेदाचार्य

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा आयोजित नि० भा० आयुर्वेद शास्त्र चर्चा-परिषद्, पटना में त्रिदोष को भी शारीरिक अन्य पदार्थों की भाँति पंचभूतात्मक द्रव्य मानने का निर्णय किया गया है, जो सर्वथा ठीक ही है।

द्रव्य—द्रव्य दो प्रकार के होते हैं—एक कारण द्रव्य और दूसरा कार्य द्रव्य। कारण-द्रव्य नव हैं; यथा—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, आत्मा, मन, काल, और दिशा। कार्य-द्रव्य असंख्य हैं। यह आत्मा तथा महाभूतों के न्यूनाधिक भाव से बनते हैं। अतः प्रत्येक कार्य द्रव्य में यह न्यूनाधिक मात्रा में अवश्य रहते ही है। इन्हीं असंख्य कार्य-द्रव्यों की भाँति वात-पित्त और कफ भी भौतिक द्रव्य हैं, जिनका अपना स्वरूप है तथा वे प्रत्यक्ष भी होते हैं। रस-रक्तादि सात धातुओं की तरह वात, पित्त और कफ प्रत्येक सजीव सृष्टि में न्यूनाधिक भाव से समान मात्रा में रहते हैं। निर्जीव पदार्थों में भी ये रहते हैं। इनके स्वरूप का ज्ञान भी हमें सजीव तथा निर्जीव पदार्थों में गुण-कर्मों द्वारा होता है। यह प्राचीन आचार्यों का मत है। इसका निर्णायक आधार आज हमें पूर्णरूपेण उपलब्ध नहीं है कि उनके पास इनके स्वरूप-ज्ञान का प्रत्यक्ष साधन क्या था। परन्तु इसके लिए हम पूर्वाचार्यों द्वारा लिखित ग्रन्थों का बार-बार स्वाध्याय तथा मनन करें, तो हमें ज्ञात हो जाता है कि दोषों का स्वरूप किस प्रकार का है।

प्रत्येक वस्तु के ज्ञान के लिए कुछ नियम होते हैं। उन नियमों में से यह भी एक नियम है कि कार्य-द्रव्य सब इन्द्रियों से जाना जाता है और गुण एक इन्द्रिय से। सर्वेन्द्रियोपलब्धम् द्रव्यम्। एकेन्द्रियोपलब्धो गुणः। इस नियमानुसार वात, पित्त और कफ जो द्रव्य हैं, सब इन्द्रियों से उपलब्ध होने चाहिए। उदाहरणार्थ—हरड़ एक द्रव्य है। इसका ज्ञान हम कर्णेन्द्रिय द्वारा सुनकर स्पर्शेन्द्रिय द्वारा स्पर्श से, नेत्र द्वारा देखकर, रसनेन्द्रिय तथा गन्धेन्द्रिय द्वारा रस तथा गन्ध से करते हैं। परन्तु इसके गुण का ज्ञान हम केवल एक इन्द्रिय से ही जान सकते हैं।

वायु द्रव्य की सिद्धि—वागतिगन्ध नवों धातु से व्याकरणरीत्या वायु की सिद्धि होती है। गति का अर्थ ज्ञान, गमन और प्राप्ति होता है। सजीव प्राणियों के शरीर में जो भी ज्ञान जिन-जिन धमनियों द्वारा शरीर के जिस-जिस स्थान पर होता है, वह सब वातिक धमनियों से ही होता है। हमारे किसी अंग में कहीं पर वेदना या कोई काँटा चुभ जाँता है, अथवा शरीर के किसी स्थान पर कोई आघात होता है, तो इसका ज्ञान मस्तिष्क को वातिक नाड़ियाँ ही कराती हैं।

गमन—गमन का अर्थ चलना है। हमारे शरीर में जो भी व्यापार हो रहा है, वह भी सब वायु द्वारा ही सम्पादित होता है। यथा—भुक्त पदार्थों को मुँह से आमाशय पक्वाशय तक ले जाना, रक्त परिभ्रमण क्रिया, मूत्र तथा मल को वृक्कादिकों द्वारा पृथक् कर बस्ति में ले जाकर उसे शरीर से बाहर निकाल फेंकना तथा शरीर के प्रत्येक भाग को संचालित करते रहना आदि सब कार्य इस वायु से ही होते हैं। लिखा भी है—'सर्वाहिचेष्टा वातेन सः प्राणः प्राणिनांस्मृतः। तेनेवरोगाः जायन्ते तेन चैवोपरुध्यते।' च० सू० १७ श्लो० ११६।

प्राप्ति—प्राप्ति का अर्थ है मिलना। हमारी जीवनोपयोगी वस्तुएँ; यथा—जल, वायु, रोशनी, भोज्य पदार्थादि हमको ठीक-ठीक मात्रा में मिल रही हैं, इसका ज्ञान भी वातवह नाड़ियों से ही होता है।

गन्ध—गन्ध पृथिवी के अन्दर ही है, परन्तु गन्ध-ज्ञान में भी वायु ही कारण है। यथा, पुष्पस्थित गन्ध वायु द्वारा ही हमारे नासिकाग्र भाग तक ले जाया जाता है। इस प्रकार से **ज्ञान, गमन, प्राप्ति** तथा **गन्ध** इन चारों अर्थोंवाला वायु ही है।

प्रत्यक्ष का लक्षण—आयुर्वेद में प्रत्यक्ष का लक्षण इस प्रकार लिखा है :—

आत्मेन्द्रिय मनोर्थानां सन्निकर्षात्प्रवर्तते।
व्यक्तातदात्वे या बुद्धिः प्रत्यक्षं सानिरूच्यते।

च० सू० ११।२०

आत्म, इन्द्रिय, मन तथा विषय (रूपरसादि) इनके सम्बन्ध से जो तात्कालिक निश्चयात्मक ज्ञान होता है, उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। इस लक्षणानुसार त्वगेन्द्रिय से वायु का प्रत्यक्ष होता है।

स्थान तथा कर्मों द्वारा वायु का प्रत्यक्ष--आचार्यो ने एक ही वायु के पाँच स्वरूप बताकर शरीर के पाँच स्थानों में विभक्त कर उसके गुण-कर्मों को अच्छी तरह से बता दिया है, जिससे अल्प बुद्धिवाला भी आसानी से जान ले। इसी प्रकार पित्त और कफ के भी पाँच स्थान तथा उनके कर्म भी बताये हैं।

एक वायु के पाँच भेद हैं--प्राण, उदान, समान, व्यान, और अपान। इनके स्थान तथा कर्म इस प्रकार हैं :--

(१) प्राण का स्थान तथा कर्म

स्थानं प्राणस्य शीर्षोर: कर्णजिह्वास्यनासिका
ष्ठीवनं क्षवथूद्गार श्वासाहादि कर्म च।

च० चि० २८

प्राण का स्थान--शिर, उर, कर्ण, जिह्वा, मुख, नासिका हैं। इन स्थानों में रहता हुआ वायु मस्तिष्क का व्यापार, कर्ण द्वारा सुनना, जिह्वा से रसज्ञान, नासिका से गन्धज्ञान प्राणिमात्र को कराता है। इसी तरह से मुँह द्वारा थूकना, क्षवथु प्रकार आहार को मुँह से नीचे ले जाना श्वास लेना आदि कर्म कराता है।

चक्षु: श्रोत्रे मुख नासिकाभ्यां प्राण: स्वयम् प्रतिष्ठिते।

प्र० उ०

उपनिषद्वाले तो चक्षु में भी प्राणवायु का निवास मानते हैं। इससे चक्षु से जो भी ज्ञान तथा कार्य सम्पादित होता है, वह भी प्राणवायु का ही कार्य है। इस तरह से भौतिक वायु जब हमारी सब ज्ञानेन्द्रियों में निवास करता है, तब निश्चित ही हम इसको सब इन्द्रियों से उपलब्ध कर सकते हैं।

(२) उदान का स्थान तथा कर्म

उदानस्य पुन: स्थानं नाभ्युर: कण्ठ एवच।
वाक् प्रवृत्ति: प्रयत्नौर्जो बलवर्णादि कर्मच।

च० चि० २८

उदान का स्थान नाभि, उर और कण्ठ है। यह बोलना, प्रयत्न करना उज्वल तथा वर्ण (रंग) आदि कार्य करता है। रंग को हम नेत्रों से ही जान सकते हैं। रंगना उदान का कार्य है। कार्य से कारण को जाना जाता है। अत: इस नियमानुसार हम उदान का भी नेत्रों से प्रत्यक्ष कर सकते हैं। तेजो इवे उदान:।

प्र० उ०

उदान को उपनिषत्कार तेज कहकर प्रतिपादित करता है। तेज का ज्ञान चक्षुओं के बिना नहीं होता।

(३) समान

स्वेद दोषाम्बुवाहीनि स्रोतां सि समधिष्ठित:।
अंतराग्निश्च पार्श्वस्थ: समतोऽग्निबल प्रद:।

च० चि० २८।६

समान वायु स्वेदवह, दोषवह तथा अम्बुवह स्रोतों में है तथा अन्तराग्नि के पार्श्व भाग में रहता है। अत: अग्नि को प्रज्वलित रखता हुआ बल को देता है। स्वेदादिकों को शरीर से निकलते हुए देखने से इसका हमें नेत्रों द्वारा प्रत्यक्ष होता है।

(४) व्यान

देहं व्याप्नोति सर्वन्तु व्यान: शीघ्र गतिर्नृणाम्
गति प्रसारणाक्षेप निमेषादि क्रिय: सदा।

च० वि० २८।७

शीघ्र गतिवाला व्यान वायु मनुष्य के सारे शरीर में रहता है। शरीर में गति, अंगों को फैलाना, सिकोड़ना, झटकना, पलकों को खोलना तथा बन्द करना आदि कर्म करना है। गति प्रसारणादि क्रियाओं को हम नेत्रों से देखते हैं। इस तरह, हमको इसका प्रत्यक्ष भी नेत्रों से होता है।

(५) अपान

वृषणौ वस्ति मेढ्रं च नाभ्यूरू वंक्षणौ गुद्म
अपान स्थान यन्त्रस्थ: शुक्र मूत्रशकृत् क्रिय:
सृजत्यार्तवगर्भोच। च० चि० २८।८

दो वृषण वस्ति मेढ्रं (मूत्रेन्द्रिय) नाभि, उरु दोनों वंक्षण और गुद तथा आँतें, यह अपान के स्थान हैं। यह वीर्य, मूत्र, पुरीष आर्तव तथा गर्भ को बाहर निकालता है। इनके कार्यों को भी हम नेत्रों से देखते हैं। इस तरह से आप्त वाक्यों द्वारा सुनकर तथा इनके कार्यों को इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष होने से हम निश्चित रूप से वायु को जानते हैं। आगे की शब्द प्रमाण लिखते हैं--

वायुरायुर्बलं वायुर्वायुर्धाता शरीरिणाम्।
वायुर्विश्व मदं सर्व प्रभुर्वायुश्च कीर्तितः।
च० चि० २८।१

शारीरिक ग्रंथियों द्वारा वायु का प्रत्यक्ष--मनुष्य शरीर में विशेषकर पाँच ग्रन्थियाँ (Glands) हैं, जिनको हम वातिक ग्रन्थियाँ कहें, तो सर्वथा उचित होगा; क्योंकि इन ग्रन्थियों का तथा आयुर्वेद प्रतिपादित प्राणादि पाँचों वायुओं का स्थान और कर्म प्रायः मिलता-जुलता है।

(१) **पिचुटरी ग्रन्थि** (Pituitary body)--यह शिर में होती है, जिसको आयुर्वेद में हृदय कहा है। इसको चेतना अर्थात् जीवात्मा का स्थान मानते हैं। इसी हृदय में प्राण भी रहता है। हृदिप्राणः गुदेऽपानः। इसका प्रमाण भी चरक ने दो अंगुल का लिखा है 'द्व्यंगुलं हृदयम्'। च० वि० अ० ८। भेल संहितावाले भी ऐसा मानते हैं। इस हृदय के अन्दर एक तरह का रस होता है, जो जीवन का आधार है। इसी को ओज कहते हैं। भेल इसको हृदो रसः करके लिखता है। इसका प्रमाण ८ विन्दु मानते हैं। इस Pituitary body को प्रत्येक वैद्य जब चाहें, नेत्रों द्वारा प्रत्यक्ष कर सकते हैं। आधुनिक शारीरिक विज्ञानवालों ने तो इसके ऊपर पर्याप्त खोज की है।

(२) **थैराइड ग्रन्थि** (Thyroid glands)--उदर का स्थान है तथा तद्वत् ही कार्य करता है। यह सारे शरीर को गर्मी देता है। इसका स्थान कण्ठ है। यह पीछे लिखा जा चुका है। अर्थे दशमहामूलीय अध्याय में चरक ने जो हृदय से दश महानाड़ियां लिखी है, उनमें से जो एक सुषुम्ना नाड़ी है, ग्रीवा के पास आकर इसके दो भाग हो जाते हैं। एक भाग श्वास-नलिका में आता है। वहाँ से फुफ्फुसों में होता हुआ नाभी तक चला जाता है। यह तेजरूप है, Thyroid भी तेज रूप है। इसमें विकृति आ जाने से बोलने में विकृति आ जाती है। बल तथा वर्ण भी विकृत हो जाते हैं। जब किसी का Thyroid बढ़ जाता है, तब उसकी बोलने की प्रवृत्ति में फरक पड़ जाता है और श्वास भी कठिनता से ली जाती है। शरीर से यदि Thyroid को निकाल दिया जाए, तो मनुष्य-शरीर की गर्मी शान्त होकर उसकी मृत्यु हो जाएगी। इसका मुख्य स्थान कण्ठ है। छाती से नाभी तक यह जाता है।

(३) **पैंक्रियास** (pancreas)--यह ग्रन्थि Insolin बनाती है। इनसोलीन Insolin वह पदार्थ है, जो शरीर की Sugar (मधुरता) को नष्ट करता है। मधुर रस को नष्ट करनेवाले रस कटु, तिक्त, कषाय ही हैं, जो वातिक रस कहलाते हैं। Pancreas के कारण ही भुक्तद्रव्यों का विपाक कटु होता है। यह समान वायुवत् कार्य करने के कारण समान वायु की ग्रन्थि कही जा सकती है। इन दोनों का स्थान भी शरीर में एक ही है।

(४) **वृक्कों की ग्रन्थियाँ** Supra-renals हैं। मस्तिष्क से जो एक नाड़ी निकलती है, उसे सुषुम्ना नाड़ी कहते हैं। यह शिर के पश्चाद्भाग से मेरुदण्ड के अन्त तक जाती है, जो हमारे शरीर की क्रिया को करती है। इसके सिर से नीचे उतरते ही जत्रु मूल में दो भाग हो जाते हैं। प्रथम भाग श्वासनलिका के समीप आकर कण्ठ, उर तथा नाभि तक जाता है और द्वितीय भाग मेरु-दण्ड में से होता हुआ, त्रिकास्थि तक जाता है, जिसके सहस्रों प्रविभाग होते हैं। उसी नाड़ी के साथ supra-renals जुड़े हुए हैं। Supra-renals व्यान का power house है, जो शरीर की गति-विधि को व्यवस्थित बनाए हुए है। Supra-renals में यदि कोई विकृति आ जावे, तो वृक्कों का सारा कार्य अव्यवस्थित हो जाता है और शरीर की सारी क्रियाएँ प्रायः एक साथ रुक जाती हैं।

(५) **अपानका प्रधान केन्द्र** Testicles है। यहाँ से ही अपान वायु निकलकर वस्ति, मेढ्र, नाभि, उरु वंक्षण तथा गुद में जाता है, जो इन स्थानों के कार्यों को सम्पादन करता है। आयुर्वेदाचार्यों ने भी इसका प्रधान स्थान वृषण ही लिखा है। वृषणौ वस्ति मेढ्रञ्च। हृदयं चेतनाधिष्ठानमेकम्। च० शा० अ० ७ सू० ८। हृदयमेकं चेतना स्थानम्। भेल संहिता। इसको भी वैद्यों को बताना है कि चेतना स्थानीय हृदय शिर में है, उर में नहीं।

यन्त्रों द्वारा दोषों का स्वरूपज्ञान------रक्त चाप मापक यन्त्र से हम High Blood preasure तथा Low Blood pressure को देखते हैं। यह यन्त्र रक्त के दबाव को बताता है। रक्त में जो दबाव पड़ता है, वह वायु का ही होता है और किसी का नहीं; क्योंकि शरीरस्थ भौतिक गतिमान वायु ही है। अन्य कोई नहीं। इस भौतिक

वायु से ही हृत्कोष्ठस्थित रक्त गति करता है। इस तीव्र तथा मन्द गति का ज्ञान हम इस यन्त्र द्वारा प्रतिदिन करते हैं। इस प्रकार से वायु का यन्त्र द्वारा प्रत्यक्ष होता है। Thermometer थरमामिटर से पित्त तथा श्लेष्मा की उष्णता तथा शीतलता का ज्ञान भी किया जाता है।

वर्ण द्वारा वायु-दोष का स्वरूप-ज्ञान--मनुष्य शरीर में जब भौतिक वायु विकृत हो जाता है, तब नेत्रोष्ठादिकों का अरुण, नील, कृष्ण वर्ण कर देता है। पित्त से पीत लौहित, ताम्र, हरितादि वर्ण हो जाते हैं। श्लेष्मा से श्वेत। इस प्रकार वर्ण द्वारा हम दोषों का प्रत्यक्ष करते हैं। हमारे शरीर में गुदादिकों से जो दुर्गन्ध युक्त गैसेज Gases निकलते हैं, इनसे भी हमको वात, पित्त, कफ का ज्ञान होना पूर्वाचार्यों ने बताया है। रुक्ष शीतादि स्पर्श तथा कटु तिक्त कषायादि रसों द्वारा भी दोषों के स्वरूप का ज्ञान प्रतिदिन प्रत्येक वैद्य करता है। इस तरह, शरीरस्थ भौतिक दोषों का स्वरूप ज्ञान सब इन्द्रियों से होता है।

दोषों की सावयवता—

आयुर्वेदाचार्य दोषों को अवयवोंवाला भी मानते हैं। कुर्यादवयव प्राप्तो मारुतस्त्विमान् गदान्। सु० नि० अ० १। अवयवोंवाला वायु इन-इन रोगों को करता है। यह आवृत वायु से होनेवाले २० प्रकार के रोगों की बाबत लिखा गया है। सावयव वायु आदि दोष ही दूसरे दोषों को आवृत अर्थात् आच्छादित कर सकते हैं, निरवयव नहीं।

मारुतानां हि पञ्चानामन्योन्यावरणं शृणु।
लिङ्गं व्यास समासाभ्यां मुच्य मानं मयानघः।
च० चि० २८।१९४

इसकी टीका करते हुए श्री चक्रपाणि लिखते हैं-- 'यद्यपि चेह वातकला कलीये वायोरमूर्तत्वं प्रोक्तं तथा पीदमभूर्तत्वम कठिन वाचकम् नत्ववयव प्रतिषेधकम्। तेन वायोः वायुं प्रति आवरणमुपपन्न मेव।' इससे यह ज्ञात होता है कि शरीरस्थ भौतिक वायु के अवयव भी हैं। जिनका प्रत्यक्ष मेरे विचार से होना चाहिए और वह होता है। सावयव वायु Oxygen, Hydrogen, Carbon, Chlorine तथा Florine हैं जिनका मानादि प्रत्यक्ष आधुनिक विज्ञान द्वारा किया जाता है।

जिन-जिन स्थानों पर वायु रहता है, वहीं पित्त और श्लेष्मा भी रहते हैं, ऐसा चरकाचार्य मानते हैं--"यद्यस्य वायोर्तिदिष्टं स्थानं तत्रे तरौस्मृते।" च० चि० २८।२२७ जिस तरह वायु से आवृत वायु के २० प्रकार के रोग हैं, उसी तरह से पित्त और श्लेष्मा से आवृत प्राणोदन भी होते हैं और उनके रोग भी लिखे हुए हैं।

आवृतं श्लेष्मपित्ताभ्यां प्राणं चोदानमेवच।
गरीयस्त्वेन पश्यन्ति भिषजः शास्त्र चक्षुषः।
च० चि० २८।२२५

इन सब आवृतों से होनेवाले रोगों को वैद्य च० चि० अ० २८ में पढ़ सकते हैं। इनसे होनेवाले उपद्रवों को भी वहीं पर पढ़ें। इन सब शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा निश्चित होता है कि इनका अपना-अपना स्वरूप है तथा सब इन्द्रियों से उपलब्ध होते हैं। "रूप रहित स्पर्श वान वायुः" यह लक्षण आयुर्वेद का नहीं; अपितु नैयायिकों का है। आयुर्वेद तो वायु को आत्मा से उत्पन्न मानता है, इसलिए जो लक्षण आत्मा के होंगे, वही वायु के भी लिंग होंगे, क्योंकि कारणानुरूप ही कार्य होता है। वायोरात्मैवात्मा। पित्तमाग्नेयम् श्लेष्मः सौम्यः। सु० सू०। वायु की योनि आत्मा है। पित्त अग्नि से पैदा हुआ है तथा श्लेष्मा जल से उत्पन्न होता है। डल्हणाचार्य ने "वायोरात्मैवात्मा" का अर्थ इस प्रकार से किया है--वायु की योनि वायु ही है। यह अर्थ सुश्रुत को अभीष्ट नहीं (लेखक का विचार)। यदि डल्हणाचार्य का अर्थ सुश्रुताचार्य को अभीष्ट होता, तो वह (वायोत्मैव वायुः) ऐसा लिख सकते थे। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं लिखा। इसका कारण यह था कि वैदिक श्रुति तथा उपनिषद् जहाँ शरीरोत्पत्ति का वर्णन करता है, वहाँ ऐसा नहीं मानता। वह तो आत्मा से ही प्राण को पैदा होना लिखता है। आत्मन एवं प्राणो जायते। प्र० उ०। प्राण के ही अन्य चार भेद भी उदान, समान, व्यान और अपान कर के लिखता है। ऐसा ही आयुर्वेदाचार्य भी मानते हैं।

आत्मा का लिङ्ग--

प्राणापानौनिमेषाद्या जीवनं मनसोगतिः
इन्द्रियान्तर सञ्चारः प्रेरणं धारणं च यत्
देशान्तर गतिः स्वप्ने पञ्चत्व ग्रहणं तथा
द्रष्टस्य दक्षिणेनाक्ष्णा सव्येनावगमस्तथा
इच्छाद्वेषः सुखदुःखं प्रयत्नश्चेतनाधृतिः
बुद्धिस्मृतिरहङ्कारो लिङ्गनिपरमात्मनः।
च० शा० १

वैशेषिक दर्शन में कणाद मुनि ने भी आत्मा के यही लिङ्ग लिखे हैं। प्राणापन निमेषोन्मेष जीवन मनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गनि। आप कह सकते हैं कि यह तो आत्मा के लिंग हैं, वायु के नहीं। शरीरस्थ प्राण वायु के लिंग भी यही हैं, क्योंकि वायु को भी शास्त्रकार आत्मा कहते हैं। आत्म शब्द का प्रयोग ब्रह्म, इन्द्र, वायु, अग्नि, मन, धृति, धर्म, कीर्ति, यश, श्री, शरीर तथा आत्मा इन बारह के लिए किया जाता है।

ब्रह्मेन्द्र वाय्वाग्निमनोधृतीनां धर्मस्वकीर्तेर्यशसः श्रियश्च तथा शरीरस्य शरीरिणश्च स्याद्वादशस्विङ्गित आत्म शब्द

(क्रमशः)

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के नव स्थापित बिक्रीकेन्द्र अमीनाबाद लखनऊ के शुभ उद्घाटनावसर पर लिया गया एक समूह-चित्र

नामूलं लिख्यते किंचिन्नानपेक्षितमुच्यते

३६—छात्रोपयोगी निदान-चिकित्सा

अथवा

निदान-चिकित्सा हस्तामलक

वैद्य रणजितराय

प्रतिश्याय[1] (पीनस)

प्रतिश्याय के भेद

निदान (कारण) भेद से प्रतिश्याय के दो भेद हैं—**सद्योजात** तथा **चयादिक्रमोत्पन्न** (कालान्तरोत्पन्न)। प्रकोप के प्रकरण में यही वस्तु क्रमशः अचय-प्रकोप और चय-प्रकोप नाम से कही गयी है। प्रतिश्याय के उभय भेदों का निदान अधोलिखित है[2]। इन भेदों के अतिरिक्त दोष-भेद से प्रतिश्याय के पाँच भेद होते हैं—**वातज,** पित्तज, श्लेष्मज, सन्निपातज तथा रक्तज। **सब में वायु का प्राधान्य होता है**[1]।

१—देखिए च० चि० २६।१०४–११७, १३४–१५७; सु० उ० २४; माधव निदान, च. चि. ८।४८-५० यक्ष्मा-प्रकरण)।

२—प्राचीनों ने प्रतिश्याय का उल्लेख शालाक्यतन्त्र में ऊर्ध्व जत्रुगत अन्य रोगों के साथ किया है। वर्तमान में कायचिकित्सक ही प्रतिश्याय तथा अन्य कई ऊर्ध्वाङ्गगत रोगों का उपचार करते देखे जाते हैं। अतः हम भी इसे इस प्रकरण में दे रहे हैं।

प्रतिश्याय को प्राचीनों ने सर्व ऊर्ध्वाङ्गगत रोगों का प्रायिक मूल कहा है। चिकित्सा-व्यवसाय में यह निदान स्मरणीय है।

शालाक्येऽप्युक्तम्—

भूयिष्ठं व्याधयः सर्वे प्रतिश्याय निमित्तजाः।
तस्माद्रोगः प्रतिश्यायः पूर्वमेवोपदिश्यते ॥

च. चि. २६।१०४ पर चक्रपाणिधृत तन्त्रान्तर-वचन।

कभी यह भी स्थिति हो सकती है कि रोगजनक दोष से प्रतिश्याय उतने प्रमाण में न हो—केवल एकाध बिन्दु नाक से गिरे या छींकें कभी आ जाएँ; पर गल-प्रदेश में संक्रान्त हो वह दोष कासादि रोग करता है, या नेत्र में जाकर आस्राव (आँख से पानी पड़ना) उत्पन्न करता है, या प्राणवह स्रोत में संचरित हो श्वास के रोग प्रकट करता है।

१—**प्रतिश्याय की निरुक्ति से यह वस्तु प्रकट होगी।** च. चि. २६।१०५ में प्रतिश्याय के निदान बताकर संहिताकार कहते हैं—**संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धो वायुः प्रतिश्यायमदीरयेत्तु**—दोष अपने-अपने कारणों से शिर में घनीभूत हो स्थान-संश्रय किये हुए हों, तो वृद्धि को प्राप्त हुआ वायु प्रतिश्याय को उत्पन्न करता है। राजयक्ष्मा के प्रकरण में प्रतिश्याय से राजयक्ष्मा की उत्पत्ति बताते यह बात निरुक्ति-पूर्वक अधिक स्पष्ट कही है। देखिए :—

घ्राणमूले स्थितः श्लेष्मा रुधिरं पित्तमेव वा।
मारुताध्मात शिरसो मारुतं श्यायते प्रति ॥

च.चि. ८।४८

—पुरुष का शिर वायु से परिपूर्ण हो, ऐसी स्थिति में नासिका के मूल में स्थित वायु, पित्त या रक्त (कुपित हो) वात के प्रति **श्याय** (गमन) करता है—रोगोत्पत्ति करने में उसे सहकार देता है, इसी से इस रोग का नाम प्रतिश्याय है। इसमें गत्यर्थक 'श्यैङ्' धातु है। वात का यह प्राधान्य प्रतिश्याय तथा उससे उत्पन्न रोगों की चिकित्सा में स्मरण रखने योग्य है। प्रतिश्याय से कास, श्वास, शिरोरोग (शिरोवेदना), आदि रोग होना सुप्रसिद्ध है। इन सब रोगों में संभव हो, तो वस्ति देना उत्तम कार्यसाधक होता है। वह न बने, तो आहारौषध द्रव्यों के रूप में स्निग्ध, उष्ण, मधुर, अम्ल, लवण गुणयुक्त मृदु संशोधन देने चाहिए। वात के उपक्रम में आरम्भ में ही चरक ने कहा है—× × **मृदूनि च संशोधनानि स्नेहोष्णमधुराम्ललवणयुक्तानि, तद्वदभ्यवहार्याणि** च. वि. ६।१६। (अभ्यवहार्य=आहार्य द्रव्य)।

इन रोगों में मलवातानुलोमन मृदु संशोधन द्रव्य सतत देते रहना चाहिए। कफ विलायक क्षार द्रव्यों से मूत्र विरेचन तो स्वयं होता रहता है। **मलशुद्धि सम्यक् हो, तो प्रतिश्याय हो ही नहीं सकता यह अनुभवियों की वाणी है।**

प्रतिश्याय का निदान

मूत्र, पुरीषादि वेगों का धारण (उसके कारण वायु की प्रतिलोम गति तथा संचय प्रकोप-प्रसर ; एवं वायु के प्रकोपवश शेष दोषों और मलों की भी शुद्धि समीचीन न होना), विविध अजीर्ण, रज (रज का प्रसिद्ध और अनुभव से प्रतिश्यायजनकतया सिद्ध अर्थ धूलि या पुष्पों का पराग है। इस शब्द में विभिन्न उड्डयनशील द्रव्यों—गैस आदि के वाष्प भी समाविष्ट हैं ; इनका नासास्रोत में प्रवेश यहाँ अभिप्रेत है), अति भाषण, क्रोध, ऋतु-वैषम्य (जल के वैषम्य का भी यहाँ ग्रहण करना चाहिए। प्रायः पानी बदलने से प्रतिश्याय होता देखा जाता है), शिर पर सूर्य आदि का ताप पड़ना, अति जागरण, दिवास्वप्न, तुषार (संप्रति अतिशय प्रवृत्त हो गए ठंडे बरफ-युक्त पेयों का भी समावेश इस शब्द में किया जा सकता है। कफ-वात प्रकृति, आनूप देशस्थ एवं प्रतिश्याय-कास-श्वासादि के वेग से प्रायः पीड़ित होनेवाले व्यक्तियों को इन पेयों से सर्वथा बचकर रहना चाहिए), जल (अति जलपान ; यह अग्नि को मन्द कर वातादि दोषों को प्रकुपित कर प्रतिश्यायादि रोगों को जन्म देता है। यह आयुर्वेदिक सिद्धान्त है। वैद्य भी निसर्गोपचारकों की देखादेखी अधिक जल पीने की सलाह देने लगे हैं। स्मरण रहे, शरीर कोई गटर नहीं है कि चाहे उतना जल इसमें डाला जाए, तो भी कुछ विक्रिया न हो। जो हो। जल से यहाँ वायुमण्डल में जल-आर्द्रता का आधिक्य भी गृहीत है। चौमासे या वृष्टि के कारण, केले आदि की बगीचियों में की गई सिंचाई से या बरफ आदि के कारखानों में कइयों को अति शीघ्र प्रतिश्याय के वेग तथा तद्रुत्थ विकार हो जाते हैं) ; शीत (वायु, पृथिवी, फर्श आदि शीतल हों, तो उनके स्पर्श से प्रतिश्यायादि होना सुप्रत्यक्ष है), मैथुन, वाष्प (जलादि के कण), धूम (विविध साधारण तथा रासायनिक द्रव्यों का धुआँ)—ये सद्योजात प्रतिश्याय के कारण हैं। घनीभूत (पूर्व-संचित) दोषों से शिर अभिव्याप्त हो, ऐसी स्थिति में वायु की विशेष वृद्धि हो जाए, तो वह (दोषों को उत्क्लिष्ट कर—नासा-स्रोत से बहिः-प्रवृत्त कर) सद्यः प्रतिश्याय को उत्पन्न करता है।

वातादि दोष पृथक्, समस्त (संनिपतित) तथा रक्त शिर में अपने कारणवश संचित हुए हों, और अनन्तर अपने प्रकोपक हेतुओं से वहाँ उनका प्रकोप हो अथवा अपने स्थान में दोषों का संचय होकर, प्रकोप पूर्वक शिर में उनका स्थान-संश्रय हो, तो वे प्रतिश्याय को उत्पन्न करते हैं। यह **चय पूर्वक हुए प्रतिश्याय** का निदान है[1]।

प्रतिश्याय के पूर्वरूप

शिर (विशेषतया ललाट) की गुरुता, छिक्का (छींक) की प्रवृत्ति, अङ्गमर्द (शरीर टूटना), रोमाञ्च ; घ्राण धूमायन (नासिकाओं से धुआँ निकलना), मन्थ (?), तालु में फटने की-सी वेदना, कण्ठध्वंस (गला बैठना), मुखस्राव (मुख से लाला या कफ निकलना), शिर का पूरण (शिर भरा-भरा-सा प्रतीत होना) ; एवं अरुचि, ज्वर आदि विविध उपद्रव—ये प्रतिश्याय के पूर्व रूप हैं[2]।

प्रतिश्यायों के दोष-भेद से लक्षण

वातज प्रतिश्याय—नासिका-विवर जानो बद्ध-से हों ऐसी अथवा उन्हें रजःकण या शूक (सिट्टे) से अवरुद्ध

१—प्रतिश्याय म वात का प्राधान्य तथा उसके इतर कारणों का नव्य मत से विरोध नहीं है। धूल, धूम, पराग आदि द्रव्य साक्षात् संपर्क द्वारा नासास्रोत की श्लेष्म कला को क्षुभित करते हैं। परन्तु आयुर्वेद-मत से दोषों का संचय भी साथ होना ही चाहिए, जिससे क्षोभ-कृत प्रतिश्याय चालू रहता है। वसन्त में होनेवाले प्रतिश्यायादि विकारों को आधुनिकों ने ऋतु-सुलभ पराग-कणों के वायुमण्डल में प्रसार और नासिका में प्रवेश से होनेवाला कहा है। प्राचीनों ने इसे ऋतुस्वभाववश हुए कफ के प्रकोप से उत्पन्न बताया है। यह सचाई यहाँ स्मरण रखनी चाहिए। पराग-कण आदि से उत्पन्न प्रतिश्यायादि में कारण नव्यमत से रोगी के लिए इन का विरुद्ध होना (एलर्जी) कहा जाता है। प्राचीन मत से इन्हें अचय प्रकोप की श्रेणी में रखा जा सकता है।

शीत पेय, वायु आदि के स्पर्श से किंवा शरीर में प्रवृद्ध वायु की क्रिया से गल और नासिका की रस-रक्त वाहिनियों का संकोच होता है। परिणामतया, रस-रक्त और उनके द्वारा क्षमता (रोग-प्रतीकार सामर्थ्य) के कारण भूत क्षत्रकण (श्वेतकण) आदि योग्य प्रमाण में इन अवयवों में पहुँच नहीं पाते। फल यह होता है कि, अन्तरिक्ष (वायुमण्डल) में स्थित या इन अवयवों में पहले से स्थित रोग-जनक जीवाणु अपनी वृद्धि और प्रतिश्यायादि व्याधि उत्पन्न करने में सफल हो जाते हैं। यह सम्प्राप्ति ध्यान में रखें, तो दोनों पद्धतियों का आपाततः दीखनेवाला विरोध टाला जा सकता है।

२—पूर्वरूप सु. उ. २४।५ तथा माधव-निदान में [illegible] मधुकोशटीका में देखिए।

कर दिया गया हो, ऐसी प्रतीति; नासिका में वेदना तथा तोद; शङ्खों में शूल; **नासिका से जल-सदृश पतला स्राव;** स्वर भेद; (स्वर-विकृति), **छिक्का विशेष प्रमाण में होना,** शिरोरोग (सिर में वेदना); गल, तालु तथा ओष्ठ में शोष––ये वातिक प्रतिश्याय के लक्षण हैं।

पित्तज प्रतिश्याय––नासिका से उष्ण और किंचित् पीतवर्ण द्रव का स्राव; नासिकाग्र का पाक (सूजन), मुखशोष, तृष्णा, ज्वर; नासाद्वार से सहसा जानो धूम-युक्त अग्नि का उद्गिरण (निर्गमन); रोगी का कृश, अति पाण्डु वर्ण (धूसरवर्ण) और संतप्त (स्पर्शोष्ण) होना––ये पैत्तिक प्रतिश्याय के लक्षण हैं।

कफज प्रतिश्याय––नासिका से शुक्ल वर्ण, शीत और घन (गाढ़े) कफ का पुनः-पुनः[१] स्राव; कास, अरुचि, नासास्रोत, गल, ओष्ठ, तालु और शिर में अत्यधिक कण्डू, शिर में गौरव, अक्षि-शोथ और रोगी शुक्लता लिए वर्ण वाला होना––ये कफज प्रतिश्याय के लक्षण हैं।

संनिपातज प्रतिश्याय––अकस्मात् (कारण बिना ही) प्रतिश्याय बार-बार होना और शान्त होना, प्रतिश्याय पक्व या अपक्व किसी भी प्रकार का होना (कभी कोई अवस्था और कभी कोई अवस्था होना), तीनों दोषों के लक्षण (वर्ण, स्राव आदि) दृष्टिगोचर होना, तीव्र वेदना, अत्यन्त अरति––ये संनिपातज (सर्वज) प्रतिश्याय के लक्षण हैं। यह विदेह मत से असाध्य है।

रक्तज प्रतिश्याय––नासास्रोत से रक्तस्राव, नेत्रों की ताम्रता (रक्तवर्णता), रोगी उरोघात[१] रोग से पीड़ित होना, उच्छ्वास और मुख में दौर्गन्ध्य, घ्राणनाश (गन्ध विदित न होना) तथा पित्तज प्रतिश्याय के सदृश लक्षण होना––ये रक्तज प्रतिश्याय के लक्षण हैं। इसमें श्वेत, स्निग्ध तथा अणु (बारीक, पतले) कृमि पड़ते हैं[२]।

आम तथा पक्व पीनस (प्रतिश्याय)

अतिसार आदि रोगों के समान चिकित्सा में प्रतिश्याय के भी दो भेद किए जाते हैं––**साम और निराम** (पक्व)। ये भेद लोक में भी प्रसिद्ध हैं। प्रत्येक के लक्षण अधोलिखित हैं––

अरुचि, मुख वैरस्य (मुख फीका होना, कोई रस न प्रतीत होना), नासास्राव, नासावेदना, अरति, शिरोगुरुत्व, **छिक्का और ज्वर––ये आम प्रतिश्याय के लक्षण हैं।**

आम प्रतिश्यायोक्त लक्षणों का अल्प हो जाना; शिर, नासिका और मुख का लाघव (हलकापन); तथा **कफ पीत और घन (गाढ़ा) हो जाना––ये पक्व प्रतिश्याय** के लक्षण हैं[३]।

दुष्ट प्रतिश्याय

प्रतिश्यायों का प्रतीकार न किया जाए अथवा पुरुष अहित (प्रतिश्याय-जनक) आहार-विहार का परित्याग न करे, तो वे सभी दुष्ट प्रतिश्याय (दुष्ट पीनस) में परिणत हो जाते हैं। इनमें नासिका बार-बार क्लिन्न (सद्रव) तथा पाकयुक्त (पक्व प्रतिश्याय के लक्षणों वाली) होती है और सूख जाती है; बार-बार आनद्ध (बन्द, जकड़ी हुई-सी, श्वासरोध जनक) होती है और खुल जाती है––अनावृत हो जाती है। इसमें पुरुष का

१––प्रतिश्याय (पीनस) या कास में कफ निकलने की व्यथा (शिकायत) रोगी करे, तो कफ के नाम से ही कफ-प्राधान्य निश्चित कर तत्प्रत्यनीक चिकित्सा न करनी चाहिए। कफ घन (गाढ़) है या तनु (पतला) यह प्रथम जानना चाहिए। नासिका आदि कफ के स्थान हैं; अतः वात-पित्त प्रकोपज प्रतिश्याय आदि रोग हों, तो भी कफ का यत्किंचित् प्रकोप स्वभावतः होता है। नव्य मत से इस का तात्पर्य यह है कि––रोग के कारणभूत द्रव्य का प्रतीकार करने के लिए प्रकृति अधिक प्रमाण में रस-रक्त को इन अवयवों में भेजती है। ये अवयव श्लेष्मकला से आवृत्त होने से श्लेष्मकला में भी रस-रक्त अधिक प्रमाण में पहुँचता है। परिणामतया, श्लेष्म-ग्रन्थियाँ अधिक प्रमाण में कफ उत्पन्न करती हैं। दोष-भेद से इस कफ के स्वरूप में भेद––घनता, तनुता, पीतता आदि––होते हैं।

१––**डल्हन** ने उरोघात का तन्त्रान्तर से यह लक्षण दिया है––

उरःक्षतं गुरुस्तब्धं पूतिपूर्णकफोरसः।
सकासः सज्वरोज्ञेयः उरोघातः सपीनसः॥

––छाती (फुफ्फुस) में क्षत; छाती (प्राणवह स्रोत) पूति (दुर्गंधयुक्त) कफ से पूर्ण होना; कास, ज्वर तथा प्रतिश्याय––ये उरोघात के लक्षण हैं।

२––मक्षिकाओं के अण्ड-निक्षेपण से ये कृमि उत्पन्न होते हैं। अंग्रेजी में इन्हें मैगट कहते हैं। माधव ने कृमिसम्बन्धी पद्य दुष्ट प्रतिश्याय के लक्षण में उद्धृत किया है।

३––**डल्हन** ने वृद्ध सुश्रुत के नाम से आम और पक्व प्रतिश्याय (पीनस) के लक्षण अपनी टीका में दिये हैं।

मुख तथा श्वास दुर्गन्धयुक्त होता है, गन्ध-ज्ञान का नाश हो जाता है। परस्पर विरुद्ध उपक्रमवाले सर्व दोषों का इसमें संबंध होने से यह कष्टसाध्य होता है। दुष्ट प्रतिश्याय से नीचे लिखे विकार उत्पन्न होते हैं——बाधिर्य[1], अन्धता, घ्राण नाश, घोर नेत्र-रोग, कास, अग्निमान्द्य, शोथ तथा कृमियों की उत्पत्ति।

१——नासाविवर जहाँ ऊपर से नीचे गल की ओर उतरता है, वहाँ मध्य कर्ण की ओर जानेवाला एक-एक स्रोत होता है। इससे वायु जाकर कर्ण-पटह (कान के पर्दे) के अन्दर के पृष्ठ के सम्बन्ध में आता है। बाह्यकर्ण विवर से बाहर का वायु इस पटह के बाह्यपृष्ठ के संबन्ध में आता है। इस प्रकार पटह के दोनों ओर वायु का दबाव सम होने से वह दृढ़ रहता है। यह स्थिति श्रवण के साम्य के लिए आवश्यक है। दुष्ट प्रतिश्याय में उक्त स्रोतों में प्रतिश्याय-जनक दोष का सम्बन्ध हो जाने से शोथ होकर वह अवरुद्ध हो जाता है, जिससे इन छिद्रों से वायु मध्यकर्ण में न जा सकने से, पटह के बाह्य पृष्ठ पर वायु का दाब अधिक बढ़ जाता है और पटह अन्दर की ओर दब जाता है। इससे बाधिर्य होता है।

प्रतिश्यायजनक दोष गल के स्रोत में संक्रान्त हो तो कास होता है। कास का रोगी उपस्थित होने पर उससे सर्वदा प्रारम्भ में ही प्रश्न करना चाहिए कि, उसे पहले प्रतिश्याय तो नहीं हुआ था। उत्तर 'नहीं' हो, तो भी छींक, नासा-स्रोत में जलबिन्दु होना इत्यादि लक्षणों की जिज्ञासा करनी चाहिए। कर्ण और गल के सदृश नेत्र का भी संबन्ध नासिका से होने से उसके रोग होते हैं, यह निदान नेत्र-रोगों के सम्बन्ध में स्मरणीय है।

इन रोगों के समान ही एक और ध्यान रखने योग्य विकार एक या दो जिस नासा में प्रतिश्याय हो उस ओर के ललाट में शूल होना है। वेदना कभी शिर में अन्दर की ओर किंवा नासा के एक या दोनों ओर होती है। इन सब स्थलों में अस्थियों में वाताशय (एअर-साइनस) होते हैं। इनका एक-एक स्रोत द्वारा नासिका से सम्बन्ध होता है। इन स्रोतों से दोष का संक्रमण तत्तत् वाताशय में होकर वेदना होती है। स्मरण रखना चाहिए, प्रायः अर्ध-भेद (आधासीसी) का कारण उस ओर की नासा का प्रति-श्याय होता है। सूर्यावर्त के रोगी में पैत्तिक प्रतिश्याय को स्मरण रखना चाहिए। सूर्य कृत उष्णता से शरीर में पित्त की वृद्धि होकर वेदना भी बढ़ती है। यहाँ स्मरण रहे, अर्धाव भेदक तथा सूर्यावर्त्त ये दो पृथक् रोग हैं।

फणामर्म के विवरण में (सु. शा. ५।२७) सुश्रुत ने नासिका से कर्ण में जानेवाले मार्ग को स्रोतो मार्ग (पाठान्तर कर्णमार्ग) कहा है। अंग्रेजी में इसे युस्टेशिअन ट्यूब कहते हैं।

जलोदर के समान दुष्ट प्रतिश्याय के निदान-भेद से दो भेद समझने चाहिए। एक अहिताहार-विहार से हुआ स्वतन्त्र तथा द्वितीय प्रतिश्याय मात्र में अनुपचार, मिथ्यो-पचार एवं मिथ्याहार-विहार से हुआ——परतन्त्र। लक्षण दोनों के समान होते हैं।

चरक ने दुष्ट प्रतिश्याय के परिणामरूप में हुए रोगों का उल्लेख करते हुए उनका लक्षणादि निम्न रूप में दिया है——क्षवथु, नासा शोष, प्रतीनाह, परिस्रव, पूतिनस्य (पूतिनास) अपीनस, नासापाक, नासाशोथ, नासार्बुद, नासापूय, नासा-रक्त, अरूंषिका (शिर में होनेवाली फुन्सियाँ), शिरोरोग, कर्ण रोग, नेत्र रोग, खालित्य, (गञ्ज); पालित्य, केशों के वर्ण की हरितता (?); तृषा, श्वास, कास, ज्वर, रक्त-पित्त, वैस्वर्य (स्वर-विकृति), शोष——ये रोग दुष्ट प्रतिश्याय के परिणामरूप में होते हैं।

इनमें आरम्भिक रोगों का परिचय देते हुए चरक ने आगे कहा है——

सर्व मार्गों में स्थित वायु शिर के मर्मों के सम्बन्ध में आकर **क्षवथु** (छिक्का) उत्पन्न करता है। वही वायु और भी कुपित तथा पित्तानुबद्ध होता है, तो नासिका तथा शृङ्गाटक मर्म में रहे कफ का शोषण कर श्वास कृच्छ्रयुक्त **नासाशोष** को उत्पन्न करता है। कफ वात के साथ मिश्रित हो उच्छ्वास मार्ग को अवरुद्ध करे, तो इसे **प्रतीनाह** (नासाप्रतिनाह) कहते हैं। मस्तिष्क से घन (गाढ़ा), पीत तथा पक्व कफ के स्राव को **परिस्रव** कहते हैं। दौर्गन्ध्य तथा वैवर्ण्य की उपेक्षा करने से **पूतिनस्य**, मुख तथा नाक से दुर्गन्धयुक्त वायु का निर्गमन), शोथ तथा भ्रम होते हैं। नासिका विबद्ध, शुष्क, क्लिन्न तथा संतापयुक्त होना एवं गन्ध और रस का ज्ञान न होना ——ये **अपीनस** रोग के लक्षण हैं। इसमें वात और कफ कारणभूत होते हैं। इसके चिह्न प्रतिश्याय के सदृश ही होते हैं। दाह, राग (रक्तिमा), शोथ, क्लेद, कोथ (सड़ाँद), और पाक ये लक्षण जिस रोग में होते हैं उसे **घ्राणपाक** (नासा-पाक) कहते हैं। यह रक्त और पित्त के अति प्रकोप से होता है। दोष नासिकागत रक्त आदि को प्रदूषित कर **नासासोथ** को उत्पन्न करते हैं। यही शोथजनक दोष मांस और रक्त को दूषित कर उच्छ्वास की गति को अवरुद्ध करनेवाले **अर्बुदों** (मस्सों) को उत्पन्न करते

(शेषांश पृष्ठ ११५३ पर)

कैंसर की आयुर्वेदीय मीमांसा

वैद्य व्यासनारायण शुक्ल, आयुर्वेदाचार्य

'कैंसर' नाम से संबोधित की जाने वाली व्याधि का पाश्चात्यों ने अपने ढंग से वर्णन किया है। वे कहते हैं कि यह एक प्रकार के ट्यूमर के रूप में उत्पन्न होता है और उसमें बहुत-से अंकुर बनने लगते हैं। फलस्वरूप एक गोभी के फूल की आकृति का (Growth) मांस का उभार तैयार हो जाता है और उसमें से रक्तस्राव होने लगता है। इस उभार के आसपास लसिका-ग्रंथियों में वृद्धि होने लगती है तथा शरीर के अन्य भागों में भी कैंसर पैदा होने लगते हैं।

कैंसर शरीर के अन्यान्य अंगों में होने से उनके स्थानानुसार इसके लक्षण भी विशेष प्रकार से व्यक्त होते हैं। प्रायः यह विकार जिस अंग में होता है, उस अंग के प्राकृतिक कार्य का विनाश होने लगता है ; जैसे—कैंसर में रोगी से भोजन नहीं करते बनता है और अन्नमार्ग के कैंसर में अन्न को निगलने में रोगी असमर्थ रहता है।

कैंसर के लक्षण

कैंसर के प्रधान लक्षण इस प्रकार होते हैं—छोटे ट्यूमर उत्पन्न होना तथा उन पर मांसांकुरों का बनने लगना, ट्यूमर में पाकक्रिया न होना, साफ्ट आदि कैंसरों में रक्तस्राव का होना। इस व्याधि के होने पर रोगी का बलह्रास होना तथा रक्ताल्पता अधिक बढ़ जाना और वेदना होना आदि। इसके अतिरिक्त मांसाहारी लोगों में यह विकार अधिक प्रमाण होता है तथा शरीर के बाहरी एवं भीतरी भाग में कहीं भी इस रोग की उत्पत्ति हो सकती है। साधारणतः यह रोग स्तन (Breast) योनि (Uterus) जिह्वा (Tongue) मुख (Mouth) ओष्ठ (Lips) आमाशय (Stomach) गुदा (Rectum) श्वसनप्रणाली तथा फुफ्फुस (Bronchus & lungs) वृक्क (Kidney) मूत्राशय (Bladder) लिंग (Penis) यकृत् (Liver) अस्थि (Bones) त्वचा (Skin) आदि स्थानों में होता है। पाश्चात्यों ने कैंसर के निम्न प्रकार बताए हैं—

कैंसर के प्रकार

कार्सीनोमाटा (Carcinomata) मिक्षोमा (Myxoma) फायब्रोमा (Fibroma) ग्लायोमा (Gloima) कांड्रोमा (Cuondroma) मायोमा (Myoma) ऑस्टिओमा (Osteoma) आदि, किंतु वे इसे, साध्यासाध्यत्व की दृष्टि से दो वर्गों में विभाजित करते हैं—(१) साध्य (Benignant), (२) असाध्य (Malignant)। यह विकार पुरुषों में प्रायः ४० वर्ष आयु के पश्चात् तथा स्त्रियों में प्रायः ३५ वर्ष के उपरान्त पाया जाता है। उसी प्रकार पुरुषों में ८० प्रतिशत पचन संस्थान में और स्त्रियों में ६० प्रतिशत जननेन्द्रिय में होता है। अतः कैंसर को विद्रधि कहा जाय, या अर्बुद—यह प्रश्न शेष रह जाता है। कैंसर का कैंसर नाम निश्चित करते समय भी ऐसा ही प्रश्न पाश्चात्यों के सम्मुख उपस्थित हुआ था।

पाश्चात्यों के मत

"Tumor Cancer" Sarcoma or Carcinoma are general names for forms of tumor to which the term "Malignant" is applied because they destroy the general health, breakdown the organs in which they grow after apparent removal tend to grow again...

उसी प्रकार 'Malignant' disease suggests by its name the baleful influence it has upon human life and the fear with which it is regarded. The name—is not scientific yet it is freely used by the medical profession...

तात्पर्य यह कि कैंसर नाम के संबंध में आरम्भ में पाश्चात्यों में बड़े मतभेद थे। अन्ततोगत्वा बड़ी उहापोह के बाद पाश्चात्यों ने कैंसर की जो परिभाषा निश्चित की, वह इस प्रकार की थी—

पाश्चात्यों का निर्णय

'Cancer is the name for an important group of malignant tumors अर्थात् असाध्य (मारक) ट्यूमर के समूह को कैंसर नाम दिया गया।

विद्रधि को केंसर मानने में जो बाधाएँ उत्पन्न होती हैं, वह इस प्रकार हैं--

विद्रधि कंसर कैसे ?

विद्रधि बाह्य हो या आभ्यन्तर ; किंतु उसमें प्रथम शोथोत्पत्ति होकर सूजे भाग का आकार एक ग्रंथि के समान होता है। इस शोथ में नित्य भयानक वेदनाएँ होती हैं और वह धीरे-धीरे पकने लगती है। इसकी द्वितीयावस्था में पकने लगती शोथ में पूयोत्पत्ति प्रारम्भ हो जाने पर उपनाहादि प्रयोग किये जाते हैं। इस प्रकार शोथ के पूर्ण पक जाने पर विद्रधि को बाहरी भाग में फूटने का मुँह न होने से शस्त्र कर्म द्वारा पाटन क्रिया करना आवश्यक हो जाता है। अतः विद्रधि से पीप को निकाल देने को पश्चात् शोधन-रोपणादि चिकित्सा से व्रण को ठीक किया जाता है।

इस विद्रधि-विकार को अंग्रेजी में "अब्सेस" कहते हैं। आचार्य सुश्रुत ने "दोषाः शोथम् शनैर्घोरं जनयन्त्युच्छ्रिता भृशम्" लिखकर स्पष्ट रूप से विद्रधि को शोथ-जन्य विकार कहा है।

विद्रधि तथा केंसर में भेद

(१) केंसर शोथजन्य विकार नहीं, अपितु मांसोच्छ्रय (Growth) है।

(२) केंसर--यह श्लैष्मिकत्वक् स्तरों में अधिक प्रमाण में होता है। विद्रधि--यह त्वचा, रक्त, मांस, मेदा के दूषित होने पर अस्थि के आश्रय से होनेवाला विकार है।

(३) केंसर पकता नहीं, विद्रधि में पाक होता है और इसलिए विद्रधि की आमपच्यमानादि अवस्थाएँ होती हैं।

(४) केंसर की उत्पत्ति से रोग या रोगी के समाप्त होने तक सरीखी वेदना होती है; किन्तु विद्रधि में विद्रधि होने से पकने तक कुछ भिन्न प्रकार की वेदनाएँ होती हैं तथा विद्रधि के पक जाने पर वेदनाओं में भिन्नता हो जाती है और विद्रधि के फूट जाने पर या उसे काटकर पीप निकाल देने के उपरान्त वेदनाओं का शमन हो जाता है।

(५) केंसर में मृदुता या पूयोत्पत्ति न होने के कारण केंसर का मांसोच्छ्रय जब बढ़ने लगता है, तब केंसर भूमि के आस-पास की त्वचा पर तनाव पड़ने लगता है और इस तनाव के कारण त्वचा फटने से व्रण बन जाता है। व्रण से पूय की अपेक्षा रक्त का ही स्राव अधिक होता है।

केंसर तथा विद्रधि की उपरोक्त शास्त्रीय एवं व्यावहारिक भिन्नता को देखते हुए, केंसर को विद्रधि कहने का साहस नहीं होता।

आयुर्वेद में वर्णित अर्बुद (tumor) रोग में असाध्य (Malignant) अर्बुदों की श्रेणी में रक्तार्बुद तथा मांसार्बुद--ये दो मारक अर्बुद होते हैं।

रक्तार्बुद के सम्बन्ध में आयुर्वेद ने इस प्रकार वर्णन किया है :--

"शिरास्थं शोणितं दोषः संकुच्यानु प्रपीड्यच।
पीडयेच्च तदानद्धं सस्रावं मांसपिण्डितम्॥
मांसाकुरंश्चितं याति वृद्धिचाशस्त्रवेत्ततः।"
(वृद्धवाग्भट्ट)

रक्तार्बुद को केंसर मानते हुए स्वर्गवासी कविराज गुरुवर्य ज्योतिषचन्द्रजी सरस्वती ने कहा है--"बाह्यांगेतु केन्सर प्रायः सर्वत्रैव शोणितार्बुदलक्षणम् धत्ते इति ते सर्व एवासाध्या निष्प्रति क्रियाश्च भवन्तीति लक्षणीयम्।" स्त्रियों के गर्भाशयस्थ केंसर के संबन्ध में गुरुवर्य आगे कहते हैं--"गर्भाशयगतान् केंसराणाम् प्रभृत रक्त श्रुति दर्शनेन तेषां रक्तार्बुदत्वं सिध्यति।"

भावार्थ यह कि अर्बुद विकार शरीर के बाह्य या आभ्यन्तर किसी भी भाग में हो सकता है। इस स्पष्टीकरण की पुष्टी में आचार्य माधव ने "गात्रप्रदेशेक्वचि दोषाः" कहकर अर्बुद के किसी भी भाग में होने को सिद्ध ही किया गया है। इसके अतिरिक्त गलार्बुद, ताल्वार्बुद, ओष्ठार्बुद आदि अर्बुद के भेदों का वर्णन करते हुए गर्भाशय, स्तन इत्यादि विभागों में तथा मर्म या श्रोतसों में भी अर्बुद होते हैं--यह आयुर्वेद स्वीकार करता है। अर्बुद व्याधि औपसर्गिक नहीं है। पाश्चात्यों ने भी केंसर को औपसर्गिक नहीं माना है।

केन्सर मांसहारी लोगों में अधिक मात्रा में पाया जाता है। विश्व के मांसहारी राष्ट्रों में विशेषतः युरोप तथा अमेरिका में केंसर-ग्रस्त लोगों की संख्या अधिक पाई जाती हैं अर्बुद विकार के सम्बन्ध में भी आयुर्वेद ने यही कहा है कि मांसहारी लोगों में अर्बुद विकार होना ठीक ही है, जैसा कि पं० कण्ठदत्त ने कहा है--

"मांस परायणस्य मांसाशन शीलस्य तस्य चातिमात्र मांसवृद्धिः मांस मांसे न वर्धते इत्यभिधानात्।"

मॅलिग्नंट टयमर्स के समूह को केंसर कहकर उसे

असाध्य संज्ञा दी गई है और साध्य ट्यूमर्स के समूह को वेनिग्नंट कहा है। आयुर्वेदिकों ने भी साध्य तथा असाध्य दो श्रेणियों में अर्बुद-विकार को विभाजित किया है--

"असाध्यमेतद् रुधिरात्मकंतु" तथा--

"मांसार्बुद त्वेत दशाध्यमुक्तम्"

उपरोक्त प्रमाणों ने सिद्ध कर दिया है कि रक्तार्बुदादि असाध्य अर्बुद ही केन्सर है।

भारतीय वैद्यकशास्त्र की दृष्टि से केंसर के लिए अर्बुद नाम सर्वथा ठीक है। कर्करोग (Cancer) नाम अशास्त्रीय एवं व्युत्पत्तिरहित ही नहीं, अपितु अव्यवहार्य भी हैं। ऐसे अनावश्यक नामों को जन्म देने की अपेक्षा भारतीय शासन का वैद्यक-विभाग आयुर्वेद के आचार्यों के परामर्श से भारतीय वैद्यक शब्दों का निश्चय करने तथा उनका उपयोग करने की ओर कदम बढ़ावे, अन्यथा भाषा-शास्त्र का हनन होगा और अव्यवहार्य शब्दों की उत्पत्ति भावी पीढ़ियों के लिए एक उपहास का विषय बन बैठेगी।

अभी तक केंसर के अनेक रोगियों की चिकित्सा करने में जो विविध अनुभव प्राप्त हुए हैं, उन में से एक यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जाता है। चार मास के पूर्व नागपुर के धर्मपेठ मुहल्ले के निवासी एक प्रतिष्ठित सज्जन की ओर से एक केंसर का केस चिकित्सा के हेतु आया। मैंने इस व्याधि का निदान "स्तन का रक्तार्बुद" निश्चित किया तथा आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रारम्भ की। एक माह की चिकित्सा में ही स्तन के केंसर का आकार आधे से अधिक कम हो गया, वेदनाओं का शमन हो गया तथा रोगी के बल की वृद्धि होने लगी। आगे कुछ दिनों की चिकित्सा से रोगी के विकार में असाधारण सुधार होने लगा; किंतु कुछ कौटुम्बिक कठिनाइयों के कारण तथा अर्थाभाव से रोगी की चिकित्सा प्रारम्भ न रखी जा सकी। फिर भी इस चिकित्सा से रोगी की दशा में जितना सुधार हुआ, उतनी सुधरी हुई दशा में आज भी रोगी मौजूद हैं। केंसर की चिकित्सा में आज तक मुझे जो अनुभव हुआ है, उस अनुभव के आधार पर मैं इस निश्चय तक पहुँचा हूँ कि केंसर का रोग, किसी प्रकार के शस्त्रकर्म के बिना ही, केवल आयुर्वेदीय चिकित्सा से ठीक हो सकता है।

पाश्चात्य देशों से भारत में आया हुआ केंसर रोग, आयुर्वेद का अर्बुद रोग (विशेषतः रक्तार्बुद) ही होने से, केंसर का नाम अर्बुद ही हो सकता है।

तथापि आयुर्वेदीय विद्वान् यदि इस संबंध में और आयुर्वेदीय विचार व्यक्त करना चाहें, तो अवश्य करें; ताकि आयुर्वेद का दृष्टिकोण और अधिक स्पष्ट हो जाय।

--०--

(पृष्ठ ११५० का शेषांश)

हैं[1]। **पूयरक्त** में नासिका कर्ण या मुख से पित्त तथा पूय-मिश्रित रक्त का स्राव होता है। पित्तानुबद्ध वायु शिर की त्वचा आदि को दूषित कर पाकयुक्त अरुंषिका (फुन्सियाँ) उत्पन्न करता है[2]। जिस रोग में नासिका प्रदीप्त (जलते अङ्गार जैसी ?) तथा दाहयुक्त हो एवं धूम-सदृश वायु का नासिका से निर्गमन हो, उसे **दीप्त** कहते हैं।

शिरोरोग (शिरः शूल नाम से प्रसिद्ध)[3] दोष-भेद से अनेक प्रकार का होता है। वात से शिर अत्यन्त वेदना और शूल तथा स्फुरणयुक्त, पित्त से वेदना तथा दाहयुक्त कफ से गुरु, (भारी-भारी लगे ऐसा), संन्निपात से सर्व-लक्षणयुक्त तथा कृमियों से कण्डू, दौर्गन्ध्य, तोद तथा तोद और वेदनायुक्त होता है।

ये सब रोग भी दुष्ट प्रतिश्याय की परिणति--रूप तथा स्वतन्त्र भी होते हैं। सुश्रुत ने नासागत रोगों के प्रकरण में (सु० ३.२२) में इनका पृथक् उल्लेख किया है। उसमें दो-तीन अन्य भी रोग निर्दिष्ट हैं।

--०--

१--नासिका के दोनों ओर की दीवाल में छोटी-छोटी सीपों के समान तीन-तीन शुक्तिकास्थियाँ (टर्विनल्स) होती हैं। इनके ऊपर की कला तथा पश्चात् काल में इन अस्थियों में भी हुए शोथ अर्बुद होते हैं। इनमें निदान को देखते प्रतिश्याय का ही उपचार कराना चाहिए। दाह, छेदन आदि से स्थायी लाभ नहीं होता।

२--अरुंषिका का यह निदान ध्यान में रखने योग्य है। बच्चों में यह रोग प्रायः होता है तथा कष्टसाध्य होता है। अनुभवी वैद्यों से इस विषय पर प्रकाश डालने की प्रार्थना करता हूँ।

३--शिरोरोग (सिर दर्द) के लिए प्रायः वैद्य शिरः शूल शब्द का व्यवहार करते हैं। शूल रोग या वेदना का एक भेद (वातजन्य) है। सामान्यवाचक 'रोग' शब्द के स्थान पर विशेष वाचक 'शूल' शब्द का प्रयोग समीचीन नहीं।

श्वेत प्रदर

डॉ० राज सचदेवा, वैद्य-विशारदा

प्रदर नारियों का बड़ा ही भयानक और घातक रोग है। आधुनिक स्त्रियाँ अधिकतर इस रोग से पीड़ित रहती हैं और लज्जावश इस को प्रकट न करके शीघ्र ही अस्थिपंजर होकर अकाल काल-कवलित हो जाती हैं। आज कल जिस प्रकार पुरुषों में प्रमेह का बाहुल्य है, उसी प्रकार नारियों में प्रदर का बाहुल्य है। जो दशा प्रमेह में पुरुषों की हो जाती है, वही दशा प्रदर में नारियों की होती है। प्रमेह में, वीर्य का क्षय होने से शक्ति का ह्रास होता है। रज का क्षय होने से स्त्रियों की शक्ति नष्ट होकर वे अनेक रोगों से ग्रस्त हो जाती हैं।

गर्भाशय की श्लेष्मिक झिल्ली के भीतर से और गर्भाशय के मुख से कई रङ्गों का सफ़ेद, पीला, मटमैला, दूध की तरह, मांस के धोवन की तरह स्राव होता रहता है--साधारणतया सफ़ेद ही हुआ करता है; इसलिए सफ़ेद स्राव होने के कारण इसे श्वेत प्रदर कहते हैं। इसी प्रकार गर्भाशय से रक्त का स्राव होता है; उसे रक्त प्रदर (Menorrhagia) कहते हैं। यहाँ केवल श्वेत प्रदर का ही वर्णन किया जाता है।

कारण--वर्तमान काल में इस रोग की अधिक वृद्धि का प्रधान कारण फैशन, आराम से बैठे रहना या उपन्यास आदि का पढ़ना ही प्रतीत होता है। इस से मन तथा शरीर दोनों ही विकृत होते हैं। गृहकार्य स्वयं न कर के नौकरों से करवाने, अपने आप सारे दिन सोते रहने या उपन्यास आदि के पढ़ते रहने से मन दूषित हो जाता है। दिन में सोने और आराम से बैठे रहने से कफ कुपित होकर, कफजन्य प्रदर रोग उत्पन्न हो जाता है।

विरुद्ध पदार्थों का सेवन करते रहना; तैल, खटाई, लाल मिर्च आदि उत्तेजक पदार्थों का अत्यधिक सेवन करना; अजीर्ण रहना, बार-बार गर्भपात या गर्भस्राव का होना, अधिक संभोग करना; ऊँची सवारी पर चढ़ना, भारी बोझ उठाना, दिन में सोना, उत्तेजक पदार्थों का खाना-पीना, गर्भाशय में कोई उत्तेजक पदार्थ रखना या योनि को अशुद्ध रखना आदि कारणों से स्त्रियों को प्रदर रोग हुआ करता है।

इस के अतिरिक्त गर्भाशय के शोथ या गर्भाशय-ग्रीवा-भग--के शोथ तथा गर्भाशय-ग्रीवा के फट जाने से भी प्रदर रोग हो जाता है। गर्भाशय आदि की विकृति या शारीरिक दोषों से जायमान प्रदर, एक भिन्न प्रदर होता है। गर्भाशय के शोथ आदि की चिकित्सा करने पर ही यह प्रदर दूर हो सकता है। परन्तु, प्रथम आहार-विहारजन्य प्रदर दोषज होते हैं। इस में दोषज प्रदर की चिकित्सा करने से वे शान्त हो जाते हैं। अब यहाँ केवल दोषों से जायमान प्रदर के लक्षण, चिकित्सा का वर्णन होगा।

चरक, भाग्भट्ट आदि ऋषियों के मतानुसार श्वेत प्रदर रोग चार प्रकार का होता है--वातज, पित्तज, कफज, तथा सन्निपातज।

वातज प्रदर--वातज प्रदर में रूक्ष, लाल, झागदार तथा वातज पीड़ा सहित, मांस के धोवन जैसा थोड़ा-थोड़ा स्राव होता रहता है।

पित्तज प्रदर--पित्तवर्द्धक पदार्थों का सेवन करने से योनि-मार्ग से पीला, नीला, काला, लाल तथा गरम पित्त की तरह और दर्द सहित बार-बार स्राव होता है।

कफज प्रदर--दिन में सोने से, मधुर आदि पदार्थों का अत्यधिक सेवन करने से; आमोद-प्रमोद, आलस्य, निन्द्रा-तन्द्रा के अधिक सेवन तथा भारी पदार्थों के खाने से कफ कुपित होकर कच्चे सेमल के गोंद के समान चिकना, कुछ पीलापन लिये हुए, सफेद और चावल के धोवन के सदृश योनि-मार्ग से स्राव होता रहता है।

श्वेत प्रदर रोग में अधिकतर वात और कफ की विकृति होती है। इसलिए, इस की चिकित्सा दीपन, पाचन तथा वात-कफ-नाशक चिकित्सा करनी चाहिए। कुछ श्वेत प्रदर वातज-पित्तज होते हैं। इस में वात-पित्त-नाशक चिकित्सा करनी चाहिए।

प्रदर रोगों में दोषों के अनुसार चिकित्सा करने पर वह कभी निष्फल नहीं जाती।

दोषजन्य प्रदर रोग में तीनों दोषों के लक्षण लक्षित होते हैं। इस में शहद घृत तथा हरताल के समान रङ्ग

वाला, मज्जा के समान तथा दुर्गन्ध युक्त स्राव होता है। इसे विद्वान् वैद्य असाध्य ही मानते हैं।

चिकित्सा——आयुर्वेद-सिद्धान्तानुसार कारणों का वर्जन ही चिकित्सा कहलाती है। सब प्रकार के प्रदर रोगों में कषाय रस-युक्त औषधियों में वस्ति (डूश) करानी चाहिए। इस में शुद्धि सब से प्रथम चिकित्सा है। कब्ज रहता हो, तो कब्ज को हटाना, सात्विक तथा लघु भोजन का सेवन करना तथा पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहने का आदेश देना चाहिए। उत्तेजक पदार्थों का सेवन करना, दिन में सोना, आराम से बैठे रहना तथा अधिक फैशन में फँसकर मन को कलुषित करनेवाले आचरणों का परित्याग कराना, सब प्रकार के प्रदर रोगों के लिए आवश्यक है।

मेरे अपने चिकित्सालय में प्रदर रोगों की औषध-चिकित्सा प्रतिदिन इस प्रकार होती है——सब प्रकार के श्वेत प्रदर के लिए वस्ति (डूश) क्रिया आवश्यक रूप में कराई है। इससे स्नायुओं की विकृति दूर होती है, तथा नित्य प्रति योनि की शुद्धि होती रहती है।

वस्ति के लिए लोशन

१ उदुम्बरसार का गरम जल में घोल।

२ शुद्ध सुहागा का गरम जल में ५ प्रतिशत घोल।

३ वल्कल क्वाथ।

४ त्रिफला क्वाथ में ५ प्रतिशत स्फटिका (फिटकिरी)

इन लोशनों में से किसी एक का घोल बनाकर नित्य-प्रति प्रातः काल में योनि में सुखोष्ण जल से डूश करावें। कम-से-कम आठ दिन डूश अवश्य करवाना चाहिए। यदि समय पर उपरोक्त लोशन प्राप्त न हो सके, तो केवल फिटकिरी का फूला बनाकर, उसके ५ प्रतिशत घोल का प्रयोग करें। इस से शुद्धि के साथ-साथ ग्रंथियों की उत्तेजना भी कम होती है।

प्रदर के लिए कुछ अनुभूत योग

१——सफेद सुरमा शुद्ध किया हुआ १ भाग, नागकेशर १ भाग, राल सफेद १ भाग, पठानी लोध १ भाग, मिश्री २ भाग। इन सबको लेकर चूर्ण बना ले और प्रातः-सायं ३-३ माशा, दूध के साथ लेने से सब प्रकार के प्रदर नष्ट होते हैं। यह योग जादू का-सा असर करता है।

२——चिकनी सुपारी, रूमी मस्तगी, छोटी इलायची, कत्था, माजूफल और चने की गिरी इन सब को समभाग लेकर चूर्ण बना लेना चाहिए और सब के बराबर मिश्री भी पीसकर मिला दें। यह प्रदर के लिए अव्यर्थ है तथा शीघ्र ही लाभ करती है।

मात्रा——३-३ माशा, दिन में तीन बार, दूध या पानी के साथ देना चाहिए।

३——असली वंशलोचन २॥ तोला, गिलोय सत्त्व——गिलोय का घनसत्व १-१ तोला, गोदन्ती भस्म १॥ तोला, प्रवाल चन्द्रपुटी १ तोला, बबूल का गोंद १ तोला, मिश्री २ तोला।

निर्माण विधि——इन सब को एकत्रित करके अशोक छाल के क्वाथ, शतावरी के स्वरस और दशमूल का क्वाथ इन सब की एक-एक भावना देकर ३-३ रत्ती की गोली बना ले।

सेवन विधि——३-३ गोलियाँ गौ दुग्ध के साथ प्रातः-सायं देनी चाहिए।

गुण——यह योग अवश्य कुछ मँहगा और मेहनत से बनता है; परन्तु इससे सब प्रकार के प्रदर रोग, प्रदर से होनेवाले उपद्रव (पाण्डु, दुर्बलता, रक्त की कमी, श्रम, मूर्च्छा, मद, तृष्णा, दाह, प्रलाप, तथा आक्षेप आदि) को शान्त करके स्त्री को बलवान बना देता है।

नोट——इस योग में औषधें सब ताजा, शुद्ध और असली लेनी चाहिए।

वैद्यजन इस योग को बनाकर इसका प्रयोग करें और जो परिणाम हो, उसे 'सचित्र आयुर्वेद' में छपवायें।

४——कुक्कुटांडत्वक भस्म आधी रत्ती, बंग भस्म आधी रत्ती। इन दोनों को प्रातः-सायं दूध से एक मास तक सेवन करने से बच्चा होने के बाद की दुर्बलता और प्रदर-जन्य दुर्बलता, दूर होती है। इसके साथ रात्रि को २ गोली चन्द्रप्रभा भी सेवन की जायँ, तो और जल्दी लाभ होता है।

इसके अतिरिक्त शास्त्रीय योग——प्रदरान्तक लौह, प्रदररिपु, प्रदरान्तक रस, चरक-चिकित्सा-स्थान में वर्णित पुष्यानुग चूर्ण, सुपारी पाक, शतावरी पाक, अशोक घृत, शतावरी घृत, फलकल्याण घृत, अशोकारिष्ट, उशीरासव, कुमार्यासव, लौह आसव, दशमूलारिष्ट, चन्दनादि आसव आदि अत्यन्त लाभदायक हैं। यह सभी योग पुस्तकों में वर्णित हैं; अतः निर्माण-विधि, प्रयोग-विधि सभी पुस्तकों में हैं।

श्वेतप्रदर में त्रिफला या फिटकरी आदि लोशनों की पिचकारी (डूश) कभी नहीं भूलनी चाहिए।

पथ्यापथ्य——गाय या बकरी का घृत, दुग्ध, केला, अनार, तुरई, चौलाई का शाक, परवल, टमाटर, कूष्मांड, आँवला, सिंघाड़ा स्त्रियों के लिए विशेष लाभकारी हैं। कमल, तरबूज, ककड़ी, दाख, मिश्री, मखाना, शीतल जल, चाँदनी रात्रि का शयन, चन्दन इत्यादि का लेप पथ्य है।

व्यायाम, परिश्रम, मार्ग चलना, धूप, क्रोध, सवारी (अश्वादि पर चढ़ना), मैथुन, गुड़, तैल, उर्द, सरसों, लहसुन, मद्य, सेम और भारी, चरपरे, नमकीन, खट्टे पदार्थ तथा जो-जो प्रदर के बढ़ानेवाले पदार्थ हैं, उन सब का परित्याग करना चाहिए।

——:०:——

प्राचीन भारत में अस्पताल

स्वामी जगन्नाथाचारी वैद्य

अँग्रेज़ों के राजत्वकाल से अब तक भारतवर्ष में हम लोग बहुत-से अस्पताल खुले हुए देख रहे हैं। कलकत्ता, बम्बई और मद्रास आदि बड़े-बड़े शहरों में बहुत बड़े-बड़े अस्पतालों की बहुत बड़ी-बड़ी इमारतें देखकर ग्रामीण जनता आश्चर्य-चकित एवं चमत्कृत हो जाती है। वास्तव में आधुनिक अस्पलों के साज-बाज, विधि, प्रबन्ध और परिष्कार-परिच्छन्नता प्रभृति देखकर प्रायः सभी लोग मुग्ध हो जाते हैं। इस समय प्रत्येक जिला और तहसीलों में छोटे-बड़े अनेक अस्पताल खुले हुए हैं। शहरों और ग्रामों में दातव्य चिकित्सालय प्रतिष्ठित होने से, दरिद्र रोगियों का प्रभूत उपकार-साधन होता है। हम लोग अपने मन में सोचते होगें कि, इस बीसवीं शताब्दि के वैज्ञानिक युग में नव्य सभ्यता के फलस्वरूप सब कुछ सम्भव हो सकता है। किन्तु, आज से बहुत वर्ष पहले ही इस भारतवर्ष में अस्पताल प्रवर्तित हुए हैं, यह बहुतों को विस्मृत हो गया है। जिन लोगों ने हिन्दू राजत्वकाल के इतिहास पढ़े हैं, उनसे यह अविदित नहीं है। वे लोग जानते हैं कि सम्राट् अशोक और उसके राजत्वकाल में भारतवर्ष में अनेक आरोग्यशालाएँ स्थापित हो चुकी थीं। ईस्वी सन् से २७४ वर्ष पूर्व सम्राट् अशोक ने सिंहासनारूढ़ होकर ४२ वर्ष पर्यन्त, प्रबल प्रतापयुक्त विशाल साम्राज्य का शासन किया। वे पहले हिन्दू थे, पश्चात् बौद्ध मतावलम्बी हो गये। विभिन्न ताम्रपत्रों, शिला-लेखों तथा चीनी परिव्राजकों के यात्रा-वर्णनों के द्वारा हमें उनके शासन-काल के बहुत-से तथ्यपूर्ण विषयों का परिज्ञान होता है। अशोक के राजत्वकाल में हिन्दू चिकित्साशास्त्र की चरम उन्नति हुई थी। राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) में एक बहुत बड़ा भेषजागार था। वहाँ जनसाधारण और पशुओं की चिकित्सा के लिए उपयोगी हर प्रकार के औषधि-उपकरण आदि रहते थे। देश के अनेक स्थानों में आरोग्यशालाएँ एवं दातव्य चिकित्सालय स्थापित हुए थे, जहाँ सब प्रकार के यन्त्र, शस्त्र एवं धातु-उपधातु और उद्भिज आदि हर तरह के औषध आदि रहते थे। उनकी देख-रेख और उपयोग के लिए उपयुक्त चिकित्सक नियुक्त किये गये थे। इसके अतिरिक्त मनुष्यों और पशुओं के निमित्त स्वतन्त्र अस्पताल भी थे। चिकित्सक कहने से इसे केवल साधारण चिकित्सक, पशु-चिकित्सक, भेषज और आतुरालय ही नहीं समझना चाहिए, वरन् जहाँ से सब प्रकार के भेषज आदि चिकित्सा-सम्बन्धी समस्त वस्तुएँ प्राप्त हो सकें, ऐसी पूर्ण व्यवस्था वहाँ की गई थी। वृक्ष-पत्ती-फल-फूल-मूल प्रभृति जहाँ सरलतापूर्वक एवं पर्याप्त परिमाण में संग्रह हो सकें, इसके लिए विभिन्न स्थानों में भेषजोद्यान और ओषधि प्रस्तुत करने के निर्माण-गृह (कारखाने) स्थापित किये गये थे। इस प्रकार देश-देशान्तरों से नूतन वृक्ष और बीज संग्रह करके, वे सब उद्यानों में बोये जाते थे। दुष्प्राप्य वृक्ष और बीज, बिना किसी विघ्न-बाधा के एक जगह से दूसरी जगह आ-जा सकें, इसके लिए ऐसे द्रव्यों के ऊपर किसी प्रकार का शुल्क (टैक्स) नहीं लगता था। इसका प्रमाण हमें कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है; यथा—
"महोपकारमुच्छुल्कं कुर्यात् बीजं तु दुर्लभम्।" २।२२

ईसवी सन् ४०० में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय चीन के परिव्राजक 'फाहियान' भारत-भ्रमण के लिए आये थे। पाटलिपुत्र नगर के दातव्य चिकित्सालय का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—"भारत के सम्भ्रान्त भू-स्वामी, राजा या जमीन्दारों ने प्रत्येक नगर में अस्पताल स्थापित किये हैं। इन सभी आरोग्य-शालाओं में दरिद्र रोगी चिकित्सार्थ जाते हैं। वहाँ बिना मूल्य उन्हें सब प्रकार के औषध आदि देने की व्यवस्था की जाती है। चिकित्सक प्रत्येक रोगियों की परीक्षा करते एवं रोगी की आवश्यकतानुसार खाद्य (पथ्य), जल, औषध और पाचन (क्वाथ आदि) की उत्तम व्यवस्था करते हैं। रोगी नीरोग होने पर अपनी सुविधा के अनुसार अस्पताल से जाते हैं। (Traves of fahian) by Beal. P. 107

इसके अतिरिक्त—'हुएनसाङ' के भारत-वर्णन से भी हम लोग अवगत हैं। बौद्ध राजा द्वितीय शिला-

दित्य के समय (६२०-६५० ईस्वी) समस्त भारत में प्रधान-प्रधान मार्ग (सड़क), पान्थ-निवास (मुसाफिर-खाना) स्थापित हुए थे। इन सब स्थानों में पथिकों और दरिद्र अनाथों को खाद्य, जल और औषध वितरण किया जाता था। औषध की व्यवस्था करने के लिए हमेशा एक चिकित्सक नियुक्त रहता था। (Beal's Buddhist record of the western world. Vol. P. 214)

हुएन्साङ् आगे और लिखता है कि—"सहृदय राजन्यवर्ग ने 'पुण्यशालाएँ' स्थापित की थीं। वहाँ गरीब, दुखी एवं विधवा आदिकों को दान देने के लिए उपयुक्त औषध और पथ्य आदि रखे रहते थे। इन सब पुण्यशालाओं के कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न होते रहने के लिए वहाँ यथायोग्य वृत्ति की व्यवस्था की गई थी।"

Beal, Vol. II. P. 198

ग्यारहवीं शताब्दी के एक शिलालेख से प्रकट होता है कि राजा गणपतिदेव ने प्रसूति-चिकित्सा और साधारण-चिकित्सा के लिए पृथक्-पृथक् अस्पताल बनाने के लिए एक सौ बीघा भूमि का दान किया था। उस लेख में आरोग्यशाला के काय-चिकित्सक और धात्री (दाई) आदिकों के वेतन की तालिका भी अङ्कित है।

यह तो संक्षिप्त ऐतिहासिक वृत्तान्त हुआ; किन्तु अशोक से भी बहुत पहले आतुरालय (अस्पताल) की कैसी व्यवस्था थी, उसे हम लोग आयुर्वेद-ग्रन्थसमूह के द्वारा देखकर जान सकते हैं। ईसवी सन् ५५७ में बुद्धदेव का जन्म हुआ था। इसके कुछ पूर्व ईसा के जन्म से सात सौ वर्ष पहले—आत्रेय पुनर्वसु वर्तमान थे। उस समय अग्निवेश-संहिता का निर्माण हो चुका था। सुश्रुत-संहिता भी प्रायः इस समय तक खूब प्रचलित हो चुकी थी। आयुर्वेद शास्त्र के अमूल्य रत्न, जिस चरक-संहिता को पढ़कर आज हम कृतार्थ और धन्य हो रहे हैं, वह अग्निवेश-तन्त्र का प्रतिसंस्कार मात्र है, इसे सब लोग जानते हैं। इस चरक और सुश्रुत-संहिता में आरोग्य-शाला और चिकित्सालय के सम्बन्ध में क्या-क्या जाना जा सकता है, उसका हम यहाँ कुछ दिग्दर्शन कराते हैं। आजकल अस्पताल कहने से हमलोग जो समझते हैं, वह आज से चार हजार वर्ष पहले भारतवर्ष में ठीक इसी रूप में थी या नहीं, कहा नहीं जा सकता। किन्तु, रोगियों की चिकित्सा के लिए किस प्रकार का गृह निर्माण करना उचित है, किस प्रकार के द्रव्य आदि का आयोजन करके रखना ठीक है, उसकी परिचर्या के लिए किस प्रकार के अनुचरवर्ग और चिकित्सक की आवश्यकता है, इत्यादि बहुत-से तथ्यपूर्ण विषयों को हम लोग चरक और सुश्रुत-संहिता में स्पष्ट देख सकते हैं।

वमन, विरेचन, आस्थापन, निरूहन, शिरोविरेचन, इन पञ्च कर्मों के द्वारा चिकित्सा करना पहले बहुत प्रचलित था। इस प्रकार की चिकित्सा में साधारण रोगियों के घर हर समय चिकित्सा करना सम्भव नहीं हो सकता। कारण वमन, विरेचन आदि के निमित्त औषध करने के पहले विपुल द्रव्य, सामग्री का आयोजन करके रखना उचित होता है; क्योंकि—"सम्यगचैवहिगच्छत्यौषधे प्रति भोगार्थः। व्यापन्ने चौषधे प्रतिकारार्थः। नहि सन्निकृष्टे काले प्रादुर्भूताया मापदि सत्यापि क्रयालये सुकर माशु सस्तरण मौषधानां यथारीति।" च० सू० अ० १५)

अर्थात्—वमन, विरेचन आदि के सम्यगरूप से सम्पादित होने पर भी रोगी की सुश्रूषा के निमित्त अनेक उपकरणों की आवश्यकता होती है, तथा इस में विपद् घटित होने से उस व्यापत्ति के उपस्थित होने पर बाजार, दूकान आदि निकट होने पर भी द्रव्य आदि का तुरन्त मिल जाना सहज नहीं है। इसके लिए वास्तु-विद्या-कुशल व्यक्ति (इञ्जिनियर) के द्वारा एक उपयुक्त गृह-निर्माण कराना चाहिए। गृह सुदृढ़ हो, उस में सब जगह (स्थान) ऐसे हों, जहाँ तेज वायु का प्रवाह न जा सके, केवल एक स्थान मात्र से ही वायु का गमनागमन हो; अर्थात् ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे प्रत्येक गृह में Ventilation हो। घर के कमरे इस प्रकार प्रशस्त हों, जिससे उनमें सुगमतापूर्वक गमनागमन और प्रवेश आदि हो सके। ऊँची अट्टालिका अथवा ऊँचे पहाड़ आदि के निकट ये गृह निर्मित न हों, अर्थात् घर के चारो तरफ सहन और समतल भूमि हो। घर के चारों तरफ Compound (घेरा या चहार दिवारी) हो, जिस से घर में धुआँ, तेज धूप (लू) धूलि और पानी के छींटे प्रवेश न कर सकें। अनिष्टकर शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध, आदि अगम्य हों। इसमें कूप, स्नानगृह, रसोईघर और मलमूत्र त्याग के स्थान होना चाहिए।

द्रव्य सम्भार—वहाँ आचमन पात्र (पीकदान) टब, जल-पात्र, हंडिका, कलश, सराव (मिट्टी का दिया) चटाई, आसन, ओखली, मूशल, खरल, सिल, धूमपान नल, उत्तरबस्ति, बस्तिनेत्र (डूश के सामान) तराजू, बाट, माप

पात्र (औंस मेज़र आदि) कुदाल, कुल्हाड़ी, कैंची प्रभृति संग्रह करके रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त सूत्र, रूई, रेशम, वस्त्र, चर्म, झाड़ू एवं बिछाने की चादर, तकिया और बिस्तरा, चारपाई आदि की सुव्यवस्था होनी चाहिए। समस्त वस्तुएँ शुद्ध और प्रक्षालित (धुली हुई) हों। इसके अतिरिक्त शयन, उपवेशन, स्नेहन, स्वेदन, अभ्यङ्गन, प्रलेपन, परिषेकन, अनुवासन, शिरोविरेचन और मलमूत्र त्यागन आदि सब कार्यों के सम्पादनार्थ जो-जो सामग्री सुखप्रद हों, उन सब का आयोजन कर के रखना चाहिए।

रोगी की चिकित्सा के हेतु सब प्रकार के औषध एवं घृत, तैल, वसा, मज्जा, मधु, गुड़, लवण, जल, दधि, प्रभृति एवं पथ्य के निमित्त--अनेक प्रकार के फल, शालि और षष्टिक धान्य, मूँग, माष, यव, तिल प्रभृति एवं मांस के लिए शशक, हरिण, मेष, छाग, प्रभृति रखना चाहिए, जिससे विशुद्ध दूध-घी-तक्र आदि सुगमता-पूर्वक प्राप्त हो सके। इसके निमित्त वहाँ शान्त, नीरोग, बछड़ेवाली दुग्धवती और गाभिन गाय आदि रखना चाहिए। उनके रखने के लिए भूसा-घास, पीने के लिए शुद्ध जल, शयन के के लिए उपयुक्त गृह का सुन्दर प्रबन्ध करना चाहिए। ये सब गृह-निर्माण एवं औषध, पथ्य और द्रव्य-सम्भारों का आयोजन आदि केवल एक रोगी के लिए ही न होकर अनेक रोगियों की एक संग चिकित्सा होने पर एवं क्रमशः (एक के बाद दूसरे) रोगियों के आने पर इस प्रकार की व्यवस्था की आवश्यकता होती है। सुतरां चरक के उपर्युक्त वर्णन से हम यह अनुमान सहज ही कर सकते हैं कि उस समय भारतवर्ष में आधुनिक अस्पतालों की भाँति एक व्यवस्था थी। अन्ततः उपर्युक्त वर्णन एक प्रकार से Nursing Home का ही वर्णन प्रतीत होता है और यह अवस्था इस आधुनिक व्यवस्था की अपेक्षा किसी अंश में हीन नहीं थी।

यह तो हुई साधारण चिकित्सागार अर्थात् Medical Ward की व्यवस्था। अब सूतिकागार Maternity Room एवं कुमारागार Children's Room या Nursery के सम्बन्ध में चरक की व्यवस्था देखिए।

जहाँ सूतिका गृह निर्मित हो, वहाँ की जमीन में अस्थि, कंकड़, पत्थर प्रभृत्ति नहीं होना चाहिए। प्रशस्त रूप-रस और गन्ध-विशिष्ट भूमि पर पूर्व या उत्तर दिशा की तरफ सूतिकागार का दरवाजा निर्माण करना चाहिए।

सुश्रुत के मतानुसार वह गृह आठ हाथ लम्बा और चार हाथ चौड़ा हो। उस गृह में वस्त्र, आलेपन और आच्छादन पदार्थ एवं अग्नि, जल प्रभृति यथोचित जगह रखना चाहिए। गर्भिणी की शय्या आदि के सम्बन्ध में सुश्रुत कहते हैं--"शयनासनं मृद्वास्तरणंनात्यूच्चमपाश्रयोपेतमसं वाधं च विदध्यात्।" सु. शा. अ. १०

अर्थात्--गर्भिणी की शय्या, आसन और आस्तरण कोमल हों एवं शय्या आदि ऐसे हों, जिससे गर्भिणी को किसी प्रकार का कष्ट न हो, इसका सदा ध्यान रखना चाहिए।

वहाँ मल-त्याग का स्थान (पाखाना) स्नान गृह (गुस्लखाना) और अँगीठी आदि का इस प्रकार विवेचनापूर्ण निर्माण कराना चाहिए, जिससे वे हर ऋतु (मौसम) में सुखकर हों। इस के अतिरिक्त पूर्वोक्त औषध-पथ्य आदि की भी व्यवस्था करके रखनी चाहिए। जो स्त्रियाँ अनेक बार प्रसव कर चुकी हों, जो गर्भिणी की अनुरक्त हों, जो अनुकूल आचार, शील और कार्य निपुण हों, जो वात्सल्य स्वभावा (बच्चों से प्रेम करनेवाली), कष्टसहिष्णु और (प्रसन्न और निरोग) हों, इस प्रकार की अनेक स्त्रियाँ अविपन्न (दाई) प्रसूता की सेवा-सुश्रूषा के निमित्त नियुक्त होनी चाहिए। सुश्रुत कहते हैं--प्रसव के समय कर्तितनखा (जिनके नाखून उचित रूप से कटे हों) और परिणत-वयस्का स्त्रियाँ (संख्या में चार) एक गर्भिणी की परिचर्या के लिए उनके सन्निकट रखना चाहिए।

कुमारागार की व्यवस्था चरक-संहिता में इस प्रकार लिखी गई है:--

"किसी वास्तु विद्या-विशारद व्यक्ति के द्वारा प्रशस्त, रमणीय, अन्धकार, विहीन, हवादार (मन्द-मन्द वायु आने-जाने योग्य) और सुदृढ़, ऐसा एक गृह निर्माण करायें, जिसमें श्वापद पशु, दंष्ट्री प्राणी, मूषक, कीट, पतङ्ग प्रभृति प्रवेश न कर सकें। गृह में यथास्थान विभागानुसार जल, स्नान-भूमि, मलमूत्र-त्याग-स्थान और अँगीठी आदि की सुव्यवस्था हो और वह प्रत्येक ऋतु के अनुकूल हो, ऐसा प्रबन्ध और रचना होनी चाहिए। ऋतु के अनुकूल ही शय्या, आसन और आस्तरण (बिछौना) शरीरावरण वस्त्र (कुरता, टोपी, मोजा, चादर आदि) कोमल लघु (हल्का) पवित्र, सुगन्धित होना आवश्यक है। सब वस्तुएँ स्वेद, मूत्र, पुरीष या कीट (कीड़े)

द्वारा दूषित होने पर उन्हें परित्याग कर देना चाहिए, या उन्हें अच्छी तरह प्रक्षालित, शुष्क और सुगन्धित कर शुद्ध कर लेने की व्यवस्था होनी चाहिए। बच्चों के मनोरंजनार्थ या खेलने के लिए—चित्र-विचित्र, शब्द-विशिष्ट, मनोरम, हल्के, जिन के अग्रभाग तीक्ष्ण न हों, जो निगलने लायक न हों, एवं जो प्राणनाशक या कष्टकारक और भयोत्पादक न हों, ऐसे कुछ खिलौनों की भी व्यवस्था करनी चाहिए।

अब इसके आगे व्राणार्तागार अर्थात् Surgical Ward के सम्बन्ध में शल्य-चिकित्सक सुश्रुत मुनि क्या लिखते हैं, उसे भी देखिए। व्रण रोगी के अवस्थान करने के लिए जो गृह हो, वह बहुत ही प्रशस्त स्थान में हो। कारण, प्रशस्त वास्तु-निगृहे शुचा वातय वर्जिते। निवाते नच रोगास्यू शरीरागन्तु मानसाः। (सु० अ० १६) अर्थात्—जो घर प्रशस्त समतल और विस्तृत भूमि में बना हो, जो पवित्र अर्थात् परिष्कार-परिच्छन्न, आतप वर्जित (जिसमें हर समय सूर्य की प्रखर किरणें प्रवेश न कर सकें) एवं निवात हो, अर्थात् जिसमें तेज वायु प्रवेश न कर सके, ऐसे घर में अवस्थान करने से शारीरिक, मानसिक और आगन्तुक कोई रोग नहीं होते।

उस घर में रोगी के शयनार्थ जो शय्या बनाएँ वे असङ्कीर्ण, शोभन आस्तरण (कोमल रूई के तकिया-तोषक-चदरा-दरी आदि) एवं सुन्दर आच्छादन (ओढ़ना) युक्त, रमणीय और प्राक् शिरस्क (पूर्व की ओर सिरहानेवाला) हो। चौड़ी शय्या पर शयन करने से व्रण-रोगी के शयन परिवर्तन आदि कर्म बहुत ही सुख-पूर्वक सम्पन्न होते हैं। उस गृह को यथास्थान दीप, जल, माला, दाम और पुष्प, लाजा आदि द्रव्यों से नित्य सुशोभित करें।

शस्त्र-कर्म की सुविधा के लिए वैद्य को पहले ही से निम्न उपादान सामग्री संग्रह करके रख लेनी चाहिए; यथा—यन्त्र, शस्त्र, क्षार, अग्नि, शलाका, शृङ्ग, जलौका, रूई, वस्त्रखण्ड, सूत्र, पत्र, व्रण बन्धन द्रव्य, मधु, घृत, वसा, दुग्ध, तैल, पथ्य, शीतल जल, उष्ण जल और कटाहादि। इसके अतिरिक्त अनुरक्त, स्थिरभावापन्न और बलवान परिचारक वर्ग एवं व्रण-रोपणादि कर्म के लिए यथायुक्त औषधि, प्रलेप, कषाय, कल्क प्रभृति संग्रह करके रख लेना चाहिए। व्रण-रोगी के नख काटकर छोटे-छोटे कर दें। रोगी को शुचि (शुद्ध) और शुक्ल वसन परिधानयुक्त होना और धर्म चिन्तन करना चाहिए। उस रोगी को चँवर से हवा करें। सायं-प्रातःकाल रोगीगृह में सुगन्धित धूप दें, जिसका धूम केवल व्रण पर ही न लगता हो, वरन् वह धूम शय्या-वस्त्र-आस्तरण आदि सभी पदार्थों को धूमित करें। इससे घर की वायु भी शुद्ध होती है। डल्हणाचार्य कहते हैं कि—धूप द्वारा व्रण की दुर्गन्ध निवारण होती है एवं नील मक्षिका प्रभृति दूर होती हैं।

अब थोड़ा परिचारक वर्ग की व्यवस्था पर ध्यान दीजिए। बौद्ध नृपतियों के शासनकाल में रोगियों की चिकित्सा के लिए जिस प्रकार पुरुष और स्त्री-चिकित्सक नियुक्त थे, उसी प्रकार रोगी की सेवा के लिए भी पुरुष और स्त्रियाँ परिचारक के रूप में नियुक्त करने की व्यवस्था थी। सेविकागण शुभ्र (श्वेत) वस्त्रधारिणी होती थीं, उनके वेश कुछ-कुछ आधुनिक नर्सों के समान ही होते थे, इसे हम लोग तत्कालीन इतिहास से जानते हैं।

आतुरालय में परिचारक किस प्रकार के होने चाहिए, इस पर भी प्रकाश डाला गया है। चरक कहते हैं—"आरोग्यशाला निर्माण होने पर, वहाँ रोगियों की सुश्रूषा के हेतु ऐसे परिचारक नियुक्त करने चाहिए, जो सुशील, पवित्र, स्वामिभक्त, दक्ष, दयालु, सर्व-कर्म-पटु, हर प्रकार के खाद्य-व्यञ्जन आदि निर्माण-कुशल पाचक, स्नानकारक, गात्र-मर्दक, सावधानी और तत्परतापूर्वक उठाने, बैठाने और सुलानेवाले, औषध कूटने-पीसने में समर्थ एवं किसी काम में विरक्ति प्रकट न करनेवाले हों।"

(चरक सू० अ० १५)

चिकित्सा के साहाय्यार्थ निपुण और कर्मकुशल सुश्रूषाकारी जन नियुक्त होने से शीघ्र ही रोगी के रोग-मुक्त होने की सम्भावना रहती है। आतुरों की सुश्रूषा कर उनके शारीरिक और मानसिक श्रम को घटाना महत्त्व-पूर्ण कार्य है। इसके लिए सुभद्रा, उत्तरा, जैसी राज-महिषियाँ और पुरवासिनी महिलाएँ भी युद्ध में आहत व्यक्तियों की सेवा-सुश्रुषा के लिए निरत होती थीं।

भेषजागार या डिस्पेन्सरी के सम्बन्ध में भी सुश्रुत की व्यवस्था है—"प्लोत मृद्भाण्ड फलक शङ्कुविन्यस्त भेषजाम्। प्रशस्तायां दिशि शुचौ भेषजागारमिष्यते" अर्थात्—प्रशस्त दिशा (पूर्व या उत्तर द्वार युक्त) पवित्र स्थान में भेषजागार (डिस्पेंसरी) नियुक्त करें। समस्त संगृहीत औषधियाँ, वस्त्रखण्ड, मृदभाण्ड और काष्ठ के पात्रों में सुसज्जित (अच्छी तरह लेबिल आदि से सजाकर)

रखना चाहिए। इससे विदित होता है कि डिस्पेंसरी सजाने का कौशल भारतवर्ष के चिकित्सकों में बहुत ही उच्च था।

दो हजार वर्ष पहले भी भारतवर्ष में काय-चिकित्सक, शल्य-चिकित्सक और पशु-चिकित्सक आदि अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं। अशोक प्रभृति बौद्ध राजागण आतुरों (रोगियों की) की सेवा बहुत पुण्यप्रद मानते थे। इसीलिए अनेक पुण्यशालाएँ उन्हों ने संस्थापित की थीं। शास्त्रकार कहते हैं—

"कपिला कोटि दानाद्धि यत्फलं परिकीर्तितम्।
फलं तत्कोटिगुणमेकातुर चिकित्सया।।"

अर्थात्—करोड़ों कपिला गौ दान करने से जो फल प्राप्त होता है, एक आतुर रोगी की चिकित्सा उससे करोड़ गुना फल देनेवाली होती है।

हेमाद्रि प्रणीत 'चतुर्वर्ग चिन्तामणि' ग्रन्थ के दानखण्ड में औषध, पथ्य आहार प्रभृति दान के फल के सम्बन्ध में विश्वामित्र, **संवर्त**, अगस्त्य प्रभृत्ति महर्षियों की उक्तियाँ उद्धृत हैं। नान्दिपुराण और स्कन्दपुराण में लिखा है कि—औषधि, उपकरण आदि के साथ आरोग्यशाला निर्माण कर इस में उपयुक्त भृत्य एवं सद्वैद्य नियुक्त करने से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चारों पदार्थ प्राप्त होते हैं। सर्व साधारण के उपकारार्थ अष्टाङ्ग आयुर्वेद विद चिकित्सक समन्वित आरोग्यशाला निर्माण कराने से महा पुण्य होता है; यथा—

"एवं विधः शुभो वैद्या भवेत् यत्राभियोजितः।
आरोग्यशाला मेवन्त कुर्यात् यो धर्म संश्रयः।
स पुमान् धार्मिको लोके स च कृतार्थःसुबुद्धिमान्।
सम्यगारोग्यशालायामौषधैस्तेह पाचनैः।।"

बौद्धों के समय में, राजकीय अनुकूलता के कारण एवं बहुत-से अस्पताल प्रतिष्ठित होने से आयुर्वेदशास्त्र के काय-चिकित्सा विभाग ने महान् उत्कर्ष लाभ किया था। काय-चिकित्सा की प्रतिपत्ति होने पर भी शल्य-चिकित्सा की प्रधानता कम नहीं हुई। किन्तु उस समय राजा के आदेश से शव-व्यवच्छेद-प्रथा वर्जित होने के कारण, प्रत्यक्ष शारीर विद्या के अभाव से शस्त्र-चिकित्सा की अवनति होने लगी एवं क्रम-क्रम से उसका लोप होता गया। एक समय भारतवर्ष में एक सम्प्रदाय के चिकित्सकों ने अस्त्र-विद्या में विशेष पारदर्शिता प्राप्त की थी और अस्त्र-चिकित्सा के लिए स्वतन्त्र अस्पताल खोले गये थे। इस बात पर आज कल बहुतों को विश्वास न होता होगा। किन्तु दर्शन, विज्ञान, ज्योतिष प्रभृति शास्त्र की तरह चिकित्सा-शास्त्र में तथा आतुर, दरिद्र और अनाथों की चिकित्सा के लिए आरोग्यशाला निर्माण एवं उपयुक्त चिकित्सक और धात्री-नियोग में भारतवर्ष सब देशों से अग्रगामी था—यह निःसङ्कोच कहा जा सकता है।

बं० आ० सं० मा० प० से० अ०

—o—

शेषांश] हस्तलिखित वैद्यक-ग्रन्थ 'वीरसिंह' में तक्र [११६२ पृष्ठ का

पड़ती है, फिर भी रोगी को दस्त होने या विष्टम्भ होने पर यह समझा जाता है कि तक्र रोगी के लिए वातकारक हुई। किन्तु यह नहीं समझा जाता कि पहले से खुद ही आमाशय की शुद्धि न करके तक्र का सेवन आरंभ कर दिया।

अब दूसरी व्यापत्ति—

'औष्ण्यात् पित्ताधिके पुंसि तक्रं दाहम् करोतिचेत्'

पित्त की अधिकतावाले के लिए, तक्र स्वतः उष्ण गुण-वाली होने के कारण दाह पैदा करती है। ऐसी अवस्था में भी, यह ज्ञान न रखनेवाले वैद्य और रोगी यह समझते हैं कि भूख के कारण जलन होती है।

चौथी व्यापत्ति—वमि, उबकियाँ आना, उल्टी होना, ५ वीं—मूर्च्छा, ६ वीं—ज्वर, ७ वीं—[illegible], ८ वीं—[illegible] यह व्यापत्तियाँ हों, तो इन रोगों के लिए कही गई चिकित्सा करनी चाहिए। ९—अरुचि, १०—रूक्षण, ११—उद्वेग, १२—हीन स्निग्ध, १३—अतिअग्नि, १४—कृशता, १५—अतिस्थौल्य, १६—स्नेहाजीर्ण, १७—आनाह, १८—विबंध, १९—शूल, २०—मन्दाग्नि, २१ अतिस्नेह, २२—कृशता २३—उद्गार अशुद्धि, २४—अजीर्ण इस प्रकार—

चतुर्विंशतिरित्येताः व्यापदः परिकीर्तिताः।
एवं विरंचि अश्विभ्यां प्राह तत्र सुरेश्वरः।।

इन चौबीसों व्यापत्तियों में से शेष व्यापत्तियाँ तथा उन सब की चिकित्सा कभी आगे लिखी जायगी।

अनुवादक—प्र० मा०

हस्तलिखित वैद्यक-ग्रन्थ 'वीरसिंह' में तक्र

वैद्य प्राणशंकर नरोत्तम, आयुर्वेदाचार्य

महर्षि भावमिश्र के समय तक आयुर्वेद के ग्रन्थ लिखे जाते रहे और उन का अध्ययन भी होता रहा। अंग्रेजों के राज्यकाल में भारत की वास्तविक अवनति हुई। अंग्रेजी शिक्षाविदों ने, ठोक-पीट कर जनता के मन में यह बिठा दिया कि भारत अज्ञान और भ्रम-शंकाओं से भरा, पिछड़ा हुआ देश है और यूरोप, बहुत आगे बढ़ा हुआ, संस्कार-सम्पन्न एवं अत्यन्त ज्ञानवान। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनता और उसके नेता यह मानने लगे कि भारतीय सर्व विद्याएँ पिछड़ी हुई एवं अग्राह्य और यूरोप से आई हुई सभी चीजें अच्छी हैं। अतएव, भारतीय वैद्यक, साहित्य, कला, हुनर-उद्योग आदि लुप्त होने लगे। उनका अध्ययन बन्द हो गया। पूर्वजों द्वारा संगृहीत और सुरक्षित अमूल्य विद्यारूपी धन--अनेक हस्तलिखित ग्रन्थों में भरा हुआ--रद्दी के भाव में बेचा गया।

इस सर्व-व्यापी विनाश से बचा हुआ वैद्यक-साहित्य अब भी जहाँ-तहाँ उपलब्ध हो जाता है। कपड़वंज में १०-१२ पीढ़ियों से वैद्यक-व्यवसाय करनेवाले वैद्य-परिवार के एक भाई वैद्य जेठालाल दौलतरामजी के पास, उनके कौटुम्बिकों द्वारा लिखे, हस्तलिखित ग्रन्थ-भण्डार में, आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थ हैं। उनमें कई २००-२५० वर्ष पुराने हैं। उदाहरण-स्वरूप 'वीरसिह' नामक वैद्यक ग्रन्थ में, तक्र के विषय में जो विशेष लेख है, उसका कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है।

यद्यपि तक्र के विषय में अभी तक इतना लिखा जा चुका है कि अब शायद ही कोई नवीन बात कही जा सके; तथापि इस पुस्तक में बहुत कुछ नई बातें मिलती हैं। तक्र या मट्ठा कैसे रोगी को देना चाहिए, यह सभी वैद्य जानते हैं; परन्तु यह जानकारी बहुत ही कम है कि मट्ठा किसे नहीं देना चाहिए। उदाहरण-स्वरूप--ग्रहणी रोग में सभी वैद्य मट्ठे का प्रयोग करते हैं और इस में अधिकांश सफलता भी मिलती है। परन्तु, जहाँ असफलता होती है, वहाँ उसका कारण खोजने का शायद ही कोई प्रयत्न करता है। इस ग्रन्थ में एक पार महत्व विवेचन है।

"पित्तोद्भवाम् ग्रहणीं परित्यज्य चिरजांश्च त्रिदोषजां. . .।"

अर्थात्--पित्तज ग्रहणी में और दीर्घ काल से हुई त्रिदोषज ग्रहणी में इसका अधिकार नहीं है। इसी प्रकार दूसरा सूत्र--

"नोपेक्षेत् नरम् रूक्षम् तक्ररूक्षम् यतो भृशम्"

रूक्ष मनुष्य को मट्ठा नहीं देना चाहिए; कारण कि मट्ठा स्वतः रूक्ष है, अतएव व्याधि को बढ़ा देता है। अवस्था-विशेष में जब वात-व्याधियाँ बढ़ जाती हैं, तब मट्ठा वात-विनाशक होते हुए भी, वात-वृद्धि ही करता है और चिकित्सक को यश और धन के बदले अपकीर्ति प्राप्त कराता है। इसी विचार-सरणी का अनुसरण करता हुआ तीसरा सूत्र है--

"सामरोगेषु तत्सेव्यं न निरामे कदाचन।

रूक्षत्वात् च विकाषित्वात् निरामे व्याधिवर्द्धनम्।"

रोग के साम अवस्था में होने पर ही छाछ या मट्ठे का सेवन करना चाहिए; कारण कि मठ्ठा पाचन और अग्निदीपन है। परन्तु, निराम अवस्था में अकेला मट्ठा नहीं देना चाहिए। कारण कि मट्ठा रूक्ष और विकाषी गुणवाला है, अतएव निराम अवस्था में रोग बढ़ा देता है।

छाछ या मट्ठे की सेवन-विधि

उक्त ग्रन्थ में छाछ की सेवन-विधि विस्तार से दी गई है। एक, विशेष ध्यान खींचनेवाला सूत्र इस प्रकार है--

"त्र्यहं वा षट्वहं वापि पानीयम् मंदुमाचरेत्।

सहसा ह्रसयेनान्नम् तक्रम् न सहसा भजेत्।

सहसा सेवनात् वह्निः व्याकुलो नाशमाप्नुयात्।।"

जब छाछ या मट्ठे का प्रयोग आरम्भ करना हो, तब एकदम अनाज छुड़ाकर मट्ठा शुरू नहीं करा देना चाहिए। इसी प्रकार एकदम मट्ठा छुड़ाकर अन्न शुरू नहीं कराना चाहिए। पहले तीन दिनों तक या छः दिनों तक थोड़ा-थोड़ा मट्ठा पीना चाहिए और इसके बाद अन्न बन्द करके अकेले मट्ठे के सेवन पर आ जाना चाहिए। एकदम छाछ या अनाज के शुरू कर देने से, जठर की अग्नि व्याकुल होकर विनष्ट हो जाती है।

छाछ शुरू करने के पश्चात् क्या-क्या लक्षण मालूम होते हैं और उन लक्षणों के अनुसार छाछ कब और कितनी बढ़ानी चाहिए ; और छाछ शरीर में किस प्रकार गति करती है, यह दर्शानेवाला श्लोक भी इसी ग्रन्थ में है—

"मलपाकोऽथ ततः शुद्धिः ततः तक्रमलोद्भवः ।
ततः प्रवृत्तिः ततो वह्नेः संभवः स्यात् रसोद्गमः ।
रक्तादीनां च धातुनां क्रमात् वृद्धिः ततो बलम् ।"

छाछ या मट्ठे का पीना प्रारम्भ करते ही, आँतों और समस्त शरीर में अन्न और धातुओं का जो कच्चा मल होता है, उसे मट्ठा पक्व करता है ; अतएव विष्ठा में आम, चिकटापन, गुरुत्व, दुर्गन्ध आदि धीरे-धीरे कम हो जाते हैं। पश्चात् मल शुद्ध होता और इसके बाद ही मट्ठे का मल बनता है। यह मल दुर्गन्धहीन, हलका और बिना चिकनेपन वाला होता है। इसके अनन्तर जठराग्नि तीव्र होती है और इसके बीच जठराग्नि मन्द रहती है।

जठराग्नि बलवान होने पर रस धातु उत्पन्न होती और इसके पश्चात् रक्त, मांस, मेद आदि धातुएँ पैदा हो कर बल प्राप्त होता है। कारण कि बल शुद्ध धातुओं के आश्रय से रहता है। व्याधि-अवस्था में, शरीर में धातुओं के होने पर भी निर्बलता का भान होता है। कारण कि वे धातुएँ विकृत अवस्था में होती हैं।

उपर्युक्त ग्रन्थ में तक्रकल्प विषय को, ग्रहणी के अध्याय में अलग कर दिया गया है।

तक्र के विषय में ९ प्रश्न और उत्तर

आर्य-ग्रन्थों में ज्यों बहुत-से विषय, गुरु-शिष्य के प्रश्नोत्तर के रूप में लिखे गये हैं, त्यों ही यहाँ भी प्रजापति से अश्विनीकुमारों ने तक्र—मट्ठा—के विषय में नौ प्रश्न किये और प्रजापति ने उनके उत्तर दिये हैं। प्रश्न इस प्रकार हैं—

प्रजापतिं प्रणम्याथ संशयाविष्ट मानसौ ।
जितात्मानो सुवचसा अश्विनो परिपृच्छतुः ।।
यत्देव ! केवलं तक्रं सेव्यं नेत्याह नित्यशः ।
किं गुणं तद्रसम् कीदृक् किं वीर्यं किञ्च तत्फलम् ।।
कियत्कालं कथं सेव्यं किं प्रमाणं क्व युज्यते ।।
किं तत्र परिहार्यं च व्यापदोऽयुक्तिताऽथवा ।
एतत् सर्वं प्रजानाथ वक्तुमर्हस्यशेषतः ।।

भगवान् प्रजापति को प्रणाम करके जितेन्द्रिय अश्विनीकुमारों ने अपने सन्देह को पूछा है कि हे भगवन् ! आपने आगे जो केवल मट्ठा पीने के लिए कहा है, तो बताइए कि उसमें (१) क्या गुण है ? (२) उसके रस कैसे हैं ? (३) मट्ठा वीर्य में कैसा है ? (४) उसका क्या फल होता है ? (५) मट्ठे का कितने समय तक सेवन करना चाहिए ? (६) किस प्रकार सेवन करना चाहिए ? (७) कितनी मात्रा में सेवन करना चाहिए ? (८) मट्ठा पीते समय कौन-कौन वस्तुओं का त्याग करना चाहिए ? (९) और मट्ठे को अयुक्ति पूर्वक सेवन किया जाय, तो कितनी व्यापत्तियाँ (हानियाँ) होती हैं ? कृपाकर यह बतलाइए।

उपर्युक्त नौ प्रश्नों का उत्तर न देकर, अमुक विशिष्ट प्रश्नों पर ही हम विचार करना चाहते हैं।

(१) छाछ के गुण सुविदित हैं ; परन्तु अविदित अवगुण बहुत हैं—**'अवृष्यं बलहृत् तक्रम् केवलम् वा अतिसेवया ।'**—छाछ अकेली पीने या उसका अति सेवन करने से वह अवृष्य है; अर्थात्—रूक्षावस्था में या बिल्कुल निरामावस्था में भी छाछ अवगुणकारक है।

(२) छाछ का सेवन करनेवाले के लिए क्या त्याज्य है ?—इस प्रश्न के उत्तर में **'व्यायामं च व्यवायं च दिवा स्वप्नं तथैव प्रजागरम्'** तथा—

'तक्रसेवी न सेवेत वारितान्नं च वारि च'

तक्र का सेवन करनेवाले को कसरत, मैथुन, दिन में सोने, रात को जागने, भिगोये अन्न का और जल का त्याग करना चाहिए।

अब सब से अधिक आवश्यक और किसी अन्य ग्रन्थ में दिखाई न पड़नेवाले प्रश्न का उत्तर—

'व्यापदोऽथ प्रवक्ष्यामि श्रृणुत सचिकित्सिताः'

तक्र अनुचित प्रकार से पीने पर जो-जो हानियाँ होती हैं, वह सब, और उनकी चिकित्सा क्या है, यह सुनिए—

'आमाशये अविशुद्धेऽथ सहसा तक्र सेवनात् ।
आम पक्वाशयम् प्राप्य ग्रहणीं अभिदुष्ययेत् ।
तस्यातिसारो गुदुरुक् विष्टम्भो वह्निमार्दवम् ।।'

पहले से आमाशय शुद्ध न किया गया हो और एकदम छाछ का पीना आरम्भ कर दिया जाय, तो आम पक्वाशय में जाकर ग्रहणी को दूषित करती है और इससे अतिसार, गुदा में शूल, वायु, विष्टम्भ और अग्निमान्द्य होता है।

अयुक्तिक तक्र पीनेवाले को यह प्रथम व्यापत्ति दिखाई

(शेषांश ११६० पृष्ठ पर)

मस्तिष्क-विमर्श

शंकरलाल भेड़ा, आयुर्वेदाचार्य, एम० बी० बी० एस०

शरीर में अनेक महत्त्वपूर्ण अङ्ग हैं और प्रत्येक अङ्ग का विशेष प्रयोजन भी होता है। किन्तु, मानव-जीवन—जीवन-मरण—के लिए हृदय, मस्तिष्क और वस्ति ये तीन अङ्ग अत्यन्त आवश्यक माने गये हैं। आयुर्वेद वाङ्मय में इनको "त्रिमर्म" कहते हैं। सद्यः प्राणहर मर्मों में इन तीनों का स्थान है। इन तीनों में मनुष्यों के प्राण रहते हैं "हृदि मूर्ध्नि च वस्तौ च नृणां प्राणाः प्रतिष्ठिताः। तस्मात्तेषां सदा यत्नात् कुर्वीत परिपालनम्। (चरक संहिता अ० ६) चक्रपाणि ने शाखा स्कन्धाश्रित मर्मों के वर्णन में "स्कन्धाश्रितेभ्योऽपि हृद्वस्ति शिरांसि (गरीयांसि) तन्मूलत्वाच्छरीरस्य" इस चरक की टीका में इस प्रकार इनके महत्व का वर्णन किया है—

सप्तोत्तरं मर्मशतं यदुक्तं शरीर संख्या मधिकृत्य तेषु।
मर्माणि वस्तिं हृदयं शिरश्च प्रधान भूतान्मृषयो वदन्ति।
प्राणाश्रयान् तानपि पीडयन्तो वातादयोऽसूनापि पीडयन्ति।
प्राणाश्रयत्वमपि यथा हृदयादीनां न तथा शङ्खादीनाम्।

काश्यपसंहिता में कहा गया है

"दशैवायतनान्याहुः प्राणानां तानिमे शृणु।
मूर्धाऽथ हृदयं वस्तिः कण्ठौजः शुक्र शोणितम्।
शङ्खौ गुदं ततस्त्रीणी महामर्माणि चादितः।"

सुश्रुत में भी कहा है

"शृंगाटकान्याधिपतिः शंखौकण्ठः शिरोगुदम्।
हृदयं वस्तिनाभिश्च घ्नन्ति सद्योहतावितु।"

इन वचनों से स्पष्ट होता है कि यद्यपि प्रत्येक मर्म पर विशेष आघात होने से प्राणहरणत्व हो सकता है, तथापि शरीर के किसी भाग पर आघात हो जाने पर भी, प्राणों का नाश इन त्रिमर्म की खराबी से ही होता है।

तेषां त्रयाणामन्यतमस्यापि भेदात्, आश्वेव शरीर भेदः स्यात्। आश्रयनाशात्—आश्रितस्यापि नाशः, तदुपघातात्तु घोरतर व्याधि प्रादुर्भावः,तस्मादेतानि विशेषेण रक्ष्याणि वाह्याभिघातात् वातादिभ्यश्च।" (च. सि. ६)

एलोपैथी में वस्ति के स्थान पर फेफड़े लिये गये हैं। अर्थात्—हृदय, मस्तिष्क तथा फुफ्फुस ये तीन शरीर के लिए महत्त्व के अङ्ग हैं। एलोपैथीवाले इन को त्रिदण्ड "Three life factors" कहते हैं। आयुर्वेद में भी त्रिदण्ड की कल्पना की गई है। इनको "त्रिमर्म" कहते हैं। पाश्चात्य ग्रन्थों में यही कल्पना मिलती है।

"Life and health depends on the proper action of the heart, lungs and brain. This has been called the "tripod of life". Bichat (1798) considered that death might arise from a failure of each of these. Medical Jurispendence by W. G Aittchison Roberson.

इस "त्रिमर्म" में शिर मर्म भी आया है।

सर्वेषु अङ्गेषु शिरः प्रधानम् —यह प्रसिद्ध लोकोक्ति है। वस्तुतः यह तथ्य भी है; क्योंकि श्वास मार्ग, अन्नद्वार तथा मुखमण्डल का यह स्थान है। इतना ही नहीं, संज्ञावह एवं चेष्टावह नाड़ियों का और ज्ञानेन्द्रियों का प्रधान स्थान होने से शिर वास्तव में प्रधान ही है। यही ज्ञान का स्थान है और इसी को उत्तमाङ्ग कहते हैं।

"सर्वेन्द्रियाणि येनाऽस्मिन् प्राणाःयत्र च संश्रिताः।
तेनतस्योत्तमाङ्गस्य रक्षायामादृतो भवेत्।"

अष्टाङ्ग २४ अ०

शिर के महत्त्व के लिए चरक भी इस तरह आदेश देते हैं—"शिरसि इन्द्रियाणि, इन्द्रिय प्राणवहानि च स्रोतांसि सूर्यमिवगभस्तयः संश्रितानि।" (च. सि. ६–४)

"शिरः आश्रयत्वं यथोक्तस्रोतसां तदुपघातेन विशिष्टोपघात दर्शनादुन्नीयते।" (चक्रपाणिः)

इस शिरो गुहा में मस्तिष्क "(Ceribrum Brain)" अनुमस्तिष्क "(Ceribellum)" और सुषुम्ना, (Medulla oblongata) ये तीन वस्तुएँ रहती हैं। इन में से मस्तिष्क का वर्णन किया जाता है।

मस्तिष्क

मस्तिष्क समस्त ज्ञान का आकर माना जाता है। सुश्रुत में असाध्य व्रण के वर्णन में—

"वसा मेदो मज्ज मस्तुलुङ्ग स्राविणश्च दोष समुत्थाः।

भिन्ने वा शिरः कपाले यत्र मस्तुलुङ्ग दर्शनं त्रिदोष लिङ्ग प्रादुर्भावः, कास श्वासौ वा यस्येति वसां मेदोऽथ मज्जानं मस्तुलुङ्गं च यः स्रवेत्।" हैं।

इस वर्णन की टीका में डल्हण ने--"मस्तुलुङ्गोऽर्ध विलीना कारो मस्तक मज्जा।" कहा है।

"मस्तिष्कं नाम--सर्व ज्ञानाकरतया मन्यन्ते मनीषिणः। संज्ञावह--चेष्टावहानां नाड़ीनां ज्ञानेन्द्रियाणां च मूलाधिष्ठानं शिरः तद्धि ज्ञानायतन मुत्तमाङ्गमाहुः मस्तिष्काधारत्वात्।" (प्र० शा०)

मस्तिष्क शब्द व्याकरण की दृष्टि से "मसी परिणामे" इस धातु से क्तिन् प्रत्यय होकर बनता है।

"मस्तिष्कं गोर्दम्" इत्यमरः।" मस्तिष्क; अर्थात् मस्तुलुङ्ग कपालास्थियों के भीतर का स्नेह भाग। इस अर्थ की सिद्धि के लिए आर्ष-ग्रन्थों में इतने वाक्य मिलते हैं—

"मस्तिष्कं शिरस्थोमज्जा दिनक्षये ततः स्थाने मस्तिष्के संप्रशाम्यति।"

इस श्लोक की टीका में निम्नलिखित आचार्यों ने यह कहा है--मस्तिष्क शिरोगतः स्नेहः (चक्रपाणि,)सि.अ. ९

मस्तिष्कस्यार्धाञ्जलिः (च० शा० अ० ७)

मस्तकस्य---मस्तकान्तरस्थस्य घृतिकाख्यस्य अर्धाञ्जलिः (गंगाधर)

शिरसोऽपहृते शल्ये वालवर्तिं प्रयोजयेत्।

वालवर्त्यामिदत्तायां मस्तुलुंगं व्रणात् स्रवेत्।

इसकी व्याख्या में डल्हण---"मस्तुलुंगमिति शिरसो बलाधानस्त्यनघृताकारं मस्तुलुङ्गमुच्यते।" कहते हैं।

मेद्रोहि तस्यामुदरेऽण्वस्थिषु च सरक्तं भवति, तदेव च शिरसि कपाल प्रतिच्छिन्नं मस्तिष्काख्यं मस्तुलुङ्गाख्यं च। (अ० शा० ५ अ०)

तालुपात बाल रोग के वर्णन में "मस्तुलुङ्गक्षया तस्य वायुस्तात्वास्थिनामयेत्" इस श्लोक की व्याख्या में "मस्तुलुङ्गो विलीन घृताकारा मस्तक मज्जा। (डल्हण)

काश्यप - संहिता में भी--"शुक्रस्यार्धाञ्जलिर्देहे मस्तिष्कस्य तथैव च" वचन मिलता है। इन वचनों से यह ज्ञान हो जाता है कि मस्तिष्क क्या चीज है। इसके कार्य एवं स्वरूपों के वर्णन मुझे नहीं मिले हैं; किन्तु आयुर्वेद महार्णव है। संभव है, किसी जगह मिल जाय। इन वचनों से यह स्पष्ट होता है कि हमारे आचार्य इस बारीकी तक पहुँचे हैं, तो अवश्य ही मस्तिष्क के स्वरूप एवं कार्यों से सर्वथा परिचित थे।

मस्तिष्क का कार्य

मस्तिष्क सम्पूर्ण शरीर का शासक है। मस्तिष्क से सोचने-विचारने का काम और नाड़ियों से संवेदन तथा सूचनाएँ ले जाने का काम होता है। यह कार्य किसी दूसरे से नहीं हो सकता है। शरीर-कार्य-विज्ञान की दृष्टि से यह कार्य वात धातु के कार्य से मिलते हैं--

"वायुस्तंत्रयंत्रधरः, प्राणोदानसमान व्यानापानात्मा, प्रवर्तकश्चेष्टानामुच्चावचानाम्, नियन्ता प्रणेता च मनसः, सर्वेन्द्रियाणामुद्योजकः, सर्वेन्द्रियार्थानामभिवोढा, सर्व शरीर धातु व्यूहकरः, संधानकरः शरीरस्य, प्रवर्तकोवाचः, प्रकृतिः स्पर्शशब्दयोः श्रोत्रस्पर्शनयोर्मूलम्, हर्षोत्साहयोर्योनिः, समीरणोऽग्ने, दोष संशोषणः, क्षेप्तावहिर्मलानाम्, स्थूलाणु स्रोतसां भेत्ता, कर्तागर्भाकृतीनाम्, आयुषोऽनुवृत्ति प्रत्ययभूतो भवत्यकुपितः।"

सम्पूर्ण ज्ञान तथा चेष्टा प्रवर्तक वेगों का प्रवर्तक, जीव शक्ति रूप से, समस्त प्राणिमात्र देह में विचरण-शील अचिन्त्यशक्ति सर्वाध्यक्ष भगवान् वायु ही है, यह आयुर्वेदाचार्यों का सिद्धान्त है। चरक के इन वाक्यों का यही निष्कर्ष है।

The Sanskrit words—Vayu and Vata closely resembles the Latin Vivo (to live) and Vita (life) and Greek Bios meaning life. Vayu therefore may be lightly translated as the Vital Force.

जीवशक्ति

एलोपेथीवाले चार धातु मानते हैं:---

१. मांस धातु "मस्क्यूलर टिशू"

२. आच्छादक धातु "एपिथोलिअल टिशू"

३. संयोजक धातु "कनेक्टिवटिशू"

४. वात धातु "नर्वस टिशू"

यह वातधातु मस्तिष्क, सुषुम्ना तथा इन दोनों से निकली हुई नर्वस (नाड़ियाँ) इसी धातु से बनती है। आयुर्वेद में फिजियालोजी (शारीरिक कार्य-विज्ञान) की दृष्टि से इस धातु का वर्णन नहीं है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने यह खोज की है कि सुख-दुःखादि कार्य मस्तिष्क में होते

हैं। शरीर के समस्त अङ्गों के साथ मस्तिष्क का सम्बन्ध नाड़ियों द्वारा होता है।

मस्तिष्क—रूप रस गन्धादि का ज्ञान (सेन्सेशन) मेधा (इन्टेलिजेन्स) इच्छा (विल) और उस से चेष्टा स्मृति (मेमोरी) आवेग (इमोशन) तथा चिन्तन (थिङ्किङ्ग) का प्रधान स्थान है। इसी मस्तुलुङ्ग पिण्ड में सम्पूर्ण संज्ञावाहिनी नाड़ियों द्वारा समस्त संज्ञाओं का प्रवेश होता है तथा भिन्न-भिन्न अंशों में संज्ञाओं का प्रकाश होता है। मस्तिष्क में ही प्रत्येक ज्ञान तथा क्रियाक्षेत्र पृथक्-पृथक् होते हैं। इसीलिए रस, गन्ध, शीत, उष्ण आदि का भिन्न-भिन्न स्थल पर अनुभव होता रहता है। ये केन्द्र कहलाते हैं। बोलने का केन्द्र केवल एक ही होता है, वह बायीं तरफ रहता है। किसी-किसी को दाहिनी तरफ भी होता है।

स्वकर्म हीनता

जब मस्तिष्क के किसी स्थान में रक्तवाहिनी फटकर खून बहता "हेमोरेज Haemorrhage" या रक्तवाहिनी में रक्त जम जाता है, तो Thrombosis अथवा अन्तःशल्य 'Embolus' के कारण रक्त का बहना बन्द हो जाता है, तब मस्तिष्क का वह भाग अपने कार्य करने में कमजोर हो जाता है। यह अवस्था पक्षाघात में होती है। इसम मस्तिष्क से सम्बन्ध टूट जाता है तथा Hemiplegia, Paraplegia होता ह।

केन्द्र

प्रसव-काल के समय गर्भाशय में संकोच की अवस्थाएँ अनेक हेतुओं से हुआ करती ह। उनमें एक कार्बन डायोक्साइड का आधिक्य है। गर्भ के अन्तिम महीने में माता के रक्त में कार्बनडायोक्साइड (Carbon dioxide) की वृद्धि हो जाती है। यह वायु वात नाड़ियों तथा मस्तिष्क के केन्द्रों को उत्तेजित करके गर्भाशय में संकोच पैदा कर सकती है। आक्षेपक ('कन्वलशन्स Convulsions) भी मस्तिष्क-स्थित दोषों की खराबी का प्रधान लक्षण है। यहः प्रायः अपस्मार (Epilepsi), अपतन्त्रक (Hysteria), मस्तिष्कार्बुद (Carcinoma of the brain) मस्तिष्कस्थ रक्तस्राव (Brain Hemorrhage), अन्तःशल्य (Embolism), मस्तिष्कावरण शोथ (Inflammation of brain), मूत्रस्रविता (Uraemia) और धनस्तम्भ (Tetanus) इत्यादि रोगों से होनेवाले आक्षेप में भी मस्तिष्क संस्थान की विकृति का सम्बन्ध थोड़ा-बहुत अवश्य रहता है।

संन्यास (कोमा Coma)

यह मस्तिष्क की ही विकृति है। इस रोग में शिर के ऊपर (शृंगाटक, अधिपति, शंख आदि में) आघात हो जाने से मस्तिष्क के भीतर (Brain Tissue) या मस्तिष्कावरण के भीतर और अमस्तिष्क के बाहर रक्तस्राव (Cerebellar Hemorrhage) होता है। किंवा आघातजन्य मस्तिष्क-संक्षोभ से या खोपड़ी की अस्थि अवनत भङ्ग (Skull Fracture) होने से यह स्थिति पैदा होती है।

मूर्च्छा

मस्तिष्क में रक्त की कमी होने से भी मूर्च्छा होती है। संन्यास तथा मूर्च्छा में भी संज्ञानाश होता है। इसीलिए दोनों की सम्प्राप्ति में विशेष भेद न होने से चरक-संहिता में इन दोनों का वर्णन एक साथ ही किया गया है। संन्यास इन रोगों में प्रायः मिलता है—

सन्निपातज्वरों की अन्तिमावस्था में—मस्तिष्कावरण शोथ (Brain Inflammation) तन्द्रिक मस्तिष्क शोथ (Brain tunic Inflammation) मस्तिष्क का अर्बुद या विद्रधि मूत्रविषमयता (Uraemia), मधुमेह की अन्तिमावस्था (Diabetic Coma), मस्तिष्काघात, सिर पर आघात, मस्तिष्क में रक्तस्राव या रक्त का जम जाना आदि। चरक के सिद्धिस्थान में शिर के ऊपर आघात हो जाने से निम्नोक्त लक्षणों का निर्देश किया है।

शिरस्यभिहते मन्यास्तंभार्दित चक्षुर्विभ्रममोहवेष्टन चेष्टानाश कास श्वास हनुग्रह मूक गद्गदत्वाक्षि निमीलन गण्ड स्पन्दन जृंभण लालास्राव स्वरहानि वदन जृम्भत्वादीनि। (च. सि. अ. ९)

ये प्रायः सभी लक्षण मस्तिष्क संघट्टन, मस्तिष्क पीडन (Headache) तथा मस्तिष्क प्रक्षोभ के कारण ही होते हैं। सद्यः प्राणहर मर्मों में 'शृंगाटक मर्म' मस्तिष्क मूल में और इस रूप से जो सिरासन्निपात है, वही शृङ्गाटक मर्म है। शृङ्गाटक के वर्णन में डल्हण कहते हैं—

"इमानि सिरा मर्माणि चतुरंगुल प्रमाणानि" इति।

मस्तिष्क का निद्रा से सम्बन्ध

निद्रा के समय मस्तिष्क के सर्व भाग निष्क्रिय नहीं होते हैं।

आयुर्वेद-संहिताओं में मस्तिष्क का वर्णन अत्यन्त अल्प होने पर भी मस्तिष्क-संस्थान के सब कार्यों का वर्णन मिलता है। मस्तिष्क का कार्य रस या रक्तवाहिनियों द्वारा तथा उनके साथ मिलकर के भ्रमण करनेवाले वायु के द्वारा ही होते हैं। आयुर्वेद में मस्तिष्क-संस्थान-सदृश प्रधान विषय पर प्राकृत और विकृत कार्यों के समाधान की उपपत्ति बहुत ही सुन्दर एवं सरल तथा कठिनतम विषय के आवश्यक वर्णनों सहित की है।

आयुर्वेद त्रिदोष-सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। इसकी भित्ति त्रिदोषों के ऊपर है। इन त्रिदोषों में सर्व प्रथम प्रधान वायु नामक दोष माना गया है, जिसका वर्णन चरक के शब्दों से ऊपर आ चुका है। इसका अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त कर लेने पर यह सब दिक्कतें अनायास ही मिट सकती हैं।

भैषज्य रत्नावली में मस्तिष्ककम्प, मस्तिष्कापचय' मस्तिष्क वृद्धि, मस्तिष्क स्नायुज रोग, इन शिरोरोगों का निदान, लक्षण, चिकित्सा तथा पथ्यापथ्य का सुन्दर वर्णन किया है।

स्वभावतो वा सौभाग्यान्मस्तुलुङ्गः प्रवर्द्धते। कपालमथवालानां पूनाञ्चापि कदाचन। यदि वृद्धि समानस्यान्मातुलुङ्ग कपालयोः स्वावस्थिते कपालेस्तिष्कं सम्प्रवर्द्धते। मस्तुलुङ्गचयेस्मिन्म् ह्रासे लघु देहस्य पोषणम्, अश्वगन्धा च काकोली कृष्णोग्रा जीवकर्षभौ। क्वाथ-मेषां पिवेत् प्रातः मस्तिष्क ह्रासशान्तये। इत्यादि शब्दों से मस्तुलुङ्ग का भी वर्णन किया गया है।

चिकित्सा में भी---

हन्तिमस्तिष्क स्नायुजान् गदान्, मस्तिष्कजागदाः सर्वे इत्यादि।

स्वर्गीय श्री भट्टजी ने भी---

मज्जानो हविषि दशांगुलस्य किंचित्संभ्रष्टाः पुनरुषिताः रसे सितायाः।

पीयूषादपि रुचिमद्भुतां दधाना मस्तिष्कं सपदि विशिष्य वृंहयन्ति।

यहाँ मस्तिष्क शब्द भी मस्तुलुङ्ग बोधक ही है, उसकी क्षयावस्था के लिए ही यह कितना सुन्दर वृंहण-प्रयोग है। आचार्य कार्तिक ने भी अपीनस के वर्णन में मस्तुलुङ्ग शब्द का वर्णन किया है---

मस्तुलुङ्गोचितः श्लेष्मा यदा पित्ताद् विदह्यते।
तदासृक्पिच्छिलं नासा वहुसिंघाणकं स्रवेत्। इति।

अर्थात्---मस्तुलुङ्ग स्थित श्लेष्मा जब पित्त से विदग्ध हो जाता है, तब नाक से रक्तमिश्रित पिच्छिल कफ अधिकता से निकलता है।

---o---

डा० धीरेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय

(एक अन्तर्वेदना)

श्रीमती शान्तिमयी देवी और श्रीमती ज्योतिर्मयी देवी

हमारा सोने का संसार जिस अपूरणीय क्षति के कारण तहस-नहस हो गया है, भाषा के माध्यम से उस क्षति के विराट् स्वरूप को व्यक्त नहीं किया जा सकता। फिर भी, हमारी सबसे बड़ी सान्त्वना यह है कि स्वर्गीय पिताजी हमारे परिवार के ही अन्तर्गत सीमाबद्ध नहीं थे; भारतीय चिकित्सा-जगत् उनके असीम ज्ञान-सागर की उदात्त वारिधारा से प्लावित था। अपने ज्ञान-तपस्वी पिता के ज्ञान की सीमा निर्धारित करने की क्षमता हमें बिन्दुमात्र नहीं है। उनका वह दिव्य तेज, भारतीय चिकित्सा-शास्त्र के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। अपने परमादरणीय पितृदेव को हमने अपने बीच तथा अपने सुदूर परिव्याप्त आत्मीय-स्वजनों के बीच कितना अपना, कितना घनिष्ट पाया है, यही बात हमें इस दारुण दुःख के समय याद आ रही है।

हमारी स्वर्गीया पुण्यवती माता ने मात्र ३२ साल की उम्र में १९३९ साल में अपनी प्राणापेक्षा प्रिय सन्तानों, स्वामी एवं परिवार को छोड़कर स्वर्गारोहण किया था। उस दिन हमने, मातृहीन एक वृन्त के दो फूलों ने, असीम दुख के बीच अपने प्रिय पिता की गोद में गम्भीर सान्त्वना पायी थी। उस समय पिताजी को देखकर हमें ऐसा लगा, मानों वे संन्यासी के समान सर्वरिक्त हो गये हैं। माताजी के प्रति पिताजी का प्रेम कितना गम्भीर था, इसकी कोई तुलना नहीं है। सुदूर यूरोप-यात्रा में भी हमारी माता ने पिताजी का साथ दिया था। माताजी की मृत्यु के ठीक दो महीने बाद हमारी दादी भी स्वर्ग सिधार गयीं। दादीजी के प्रति पिताजी की अविचल भक्ति और श्रद्धा थी। उनकी सभी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए पिताजी सदैव सचेष्ट रहते थे। भारत के प्रत्येक तीर्थ-स्थान का दर्शन पिताजी ने दादीजी को कराया था और तीर्थ-यात्रा में दादीजी को कोई कष्ट न हो, इस ओर भी उनकी सदैव सतर्क दृष्टि रहती थी। उन दिनों की तीर्थ-यात्रा इतनी आसान नहीं थी; अतएव दादीजी जब कभी किसी दुर्गम तीर्थ की यात्रा करने की इच्छा प्रकट करती थीं, तब उनके कष्टों का खयाल कर पिताजी उनको रोकते थे। पिताजी के विदेश-प्रवास के समय दादीजी ने बद्रीनारायण और पशुपतिनाथ की यात्रा की थी और उनको कोई सूचना नहीं दी थी। उस समय पिताजी ने दादीजी को एक पत्र लिखा था :—

'मा, शान्ति की प्रत्येक चिट्ठी में तुम्हारी पशुपति-नाथ यात्रा की चर्चा रहती है, किन्तु तुम्हारी किसी चिट्ठी में उस सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं रहता। मेरे मौजूद नहीं रहने के कारण ही तुम इन सारे दुर्गम स्थानों को जाने की तैयारी कर रही हो। मेरे वापस आने के पहले ही शायद शेष सभी दुर्गम स्थानों को देख लेना चाहती हो!'

माताजी एवं दादीजी की मृत्यु के बाद पिताजी का मन संसार से विरक्त हो गया था। फिर भी, उन्होंने अपने मन की व्यथा को कभी व्यक्त नहीं किया।

पिताजी को देश-भ्रमण का जबर्दस्त शौक था। उन्होंने कार्य के सिलसिले में अथवा देश-भ्रमण के उद्देश्य से अनेक स्थानों की यात्रा की थी और हम दोनों बहनों तथा हमारे कुछ सम्बन्धियोंको भी अपने साथ ले गये थे। हम लोग जहाँ कहीं जाते, खबर पाते ही उनके अनेक छात्र और मित्र हमारे स्वागत के लिए एकत्र हो जाते। उस समय हमारे मन में होता कि इनके अध्यापक-जीवन के आरम्भ से अब तक सैकड़ों छात्र इनके हाथों से निकल-कर भारत के अनेक स्थानों पर फैले हुए हैं। वे ही पिताजी के पुत्र-तुल्य हैं। पिताजी की ज्ञान-धारा के कण-कण को उन्होंने इसी प्रकार सारे भारतवर्ष में बिखेर दिया है।

अपने विशाल कर्मजीवन के अतिरिक्त, दूर और निकट के प्रत्येक सम्बन्धी के लिए पिताजी प्राण-स्वरूप थे। हमारे सगे-सम्बन्धियों में शायद ही ऐसा कोई होगा, जो पिताजी से किसी-न-किसी प्रकार उपकृत नहीं हुआ हो। प्रत्येक व्यक्ति के साथ वे बातचीत में बड़े ही सरस थे।

मात्र चिकित्सा-शास्त्र में नहीं, वरन् रामायण, महाभारत, इतिहास, पुराण, वेद-वेदान्त, में भी उनका ज्ञान असीम था। प्रत्येक विषय का उन्होंने गम्भीरता के साथ मनन किया था और हम सबों के साथ वे अधिकतर रामायण, महाभारत, पुराण आदि की चर्चा में ही विशेष आनन्द पाते थे। उनकी ज्ञान-लिप्सा इतनी प्रबल थी, कि द्वितीय वार यूरोप-यात्रा करने के पूर्व, उन्होंने आयुर्वेद-शास्त्र के गम्भीर ज्ञान का अर्जन करने के लिए संस्कृत सीखना शुरू किया था। जर्मनी और फ्रांस में रहकर उन्होंने जर्मन और फ्रेंच भाषा की अच्छी शिक्षा प्राप्त की थी।

१९२५ ई० में उन्होंने प्रथम वार यूरोप-यात्रा की। यूरोप जाने के कुछ ही मास पूर्व इनकी Text book of pathology प्रकाशित हुई। सारे भारत में Pathology के सम्बन्ध में पिताजी द्वारा लिखित यह पुस्तक ही सर्वप्रथम है। इसके बाद ही उनकी Cholera विषयक पुस्तक प्रकाशित हुई। पिताजी सदा कहा करते थे कि "शान्ति, ज्योति मेरी दो पुत्रियाँ और Pathology, और Cholera दो पुत्र हैं। मुझे चिन्ता किस बात की।"

यूरोप से द्वितीय वार वापस आने पर आयुर्वेद-शास्त्र की उन्नति के लिए पिताजी सचेष्ट हुए। आधुनिक विज्ञान-सम्मत प्रणाली के ऊपर आयुर्वेद को सुप्रतिष्ठित करने के प्रयास में उन्होंने असाधारण परिश्रम कर अनेक संस्कृत-ग्रन्थों का मन्थन किया और अनेक आयुर्वेद सम्बन्धी पुस्तकों की रचना की, जिन को आयुर्वेद-शिक्षा-जगत् में अतुलनीय कहा जाता है। इसी प्रकार की अजस्र कर्म-धारा के मध्य पिताजी के जीवन के साठ साल परिपूर्ण हुए थे, लेकिन उनके अभाव में उनके कितने कार्य अपूर्ण रह गये, इसका कोई हिसाब नहीं है।

गत २० अप्रैल १९५४ को वे आसाम मेडिकल कालेज में एम० बी० बी० एस० की Pathology की परीक्षा लेने के लिए डिब्रूगढ़ गये थे। २२ अप्रैल के प्रातःकाल १०॥ बजे Pathology की Practical परीक्षा ग्रहण कर चाय पीने के बाद एक अन्य परीक्षक के साथ बैठकर वे परीक्षा का नम्बर दे रहे थे। ३-४ पन्ने देखने को तब भी बाकी थे कि सब कुछ शेष हो गया। हम-लोगों को दुःख के दुःसह सागर में छोड़कर हमारे प्रिय, परमादरणीय पिता सदा के लिए किसी अज्ञात लोक को चले गये। He was a born teacher and ended his life in the act of teaching. डिब्रूगढ़ मेडिकल कालेज के अध्यक्ष डा० हेमचन्द्र बड़ुआ, अन्यान्य अध्यापकों, अस्पताल के चिकित्सकों तथा सभी छात्र-छात्राओं ने उनकी स्वर्गीय आत्मा के प्रति जो सम्मान दिखाया है, वह अतुलनीय है। उनके मृत-शरीर को उत्तम रूप से संरक्षित अवस्था में विमान द्वारा कलकत्ता भेजकर हम लोगों को उन्होंने असीम कृतज्ञता-पाश में आबद्ध कर लिया है। पिताजी के अपने आर० जी० कर मेडिकल कालेज के सहकर्मियों ने उनकी दिवंगत आत्मा के प्रति पूर्ण श्रद्धा अर्पित की है। हमने जितना सुख, जितना आनन्द अपने प्रिय पिता के साथ उठाया है तथा एक साथ जो दुःख झेला है, उन सब को हम स्मरण करते हैं। पिता-माता की सफल सन्तान, पत्नी का परमादरणीय रत्न उनसे स्वर्ग में मिलने के लिए चला गया है। लेकिन, हमारा विश्वास है कि उनकी अशरीरी आत्मा हम लोग के बीच भी उपस्थित है।

---:०:---
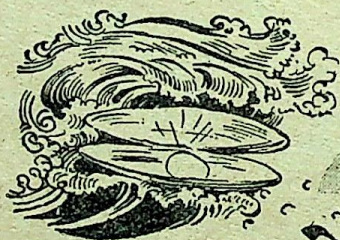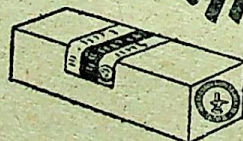
फिरंग रोग

वैद्य प्रह्लादराय रादेश्री, आयुर्वेदाचार्य

फिरंग रोग का इतिहास भारत में यूरोपियन जातियों के प्रवेश के साथ ही प्रारम्भ होता है। आयुर्वेद की वृहदत्रयी में इस रोग का वर्णन कहीं देखने को नहीं मिलता। कारण, इस रोग का प्रादुर्भाव हमारे देश में फिरंगियों (यूरोपियनों) के प्रवेश के पश्चात् ही हुआ, जिसका वर्णन तत्कालीन वैद्य श्री भावमिश्र ने अपनी संहिता भावप्रकाश में विस्तार-पूर्वक किया है। फिरंग की निरुक्ति करते हुए भावमिश्र ने लिखा है--

फिरंग संज्ञके देशे बाहुल्येनैव यद्भवेत् ।
तस्मात् फिरंग इत्युक्तो व्याधिर्व्याधि विशारदः ।।

फिरंग संज्ञक देश यूरोप में विशेषरूप से होने के कारण ही इस रोग को फिरंग संज्ञा दी गई है।

भावमिश्र ने इस व्याधि को संक्रामक Infectious मानते हुए रति-संसर्ग से इसका संक्रमण बतलाया है तथा उसका निदान इस प्रकार लिखा है--

गन्ध रोग फिरंगोयं जायते देहिनां ध्रुवम् ।
फिरङ्गिणोङ्ग संसर्गात् फिरंङ्गिण्या प्रसंगतः ।।
व्याधिरागन्तुजोह्येष दोषाणामत्र संक्रमः ।।

इस रोग को भावमिश्र ने तीन प्रकार का बतलाया है--

(१) बाह्य External or Local, (२) आभ्यन्तर Internal or syphilitic infection in blood, (३) उभयज।

बाह्य में केवल लिङ्गेन्द्रिय पर अथवा, वृषणों पर विस्फोट तथा व्रण उत्पन्न होता है, जिसमें पीड़ा भी अल्प होती है तथा सुखसाध्य होता है। आभ्यन्तर में सन्धिजाड्य एवं सर्वाङ्ग शोथ उत्पन्न होते हैं, जो कष्टसाध्य हैं। पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान की दृष्टि से फिरंग एक कीटाणुजन्य संक्रामक रोग है, जिसका कीटाणु Spirochoeta Pallida है, जो केवल रति-संसर्ग द्वारा ही संक्रमित होता है। मैथुन में होनेवाले घर्षण से जननेन्द्रिय की श्लेष्मण त्वचा में जो सूक्ष्म क्षत बनते हैं, उन्हीं से यह कीटाणु शरीर में प्रवेश करता है। इस रोग की मुख्यतः तीन अवस्थाएँ होती हैं--

(१) प्रथम व्रणावस्था Primary stage--इस अवस्था में लिङ्गेन्द्रिय पर विशेषतः शिश्नमुण्ड ग्रीवा पर तथा कभी-कभी वृषणों पर भी एक कड़ा विस्फोट उत्पन्न हो जाता है, जो फूटकर व्रण बन जाता है। इसे Hard-chancre कहते हैं। इस में पीड़ा कम होती है तथा साधारण लसिका का स्राव होता है। इस व्रण के साथ-ही-साथ व्रण-स्थान से सम्बन्धित लसिका-ग्रन्थियों का शोथ तथा पाक भी हो जाता है, जिसे प्राथमिक वद या Primary Bubo कहते हैं।

(२) द्वितीय अवस्था Secondary stage--इस अवस्था में सारे शरीर पर ताम्रवर्ण के रक्तविस्फोट त्वचा पर निकल आते हैं, जो मसूरिका विस्फोटों के सदृश प्रतीत होते हैं। ये विस्फोट बहुधा समानान्तर अर्थात् दोनों ओर की शाखाओं पर समानरूप के होते हैं। इसके अलावा कुछ रोगियों में इस अवस्था में मुख में व्रण, भयंकर मुखपाक, नासा में शोथ तथा कोथ हो जाता है एवं नासा सड़ गलकर गिर जाती है। नेत्र में तारामण्डल शोथ Iritis तथा दृष्टि वितान शोथ Retinitis आदि भी हो जाते हैं।

(३) तृतीयावस्था Third stage--इस अवस्था में विशेष रूप से शरीर के बाह्य तथा कभी-कभी आभ्यन्तर अङ्गों में भी गोन्दार्बुद Gumma उत्पन्न हो जाते हैं। विशेषतः त्वचा-उपत्वचा पेशियाँ, यकृत, वृक्क, वृषण, आमाशय, मस्तिष्क, रक्तवाहिनियाँ और अस्थियाँ ये इनके मुख्य अधिष्ठान हैं। आकार में ये मटर से लेकर सन्तरे के बराबर तक होते हैं।

सन्धियों में शोथ एवं जाड्य उत्पन्न होकर सन्धियों की गति अवरुद्ध हो जाती है।

(४) चतुर्थ अवस्था या नाड़ी फिरंग Neuro syphilis--इस अवस्था में नाड़ी तथा मस्तिष्क-संस्थान के लक्षण यथा पागलपन Insanity, सर्वाङ्ग-घात तथा खञ्जता आदि वात-विकार उत्पन्न होते हैं। फिरंग के उपरोक्त प्रकारों के अलावा बालक में जन्म से ही फिरंगजन्य कुछ विकार उत्पन्न होते हैं, जिसे

सहज फिरंग कहते हैं। यह विकार बच्चे में माता-पिता के फिरंगग्रस्त होने के पश्चात् उसके जन्म होने पर ही होता है। सहज फिरंग-ग्रस्त बालक का या तो ऊपर का होंठ जन्म से ही बीच से द्विधा विभक्त होता है, अथवा उसके तालु में छिद्र होता है अथवा नासा की हड्डी बैठी हुई Saddle nose होती है अथवा दाँतों के किनारे पर करवत के दाँतों सदृश दाँते होते हैं। इस प्रकार बालकों में बहुधा जन्मजात विकार होने का प्रधान कारण फिरंग रोग ही है

फिरंग की चिकित्सा--फिरंग के निदान तथा लक्षण के साथ-ही-साथ भिषग्वर भावमिश्र ने इस नवागन्तुक रोग की चिकित्सा का अनुसन्धान कर आयुर्वेद के विशाल दृष्टिकोण, समावेश क्षमता, समन्वयात्मक वृत्ति एवं अन्वेषण-प्रियता का परिचय दिया है। ज्यों ही इस नूतन रोग का देश में पदाक्रमण हुआ, भावमिश्र ने तुरन्त ही इसकी चिकित्सा में पारद तथा मल्ल की उपयोगिता का अन्वेषण कर दिया। भावमिश्रोक्त रस कर्पूर तथा पारद एवं मल्ल के अन्य अनेक यौगिक इस रोग को नष्ट करने में पूर्ण उपयोगी सिद्ध हुए हैं। हरताल भस्म, मल्ल पुष्प इन सोमल के योगों का समुचित प्रयोग इस रोग में सत्वर लाभकारी है। भैषज्यरत्नावली का अष्टमूर्ति रसायन तथा "वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन" द्वारा निर्मित 'अमीर रस' इस रोग की चारों अवस्था में पूर्णतः सफल सिद्ध हुआ है। पूज्यपाद आचार्य यादवजी त्रिकम जी कृत सिद्धयोग संग्रहोक्त 'सवीरवटी' इस रोग में आशुलाभकारी है। स्वर्णक्षीरी का सूचीवेध एकान्तर दिवस में प्रयोग करने से, रोगी को प्रथमावस्था में बहुत ही शीघ्र लाभ पहुँचाता है। स्थानीय प्रयोग के लिए कज्जलिकोदय मल्हर अत्यन्त लाभदायक है तथा फिरंगज व्रण का शीघ्र ही रोपण कर देता है।

पाश्चात्य चिकित्सा--पाश्चात्य चिकित्सा में भी आयुर्वेद के समान ही पारद् सोमल तथा बिस्मथ (चपल या भिदातु) इन तीनों धातुओं से चिकित्सा करने का विधान है। सोमल तथा बिस्मथ के योग बहुधा सूचीवेध के रूप में व्यवहृत होते हैं। बहु प्रचलित तथा सफल इन्जेक्शनों में N. A. B, Salversion, Neosalversion, sulphursinol, बिसेरोल, बिस्मोक्टाव आदि हैं। फिरंग की प्रारम्भिक अवस्था में Penicillin का प्रयोग भी अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ है। पारद का प्रयोग आजकल पाश्चात्य चिकित्सा-क्षेत्र में बहुत ही कम होता है, कारण कि मुख द्वारा इसका प्रभाव विलम्ब से होता है तथा इसका सूचिकाभरण अत्यन्त पीड़ादायक होता है। इस हेतु आज कल इस रोग की चिकित्सा में सोमल तथा विस्मथ का साथ-साथ प्रयोग करने की विधि ही अधिक प्रचलित है। पारद का प्रयोग मल्हर के रूप में बाह्य उपयोग के हेतु ही अधिक होता है।

--०--

(पृ० ११७४ का शेषांश)

पाश्चात्यों के अन्धानुकरण का प्रमाण अधिक है; इसलिए वहाँ शारीरिक ह्रास और दंतादि रोगों के प्रमाण की मात्रा भी किसी प्रकार कम नहीं है। श्री आनंदवर्धन के **"दूध का स्थान चाय ने लिया"** शीर्षक लेख में, भारत सरकार की सन् १९५१ की जनगणना संबंधी बृहद् रिपोर्ट के आधार पर पंजाबियों के शारीरिक ह्रास के बारे में जो उल्लेख दिया गया है, वह भी हमारे उक्त कथन के प्रमाण की पूर्ति के लिए पर्याप्त है। फिर भी हमारी सरकार की आँखें खोलने के लिए प्राचीन शास्त्र के आधार पर दिये गये उक्त प्रमाण यदि पर्याप्त प्रकाशदायी नहीं ठहरते हों, तो उसके लिए हम अपनी सरकार को इस लेख के द्वारा यह खुला आह्वान देते हैं कि वह किसी भी बड़े-से-बड़े डॉक्टर को हमारे उक्त कथन की अयथार्थता-असत्यता सिद्ध कर दिखाने के लिए नियुक्त करे, अन्यथा हमें उसकी सत्यता को जगत् के समक्ष सिद्ध कर दिखाने की सुविधा दें।

राज्य तथा राष्ट्र की सरकारें--हमारे प्राचीन आरोग्य शास्त्र--आयुर्वेद का संशोधन जिस प्रकार तथा जिन पाश्चात्य वैद्यक-विज्ञान-विभूषित व्यक्तियों के द्वारा करवाने जा रही है और जिसके पीछे इस गरीब देश की जनता लाखों की धनराशि अब तक खर्च कर चुकी है, उस कार्य के सूत्रधारक एलोपेथी-विज्ञान-संपन्न उन काले रंग के सफेदपोश हाथियों से भी इस बारे में जवाब तलब करे कि क्या वे अपने संशोधनात्मक ज्ञान के बल पर, उपरोक्त विषय में किसी प्रकार भी स्पष्टीकरण करने की योग्यता रखते हैं? और यदि वे इस प्रकार के आहार को पहचानने के ज्ञान की योग्यता से सर्वथा हीन हैं, तो उन्हें इस देश का अर्थक्षय करने का क्या अधिकार है? उनके इन कार्यों से तो हमारे राष्ट्र की जनता की शारीरिक एवं आर्थिक दोनों ही संपत्तियों का सर्वनाश होना निश्चित है। नात्मार्थं नापिकामार्थ अथ भूतदयांप्रति, शास्त्रं ज्योतिर्प्रकाश्यामः।

--०--
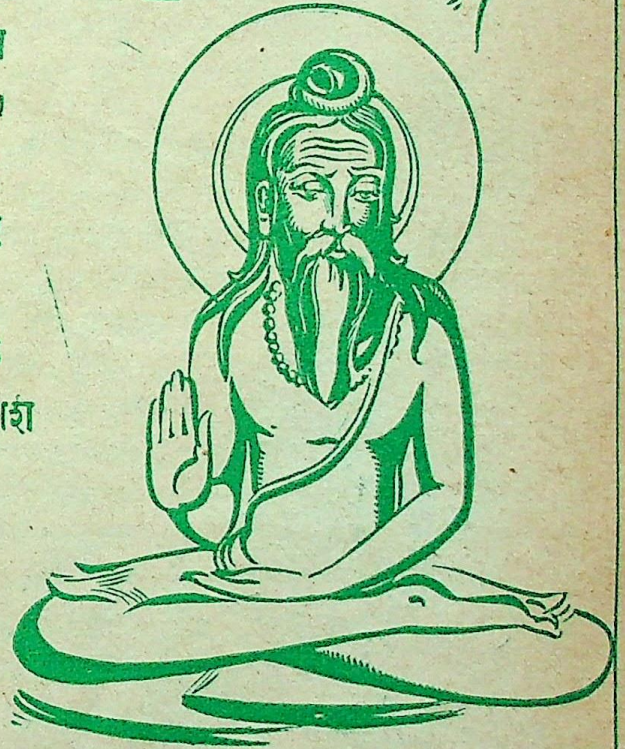
खाद्य-विधान में वैज्ञानिक दृष्टिकोण

और

उसके अहितकारक परिणाम

श्री किशोरदास भा० गुप्त

नित्य नूतन रोगों तथा रोगियों की वृद्धिवाले इस युग में यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि शारीरिक ह्रास को रोककर, शरीर को बलशाली, पुष्ट तथा रोगक्षम बनाया जाय। इस दिशा में आयुर्वेद और एलोपैथी के जानकारों के अतिरिक्त कई भिन्न पद्धतियों के ज्ञाता और विचारधारावाले अपनी समझ और शक्ति के अनुसार प्रयत्नों में लगे हुए हैं। गतांक में छपे बिहार के राज्यपाल मा० दिवाकरजी तथा अन्य कई सज्जनों के स्वास्थ्यवर्द्धक लेख, इसके उदाहरण हैं। किन्तु हमें यह जानकर अत्यन्त आश्चर्य और खेद हुआ कि हमारे राष्ट्र की आरोग्य मंत्रिणी महोदया भारत के प्राचीन खाद्य-विधान का सर्वथा परित्याग कर पाश्चात्य खाद्य-विधान को अपनाने के पक्ष में अधिकाधिक झुकती चली जा रही हैं। इसलिए हम यह स्पष्टता से कहना चाहते हैं कि यदि भारतवर्ष में पाश्चात्य खाद्य-विधान का अवलंबन किया गया, तो वही दुर्गति होगी, जो आज अमेरिका-जैसे सघन एवं साधन-सम्पन्न राष्ट्र की बड़े-बड़े रोगों की प्रगति के कारण हुई। हम देख रहे हैं कि उससे भी अधिक दुःखदायी-परिस्थिति हमारे इस गरीब देश को भोगनी होगी। "वहाँ नाड़िमंडल और मस्तिष्क-विकार के रोगियों की संख्या में आज जैसी वृद्धि हुई और होती जा रही है, वैसी पहले कभी नहीं हुई थी और केन्सर-जैसा प्राण-घातक भयंकर रोग जिस प्रकार अपना कदम आगे बढ़ाता चला जा रहा है, उसकी तो उन्हें पहले कभी स्वप्न में भी कल्पना नहीं हो पाई थीं।

जिस पाश्चात्य खाद्य-विधान ने हमारे देश-नियंताओं में आज इतना आकर्षण पैदा कर दिया है, उसका मूल कारण वहाँ के संशोधकों ने अपनी अगणित खोजों के द्वारा, खाद्य पदार्थों का पृथक्करण करते हुए, प्रोटीन, चरबी, (फैट) कार्बोहाइड्रेट, स्टॉर्च, विटामिन, केलोरी, क्षार, लौह, केलशियम आदि तत्त्वों की जो प्राप्ति की है, वही है। इन्हीं तत्त्वों के आधार पर उनके ज्ञाता लोग यह निश्चित करके बतला सकते हैं कि अमुक तत्त्वोंवाला आहार शरीर म पुष्टता लानेवाला और रोगों का प्रतिकारकर्त्ता है। इसी दृष्टिकोण को लक्ष्य कर भारत के अन्य सभी प्रान्तों की जनता की अपेक्षा अपनी शारीरिक निर्बलता या ह्रास का सब से अधिक अनुभव करनेवाले गुजरातवासियों की शारीरिक अवस्था का सुधार करने और उनमें पुष्टता, रोगक्षमता आदि की वृद्धि करने के लिए १९३६ में **"गुजरात संशोधन मंडल"** नामक संस्था की बम्बई शहर में स्थापना हुई, जिसने लाखों रुपये और समय का व्यय करके बम्बई शहर में गुजरात, कच्छ, काठियावाड़ (सौराष्ट्र) वासियों के कई परिवारों की खाद्य-स्थिति का सन् १९४१ में सूक्ष्म निरीक्षण किया और उस पर से निष्कर्ष निकालते हुए आहार की आदर्शपद्धति का सुझाव सन् १९४६ में दिया। उक्त सुझाव भारत के व अन्य पाश्चात्य देशों के सुप्रसिद्ध डॉक्टरों और संशोधक महानुभावों की प्रयोगशाला जनित शोधों के आधार पर अवलम्बित होने से, उसे पाश्चात्य खाद्य-विधान का पूर्णतया समर्थक मानने में कोई भी आपत्ति नहीं है। इसलिए उसमें बालकों के आहारक्रम का सुझाव करते हुए जिन खाद्य-पदार्थों के नित्यप्रति उपयोग करने का सुझाव दिया गया है, उनका भारतीय प्राचीन आहारक्रम पर, आयुर्वेद की दृष्टि से सूक्ष्म विचार करना परमावश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य है। इतना ही नहीं, प्राचीन शास्त्र ने यदि उसे अहितकारक बतलाया हो, तो प्रयोगों के अंकबद्ध प्रमाण सहित उनको वैसा (अहितकारक) प्रत्यक्ष में सिद्ध कर दिखाना भी हम अपना परम पवित्र कर्त्तव्य समझते हैं। कारण, पदार्थ द्रव्यों के यथार्थ गुण-दोष के दर्शक लेबोरेटरी---प्रयोगशाला---में प्राप्त अथवा प्रयोगों द्वारा सिद्ध तत्त्व ही नहीं हो सकते हैं। उसके लिए तो भिन्न-भिन्न पदार्थों का मिश्रण व उनका पचन तंत्रगत अन्य अनेक गुणधर्मवाले एवं विषय प्रकृति के तत्त्वों का पुनः संयोग व उसका कालांतर (वर्षानुवर्ष) में होनेवाला शरीरगत

परिणाम आदि अनेक सूक्ष्म बातों का अनुभव-पूर्वक विचार करना परम आवश्यक होता है। इस प्रकार सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार करने की शक्ति आयुर्वेदशास्त्र के अतिरिक्त अन्य किसी भी वैद्यक-पद्धति में विद्यमान नहीं है। इसीलिए, आयुर्वेदोक्त प्राचीन ज्ञान के प्रचार के अभाव में आधुनिक विज्ञान का केवल अंधानुकरण करनेवाली दुनिया का प्रवाह, आरोग्य-प्राप्ति की आशा में, जिस घोर अंधकार की दिशा में अत्यन्त वेगपूर्वक बहता चला जा रहा है, वह यथार्थ में वैसी (आरोग्यदायक) नहीं है। वह तो, एक ऐसी दिशा है, जिसमें कैन्सर-जैसे भयावने एवं उत्कट रोगों के निर्माता, हलाहल विषवाले अनेक गढ़े भरे पड़े हैं, जो उसकी ओर जानेवालों को, कालांतर में, अनेक प्रकार की यातनाओं का भोग कराते हुए, अन्त में मृत्युमुख में ढकेले बिना रहने ही नहीं देते। हमारे देश के सुशिक्षित एवं सुधारवादी समाज ने आज जिस खाद्य-विधि को प्रायः अपना रखा है, क्या उसे पाश्चात्य एवं पौर्वात्य खाद्य-विधि का मिश्रण नहीं कहा जा सकता है? और जब वही इतनी दुःखदाई हो पड़ी है, जिसके कारण केन्सर-जैसा रोग हमारे यहाँ भी ठीक-ठीक प्रगति करता चला जा रहा है, तब उसका अनुकरण क्या नहीं कर दिखाएगा?

केन्द्रीय सरकार भारत के प्राचीन खाद्य-विधान में पश्चिम के रंग-ढंग पर जिस तरह परिवर्तन करना चाहती है, उसीके कुछ अंश का दिग्दर्शन विहार के राज्यपाल माननीय श्री दिवाकरजी ने "छेने का पानी" शीर्षक लेख में मुख्यतया "प्रोटीन" तत्त्व को लेकर किया है। कारण, पाश्चात्य विज्ञान के संशोधकों के मतानुसार शरीर को पुष्ट करने में उक्त तत्त्व एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया करता है। इसी दृष्टि से गुजरातवासियों के शरीर में पुनः पुष्टता लाने के लिए "गुजरात संशोधक मंडल" ने जिन-जिन पदार्थों के उपयोग को, नित्यप्रति के आहारक्रम में, आवश्यक माना है, उन्हीं के बारे में आयुर्वेद का सुझाव उससे सर्वथा उलटा क्यों है और उसके लिए आयुर्वेद ने किन-किन सबल कारणों का स्पष्टीकरण किया है, तथा उनके नित्यप्रति के उपयोग को अहितकारक (भयंकर रोग कारक) क्यों ठहराया है, आदि बातों का शास्त्र-प्रमाण सहित विवेचन यहाँ किया जा रहा है।

गुजरात संशोधक मंडल द्वारा मांसाहारी तथा शाकाहारी आहार क्रम का जो कोष्टक दिया गया है, उसमें सुबह ६ बजे से लगाकर रात के ८ बजे तक के समय का विभाजन ४ भागों में किया गया है। और प्रत्येक समय में किन-किन वस्तुओं का एक ही साथ भोजन में उपयोग किया जाय, उसको भी विस्तार से बताया गया है। सुबह ६ बजे, दूध के साथ केला या अन्य फल; सुबह के नास्ते के समय, दूध के साथ मछली या अंडा और मैदे की डबल रोटी; दोपहर के भोजन के समय दूध या दही के साथ मछली, भेड, मुर्गी का मांस और भेड़ की कलेजी आदि। तीसरे पहर की चाय के समय, दूध के साथ मैदे की डबल रोटी तथा मक्खन और मधु एवं फल आदि। रात्रि के समय यदि भूख मालूम दे, तो फिर दूध और केला या अन्य फल देने का सुझाव दिया है। शाकाहारियों के लिए दही के साथ तथा नव अंकुरित धान्य के साथ दूध का उपयोग करने का सुझाव भी दिया गया है; क्योंकि इनके प्रोटीन से शरीर की पुष्टि होती है, तो विटामिन से रोगों का प्रतिकार होता है। उनमें विद्यमान केलोरी आदि उनके योग्यायोग्य माप की सूचक हैं। इन सभी तत्त्वों की शरीर को यथायोग्य प्रमाण में प्राप्ति होती रहे, इस दृष्टि से इन पदार्थों का सेवन यद्यपि परमोपकारक माना गया है, तथापि प्राचीन आरोग्यशास्त्र की दृष्टि से उनके इस प्रकार एक ही समय के सेवन को अहित-कारक अर्थात् कालांतर में भयंकर या उत्कट रोगों का स्रष्टा बतलाया गया है। इतना ही नहीं, बल्कि उनके नित्य-प्रति के एकाकी उपयोग को भी रोगोत्पादक कहा और निषिद्ध बतलाया है। यथा :—

संयोगतस्त्वपराणि विषतुल्यानि भवन्ति। तद्यथा-वल्लीफल कत्रककरीराम्लफल लवण कुलत्थ पिण्डयाक दधितैलाविरोहि पिष्ट शुष्कशाकाजालिवक्र मांस मद्य जाम्बव चिलिचिम मत्स्य गोधावराहांश्च नैकध्यमश्नीयात् पयसा ॥७॥ अतोऽन्यान्यपि संयोगादहितानि वक्ष्यामः :—

नवविरूढधान्यैर्वसामधुपयोगुडमाषैर्वा ग्राम्यानूपौदकपिशतादीनि नात्रभ्यवहरेत्... पित्तेन चाममांसानि, सुराकृशरा पायसांश्च नकध्यं;... मत्स्यैः सहेक्षुविकारान्, ... गुडेन वाराहं मधुना च सह विरुद्धं, क्षीरेण मूलकमाजाम्बवश्वा विच्छूकरगोधाश्च; सर्वांश्च मत्स्यान् पयसा... कदलीफलं तालफलेन पयसा दध्ना तक्रेण वा, लकुचफलं पयसा दध्ना माषसूपे न वा, प्राक् पयसः पयसोऽन्ते वा ॥१२॥

[illegible] के सूत्रस्थानान्तर्गत "हिता हितीय"

नामक अध्याय में दिये गये, उपर्युक्त वर्णन में, (१) लताओं पर लगने वाले खरबूज, ककड़ी, कद्दू, लौकी आदि फल, (२) छत्रक, (३) बांस के वृक्ष के अंकुर, (४) नीबू, टमाटर, इमली, नारंगी, मोसम्बी आदि खट्टे फल, (५) नमक, (६) कुलथी (७) खली, (८) दही, (९) तेल, (१०) नवांकुरित धान्य, (११) पिट्ठी या गेहूँ के मैंदे के बने हुए पदार्थ, (१२) सूखे शाक, (१३) भेड़ का मांस, (१४) मद्य, (१५) जामुन, (१६) चिलिचिमा मत्स्य, (१७) गोधा, और शूकर का मांस आदि पदार्थों में से किसी एक के साथ दूध का मिश्रण करके अथवा दूध और उक्त कोई पदार्थ एक ही समय भोजन में लेने से उसका परिणाम "विष" के सदृश होता है। यह भी कहा गया है कि (१) नवांकुरित धान्य के साथ भेड़, गाय, बैल आदि किसी भी ग्राम्य पशु का अथवा भैंस, सूअर आदि किन्हीं जलसंचारी जीवों का या मछली आदि पानी में रहनेवाले किन्हीं जीवों का मांस नहीं खाना चाहिए। नवांकुरित धान्य के साथ उक्त किसी भी प्राणी का मांस जिस प्रकार वर्ज्य है, उसी प्रकार चर्बी, मधु, शहद, दूध, गुड़ और उड़द आदि चीजों के साथ भी मना है। (२) किसी भी प्राणी के पित्त के साथ मांस नहीं खाना चाहिए। (३) दूध के साथ खिचड़ी या मद्य (शराब) नहीं लेना चाहिए। (४) ईख की कोई भी चीज; यथा—शक्कर गुड़ आदि के साथ मछली नहीं खानी चाहिए। (५) सूअर का मांस, गुड़ या शहद के साथ नहीं खाना चाहिए। (६) दूध के साथ मूली, आम, जामुन, खरगोश, सूअर या गोधा का मांस नहीं खाना चाहिए। (७) दूध के साथ मछली नहीं खानी चाहिए। (८) केले के साथ तालफल, दूध, दही या छाछ नहीं खाना चाहिए। (९) लकुचफल के साथ दूध, दही या उड़द की दाल का यूष नहीं लेना चाहिए। इन चीजों का मिश्रण अहितकारक बतलाया गया है। वाग्भट के सूत्रस्थान में तो उपर्युक्त वर्णित द्रव्यों में से कुछ पदार्थों के एकाकी तथा नित्य सेवन को भी अहितकर बतलाया गया है। यथा :—

किलाट दधि कूर्चिकाक्षार शुक्राममूलकम्।
कृशशुष्क वराहाविगो मत्स्य महिषामिषम् ॥४०॥
माषनिष्पाव शालूक बिस पिष्ट विरूढकम्।
शुष्कशाकानि यवकान् फाणितं च न शीलयेत् ॥४१॥

इस श्लोक में वर्णित चीजें रक्त में दोष पैदा करनेवाली होती हैं; अतः उनका नित्य का सेवन वर्ज्य है। इस विषय का अधिक स्पष्टीकरण सुश्रुत-संहिता में निषिद्ध अन्न का वर्णन देते हुए किया गया है। इसमें उपर्युक्त पदार्थों में से कुछ को तो पूरा निर्माण करनेवाला बताया गया और बाँकी पदार्थों के लिए "प्रभृतीन्" शब्द का उल्लेख किया है। यथा :—

नवधान्य माष तिलकलायकुलात्थ निष्पाव हरितकशाकाम्ल लवण कटुक गुडपिष्टविकृतिवल्लूर शुष्क शाकाजाविकानूपौदकमांसवसाशीतोदक कृशरापायसदधि दुग्धतक्र प्रभृतीन् परिहरेत् ॥१५॥ तक्रान्तो नवधान्यादिर्योऽयं वर्ग उदाहृतः। दोषसंजननेनाऽलेष विज्ञेयः पूयवर्धनः ॥१६॥

वाग्भट एवं सुश्रुत दोनों ही ग्रंथों के उपर्युक्त वर्णन में पिट्ठी (मैंदे के बने हुए पदार्थ, यथा डबल रोटी आदि) दही, उड़द, चौलाई, और सुखाए हुए शाक-भाजी आदि पदार्थ शाकाहारियों के लिए और भैंस, सूअर, मछली, भेड़ आदि के मांस का नित्यप्रति सेवन मांसाहारियों के लिए निषिद्ध माना गया है।

चरक-संहिता में यद्यपि सुश्रुत के समान अधिक स्पष्टता पूर्ण संयोगजनित विष तुल्य पदार्थों की सूची प्राप्त नहीं होती, तथापि ये मिश्रण शरीर के घटन-विघटन में किस प्रकार शनैः शनैः कार्यकारी हुआ करते हैं, या उनके द्वारा निर्माण होनेवाले रोग उत्कट या घोरतम क्यों हुआ करते हैं, इन सब परिस्थितियों के कारणों का अधिकता से स्पष्टीकरण करते हुए, उनसे कालांतर में पैदा होनेवाले रोगों के नामों का विशेष विस्तार से वर्णन दिया गया है। मछली और दूध के एक ही समय में सेवन करने से शरीर में होनेवाले परिणाम और उसकी अहितकारकता आदि का वर्णन उदाहरण के लिए यहाँ दिया जाता है :—

नमत्स्यान्पयसासहाभ्यवहरेत्। उभयं ह्येतन्मधुरंमधुरविपाकान्महाभिष्यन्दि शीतोष्णत्वाद्विरुद्धवीर्यं विरुद्ध वीर्यत्वाच्छोणितप्रदूषणाय महाभिषन्दित्वान्मार्गोवरोधाय च ॥९२॥ ...सहिमहाभिष्यन्दितमत्वात्स्थूल लक्षण तरानेतान् व्याधीनुपजनयत्याम् विषमुदीरयति च ॥९४॥ (च. सू. अ. २६)

शरीर के लिए अहितकर्त्ता-घोरतम रोग के निर्माता—ये क्यों होते हैं, इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है कि छोटे-मोटे या साधारण रोग-निर्माण करने की लिए तैयार हुए दोषों को शरीर से बाहर निकलने में भी यह (संयोग जनित विष) बाधक हुआ करता है और इस प्रकार

प्रकोप को प्राप्त हुए दोषों के संचय की वृद्धि करनेवाला भी होता है; यथा—

यत्किञ्चिद्दोषमुत्क्लिश्य न निर्हरति कायतः। आहार-जातं तत्सर्वमहितायोपपद्यते ।।११०।। (च. सू. अ. २६)

उदाहरणार्थ उत्पन्न होनेवाले रोग

षाण्ढयान्ध्यवीसर्पदकोदराणां विस्फोट कोन्मादभगन्दराणाम्। मूर्च्छामदाध्मान गलग्रहाणां पाण्ड्वामयस्याम विषस्य चैव ।। किलासकुष्ठ ग्रहणी गदानां शोषास्रपित्त ज्वरपीनसानाम्। सन्तानं दोषस्य तथैव भृत्योर्विरुध्दमन्नं-प्रवदन्ति हेतुम् ।१११। एषाञ्च खलु परेषाञ्च वैरोधिक निमित्तानां व्याधीनाम् ।।११२।। (च. सू. अ. २६)

संयोग-जनित विष तुल्य बननेवाले आहार के गुणधर्म का उल्लेख करते हुए ऊपर उसके स्रोधसोरोध कारक एवं रक्तदुष्टिजनक होने का चरक-संहिता में जो वर्णन दिया गया है, क्या उसे ज्यों-का-त्यों आधुनिक विज्ञान-संपन्न युग में भी, सिद्ध कर दिखाया जा सकता है? यदि ऐसा हो सकता हो, तो उसको प्रत्यक्ष में सिद्ध कर दिखानेवाली योजना भी उतनी ही ठोस होनी चाहिए, जितनी कि उनकी उपादेयता को (facts and figurs) में सिद्धकर दिखानेवाली पाश्चात्यों की योजनाएँ होती हैं। इस सम्बन्ध में गम्भीरता से व सूक्ष्मतापूर्वक विचार करने पर हमारे सामने प्रचलित रोगों में से दाँत के अधिकांश रोग ऐसे नजर आते हैं, जो प्रायशः रक्त की दुष्टि से सम्बन्ध रखनेवाले होते हुए थोड़-बहुत अंश में स्रोतसोरोध के रखनेवाले भी हैं। उदाहरणार्थ :—

(१) शीताद···कफशोणित संभवः ।।१५।।
(२) दंतपुप्पुट···कफरक्तनिमित्तजः ।।१६।।
(३) दंतवेष्ठ···दुष्ट शोणित सम्भवः ।।१७।।
(४) शौषिर···कफरक्तजः ।।१८।।
(५) परिदर···पित्तासृक्कफजः ।।२०।।
(६) उपकुश···पित्तरक्तकृतः ।।२२।।
(७) अधिमांसक महाञ्छोथा कफकृतः ।।२५।।
(८) कृमिदन्त ससंरम्भी वाताद्विज्ञेयः ।।२६।।
(सु. नि. अ. ७६)

उक्त रोगों में से दंतपुप्पुट तथा शौषिर (Gum boils) कृमिदंत (Cavity) और आधिमांसक (Wisdom tooth ache) आदि दाँत या मसूड़ों के जिन रोगों में रोगी वेदना का अनुभव कर रहा है, ऐसे रोगी प्राथमिक प्रयोग के लिए अधिक उपयुक्त ठहर सकते हैं; क्योंकि उनकी वेदना की न्यूनाधिकता स्वयं ही उसके प्रमाण की पूरक बन सकती है। ऐसी अवस्था के रोगियों को जब पाश्चात्य खाद्य-विधि द्वारा निश्चित उक्त मिश्रणवाले किसी आहार पर रखा जाय तथा उनकी वेदना या शोथ आदि के निवारण के लिए डाक्टरी उपायों का अवलंबन किया जाय, तब प्राचीन शास्त्रों के वर्णित उक्त कथन की यथार्थता का भली प्रकार पता लग सकता है। इतना ही नहीं, अपितु इससे यह भी सिद्ध कर दिखाया जा सकता है कि दाँत के रोगों की उत्पत्ति में केलशियम एवं विटामिन "सी" की केवल न्यूनता ही उसका मुख्य कारण है, या नहीं। इसके अलावा नीबू टमाटर, नवअंकुरित धान्य, दूध, दही, संतरा, मोसंबी आदि पदार्थ उनकी आहारगत कमी की पूर्त्ति के साधन हैं या नहीं। इन सब का या इनमें से किसी एक का सेवन चालू रखने पर भी (उक्त मिश्रणवाले आहार के बिना भी) रोग नष्ट होने के बजाय और भी अधिक तीव्रता से बढ़ता हुआ दिखलाई देने का हमें अब तक अनुभव हुआ है।

इस प्रकार की वस्तुस्थिति के बारे में आज हमारे पास वर्षों का अनुभव मौजूद है। इसके अतिरिक्त इस देश की जनता का शरीर तथा आहार अमेरिका, इंग्लैण्ड, आदि पाश्चात्य देश वासियों की तुलना में अधिक सत्त्वहीन होने पर भी दंतस्वास्थ्य के बारे में अब भी उन देशों की जनता से हम बहुत कुछ अंशों में बढ़े-चढ़े हुए हैं। पाश्चात्य विज्ञानविद् भी इसी बात को असंदिग्ध रीति से आज स्वीकार कर रहे हैं, जिसका उल्लेख उसी पाश्चात्य वैद्यक-विज्ञान से विभूषित डॉ० के० एम० चोकसी, अहमदाबाद ने 'सचित्र आयुर्वेद' के गतांक में स्पष्टता से किया है। डॉ० चोकसी ने, भारत की जनता के उच्चतर दंतस्वास्थ्य का श्रेय यद्यपि इस देश के आरोग्य-शास्त्रगत दंतधावन-विधि तथा अन्य स्थानिक उपायों को, अपने पाश्चात्य दृष्टिकोण के आधार पर, देने का प्रयत्न किया है, तथापि हमारे यहाँ का दंतस्वास्थ्य संबंधी इतिहास, तो आज भी स्पष्टतापूर्वक यह सिद्ध कर रहा है कि जहाँ-जहाँ पाश्चात्यों की उक्त विकृत आहार-पद्धति का अंधानुकरण हुआ है, वहाँ शारीरिक ह्रास के साथ-साथ दंतरोगों तथा अन्य रोगों के रोगियों की संख्या में वृद्धि ही हुई है। उदाहरण के लिए गुजरातियों में व बम्बई शहर के अन्य वासियों में

(शेषांश ११७० पृष्ठ पर)

स्वास्थ्य और भोजन

श्री अत्रि

"नराणान्नाप्यविज्ञानादाहारमुपयोजयेत् ।
परीक्ष्य हितमश्नीयात् देहोह्याहार संभवः ।।"
--अत्रिपुत्र

ऋषि अत्रिपुत्र ने भैषज्य चतुष्क के पीछे स्वास्थ्य चतुष्क नाम से चार अध्याय चरक-संहिता में दिये हैं। इन में सब से प्रथम अध्याय का प्रारम्भ ऋषिपुत्र ने इस प्रकार से किया है—

"मात्राशीस्यादाहार मात्रा पुनरग्निबलापेक्षिणी"

मात्रा में खाये आहार की मात्रा अग्नि-बल की अपेक्षा करती है। अग्नि-बल प्रत्येक मनुष्य का अलग-अलग होता है। इसी से कहा है कि जिनकी अग्नि दीप्त है, जो कठिन आहार करते हैं, सदा मेहनती जीवन व्यतीत करते हैं, जिनके पेट (ग्रहण धारण करने की शक्ति) बड़े हैं, उनके लिए भारी और हल्की वस्तु की विवेचना करने की जरूरत नहीं।

भारी और हल्की वस्तु का सम्बन्ध मनुष्य की अग्नि के साथ है। अग्नि मन्द होने पर हल्की वस्तु भी भारी हो जाती है, और अग्नि प्रबल होने पर भारी वस्तु भी हल्की हो जाती है, इसी से अत्रिपुत्र ने कहा है—

"यावद्दृश्याशनमशितमनुपहत्य प्रकृतिं यथाकालं जरां गच्छति, तावदस्य मात्रा प्रमाणं वेदितव्यं भवति।"

जितना आहार करके पचाया जा सके, जो प्रकृति को न बिगाड़े, उतना ही मनुष्य का आहार समझना चाहिए। बस, इसी एक सूत्र में सम्पूर्ण पाचन-मर्यादा को रख दिया गया है। इससे अधिक कहा भी नहीं जा सकता।

आयुर्वेद में गुरु और लघु भेद से दो प्रकार का आहार माना गया है; क्यों कि आयुर्वेद में सब द्रव्य पंचभौतिक माने हैं; इसीलिए जिन द्रव्यों में पृथ्वी और जल की अधिकता रहती है, वे भारी या गुरु माने हैं; जैसे–गेहूँ। जिन द्रव्यों में आकाश, वायु, अग्नि की अधिकता रहती है, उनको हल्का बताया जाता है; जैसे—सिंघाड़े का आटा, कुट, (त्रिपुटीकलाय) आदि। गुरु द्रव्य भी थोड़ी मात्रा में खाने से जल्दी पच जाते हैं; और लघु द्रव्य भी अधिक मात्रा में खाने से देर में पचते हैं। इसलिए, द्रव्य के आधार से ही गुरु और लघु का निश्चय करना ठीक नहीं। ठीक निश्चय तो मात्रा के उपर ही निर्भर करता है। जितनी मात्रा में खाया हुआ अन्न प्रकृति को बिना बिगाड़े, खानेवाले को बल-वर्ण, सुख-आयु देता है, वही पुरुष की मात्रा है। इससे प्रत्येक मनुष्य के लिए आहार की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। यह भिन्नता अग्नि के कारण है; क्योंकि मात्रा का आधार अग्नि है।

अग्नि क्या है?—गीता का स्वाध्याय करनेवाले जानते हैं, कि भगवान् ने इसे ईश्वर नाम दिया है। भगवान् ने कहा है (जाठरो भगवानग्नि ईश्वरोऽन्नस्य पाचकः)। भगवान् और ईश्वर कहने से ही स्पष्ट न होता देखकर कहा कि—

"अहं वैश्वानरोभूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः
प्राणापान समायुक्तो पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ।।"

मैं वैश्वानर बनकर मनुष्यों के देह में आश्रित हूँ। प्राण और अपान से युक्त होकर चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ। आयुर्वेद में प्राण और अपान को वायु कहा है। यह प्राण वायु शरीर के अन्दर प्रविष्ट होता है, और अपान शरीर से बाहर जाता है। चूल्हे में या रसोई में भी अग्नि तभी ठीक जलती है, जब एक ओर से वायु आता रहे, और दूसरी ओर से धुँआँ या वायु बाहर होता जाय। इसी से हम चिमनी या धुँआँसा बनाते हैं। यही क्रिया शारीर में जरूरी है। इसी के लिए प्राण और अपान की सहायता वैश्वानर अग्नि को हुई।

यह वैश्वानर अग्नि बहुत पवित्र है; क्योंकि भगवान् का रूप है; इसलिए ऋषि अत्रिपुत्र ने इस में श्रद्धा से हवन करने का विधान किया है। जिन श्लोकों में ऋषि ने इसका उपदेश दिया है, वे श्लोक यदि यहाँ न दूँ, तो ऋषि के प्रति अन्याय होगा, साथ ही पढ़नेवालों के प्रति भी बहुत ज्यादती होगी। ये श्लोक ऐसे हैं कि प्रत्येक घर में स्वर्णाक्षरों में मढ़वाकर लगवा देने चाहिए—

हिताभिर्जुहुयान्नित्यं अन्तराग्निं समाहितः।
अन्नपानसमद्भिर्नामात्रा कालौ विचारयन् ॥१॥
अहित्यग्निः सदा पथ्यान्यन्तराग्नौ जुहोति यः।
दिवसे-दिवसे ब्रह्म जपत्यथ ददाति च ॥२॥
नरे निःश्रेयसे युक्तं सात्मज्ञं पान भोजने।
भजन्ते नामयः केचिद्भाविनोऽन्तराहते ॥३॥

समाहित होकर मनुष्य हितकारी वस्तुओं से सदा अन्तराग्नि में हवन करता रहे। इसमें खान-पान यही समिधाएँ हैं, इन से हवन करे। हवन करते समय **मात्रा** और **काल** का सदा विचार करे। जो अहिताग्नि सदा अन्तराग्नि में पथ्यकारी वस्तुओं से हवन करता है; प्रति दिन भगवान् को याद करता है (इसीलिए हमारे शास्त्र में भोजन करने से पूर्व बलिवैश्वदेव यज्ञ विधान है), और दान करता है--देकर भोजन करता है (इसी से भगवान् ने गीता में कहा है कि जो लोग अपने लिए ही पकाते हैं, वे पापी हैं। वेद में कहा है 'केवलाघो भवति केवलादि' अकेला खानेवाला पापी होता है, देकर खाये) तथा सात्म्यज्ञ (मेरी प्रकृति या आत्मा के यह अनुकूल है--और यह प्रतिकूल है, इसे जो जानता है) करने एवं कल्याणकारी मार्ग में चलनेवाले व्यक्ति को दैवी व्याधियों को छोड़ कर दूसरी बीमारियाँ नहीं होतीं।

इस अग्नि की इतनी महत्ता ऋषि अत्रिपुत्र ने बताई हो, ऐसी बात नहीं; उन्होंने तो कहा कि अग्नि के शान्त होने पर आदमी मर जाता है। अग्नि के विकृत होने पर मनुष्य रोगी हो जाता है और अग्नि के ठीक रहने से मनुष्य भी नीरोग--स्वस्थ--रहता है। इसीलिए अग्नि को अग्रणी कहते हैं (इसीलिए ऋग्वेद में प्रारम्भ 'अग्नि' शब्द से ही हुआ है)।

यही अग्नि व्यायाम से नियमित रहती है। व्यायाम के गुण बताते हुए ऋषि ने कहा है कि व्यायाम करनेवाले व्यक्ति को विरुद्ध-अविरुद्ध, सब पच जाता है। उसके लिए गुरु और लघु का, समय-असमय का प्रश्न ही नहीं होता। उसकी अग्नि सब को जीर्ण कर लेती है। इस-लिए इस अग्नि को बढ़ाने के लिए, या नियमित करने के लिए व्यायाम एक आवश्यक वस्तु है।

अग्नि के लिए दूसरी वस्तु स्नेह है, जिससे अग्नि बढ़ती है। अग्नि में डाली हुई घी की आहुति अग्नि को प्रदीप्त कर देती है; इसी प्रकार जाठराग्नि में पड़ा स्नेह भी इसे बढ़ाता है। इसी से ऋषि अत्रिपुत्र ने कहा है कि स्नेह से बढ़ी हुई अग्नि को कोई भी अन्न शान्त नहीं कर सकता; इसलिए व्यायाम के साथ स्नेह का सेवन, स्नेह का अभ्यङ्ग आवश्यक है।

अग्नि के साथ यों तो सभी रोगों का सम्बन्ध ऋषिपुत्र ने बताया है; परन्तु अतिसार, ग्रहणी और अर्श का सम्बन्ध अग्नि के साथ विशेष रूप में है। ये रोग अग्नि के कम होने पर बढ़ते हैं और अग्नि के बढ़ने पर कम होते हैं। अद्यतन चिकित्सा-विज्ञान से इन रोगों का सम्बन्ध यकृत् की क्रिया से सम्बन्धित बताया जाता है। यकृत् पित्त का स्थान है। सुश्रुत का कहना है कि पित्त ही अग्नि है। पित्त से अतिरिक्त दूसरी अग्नि नहीं (न खलु पित्तव्यतिरिक्तो अग्निरुपलभ्यते)। यही पित्त अग्नि है, तब तो ऋषि अत्रिपुत्र के ज्ञान के सामने स्वतः शिर झुक जाता है। इसी पित्तरूपी अग्नि को अर्श में बढ़ाने के लिए तक्र के सेवन का विधान किया है। इसके विषय में तो इतना कहा है कि यह तक्र घास पर गिरने से उसको भस्मसात् कर देती है, फिर अर्श को क्यों नहीं करेगी। घास को तक्र अपनी गरमी से ही जलाती है। यही तक्र संग्रहणी-ग्रहणी और अतिसार में वैद्यगण प्रायः प्रयुक्त करते हैं। इसमें तक्र अपनी उष्णिमा से ही रोगों में लाभ करती है। शायद इसीलिए किसी संस्कृत के रसिक कवि ने कह दिया कि भोजन के पीछे यदि तक्र पियें, तो मनुष्य को वैद्य का दरवाजा देखने की जरूरत नहीं हो। तक्र सेवन करनेवाले को कभी रोग नहीं होते। तक्र से नष्ट किये रोग फिर नहीं होते। यदि गणेशजी को तक्र मिलता, तो उनका पेट लम्बोदर न रहकर ठीक व्यवस्थित हो जाता। उनका होता या न होता; परन्तु इस मर्त्यलोक में श्वयथु रोग में, उदररोग में तक्र अवश्य लाभ करती देखी गई है। यही तक्र-अग्निवर्द्धक है। अग्निवर्द्धक होने से यकृत्-क्रिया को सुचारुरूप से करती है, जिससे अतिसार, ग्रहणी और अर्शरोग शान्त होते हैं।

इसी अग्नि के बल के ऊपर आहार की मात्रा निर्भर है। अग्नि प्रत्येक मनुष्य की भिन्न-भिन्न है, इसीलिए एक मात्रा सब मनुष्यों के लिए निश्चित नहीं हो सकती। इस दृष्टि से अत्रिपुत्र ने गुरु-लघु के आधार पर आहार-मात्र का निर्णय करना उत्तम समझा। इस के लिए लघु पदार्थों का सेवन तृप्ति पर्यन्त करने को और गुरु पदार्थों को

अपनी खुराक का तिहाई भाग या आधा भाग खाने को कहा है। इसे समझाने के लिए आगे लक्षण दिये हैं; यथा—कुक्षि बहुत न फूले, श्वास का अवरोध न हो और कार्य में आलस्य न हो, इतनी मात्रा में खाना चाहिए। इनमें कुछ पदार्थ स्वभाव से ही गुरु और कुछ स्वभाव से ही हल्के होते हैं। कोई पादार्थ स्वभाव से हितकारी और कोई स्वभाव से अहितकारी हैं।

इसके अतिरिक्त संस्कार एक ऐसी वस्तु बताई है, जिससे वस्तु के गुणों में परिवर्तन हो जाता है; यथा—व्रीही से लाजा बनती है; यह लाजा व्रीही से हल्की है, इसी से वमन में जब कुछ भी पेट में नहीं रुकता, तब यह रहती है, वमन को रोकती है। मूंग स्वभाव से हल्का है, परन्तु मूंग की मँगोड़ी भारी है। ये संस्कार जल-अग्नि शौच, मन्थन, देश, काल, वासन, भावना आदि से किये जाते हैं। उदाहरण के लिए—दही शोथ करता है; परन्तु दही का तक्र शोथनाशक है। नये चावलों की अपेक्षा पुराने चावल हल्के-सुपच होते हैं, यह काल का उत्तम उदाहरण है।

भोजन के विषय में ये बातें सामान्य है; इसके सिवाय ऋषि अत्रिपुत्र ने प्रकृति करण, संयोग, राशि, काल, उपयोग संस्था और उपयोक्ता ये आठ और बातें बताई हैं। इन आठ वस्तुओं के ऊपर आहार का सौष्ठव निर्भर करता है। सुश्रुत ने उपभोक्ता के लिए अधिक सुन्दर विवेचन किया है। उसने यह लिखा है कि कौन वस्तु किस वस्तु के पात्र में देनी चाहिए। पानी कहाँ, किधर रखना चाहिए, कैसे खाना चाहिए, आदि।

लेख का उपसंहार करने से पूर्व सद्वृत्त में दिये भोजन सम्बन्धी उपदेश को पाठकवृन्द के सामने रखना जरूरी है। यह उपदेश अत्रिपुत्र ने बहुत विस्तार से दिया है। हम संक्षेप में दे रहे हैं।

नाऽऽलपाणिर्नास्नातो नोपहत वासा नाऽजपित्वाना हुत्वा देवताभ्योनाऽनिरुप्य पितृभ्यो नादत्वा गुरुभ्योनातिथिभ्योनोपाश्चितेभ्यो..............नाऽपात्रिष्वमेध्यासु, नाऽदेशे-नाऽकाले नाकीर्णे नाऽदत्वागमग्नयेवाऽप्रोक्षितं.....न मन्त्रैरनभिमन्त्रितं न कुत्सयन्न कुत्सितं प्रतिकूलेपहितमन्नमाददीत ॥

चरक सूत्र अ. ८।

इस उपदेश में भारतीय संस्कृति की सच्ची झलक है। ईशोपनिषद् का सच्चा उदाहरण 'तेनत्यक्तेन भुञ्जीथाः' इसमें मिलता है।

भोजन से शरीर ही बनता है, ऐसी मान्यता आचार्य की नहीं; अपितु मन भी भोजन से ही बनता है। इसीलिए अन्नग्रहण में इतनी विवेचना इस देश में है। होटल के खाने में सफाई-सौन्दर्य है, परन्तु प्रेम और श्रद्धा नहीं। घर के खाने में श्रद्धा और स्नेह है। पत्नी भोजन कराते समय माता के रूप में होती है, उसमें स्नेह बरसता है, (भोज्येषु माता)। भोजन में स्नेह का होना जरूरी है, इसी से कहा कि "अन्नं न निन्द्यात्' अन्न की निन्दा न करो। 'अन्नं ब्रह्मेति व्यजानयत्' अन्न को ब्रह्म जानो। यह अन्न तभी ब्रह्म है, जब शरीर में पचकर उसका भाग बन जाये। यह पाचनक्रिया मुख्यतः अग्नि पर तथा मात्रा पर निर्भर है, इसी से ऋषि अत्रिपुत्र ने कहा है—

अल्पादाने गुरूणां च लघूनां चातिसेवने।
मात्रा कारणमुच्छिष्टं द्रव्याणां गुरुलाघवे॥
गुरुणामल्पमादेयं लघूनां तृप्तिरिष्यते।
मात्रां द्रव्याव्यपेक्षन्ते मात्राचाग्निमपेक्षते॥

—चरक

यही अग्नि भगवान्, ईश्वर, वैश्वानर नाम से गीता में कही है।

—o—

स्वास्थ्य का महत्त्व तथा उसकी उपलब्धि के सरल उपाय

आयुर्वेदाचार्य, कविराज हरिनन्दन मिश्र, साहित्य-विशारद

"धर्मार्थ काममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।"
—चरक

संसार के विकट संघर्षों में निर्भीक जूझने के लिए स्वास्थ्य की असीम आवश्यकता है। अपरिमित वैभव, विद्या, बुद्धि से सम्पन्न होते हुए भी स्वास्थ्य के बिना प्राणी की जीवन-यात्रा नीरस रहती है। यों तो जिन्दगी के भार को वह येनकेन प्रकारेण ढोता ही है; परन्तु यह बात सर्वथा सत्य है कि "एक जिन्दगी हजार नियामत" के अनुसार स्वास्थ्य-सुख सब सुखों से बढ़कर है। उदाहरणार्थ—एक भिखारी, जो कि पूर्ण स्वस्थ है, अपनी जीर्ण-शीर्ण झोंपड़ी में रूखा-सूखा चाहे एक समय ही खाता हो, वह भव्य प्रासादों में षड्रसयुक्त छत्तीस प्रकार के भोजन करनेवाले एक रोगी राजा से कहीं बढ़कर जीवन-जाह्नवी की धवल-धारा में अवगाहन कर अवर्णनीय आनन्द लूटता है। वह हट्टा-कट्टा भिक्षुक कंकड़-पत्थरों पर भी चैन की नींद सोता है, जबकि रुग्ण नृपति सुन्दर सुगन्धित सुमनों से सज्जित सेज पर रात-भर बेचैनी से इतस्ततः करवटें बदलता रहता है।

जो मनुष्य स्वस्थ नहीं होता, निस्सन्देह वह धर्मशास्त्र प्रतिपादित किसी भी मर्यादा का पालन नहीं करता। इसी हेतु उसके इहलोक और परलोक दोनों ही बिगड़ जाते हैं। मोक्ष-जैसा पुनीत-पद तो बलवान को भी बड़ी कठिनाई से मिलता है और बेचारे निर्बल रोगी की सामर्थ्य ही क्या है। इसीलिए प्राचीन ऋषि, मुनि, मूर्धन्यों ने कहा है कि आरोग्य ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उत्तम मूल है। "शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्" के अनुसार तो आधुनिक युग में स्वास्थ्य का महत्त्व और भी दूना-चौगुना बढ़ जाता है।

आयुर्वेदशास्त्र में स्वास्थ्य-उपलब्धि के ऐसे सरल उपायों का वर्णन है कि जिनके उपयोग में मनुष्य का कुछ भी खर्च नहीं होता और आसानी से उनका पालन किया जा सकता है। "चरक" में इसके लिए दिनचर्या और ऋतुचर्या का विस्तृत विवरण है। भले ही पाश्चात्य सभ्यता के अन्धपरम्परानुयायी अनभिज्ञता से आयुर्वेदीय स्वास्थ्य-साधनों की खिल्ली उड़ाएँ; किन्तु वह समय दूर नहीं, जब लोग अपने निर्मूल भ्रम का निवारण कर, नतमस्तक हो आयुर्वेदीय विचित्र वैतरणी की विशेषता मानेंगे और दौड़कर इसी के सुरम्य तट पर आ अपनी पुरानी भूलों का पारायण करेंगे। हमारा तो यह प्रबल विश्वास है कि भारत को ही नहीं, अपितु अखिल विश्व को यदि पूर्ण नीरोग रहकर उन्नति की दौड़ में फर्स्ट डिवीजन लेना है, तो अविलम्ब आयुर्वेदशास्त्र की शरण लेनी पड़ेगी; अन्यथा विविध व्याधियों से व्यथित आज का मानव, स्वास्थ्य-प्राप्ति के लिए इसी प्रकार तड़पता रहेगा। यह भी पत्थर की लकीर है कि आयुर्वेद-प्रदर्शित स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों के पालन बिना, जर्जर जगत् को स्वास्थ्य-प्राप्ति नितान्त असंभव है।

दिनचर्या में निम्नलिखित उपकरणों का समावेश है :—

प्रातःकाल उठना

ग्रीष्मकाल में ४ बजे और शैत्यकाल में ५ बजे से ५।। बजे तक, अर्थात् सूर्योदय के १ घंटा पूर्व अवश्य शय्या-त्याग कर देना चाहिए। यदि हम दृष्टिपात करें, तो पशु-पक्षी भी प्रकृति के नियमानुसार समय पर जग जाते हैं; किन्तु अगण्य पुण्य के परिणामस्वरूप मानव शरीर प्राप्त कर यह आलसी पुरुष, प्रकृति की एक अनुपम देन ब्राह्म मूहूर्त की उपेक्षा कर सूर्योदय तक खर्राटे भर, अमूल्य स्वास्थ्य और समय की बरबादी करते हैं। जो लोग सुबह नहीं उठ पाते, उन्हें इस नियम का अवश्य अभ्यास करना चाहिए। प्रारम्भ में कुछ कठिनाई तो अवश्य होगी; किन्तु यह सर्वथा सत्य है कि कुछ समय बाद ही प्रातःकाल उठने के लाभ प्रतीत होने लगेंगे। मन उल्लसित तथा शरीर में फुर्ती एवं शक्ति-वृद्धि होगी। देह में सौन्दर्य और चेहरे पर ललित लालिमा का अभ्युदय होगा। यदि प्राणी सांसारिक सौख्य-सरोवर में गोते लगाना चाहते हैं, तो वह उषाकाल में जागने का प्रयास करें; क्योंकि स्वास्थ्य-वृद्धि का यह सर्वोत्तम साधन है।

प्रातःकाल कुछ भ्रमण करना

बड़े-बड़े वैद्य, डाक्टर, वैज्ञानिक, बुद्धिमान सभी इस बात पर एकमत हैं कि सुबह की शुद्ध समीर में पर्यटन करने से आरोग्य-प्राप्ति में बहुत सहयोग मिलता है। शौचादि क्रिया से निवृत्त हो, खुले और पवित्र स्थान तथा हरे-भरे खेतों में भ्रमणार्थ जावें। वहाँ के प्राकृतिक मनोरम दृश्यों को देखकर चित्त में चेतनता आती है। मानसिक स्थिति भी प्रबल और स्वस्थ बनती है। घूमते समय तीव्र गति से चलना चाहिए। एक घंटे में कम-से-कम ४ मील की गति हो, तो उत्तम है। इसी समय यदि एकाध मील शनैः-शनैः दौड़ लिया जाय, तो सोने में सुगन्धवाली लोकोक्ति चरितार्थ होगी। तदनन्तर बबूल या नीम की शुद्ध पवित्र दतौन करनी चाहिए।

आधुनिक गौरांग सभ्यता की चकाचौंध में चहकनेवाले नवयुवक दतौन करने में कुछ अपमान समझते हैं। वैसे वे लोग टुथपाउडर, टुथपेस्ट-ब्रुश से दाँत साफ करते हैं; किन्तु इन कृत्रिम उपायों से दाँतों को कुछ भी लाभ न होकर, हानि ही होती है। इनके द्वारा दाँतों के मसूढ़े प्रायः घिसकर खोखले हो जाते हैं और उनमें अन्नादि खाद्य वस्तुएँ भर जाने पर सड़कर विभिन्न विकारों को उत्पन्न करती हैं। किन्तु आयुर्वेदोक्त दतौन करने से निम्नलिखित लाभ हैं —

निहन्ति गन्ध वैरस्यं जिह्वा दन्तास्यजं मलम्।
निष्कृष्य रुचिमाधत्ते सद्यो दन्त विशोधनम् ॥

दातौन से गन्ध की विरसता नष्ट होती ह तथा जिह्वा, दाँत, मुख का मैल दूर होकर रुचि बढ़ती है और तत्काल दंतशोधन भी हो जाता है।

व्यायाम

जीवन-रक्षार्थ जिस प्रकार भोजन आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार व्यायाम को हम स्वास्थ्य-संजीवन कह सकते हैं। चाभी के बिना घड़ी नहीं चलती, और बिना व्यायाम के शरीर भी नहीं चलता। प्रतिदिन नियमित व्यायाम करने से शरीर सुपुष्ट होता है। कभी कोई रोग आक्रमण नहीं करता। कार्य करने की क्षमता और क्लेश सहने की सामर्थ्य बढ़ती है। दोषों का नाश होता है।

व्यायाम क्या है ?

व्यायाम क्या है ?—कुश्ती लड़ना, मुग्दर घुमाना, दण्ड-बैठक करना, दस-पाँच मील पैदल यात्रा करना, दौड़ना कूदना-फाँदना, कबड्डी खेलना; हाकी, फुटबाल, क्रिकेट खेलना आदि, अथवा संक्षेप में शारीरिक परिश्रम को ही व्यायाम समझना चाहिए। इन सभी प्रकार के व्यायामों में आयुर्वेद के अनुसार निम्नोक्त विशेषताएँ हैं :—

लाघवं कर्म सामर्थ्यं स्थैर्यक्लेशसहिष्णुता।
दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते। (चरक)

अर्थात्—व्यायाम से कार्य करने की शक्ति और कुशलता बढ़ती है, स्थिरता, कष्ट-सहिष्णुता आती, दोषों का क्षय होता और अग्निवृद्धि होती है।

व्यायाम के पूर्व शरीर में यदि थोड़ी-सी तैल की मालिश की जाय, तो स्वास्थ्य के लिए बहुत ही लाभदायक है। अंग्रेजी शिक्षाप्राप्त बहुत-से व्यक्ति तैल-मर्दन का मजाक उड़ाते हैं और कई पुरुष तो अज्ञानतया यह दलील देते हैं कि तैल मलने से शरीर के रोमकूप बन्द हो जाते हैं, जिस से स्वभावतः देह से निकलनेवाला मल अन्दर ही रुक कर अनेक उपद्रव उत्पन्न करता है। किन्तु, यह सर्वथा झूठ है। यह तो केवल उन गोरी चमड़ी वालों का मिथ्या भ्रम और प्रचार है, जो कि तैल के गुणों से अनभिज्ञ हैं। जब तक शरीर में तैल की मालिश न की जायगी, तब तक उसमें व्यायाम सहने की क्षमता नहीं आयेगी। तैल से जिस प्रकार घड़ा और चर्म दृढ़ हो जाता है तथा तैल लगाने पर लोहे की धुरी दृढ़ और चिकनी होकर रथ को खींचती है, उसी प्रकार तैल-मर्दन से शरीर भी दृढ़, स्निग्ध, सौम्य त्वचावाला हो जाता है। चरक सूत्र-स्थान में निर्देश है कि :—

स्नेहाभ्यङ्गात्तथाकुम्भश्चर्मस्नेह विमर्दनात्।
भवत्युपाङ्ग दक्षश्च दृढ़ क्लेश सहो यथा ॥
तथा शरीरमभ्यङ्गात् दृढ़ं सुत्वक् प्रजायते।
प्रशान्त मारुतावाधं क्लेश व्यायाम संग्रहम् ॥
नचाभिवाताभिहतं गात्रमभ्यङ्ग सेविनः।
विकारं भजतेऽत्यर्थं बल कर्माणि वा क्वचित् ॥
सुस्पर्शोपचिताङ्गश्च बलवान् प्रियदर्शनः।
भवत्यभ्यङ्ग नित्यत्वान्नरोल्पो जर एव च ॥

स्नान

आरोग्य उपलब्धि के लिए स्नान करना भी अत्यन्त उपयोगी है। जर्मनी के प्रसिद्ध डॉक्टर लुईकुनी तो केवल स्नान-क्रिया से ही मनुष्य के सभी रोगों का प्रतीकार करते थे। वस्तुतः इस विषय में तनिक भी सन्देह नहीं

कि स्नान निहायत जरूरी है। हम-जैसे उष्ण प्रदेश में बसनेवालों को शीतल जल से ही स्नान करना चाहिए। जहाँ सर्व प्रकार से लाचारी हो, वहाँ उष्णोदक से नहाना अनुचित नहीं। आरोग्य की दृष्टि से प्रातःकाल का स्नान ही श्रेयस्कर है। प्रवाहित नदी अथवा स्वच्छ जलयुक्त तालाब, स्नानार्थ अच्छा समझा जाता है। पवित्र कूपोदक से नहाना भी ठीक है। प्रातः स्नान से निम्नोक्त लाभ होता है :—

प्रातःस्नान मलं च पापहरणं दुस्वप्न विध्वंसनम्।
शौचस्यायतनं दुखापहरणं सम्वर्द्धनं तेजसाम्।
रूपद्योतकरं शरीरसुखदं कामाग्नि संदीपनम्।
स्त्रीषु मन्मथगाहनं श्रमहरं स्नाने दशैताःगुणा॥

अर्थात् :—प्रातः स्नान मैल और पाप को दूर कर दुस्वप्न का नाश करता है। पवित्रता का घर, सुखप्रद एवं तेज-वर्द्धक है। रूप और कान्ति का देनेवाला, कामाग्नि को दीप्त करने, शरीर को सुख देने तथा थकावट को दूर करने वाला है। ये दशगुण प्रातःकाल के स्नान में हैं। इसके अतिरिक्त चरक में स्नान का महत्त्व इस प्रकार दर्शाया है :—

पवित्रं वृष्यमायुष्यं श्रमस्वेद मलापहम्।
शरीर बल सन्धानं स्नानमौजस्करं परम्॥

अर्थात् :—स्नान. पवित्र, शुक्रवृद्धिकर और आयु के लिए हितकर है। थकावट, पसीना तथा मैल का विनाशक है। शारीरिक बल तथा अत्यन्त ओज को देता है। स्नान के बाद मानसिक शक्ति के विकासार्थ कुछ ईश्वर-चिन्तन अवश्यमेव करना चाहिएं। इससे भी स्वास्थ्य-वृद्धि में बहुत सहायता मिलती है। ईश्वराराधना का भी जीवन में एक अभिन्न महत्त्व है। यदि मनुष्य की आर्थिक दशा अच्छी हो, तो अग्निहोत्र करना भी परम लाभदायक है।

भोजन

उपर्युक्त सभी कार्यों के अनन्तर भोजन का नम्बर आता है। वास्तव में मनुष्य को इस विषय में अतीव सावधानी बरतनी चाहिए। यह शत-प्रति-शत ठीक है कि जैसा आहार किया जायगा, वैसा ही आचार, विचार और स्वास्थ्य बनेगा। प्राणीमात्र के तीन भोजन प्रधान हैं—१ वायु, २ जल, ३ खुराक,। विस्तार-भय से हम केवल खुराक के वषय में थोड़ा-सा लिखेंगे।

भोजन सर्वदा शुद्ध, पवित्र और ताजा करना चाहिए। बासी भोजन बहुत अनिष्टकर है; अतः इसका त्याग करें; क्योंकि रात्रि के रखे हुए भोजन में जीवाणु पैदा हो जाते हैं, जो स्वास्थ्य-विनाशक हैं। आरोग्यता के लिए हरी शाकसब्जी का प्रयोग सिद्ध हो चुका है। स्वास्थ्य के लिए—मिल सके तो—दूध सर्वोत्तम भोजन है। सर्व प्रकार के शाक, दाल, नमक, तैल, शकर, घृत, फल आदि का इस प्रकार प्रयोग करना चाहिए कि स्वास्थ्य की अभिवृद्धि हो।

तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं येनानुवर्तते।
अजातानां विकाराणां अनुत्पत्तिकरं च तत्॥
—चरक

ऋतुचर्या

शरीर स्वस्थ बनाने के लिए ऋतुचर्या का ज्ञान भी आवश्यक है। पाश्चात्य चिकित्सा-प्रणाली में ऋतुचर्या का विशेष विवरण नहीं दृष्टिगोचर होता। कारण यह है कि प्रायः यूरोप में एक ही शीत ऋतु होती है; परन्तु हमारे चिकित्साशास्त्र में ६ ऋतुएँ मानी गई हैं तथा प्रत्येक ऋतु का आहार-विहार पृथक्-पृथक् लिखा है। ६ ऋतुओं की आहार-विहार सम्बन्धी विशद विवेचना हम किसी अन्य लेख में करेंगे; किन्तु सम्प्रति ऋतुचर्या के विषय में इतना ही पर्याप्त है कि यदि सुविधा हो, तो प्रत्येक ऋतु में शास्त्रोक्त खान-पान, रहन-सहन की व्यवस्था करनी चाहिए।

ब्रह्मचर्य

स्वास्थ्य-वृद्धि के लिए अन्तिम सर्वोच्च उपाय ब्रह्मचर्य है। यदि ब्रह्मचर्य को स्वास्थ्य के कुन्जी कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी। भाव मिश्र ने लिखा है कि खाना, पीना, सोना और स्त्री-प्रसंग ये चार एषणाएँ मनुष्य में—नित्यप्रति उत्पन्न होती हैं। इनमें अन्तिम एषणा ऐसी है कि मनुष्य इसी के वशीभूत हो जाय, तो सर्वनाश निश्चित है। जो लोग इस महान् हानि पर ध्यान न देकर इन्द्रियों के गुलाम रहते हैं, वे कभी नहीं पनपते। अनेक रोग-रूपी डकैत, मानवीय शरीर-रूपी तिजोरी को नष्ट-भ्रष्ट करके स्वास्थ्यरूपी रत्न को लूट ले जाते हैं। जो इस अनमोल रत्न की रक्षा का प्रबल प्रयास करते हैं, वे ही संसार में वरेण्य बनते हैं। ऐसा कौन कठिन कार्य है, जो ब्रह्मचर्य की क्षमता से न सध सके। ब्रह्मचारी

(शेषांश पृष्ठ ११८२ पर)

हमारे स्वास्थ्य की दयनीय दशा

रवीन्द्र शास्त्री

किसी भी राष्ट्र के वैभव और भविष्य का अनुमान उसके नागरिकों के स्वास्थ्य से सहज ही में किया जा सकता है। स्वस्थ नागरिक अपने देश का अभ्युत्थान बहुत जल्दी कर लेते हैं और रोगी एवं अल्पायु नागरिकों से देश अवनति के गर्त में जा गिरता है। स्वस्थ शरीर और मन से निर्विकार मनुष्यों की अल्प संख्या भी देश की जिन्दगी में नई हलचल और नया जोश पैदा कर देती है; किन्तु रात-दिन रोगों की चक्की में पिसनेवाली करोड़ों की विशाल जनसंख्या भी देश का कुछ भला नहीं कर सकती। कर भी कैसे सकती है? आज का हिन्दुस्तान संसार का सबसे अधिक अस्वस्थ और अल्पायु राष्ट्र है, और यह अकेली बात ही हमारे लिए—हमारे इस परम पवित्र प्राचीन देश के लिए—अत्यन्त लज्जाजनक है।

'जीवेम शरदः शतम्'। सौ वर्ष की पूर्णायु प्राप्त करनेवाले भारतवासी आज २७ वर्ष की परमायु प्राप्त करते हैं! अपने भुजबल से सिंहों को भी पछाड़ देने वाले नौजवान आज, भरी जवानी में भी बदहजमी और नामर्दी के शिकार हो रहे हैं। आज के हिन्दुस्तानी के स्वास्थ्य की कल्पना कितनी हृदय-विदारक होती जा रही है! पिचके हुए गाल, गड्ढों में धसी हुई आँखें, ढीली मांसपेशियाँ, स्फूर्ति-शून्य मस्तिष्क, हिम्मतहीन भुजाएँ, मुर्दा मन और अनेक प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक विकारों से जर्जरित हिन्दुस्तानी नौजवान का स्वास्थ्य आज जिस दयनीय दशा को प्राप्त हो गया है, उसे देख-सुनकर किस भले आदमी का कलेजा नहीं काँप उठेगा?

हमारे बच्चों का स्वास्थ्य तो आज बुरी-से-बुरी हालत को पहुँच गया है। बचपन तो मानो हमारे बच्चों में आता ही नहीं। उछल-कूद और शैतानी के बाल-जीवन में भी वैरागियों की तरह बुद्धू बन के टुकुर-टुकुर ताकते रहना, और रोज नये-नये रोगों के शिकार होकर काल के गाल में चले जाना ही उनके जीवन का उद्देश्य-सा हो गया है। बाल-मृत्यु के आँकड़े कितने रोमांचक हो गये हैं और हमारी औसत आयु कितनी गिर गई है, इसको देखनेवाला आज कोई है ही नहीं। दुनिया के दूसरे देशों के साथ हिन्दुस्तान के स्वास्थ्य की तुलना करने पर आश्चर्य होने लगता है कि संसार का यह सबसे प्राचीन और सभ्य देश आज छोटे-छोटे देशों से भी पिछड़ गया है।

फ्रांस के नागरिक की औसत आयु ५७ वर्ष है, अंग्रेजों की ५६ और अमेरिकनों की ५८ और हिन्दुस्तान के नागरिक की सिर्फ २७ वर्ष। इसका मतलब यह होता है कि फ्रांस-इंगलैण्ड और अमेरिका के लोग हमसे दो गुना उम्र पाते हैं। जहाँ हिन्दुस्तान का नौजवान भरी जवानी की २७ वर्ष की उम्र में ही अपनी इह-लीला समाप्त कर देता है, वहाँ फ्रांस या अमेरिका का नागरिक ५८ वर्ष की उम्र पा के अपने यौवन का पूर्ण उपयोग कर लेता है।

बच्चों की मृत्यु-संख्या के आँकड़े तो और भी लोमहर्षक है। हमारे देश में प्रति एक हजार (पैदा होने वाले) बच्चों में २४० मर जाते हैं जब कि अमेरिका में ५५ और इंग्लैण्ड में ५७। इसका मतलब हुआ कि पैदा होने वालों में से एक चौथाई तो मर ही जाते हैं।

इस तालिका से बाल-मृत्यु की भीषणता का अन्दाजा सहज ही लग जाता है—

शहर का नाम	मृत्यु-संख्या प्रति हजार
बम्बई	५५६
कलकत्ता	३८६
रंगून	३०३
मद्रास	२८२
करांची	२४८
दिल्ली	२३३

सन् १९२१ में हुई जन-संख्या के रिपोर्टर ने लिखा था कि "दो पैदा हुए बच्चों में एक बच्चा १२ महीने की आयु के पहले ही मर जाता है। जन्म के प्रथम सप्ताह में ४० प्रतिशत, जन्म के प्रथम मास में ६० प्रतिशत बच्चे मौत के मुँह में चले जाते हैं।

सन् १९४३ में देश के स्वास्थ्य की जाँच-पड़ताल करने के लिए एक भोर कमेटी की स्थापना हुई थी, उसमें बतलाया गया था कि हिन्दुस्तान में मृत्यु की औसत २२·४ प्रति सहस्र है, जब कि अमेरिका में ११·२ और ब्रिटेन में १२·४।

रोगों का जो तांडव होता है, उसकी कहानी भी बड़ी दर्दभरी है। प्रतिवर्ष १० करोड़ आदमियों को मलेरिया होता है, यानी देश की आबादी का चौथा हिस्सा मलेरिया की लपेट में आता है। इसमें से २० लाख तो मर ही जाते हैं, बाकी में से अधिकांश तिल्ली, जिगर, दिक् आदि रोगों के पल्ले पड़कर, धीरे-धीरे मौत के मुँह में जाते हैं। प्रतिवर्ष २५ लाख आदमियों को क्षय होता है, जिनमें अधिकांश मरते ही है। २ लाख हैजे से, ३ लाख पेचिश से, ५ लाख दमे से, १५ लाख आकस्मिक दुर्घटनाओं से, २ लाख प्लेग और चेचक से, ५० लाख ज्वर से तथा ५० लाख और दूसरे रोगों से मरते हैं।

इसके अलावा प्लेग, हैजा, चेचक आदि महामारियों से मरनेवालों की संख्या अलग है। साथ ही ऊपर के ये आँकड़े भी सर्वथा विश्वसनीय नहीं माने जा सकते। चूंकि देश का बहुत-सा हिस्सा ऐसा है, जहाँ सरकार के डाक्टरों और हास्पिटलों का प्रवेश ही नहीं है। कुल मिलाकर यह बात तो स्पष्ट है कि जब ब्रिटिश अधिकारियों ने ही २ करोड़ लोगों के मरने के वार्षिक आँकड़े माने थे, तब इनसे ४ गुने तो समझ ही लेने चाहिए। इसका मतलब हुआ कि ८ करोड़ आदमी प्रतिवर्ष भिन्न-भिन्न रोगों के शिकार होते हैं।

जब शरीर की यह दशा है—रात दिन नाना प्रकार के रोग नये-नये रूपों में सामने आते रहते हैं, तब यह स्पष्ट है कि मन की दशा और भी बुरी हो गई है और यही कारण है कि हमारा मानसिक स्वास्थ्य बहुत बुरी तरह से गिर गया है। इन्द्रियों की शक्तियाँ क्षीण होकर मन की निर्मलता नष्ट हो गई है, जिसके फलस्वरूप मनोविकार आँधी की तरह बढ़ रहे हैं। नैतिकता तो मानों कहीं चली ही गई है—बेइमानी, जुआजोरी, दुराचार और भ्रष्टाचार की बाढ़-सी आ गई है।

यह है हमारे स्वास्थ्य की दयनीय दशा और इसी के बल पर हम देश की उन्नति की कामना करते हैं!

—:०:—

शेषांश] **स्वास्थ्य का महत्त्व तथा उसकी उपलब्धि के सरल उपाय** [पृष्ठ ११८० का

दैवी पुरुष होता है और आपत्तियों की सुदृढ़ चट्टानों से टक्कर ले सकता है। क्रूर कठिनाइयों को सवेग लाँघ सकता है। जिसके शरीर में ब्रह्मचर्य का विपुल बल है, क्या मजाल कि कोई दुष्ट उससे आँख भी मिला सके।

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवाः मृत्युमुपाघ्नताः"

भीष्म पितामह ब्रह्मचर्य की महिमा के प्रकृष्ट प्रमाण हैं, जो महाभारत-संग्राम में अकेले ही पाण्डवों के एक हजार लड़ाके वीरों का नित्यप्रति वध करते थे। यह सब कुछ ब्रह्मचर्य का ही प्रताप था।

बीसवीं शताब्दी में प्रातःस्मरणीय महर्षि दयानन्द सरस्वती ब्रह्मचर्य-व्रत के ज्वलन्त उदाहरण हैं, जिन्होंने मृतप्राय भारत में प्राण फूंक दिये। हमारा दृढ़ विश्वास है कि उन्होंने जो कुछ आर्य (हिन्दू) जाति में क्रान्ति की, वह केवल इसी ब्रह्मचर्य का प्रबल प्रताप था। अतः आज के दीन-हीन-निर्बल समाज का यह कर्त्तव्य है कि वह ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करे। ब्रह्मचर्यरूपी द्वारपाल को, सबल बनाएँ, जिससे कि रोग-रूपी लुटेरे, शरीर-रूपी सोमनाथ मन्दिर में घुसकर स्वास्थ्य-रूपी स्वर्णिम सम्पत्ति को न लूटने पायें।

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए निम्नलिखित आठ मैथुनों से दूर रहना चाहिए—

(१) गन्दे और अश्लील शब्दों का शौक से प्रयोग करना, (२) विषय-भोग को याद करना, (३) कामेच्छा से स्त्री को छेड़ना, (४) विषयेच्छा से स्त्री को देखना, (५) कामेच्छा से गुप्त बातें करना, (६) कामेच्छा का मन में संकल्प करना, (७) कामेच्छा की पूर्ति का प्रयास करना, (८) स्त्री-पुरूष का अधिक संभोग।

सर्वमन्यत्परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्,
तदभावेहि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्॥

—चरक-निदानस्थान।

——००——

१५० वर्षीय दीर्घजीवन और आयुर्वेद

कविराज हरिकृष्ण सहगल, आयुर्वेदाचार्य

आयुर्वेद-शास्त्रानुसार वैद्य का कर्तव्य रोगियों को रोग-मुक्त और साधारण जनता के स्वास्थ्य की रक्षा करना है। हजारों वर्ष पूर्व से बौद्ध धर्म के आरम्भ काल तक, वैद्यों का मुख्य कर्तव्य रोग-चिकित्सा नहीं, बल्कि स्वास्थ्य-रक्षा का प्रबन्ध करना रहा। युद्धक्षेत्रों में जब शस्त्रों से सिपाही जख्मी होते थे, तब वैद्य सर्जरी द्वारा उनकी आवश्यकता पूरी करते थे। खून के बह जाने पर जब सिपाही निर्बल हो जाते, तब उनमें तत्काल रक्त बढ़ाने के उपाय करते थे। जब शत्रु विषैली गैसें छोड़ते, तब उनका प्रभाव नष्ट करने के लिए उन्हें उपाय करने पड़ते थे। शत्रु नदियों, तालाबों के जल में विष मिला देते और वैद्य उनकी शुद्धि करते थे।

सनातन काल में मृत्यु बहुधा रोगों से नहीं होती थी, बल्कि लोग यद्ध में जख्मी होकर अधिक रक्त बह जाने से मरते थे। विषैले तीरों के विष से उनके प्राण जाते थे। वायु की विषैली गैसें, विष-मिश्रित जल, बाढ़ का पानी, अकाल में भूख, यह मोटे-मोटे मृत्यु के कारण थे। जो जंगलों और पहाड़ों में रहते, उनकी मृत्यु हिंसक पशुओं द्वारा होती व सर्प जीवन-लीला को समाप्त करते। ऋषियों की किन-किन कारणों से मृत्यु हुई, अगर आप यह जानकारी प्राप्त करेंगे, तो आपको मालूम होगा कि किसी को दरिया के जल में मगरमच्छ खींच ले गया, तो कोई पागल हाथी द्वारा मारा गया; किसी को सिंह-चीतों ने फाड़ खाया, तो किसी को सर्प ने डस लिया।

रामायण, महाभारत व पुराणों के पढ़ने से यह तो मालूम होता है कि नासूर, कुष्ठ व अर्श आदि रोग होते थे; परन्तु सनातन काल में यह मृत्यु का कारण न थे। मृत्यु अक्सर अकस्मात् होती थी। आप रामायण को पढ़ लीजिए, महाभारत को देखिए। आपको श्री राम, लक्ष्मण, सीता के १२ वर्ष के बनवास से पूर्व व उस काल में व उसके बाद के जीवन-काल में निदान में लिखे रोगों में से कोई हुआ और अगर हुआ, तो उसकी कोई चिकित्सा की गई, ऐसा कहीं लिखा नहीं मिलता। क्या गोसाईं तुलसीदास जी यह न जानते थे कि यह शरीर व्याधि-मन्दिर है और उनका रामचरित मानस महाराज राम और उनके साथियों के रोगग्रस्त होने और उनकी चिकित्सा के वर्णन के बिना अधूरा रहेगा? वह जानते थे और जरूर जानते थे। अकबर के काल में गोसाईं तुलसीदासजी का जन्म माना जाता है। अकबर के समय में भारत के वृहत् नगरों की तरह एक बाजार की १०० दुकानों में से २७ दुकानें चिकित्सकों की हों, ऐसा न था और न ही चिकित्सक देहली, लखनऊ, कानपुर, कलकत्ता, मद्रास, बम्बई के इश्तहारबाजों की तरह चमकीले, भड़कीले, लच्छेदार दवाओं के विज्ञापन पत्रों में छपाते व दीवारों पर लगवाते थे और न बसों की बाडियों पर, रेलवे स्टेशनों के प्लेटफॉर्म पर व दीवारों पर पेटेन्ट औषधियों के विज्ञापन कहीं दृष्टिगोचर होते थे। यह ठीक है कि उस समय लोग रोगों से मरते थे और चिकित्सक उनके रोगों की चिकित्सा करते थे। रोग-निदान पर साहित्य काफी बढ़ गया था और वैद्यों की रस-चिकित्सा जवान हो रही थी।

गोसाईं तुलसीदासजी ने रामचरित मानस में जो रोगों का व उनकी चिकित्सा का वर्णन नहीं किया, तो इस हेतु से कि वास्तव में राम-परिवार रुग्ण ही नहीं हुआ।

राम का काल तो बहुत पुराना है। सिकन्दर के भारत-आगमन तक भारतवासियों में ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक थी, जो जीवन-भर रुग्ण नहीं हुए; उन्हें एक दिन के लिए भी ज्वर नहीं हुआ और कुछ घण्टे तक भी जुकाम न हो सका।

सिकन्दर जब भारत से यूनान वापस चला, तो वह अपने साथ भारत से एक ब्राह्मण कालानूस को ले गया। कंधार पहुँचने पर कालानूस योगी को ज्वर हो गया। ब्राह्मण ने सिकन्दर को बुलाकर चिता बनाने की माँग की। सिकन्दर ने कहा—गुरु, यह आत्म-हत्या क्यों करते हो? ब्राह्मण ने उत्तर दिया—बेटा, यह शरीर ज्वर आने से अपवित्र हो गया है। अब मैं इस अपवित्र

वस्त्ररूपी शरीर के साथ जीवित रहना नहीं चाहता। ऐतिहासिकों का कथन है कि कालानूस ने चिता में बैठकर शरीर को होम कर डाला। रुग्ण होने से शरीर अपवित्र हो जाता है—यह इस कथन से भिन्न है कि 'शरीरं च व्याधि मन्दिरम्।' आज यह सत्य है कि गृहस्थों के मासिक बजट में चिकित्सा-व्यय एक आवश्यक आइटम है; परन्तु सनातन काल में जीवन पर्यन्त रोग का होना एक न जानी हुई घटना थी। तभी तो कहते थे कि पिता के जीवित होते हुए पुत्र की मृत्यु नहीं हो सकती। आज अपनी पैदाइश के पहले वर्ष में ही सबसे अधिक बच्चे मरते हैं।

दूर न जाइए। छोड़ दीजिए कि पाण्डवों ने हिमालय की बर्फ में गलकर इस शरीर से रिहाई प्राप्त की। अभी कुछ सदियों पूर्व की बात है। राणा साँगा को इसलिए यवनों से युद्ध आरम्भ करना पड़ा कि वृद्धावस्था आ जाने पर भी मृत्यु उनसे भय मान रही थी। वीर की वीरता ने मृत्यु को दूर भगा दिया था।

ऐतिहासिकों का कथन है कि मृत्यु के समय भीष्म पितामह की आयु १७५ वर्ष की थी। श्री कृष्णजी के पाँव में जब व्याध का विषैला तीर लगा, तब उनकी आयु १५३ वर्ष की थी। पाण्डवों की १४० और १५० वर्ष के निकट थी।

सनातन काल में स्वाभाविक आयु १५० और २०० वर्ष के मध्य थी। आज भारतवासियों की औसत आयु को २७ वर्ष माना जाता है। हंगरी के डॉक्टर हैनरी ड्यूस का कथन है कि वह दिन दूर नहीं, जब मनुष्य की आयु की औसत १५० वर्ष तक पहुँच जायेगी। इस समय लाख में से एक दो व्यक्ति ही १५० वर्ष की आयु तक जीते हैं।

कुछ दिनों की ही बात है कि हंगरी (यूरोप का एक देश) में आयु की औसत बढ़ाने की विधियों पर विचार करने के लिए एक सभा हुई थी। इस सभा में हंगरी और रूस के वैज्ञानिक, रिसर्च स्कालर तथा चिकित्सक सम्मिलित हुए थे। रूस के प्रतिनिधियों ने बताया कि १५० वर्ष के व्यक्तियों की संख्या संसार के सर्व देशों की अपेक्षा रूस में अधिक है। वैज्ञानिकों के विचार का यह निष्कर्ष था कि १५० ही नहीं, मनुष्य अगर चाहे, तो २०० और उससे भी ऊपर कई वर्षों तक जीवित रह सकता है। प्रो० ड्यूस ने ही बताया कि मिश्र देश की मम्मियों (मुर्दा शरीरों) को देखने पर मालूम हुआ है कि उस वक्त मनुष्य की आयु १२५ और १३० वर्ष के मध्य में होती थी तथा १९वीं सदी में छुआछूत की बीमारियों को रोकने की विधियों में सुधार हो जाने से आयु की औसत ३० से बढ़कर ५५ वर्ष हो गई है। आयु का बढ़ना औषधों द्वारा सम्भव नहीं; परन्तु स्वास्थ्य के नियमों का पालन इसे बढ़ाता है।

जो कुछ प्रो० हैनरी ड्यूस ने कहा, उस पर शताब्दियों पूर्व से भारत में अमल होता रहा है। इस जीवन को लम्बा करने में मुख्यतया निम्नलिखित साधन थे—

१. **ब्रह्मचर्य पालन**—वीर्य को आयुर्वेद-शास्त्र ने शरीर की शक्तियों का राजा कहकर, इसकी रक्षा को आवश्यक बताया है। ब्रह्मचर्य से भी पूर्व गर्भस्थिति में वीर्य और रज का शुद्ध होना व माता-पिता का सदाचारी होना अनिवार्य कहा है।

यूनानी चिकित्सा के बाबा गुरु बुक़रात के विषय में कहा जाता है कि वह ईसा से ४०० वर्ष पूर्व भारत में आयुर्वेद का अध्ययन करने के लिए आया था। यूनानी चिकित्सकों में अफलातून के विषय में कहा जाता है कि वह भारत से स्वास्थ्य विषयक जो नियम ले गया, उन्हें उसने एक लकड़ी की तख्ती पर लिखकर गले में लटका रखा था। मृत्युकाल में उसने अपनी स्त्री को एकान्त में बुलाकर कहा कि मेरी मृत्यु के पश्चात् इस तख्ती को मेरे मृत शरीर के साथ भूमि में दफना देना।

अफलातून की मृत्यु के पश्चात् उसकी स्त्री ने अपने पति की आज्ञा का पालन किया। अरस्तू अफलातून का शिष्य था। उसे मालूम था कि भारत से गुरु कोई काला इल्म लाया है और उसे उसने एक तख्ती पर लिखकर गले में डाल रखा है। अफलातून की मृत्यु के पश्चात् अरस्तू ने अपनी गुरुपत्नी से उस तख्ती की पूछताछ की। परन्तु, अफलातून भी कम न थे, उन्होंने अपनी पत्नी को तख्ती की बात किसी से भी न बताने की आज्ञा कर रखी थी। उनकी पत्नी ने बहुत देर तक तख्ती का हाल नहीं बताया; परन्तु सेवा से प्रसन्न करके आखिर अरस्तू ने मालूम कर लिया कि तख्ती गुरु के साथ कब्र में दफन है। अरस्तू साहब रात के अँधेरे में कब्रिस्तान पहुँचे। कब्र पर पहुँचकर गुरु को लक्ष्य करके

बोले--उस्ताद, तुमने कभी भूल नहीं की ; परन्तु तख्ती के विषय में भूल गये कि स्त्रियाँ किसी गुप्त बात को चिर-काल तक अपने मन में नहीं रख सकतीं। आज मैं तुम्हारी प्रिय तख्ती, भारतीय आयुर्वेदिक चिकित्सा का तोहफा, लिये जा रहा हूँ। और, उन्होंने गुरु की कब्र खोद-कर वह तख्ती निकाल ली।

अरस्तू ने, जो गुरुमुख (अफलातून) से भारत में प्रचलित वीर्य-रक्षार्थ ब्रह्मचर्य की प्रशंसा सुनी थी, उस तख्ती को पढ़ा। उसने आयुर्वेद की इस महान् देन ब्रह्मचर्य-सिद्धान्त पर पूरी तरह से मनन किया। कहा जाता है कि अरस्तू के घर में पुत्र उत्पन्न होने के बाद, १२ वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी जब अरस्तू ने अपनी स्त्री का स्पर्श नहीं किया, तब एक दिन उसकी स्त्री ने अपने लड़के से कहा कि अपने पिता से कहना कि मुझे अपने साथ खेलने के लिए एक भाई चाहिए। चुनांचे बच्चे ने अपने पिता के सामने अपनी माता के शब्दों को दुहराया। अरस्तू जानते थे, कि कुरुक्षेत्र के मैदान में बाणों से जर्ज-रित बाल ब्रह्मचारी भीष्म पितामह ने इसी वीर्य-रक्षा और ब्रह्मचर्य-पालन की शक्ति से मृत्यु को ललकारा था कि मेरी तरफ न बढ़ो ; मैं अभी मरना नहीं चाहता। उन्होंने अपने पुत्र से कहा कि अपनी माता को मेरा सन्देश दे देना कि पिताजी कहते थे कि मेरे जन्म के लिए जितनी शक्ति...का व्यय हुआ है, वह अभी पूरा नहीं हुआ।

और इसी प्रकार अरस्तू ने अपने शागिर्द सिकन्दर से भारत-आक्रमण से पूर्व एक बात कही थी कि अगर सफलता चाहते हो, तो अपने साथ किसी स्त्री को न ले जाना।

बापू ने अपनी मृत्यु से कुछ वर्ष पूर्व संसार से कहा था कि मैं १२० वर्ष की अवस्था से पूर्व नहीं मरूँगा। अगर गोली न लगती, तो सम्भव है कि उनका कथन सत्य सिद्ध होता। इसमें कारण, वीर्यरक्षा और ब्रह्म-चर्य-पालन था। जो इतिहास को पढ़ते हैं, वह जानते हैं कि राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी ने बहुत पूर्व ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर स्त्री से पतिरूप में सम्बन्ध तोड़ लिया था।

वीर्य का नाश जीवन का नाश है। इसकी रक्षा जीवन-रक्षा है। वीर्यनाश से धातु-क्षीणता होती है। नज़ला, खाँसी, क्षय, मधुमेह, प्रमेह, अर्श, निमोनिया, टाइफाइड, मलेरिया, चेचक, [illegible] न्यूरसथीनिया, दृष्टिसन्दता, स्मृतिनाश आदि सैकड़ों व्याधियाँ केवल वीर्यनाश का परिणाम हैं।

२. **योग-विद्या**--जीवन को इच्छानुसार लम्बा करने व शरीर को इच्छानुसार ढालने का विशेष साधन योग है। स्वामी विवेकानन्दजी ने एक बाबा पवनाहारी का वर्णन किया है, जो पवन भक्षण से जीवित रहते थे और जब शरीर छोड़ने का निश्चय किया, तो अपने मस्तिष्क से ही अग्नि प्रकट कर के शरीर को भस्म कर लिया। जीवन लम्बा करनेवाले साधनों में योग के आसनों का विशेष स्थान है।

३. **ऋतुचर्या**--स्वास्थ्य-रक्षा और जीवन को लम्बा करने के लिए ऋतुचर्या का पालन बहुत आवश्यक है। हमारे राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसादजी इतना व्यस्त होने पर भी केवल ऋतुचर्या के सहारे, घोर श्वास रोग होने पर भी, देश को राह दिखाने के लिए समर्थ हैं। लोगों ने जितना ऋतुचर्या से मुख को मोड़ा, उतना ही स्वास्थ्य उन से मुख को मोड़ता गया। 'जीवेम् शरदः शतम्' एक कहानी बनकर रह गया। हमारी आयु की औसत गिर गई। बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के संस्थापक महामना मालवीयजी इस ऋतुचर्या के सहारे, इतना चिन्तातुर तथा व्यस्त जीवन बिताते हुए भी, दीर्घ आयु तक जिये।

दिनचर्या--राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने आयुर्वेद की इस दिनचर्या का भली प्रकार अध्ययन किया हो, ऐसा जान पड़ता है ; क्योंकि साबरमती-आश्रम में उन्होंने जिस सख्ती से दिनचर्या का पालन आश्रमवासियों से कराया, वह इस अध्ययन के बिना हो नहीं सकता। उनकी दिन-चर्या अधिकांश में आयुर्वेद में वर्णित दिनचर्या से मेल खाती है। दिनचर्या भी स्वास्थ्य-रक्षा और जीवन को लम्बा करती है।

पंचकर्म--शरीर के रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र में एकत्रित मल को साफ करके यह जीवन को बढ़ाता है। हाथ की घड़ी व मोटर मशीनरी को वर्ष में साफ करा कर तैल देते रहने से जैसे वह मशीनरी देर तक खराब नहीं होती, बहुत अधिक समय तक चलती रहती है, ऐसे पंचकर्म द्वारा शुद्ध शरीर भी १५० व २०० वर्ष की आयु तक बना रहने में समर्थ हो जाता है। हंगरी और रूस के वैज्ञानिक अगर वास्तव में जीवन को लम्बा

(शेषांश ११६१ पृष्ठ पर)

प्रवाहिका

(DYSENTERY)

वैद्य कविराज लक्ष्मीनाथ, वैद्य-वाचस्पति

'वह' धातु में प्रथम 'प्र' उपसर्ग लगाकर 'प्रवाह' शब्द बना है। तरल या अमूर्त पदार्थ के संचार को प्रवाह कहते हैं, यथा—जल-प्रवाह, वायु-प्रवाह। 'प्र' उपसर्ग के साथ 'वह' धातु का अन्यतर रूप 'प्रवाहण' है। प्रवाहण शब्द का अर्थ है कुंथन। जिस रोग में युगपत् प्रवाह और प्रवाहण विद्यमान रहता है, उसका नाम प्रवाहिका है। **'भोज-संहिता'** में इसका नाम विस्रंसी **'पराशर-संहिता'** में इसका नाम अंत्रग्रन्थि और **हारीत-संहिता** में निस्सारक है। इस प्रकार प्रवाहिका के तीन भेद और हैं—विस्रंसी, अन्त्रग्रन्थि और निस्सारक।

स्थूलान्त्र का जो अंश सरलभाव से अवतरण करके मलाधार में परिणत होकर मलमार्ग रूप से पर्यवसित हुआ है, उसी के आभ्यन्तर देश में आसमन्तात वलास-वितान रहता है। अहिताशी मानवों का प्रवृद्ध धातु-भूत और मलभूत श्लेष्मा अगर अंत्रगत श्लेष्मा-वितान में संचित हो जाय, तो वायु बलवान होकर प्रवृद्ध और निश्चित श्लेष्मा का विमोक्षण करने में व्यावृत होता है। इस व्यापार में जो रोग होता है, उसको **प्रवाहिका** कहते हैं।

शूल के साथ स्वतन्त्र या मलसंयुक्त अथवा रक्तपित्त-मिश्रित श्लेष्मा की पुनः पुनः प्रवृत्ति होना, श्लेष्म निकलते हुए आद्यपथ में परिकर्तिका, न्यूनातिरेक परिमाण से ज्वर होना, प्रवाहिका का साधारण लक्षण है। दोष-भेद से प्रवाहिका चार प्रकार का है—वातज, पित्तज, कफज और रक्तज।

पाश्चात्य मतानुसार प्रवाहिका संक्रामक रोग माना जाता है। शिगैला (Shigella) जाति के कीटाणु, जिनको कि शिगा नामक विद्वान् ने सन् १८९८ ई० में पृथक् किया था, खाद्य पदार्थों द्वारा मुख से जाकर आहार-पथ में होते हुए वृहद् अन्त्र में जा पहुँचते हैं। वहाँ वे अन्त्रगत श्लेष्मा-वितान में शोथ उत्पन्न कर एक भाँति की तरलमय झिल्ली बना लेते हैं। अंत्रगत श्लैष्मिक कला के टुकड़े झड़ने पर व्रण बनन आरम्भ हो जाते हैं। पश्चात् उनसे रक्त आना आरम्भ हो जाता है। श्लैष्मिक कला के टुकड़े उखड़-उखड़कर गिरने से प्रवाहण रोग होता है तथा मल में रक्त, श्लेष्मा और श्लैष्मिक कला के टुकड़े गिरते हैं। वृहदन्त्र का निम्न भाग ही प्रायः आक्रमित होता है। कभी-कभी क्षुद्रान्त्र का निम्न एक तिहाई भाग भी शोथमय हो जाता है, फिर वहाँ पर भी व्रण बन जाते हैं। संक्रमण-भेद से प्रवाहिका दो प्रकार का है—१. बैसिलरी, २. अमीबिक।

यहाँ पर पाश्चात्य मतानुसार प्रवाहिका रोग की सम्प्राप्ति आदि दर्शाने का केवल यही ध्येय है कि आयुर्वेदिक सम्प्राप्ति और इस सम्प्राप्ति में केवल नाम-मात्र का ही भेद है। इसमें नया कुछ नहीं। पाश्चात्य पथानुसार इस रोग पर पूरा प्रकाश किसी लेख में फिर डाला जायेगा।

कफज प्रवाहिका अपथ्य—स्निग्ध द्रव्य-भक्षण से होती है। रूक्ष सेवन से वातज और तीक्ष्ण, उष्ण भक्षण से पित्तज और शोषितज प्रवाहिका होती है।

अतिसार रोग-जैसी प्रवाहिका में भी दो अवस्थाएँ—साम और निराम—होती हैं। आजकल भिन्न स्वतंत्र प्रकृति की प्रवाहिका-पीड़ा उत्पन्न होकर जन-समाज का महान् अनर्थ कर रही है। विशेषकर बालक-बालिका, दुर्बल, कृश, व्याधिक्लिष्ट, और वृद्ध व्यक्तियों में यह पीड़ा भयंकर रूप धारण करके इन सबको बहुत कष्ट पहुँचाती या इनका संहार कर देती है।

मगर निस्सारक, विस्रंसी, और अंत्रग्रंथि प्रवाहिका के अतिरिक्त आजकल हम जो स्वतन्त्र प्रकृति की प्रवाहिका-पीड़ा देखते हैं, वह सब भारतीय प्राचीन चिकित्सकों से अज्ञात थी, यह नहीं माना जा सकता। सम्प्रति हम जिस प्रवाहिका-पीड़ा की चिकित्सा करते हैं, चिकित्सा-सौकर्यार्थं इनको शुद्ध प्रवाहिका या निस्सारक सातिसार, **प्रवाहिका या विस्रंसी, विशिष्ट बीजप्रभवा या अंत्रग्रन्थि**

और रोगांतर प्रवाहिका—ऐसी चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

निश्चारक:—'निर' उपसर्ग के साथ 'चर' धातु से ण्वुल् प्रत्यय करके निश्चारक पद हुआ। मल के साथ जो कुछ निकलता है उसका नाम निश्चारक है। जिस रोग में मल के साथ श्लेष्मा वा कभी दुष्ट पित्तरक्त मिश्रित श्लेष्मा निकलता है, उसका नाम निश्चारक है। इसको शुद्ध प्रवाहिका कहा जा सकता है।

विस्रंसी या सातिसारिका प्रवाहिका:—'स्रंस' धातु का अर्थ च्युति, अधःपतन, स्खलन आदि है। 'वि' उपसर्ग के साथ स्रंस धातु को णित् प्रत्यय करके विस्रंसी पद हुआ। जिस पीड़ा से निचित श्लेष्म च्युत और रसादि अन्धातु स्खलित होता है, उसको विस्रंसी कहते हैं। युगपत अतिसार और प्रवाहिका पीड़ा की हेतु लक्षणोपलक्षिता है; अतः इसको सातिसारिका प्रवाहिका भी कहते हैं।

अनावृत बदन में प्रवाहमान शीतल रात्रि का वायु-सेवन करना, गलित जीव या उद्भिज से प्रदुष्ट वायु-सेवन करना, अपक्व फल या असम्यक् पाचित उद्भिज भोजन करना, मनुष्य या गो आदि पशु के मल-मूत्र या विगलित जीव-देह से निःसृत वाष्प-योग से प्रदुष्ट वायु सेवन करना, अति विरेचक औषधि सेवन करना, पुनः पुनः विरेचक औषध खाना, इन सब कारणों से युग्पद् शरीर का अन्धातु रस, रक्त, वसा, लसीका आदि—दुष्ट हो जाता और प्रवृद्ध श्लेष्मा अंत्रैक देश में निचित हो जाने से वायु कुपित होकर सातिसारिका प्रवाहिका का कारण बन जाता है। कोष्ठबद्धता, मल प्रवृत्ति की अल्पता या पुनः पुनः कोष्ठ विमुक्ति की इच्छा, निम्नोदर में शूल मालूम होना, कोष्ठ में वायु-संचय और दुर्गन्धित वायु का निस्सरण होना, भूख की अल्पता या अभाव, आलस्य, मुख वैरस्य—यह सब विस्रंसी के पूर्वरूप हैं। इस रोग में दुर्गन्धयुक्त मल निकलता है। एक, दो, या तीन बार मल निकलने के बाद हरितवर्ण-दुष्टपित्त मिश्रित श्लेष्मा उत्कट शूल के साथ आता है, साथ-साथ प्रबल ज्वर भी होता है। कभी-कभी पहले ज्वर होता है, पीछे यह रोग होता है। जिह्वा के ऊपरी भाग में लाल रंग का दाना-सा होता है। मुख-शोष-एवं पिपासा बलवती होती है। पीड़ा अगर बढ़ जावे, तो रक्तादि द्रवधातु के साथ श्लेष्मा निकलता है। शूल और कुन्थन की वृद्धि होती है। ज्वर-वेग बढ़ जाता है। कोष्ठ-परिष्कार की इच्छा बलवती होती है। जिह्वा के दाने व्रणरूप में परिणत हो जाते हैं। कभी-कभी आध्मान होता है, कभी-कभी नहीं भी होता। निम्नोदर के दोनों तरफ चाप देने से दर्द मालूम होता है। मूत्र विवर्ण, कृच्छ्र और अल्प हो जाता है। इस रोग में यकृत् की वृद्धि विशेषकर होती है। दर्द भी होता है, अतः रोजाना यकृत-परीक्षा करनी चाहिए। उपेक्षा, असम्यक् प्रतिक्रिया, अपथ्य, पीड़ा की उत्कटता से रोग दीर्घानु-बन्धी हो, तो अन्त्रदेश में क्षत हो जाता है। क्षतस्थान से रक्त या पीप निकलता है। अंत्र से श्लेष्मा या आंत्रिक विधान ढीला हो जाता, अति कष्टकर शूल के साथ श्लेष्मा निकलता है। गुदभ्रंश होता है। उदर-देश के उपराज्य चर्म की स्थिति-स्थापकता कम हो जाती है। वमन की इच्छा, वमन, हिक्का, शिरोलोटन, अस्थिरता प्रभृति इस रोग के बहुत खराब लक्षण हैं। कभी इस रोग से रोगी अवसन्न और निश्चेष्ट होकर मर जाता है।

अंत्र ग्रन्थि प्रवाहिका

समय-समय पर जनपदों में युगपद बहुत लोगों को प्रवाहिका रोग से आक्रान्त होते देखा जाता है। चिकित्सक गण इस प्रकार की प्रवाहिका की उत्पत्ति, उसी देश में प्रवाहिका-सम्भव बीज-विशेष का संचार अनुमान करते हैं। इस रोग का कारण प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता, अनुमान प्रमाण-सिद्ध है। किसी अनिर्दिष्ट कारण से, वायु-जल प्रभृति खराब होकर, अन्न-पानी द्वारा श्वास-पथ या रोमकूप-मार्ग से शरीर में संक्रमण करता है। इस प्रकार विशिष्ट प्रवाहिका वाले मनुष्य का शरीर-निःसृत मल-मूत्र स्वेदादि, किसी प्रकार से दूसरे आदमी के शरीर में प्रवेश करने से भी यह रोग हो सकता है। सर्वजन सेव्य वायु से जो रोग होता है, उसका वर्जन नहीं कर सकते। शरीर में जिनकी पाचन शक्ति दुर्बला है, उन सबको प्रवाहिका होती है।

प्रवाहिका की प्रारंभिक क्रिया शुरू हो जाने पर भूख की कमी, कोष्ठबद्धता, आलस्य, अरति और विषाद आदि पूर्व रूप उपस्थित होते हैं। शरीर में संचरणशील रोग-कारण अधोगामी होकर स्थूलांत्र में जाता है। वहाँ पहले क्षुद्र-क्षुद्र ग्रंथि को आक्रान्त करता है। यही इस रोग का विशिष्ट प्रभाव है। इस रोग की पहली अवस्था में उत्कट शूल पुरस्सर श्वेत या रक्त के मिलने से ईषत् लोहित वर्ण का कफ निकलता है। कभी-कभी दुष्ट हरित, दुर्गन्धित पित्तयुक्त या मल-मिश्रित कफ निकलता है। तीव्र संताप का ज्वर होता है। अंत्र का क्षत प्रवृद्ध और विस्तीर्ण हो जाने से रोग बढ़ जाता है। जिह्वा शुष्क, रूक्ष एवं खर स्पर्श हो जाती है। बलवती पिपासा रोगी को आकुल कर देती है। कोष्ठ-शूल, कुन्थन की वृद्धि; कभी-कभी प्रचुर रक्त निकलता है। रोग दीर्घानुबंधी हो जावे, तो विस्रंसी रोग के लक्षण होते हैं।

रोगान्तर सम्भव प्रवाहिका—पुरीषज कृमियों की उत्तेजना से कभी-कभी रक्त-कफ के साथ-साथ मल निकलता है। ज्वर, अतिसार, ज्वरातिसार, ग्रहणी, अजीर्ण प्रभृति रोग में भी समय-समय पर प्रवाहिका होती है। ऐसी प्रवाहिका को **रोगान्तर सम्भव प्रवाहिका** कह सकते हैं।

वातज, पित्तज, कफज, एवं रक्तज प्रवाहिका के लक्षण वातजादि अतिसारवत् जानना समुचित ही हैं।

(क्रमशः)

शहद के शीतल पेय

श्री रामेश वेदी

बड़े-बूढ़े और बीमार प्राय: कहा करते हैं कि गरमियों में शहद नहीं खाना चाहिए; क्योंकि वह गरम होता है। ऐसा कहते हुए वे आयुर्वेद का प्रमाण दिया करते हैं। मुझे यह बात गलत प्रतीत होती है।

चरक, सुश्रुत, धन्वन्तरि, नरहरि पण्डित, भावमिश्र, कैथदेव, मदनपाल आदि आयुर्वेद के विद्वानों की सम्मति में शहद का प्रभाव शीतल है। हृदय के पैत्तिक दोषों में चरक ने शीतल उपचारों के साथ शहद का प्रयोग किया है। पित्त के दोषों को दूर करने के लिए बहुत-से आयुर्वैदिक लेखकों ने शहद का अनेक स्थानों पर उपयोग सिद्ध किया है। इससे सिद्ध होता है कि यह गरम नहीं है।

प्राय: प्रत्येक जाति की भोजन-सूची में शहद सम्मिलित है। चरक और वाग्भट्ट ने साल की सब ऋतुओं में उपयोग किये जानेवाले भोजन-द्रव्यों में उसे गिनाया है। हाँ, कैथदेव और मदनपाल ने, गरम देशों में गरमियों में गरम पदार्थों के साथ, आग और धूप में पीड़ित गरम प्रकृतिवाले मनुष्य के लिए, आग पर गरम कर के शहद खाना मना किया है। इससे हम यह सामान्य नियम नहीं बना सकते कि गरमियों में शहद नहीं खाना चाहिए। हमारी सम्मति में शरीर की आवश्यकतानुसार यह प्रतिदिन खाया जाना चाहिए। इस ऋतु में उपयोग किये जाने के लिए, शहद के कुछ स्वादिष्ट पेयों का उल्लेख नीचे किया जाता है।

मधु-मिश्रित जल

अच्छा गाढ़ा पूर्ण परिपक्व शहद बरफ के पानी में जल्दी नहीं घुलता; इसलिए बरफीले पेयों को मीठा करने के लिए थोड़े से गरम (उबलते हुए नहीं) पानी में शहद को घोलकर फिर बरफ के जल में मिला लिया जाता है। पेय मीठा कम मालूम हो, तो इसी विधि से और मधु मिला सकते हैं।

शहद-मिश्रित लेमोनेड

स्वादु पेयों में सबसे बढ़िया पेय होता है—शहद से तैयार किया गया लेमोनेड या शहद से मीठा किया गया फलों का रस। शहदवाले शीत पेयों की उत्तमता की ओर यदि कारखानों का ध्यान जाय और अच्छा शहद उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बड़े परिमाण में मिल सके, तो निस्सन्देह शहरों में शहद की खपत काफी बढ़ सकेगी। किसी भी फल के रस के साथ शहद आश्चर्यजनक रूप से बहुत अच्छी तरह मिल जाता है; और शहदवाले लेमोनेड में अंगूर, चेरी या अनन्नास किसी भी स्वादु फल का रस मिला देने से, लेमोनेड की उपयोगिता भी कहीं अधिक हो जाती है। लेमोनेड तैयार करते समय शहद को गरम पानी में उक्त विधि से हल्का करके मिलाना चाहिए; अन्यथा मधु घुल न सकेगा और पेय बहुत खट्टा होगा।

शहद और नीबू का सिकंजबीन

गरमियों में ठण्डे पानी के साथ नीबू का रस और शहद मिलाकर दो तीन बार पिया जा सकता है। सरदियों में रुचि के अनुसार इसे गरम कर लें। नीबू को दो टुकड़ों में समान विभक्त करें और आग पर रखकर गरम करें। जब रस निकलने लगे, तो आग पर से उठाकर रस निचोड़ लें। शहद के साथ यह ठण्डे या गरम पानी के साथ प्रतिदिन लिया जा सकता है और लेमोनेड का अच्छा प्रतिनिधि है।

आइसक्रीम में शहद

एक छटाँक मलाई का बर्फ (आइसक्रीम), चौथाई प्याला शहद और एक प्याला दूध लें। चौथाई हिस्से गर्म दूध में शहद घोलें, फिर ठण्डा दूध मिलाकर आइसक्रीम मिलायें। अच्छी तरह हिलाकर पियें।

फल-रसों में शहद

डेढ़ प्याला नारंगी का रस, पौन प्याला अंगूर का रस तीन बड़े चम्मच-भर नीबू का रस, आधा प्याला शहद, छोटा आधा चम्मच नमक मिलाकर जरा-सा पीपरमेंन्ट मिलालें। हिम-मंजूषा (रेफ्रिजरेटर) में रख दें और जब चाहें बरफ के पानी में डालकर पियें।

कोको और शहद

दो छोटे चम्मच-भर कोको, तीन बड़े चम्मच-भर शहद और एक प्याली दूध लें। दूध को आग पर रखें। कोको और शहद को मिला लें। दूध में एक उबाल आने पर उतार लें और इसमें शहद तथा कोको का मिश्रण और जरा-सा नमक भी डाल दें। खूब हिलाएँ। बरफ डाली हुई चाय के गिलास में इस मिश्रण को डालें और गिलास को बरफ के टुकड़ों से भर लें। पेय तैयार है।

जो लोग चाय पीने के आदी हैं, वे यदि चाय बनाने की विधि में थोड़ा-सा परिवर्तन कर लें, तो चाय को अधिक स्वादु पायँगे। एक प्याला उबलते जल में जरा-सी चाय डालकर थोड़ी देर सीझने दीजिए। पानी में हल्का-सा रंग आ जाने पर छान लीजिए और एक नीबू का रस तथा चार चम्मच शहद मिलाकर गरम ही पी लीजिए।

कोको, चाय और बर्फ का सेवन विशेष अच्छा नहीं है। फिर भी जो लोग इनके बिना रह नहीं सकते, उनके लिए उक्त विधियों का पालन लाभदायक होगा।

——०० ——

केश-तेल

श्री नगेन्द्रदत्त मिश्र, बी० एस-सी०

केशों के बाह्य सौन्दर्य के अतिरिक्त बालों को आवश्यक प्राकृतिक भोजन देने एवं उनकी जड़ों को सुदृढ़ बनाने के लिए उचित वनस्पति तेलों की उतनी ही आवश्यकता पड़ती है, जितनी कि स्वास्थ्य के लिए घी की। वनस्पति तेल ही ऐसे स्नेह पदार्थ हैं, जो शरीर के अन्दर पहुँचकर वसा के रूप में परिणत होकर त्वचा के आन्तरिक भाग में इकट्ठे होते हैं और आवश्यकतानुसार शरीर को आवश्यक ताप, शक्ति एवं भोजन प्रदान करते रहते हैं। बालों को भी त्वचा के अन्दर उत्पन्न होते रहने के लिए निरन्तर जीवनी-शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। त्वचा के भीतर बालों की जड़ों में छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं, जिन में वसा एवं प्रोटीन संचित रहती है, जो बालों को बढ़ाने के लिए आवश्यक जीवनी-शक्ति प्रदान करती है। त्वचा के ऊपर निकले हुए बालों के अंश में जीवनी-शक्ति नहीं रहती। जब बालों की ग्रन्थियों में आवश्यक जीवनी-शक्ति का अभाव हो जाता है, तब बालों का उत्पन्न होना बन्द हो जाता है और गंज हो जाती है। बालों में यथेष्ट जीवन-तत्त्व नहीं रहता और वे सफेद हो जाते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि स्वस्थ बालों के लिए केश-तेलों का चुनाव ठीक प्रकार से किया जाना चाहिए। यही नहीं, व्यवहार करने पर तैल पदार्थ रोमकूपों से होकर शरीर के अन्दर आ जाता है और इस प्रकार बाह्य-रूप से भी शरीर को भोजन देता है।

शरीर के अन्दर एवं बालों की जड़ों की ग्रन्थियों में स्नेह पदार्थ मानव वसा के रूप में रहते हैं। केवल वे ही वनस्पति तेल मानव-वसा में परिवर्तित हो पाते हैं, जिन में शीघ्र पच सकनेवाले स्नेह-अंश अधिक हों। ये अंश घी में सर्वाधिक होते हैं। उसके बाद पाम-तेल, नारियल (खोपड़ा) के तेल का नम्बर आता है। उसके बाद तीसी, तिल, मूँगफली एवं सरसों के तेलों का नम्बर आता है।

सरसों के तेल में विशेष तीक्ष्ण गन्ध होने के कारण केश-तेल के काम में यह बहुत कम ही आता है; यद्यपि इसमें कीटाणु-नाशक शक्ति अन्य तैलों की अपेक्षा अधिक रहती है। इन वनस्पति-तेलों को केश-तेल के उपयोग में लाने के लिए आवश्यक होता है कि उनमें उपस्थित मैल, रासायनिक अशुद्धियाँ, गन्ध एवं अनावश्यक रङ्ग को दूर कर उन्हें स्वच्छ एवं शुद्ध बना लिया जाय और तब उनमें आवश्यकतानुसार सुगन्ध एवं ओषधियाँ मिलाकर उन्हें केश-विन्यास के लिए प्रयुक्त किया जाय।

केश-शोधन क्रिया

किसी भी तेल को केशों के लिए प्रयुक्त करने के पूर्व भलीभाँति शोधन करना आवश्यक होता है। वनस्पति-तेलों में मिट्टी, धूल के अतिरिक्त वसाम्ल, रङ्गीन पदार्थ एवं गन्ध देनेवाले पदार्थ प्राकृतिक रूप से उपस्थित रहते हैं, जो बीज से तेल निकालने के साथ ही आ जाते हैं। इन अवांछनीय पदार्थों को दूर करना अति आवश्यक होता है क्योंकि इनके रहने से तेल में रङ्ग आ जाता है तथा दुर्गन्ध रहती है। अतएव, प्रत्येक तेल को निम्नलिखित विधि द्वारा पहले भली प्रकार परिष्कृत कर लेना चाहिए—

तेल को एक गहरे बर्तन में दो दिन के लिए छोड़ दीजिए, जिससे कि उसमें उपस्थित भारी अघुलनशील पदार्थ तेल में बैठ जायँ। ऊपर का साफ तेल दूसरे बर्तन में लेकर उसमें मुल्तानी मिट्टी अथवा फुर्लसअर्थ नामक क्रियाशील मिट्टी अथवा क्रियाशील चारकोल या हड्डी का कोयला; कुल तेल की मात्रा का एक प्रतिशत भाग लेकर मिला देना चाहिए। यदि ठण्ढ के दिन हों, तो इस मिश्रण को बहुत मन्दी आँच पर रखकर अथवा ग्रीष्म ऋतु में पाँच-छ घंटों तक धूप में रखकर गर्म कर देना चाहिए। पात्र, तामचीनी या काँच का अथवा पक्की कलईवाला होना चाहिए। ताँबा, लोहा आदि के पात्रों में तेल परिष्कृत करने से उसमें दुर्गन्ध एवं रङ्ग आ जाता है। गर्म करने के बाद तेल एक रात के लिए निथरने के लिए छोड़ दीजिए। दूसरे दिन एक छना-कागज की सहायता से इस तेल को छान लीजिए।

इस प्रकार की शोधन-क्रिया द्वारा नारियल, तिल, बादाम, रेंडी, जैतून, सरसों एवं मूँगफली के तेल सरलता

पूर्वक साफ किये जा सकते हैं। नारियल तथा रेंड़ी के तेल को शीत ऋतु में छानने में विशेष कठिनाई पड़ती है ; अतएव उसे धूप में रखकर अथवा बन्द कमरे में आग के पास रखकर छाना जा सकता है।

कभी-कभी मूंगफली, रेंड़ी, तिल (विशेषकर काली तिल) तथा सरसों के तेल में बहुत अधिक गन्ध तथा रंग होता है। इसे इस रीति से आप दूर कर सकते हैं—ऐसे तेल को पहले चारकोल अथवा फुर्लसअर्थ के साथ मिलाने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उसमें कुल तेलों की मात्रा का अधिक-से-अधिक ०.१ प्रतिशत तक मात्रा के अनुपात से जर्द कसीस (पोटेशियम डाइक्रोमेंट) १ भाग तथा साधारण गाढ़ा गन्धकाम्ल १० भाग मिलाकर बनाए हुए घोल को लीजिए तथा तेल के साथ खूब अच्छी तरह फेंट डालिए तथा हल्का गर्म करने के लिए कुछ देर धूप में रख दीजिए। ध्यान रखिए कि यह क्रिया केवल काँच या तामचीनी के बर्तनों में ही की जाय। अब इस तेल को यथेष्ट मात्रा में ताजे स्वच्छ जल से कई बार खूब अच्छी तरह धो डालिए। तेल में पानी डालकर खूब हिलाकर एक ऐसे गहरे काँच के पात्र में उसे भर दीजिए, जिसके नीचे पेंदे में से एक टोंटी की सहायता से पानी बाहर निकाला जा सके। तेल और पानी थोड़ी देर रखने पर स्वतः अलग हो जाते हैं। यह धोने की क्रिया कई बार करनी आवश्यक होती है, जिससे तनिक भी गन्धकाम्ल तेल में न रहने पावे। यह शोधन-क्रिया नारियल तेल के साथ सम्भव नहीं हो पाती। इस क्रिया द्वारा अत्यन्त मैले तेल भी शुद्ध रंगहीन बन जाते हैं। इसके बाद तेल छना-कागज से छान लेना चाहिए। इस प्रकार तेल साफ करने के बाद उसे एक साफ बोतल में भर लेना चाहिए। यदि तेल में पानी का अंश हो, तो उसे थोड़ी-सी चूने की कलई अथवा शुष्क सोडियम-सल्फेट की सहायता से दूर किया जा सकता है। ये सब रसायन किसी भी रसायन-विक्रेता अथवा विलायती दवा विक्रेता के पास प्राप्त हो सकते हैं।

केशों के श्रेष्ठ तेल

यह एक साधारण-सी बात है कि सिर में केवल वे ही तेल प्रयुक्त किये जा सकते हैं, जो खोपड़ी पर पपड़ी के रूप में जमकर सूख न जायँ, या रूसी (फियास) न पैदा करें। वही केश-तेल सर्वोत्तम होता है, जो बालों को चिकना करने के साथ-साथ उनमें आवश्यक जीवनी-शक्ति प्रदान करने वाला, उन्हें कोमल, स्वच्छ एवं मस्तिष्क में शीतलता प्रदान करनेवाला हो। साथ ही यदि उसमें कीटाणु-नाशक शक्ति हो, तो और उत्तम।

उत्तम केश-तेल चुनने में इन बातों का ध्यान रखना परमावश्यक है—तीसी, कुसुम एवं मूँगफली के तेल सूखनेवाले तेल होते हैं। इनके उपयोग से सिर में पपड़ी पड़ जाती है और इसके कारण रूसी, खुजली एवं फुंसियाँ निकलने लगती हैं ; अतएव सिर के लिए अथवा शरीर की मालिश के लिए इन तेलों का उपयोग कदापि नहीं करना चाहिए। मूंगफली के तेल का कुप्रभाव इतना शीघ्र मालूम नहीं होता, जितना कि तीसी एवं कुसुम के तेलों का। मूँगफली का तेल मस्तिस्क में उष्णता भी लाता है।

नारियल या गरी का तेल केशवर्धन के लिए सर्वोत्तम है ; अतएव जिन्हें लम्बे केशों की आवश्यकता हो, उन्हें नारियल के तेल का ही प्रयोग करना चाहिए। छोटे बालों के लिए तिल-तेल, सरसों एवं रेंड़ी के तेल का उपयोग उत्तम होता है ; क्योंकि यह सरलता-पूर्वक प्राप्त होता है तथा बालों में रूसी आदि नहीं पड़ने देता और न शीघ्र सूखता ही है। रेंड़ी का तेल यदि वैज्ञानिक विधि से स्वच्छ कर लिया जाय, तो अत्यन्त उच्च कोटि का होता है; क्योंकि इसमें मस्तिष्क को शीतलता प्रदान करने की शक्ति होती है और साथ-साथ यह बालों को चिपका हुआ रखता है।

तेलों में औषध मिलाना

परिष्कृत तेल को यदि ओषधियुक्त बनाना हो, तो आवश्यकतानुसार उसमें शिकाकाई, ब्राह्मी, आँवला, भृंगराज अथवा कैन्थराब्बड्स का तेल में निकाला हुआ सत मिला दीजिए। यदि रूसी तथा गंज को रोकने के लिए और ओषधि की आवश्यकता हो, तो प्रति सेर तेल पीछे एक तोला रिसोर्सिन या रिसोर्सिनोल तथा आधा ड्राम आयल-रोजमीरा तथा एक ड्राम डी० टी० पाउडर गर्म करके मिला दीजिए। इसके बाद प्रति सेर तेल की मात्रा पीछे आधी छटांक बेन्जलबे जोमेट नामक रसायन द्रव मिला दीजिए।

तेल में सुगन्ध मिलाना

केश-तेल के लिए सुगन्धों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया जाना चाहिए। केवल एक ही सुगन्ध मिलाने

से उच्चकोटि के सुगन्ध प्राप्त नहीं होती। सुगन्ध हल्की, दिमाग को ताजा करनेवाली, देर तक ठहरने वाली तथा सिर के लिए पूर्णतः हानिरहित होनी आवश्यक है। यह सब बातें मिश्रित-सुगन्ध से ही प्राप्त हो पाती हैं, अतएव ऐसी सुगन्ध चुनी जानी चाहिए, जो सरलतापूर्वक तेल में भलीभाँति मिल जावे। केश-तेल के लिए मैसूर का शुद्ध चन्दन का तेल, बेंजिल एसीटेट, गुलाब, लवेण्डर, कृत्रिम मुश्क, कुमारीन, जाइलीन-मुश्क तथा चमेली में उत्तम कोटि की सुगन्ध होती हैं। इन में चन्दन का तेल तथा कृत्रिम मुश्क की सुगन्ध अन्य गन्ध-प्रधान सुगन्धों को, अपने में भिदाकर देरतक ठहरने में सहायता देती है। अतएव प्रत्येक सुगन्ध-मिश्रण में चन्दन-तेल तथा मस्क जाइलान अथवा कृत्रिम-मुश्क थोड़ी-बहुत मात्रा में अवश्य रखनी चाहिए तथा सब सुगन्धों को बेंजिल-एसीटेट में मिलाकर सुगन्धों को तेल में मिलने योग्य घोल तैयार कर लेना चाहिये जिसे समय-समय पर आवश्यकतानुसार तेल में मिलाया जा सकता है। सुगन्धों का मिश्रण कर, उसे जितने ही अधिक दिनों तक बोतल में बन्द रख दिया जाय, वह उतना ही उत्तम हो जाता है।

साधारणतः निम्नांकित फारमूला उपादेय होगा—यद्यपि सुगन्धों का चयन तथा मिश्रण पूरी तरह व्यक्तिगत आवश्यकता पर निर्भर करता है। मस्क जाइलोल (सूखा) १ भाग, लेवेण्डर २ भाग, गुलाब ४ भाग, तेल-चन्दन (मैसूर) १ भाग, बेंजिल-एसीटेट ८ भाग, बेंजिल बैंजोएट ८ भाग।

सुगन्ध के इस मिश्रण को कुल तेल की मात्रा का दशमलव एक प्रतिशत तक की मात्रा में ही मिलाना यथेष्ट होता है। यदि तेल में रंग मिलाना हो, तो तेल में घुलनशील पीला, लाल, हरा रंग बाजार से प्राप्त कर सकते हैं। रतनजोत का भी उप ोग किया जा सकता है। सुगम और अच्छा यही होता है कि सफेद धुली तिल्ली का तेल, बैल की घानी से प्राप्त रेंड़ी का तेल तथा सफेद शुद्ध नारियल के तेल को ही उपर्युक्त विधियों से शुद्ध और सुगन्धित बनाकर प्रयुक्त किया जाय। ह्वाइट् आयल का तेल केश-तेल के लिए कदापि उपयोग न करना चाहिए; क्योंकि यह शरीर में पच नहीं पाता जिसके कारण बालों को तथा त्वचा को आवश्यक भोजन मिलना बन्द हो जाता है और परिणाम-स्वरूप बाल सफेद हो जाते हैं या गिरने लगते हैं।

केश-तैल का प्रयोग

केश-तैल का पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए यह आवश्यक है कि तेल को सिर पर २५-३० मिनट तक हथेली तथा उगलियों की सहायता से सोने के पूर्व या नहाने के पहले भलीभाँति मला जावे। तेल लगाने के बाद साबुन का प्रयोग न करिए। यदि साबुन से सिर धोना हो, तो पहले साबुन से सिर धो डालिए और फिर गीले सिर में ही १०-१२ मिनट तक तेल को मलिए। मालिश करने से तेल बालों की जड़ों में शीघ्र पहुँच जाता है और आप के सिर को आवश्यक पुष्टई देने के साथ-साथ बालों को काला, मजबूत, कोमल तथा चमकदार रखता है।

—०—

(११८५ पृष्ठ का शेषांश)

करने के साधनों को जानना चाहते हैं, तो उन्हें आयुर्वेद शास्त्र को पढ़ना चाहिए।

रसायन-प्रयोग——शास्त्र कहता है कि बाल्यावस्था में कफ, युवावस्था में पित्त और वृद्धावस्था में वात प्रधान होता है। रसायन-प्रयोग एक ऐसी क्रिया है, रसायन-ओषधियाँ एक ऐसा ईंधन हैं कि इनके प्रयोग से पित्त काल की समाप्ति का समय बहुत देर से आता है। अगर किसी वायुयान में ईंधन की मात्रा अधिक हो, तो वह अधिक दूर तक उड़ान कर सकता है। इसी तरह रसायन-औषधों के सेवन से जीवन-काल बहुत लम्बा हो जाता है और यह जवानी, जिसकी कदर वृद्ध ही बता सकते हैं, रसायन-प्रयोग से अमर हो जाती है।

संसार के वैज्ञानिक अगर मनुष्य-मात्र की वास्तविक सेवा करना चाहते हैं, उनकी सच्ची लगन है कि वह जीवन-काल को लम्बा करनेवाले विज्ञान को जाने और सदा जवान रहने का नुस्खा उन्हें मालूम हो, आयु की औसत १५० वर्ष हो जाये, तो उन्हें आयुर्वेद की शरण में आना चाहिए। आयुर्वेद ही उन्हें मनोवांछित ज्ञान दे सकता है।

——:०:——

RENAISSANCE OF AYURVEDA-II

BY

Dr. P. M. MEHTA, M.D., M.S., F.C., P.S., F.I.C.S.

(Dr. Mehta is the Director of the Central Institute of Research in Indigenous System of Medicine, Jamnagar, and as such it has devolved on him the charge of organising Research in Ayurveda with a view to the application of Scientific methods for the investigation of Ayurveda with reference to maintenance of health and the prevention and cure of disease. With this end he has got to find out the steps to be taken to improve the facilities for research and training in Ayurveda. A right man in the right place.

In this Convocation address, delivered at the second convocation of the board of Ayurvedic medicine, Assam, he has given some ideas of his workings for the development, research, education and training for a full conception of the Science of Ayurveda. We are publishing here the Concluding portion of his address.

He has quoted extensively from Charaka Samhita and other treatises to show the method of working for teaching the Students and the function of the students during their student career and after. He has also shown the methods, the ancients adopted to make Ayurveda a scientific structure of practical utility.

Having been trained in both the modern science and Ayurveda, Dr. Mehta has been able to give the concept of positive health, prevention and cure of disease, as also of the advent of the new era of medicine in which Ayurveda has a message and material to give. Ed.)

In ancient India, the physician therefore was required, to be fully equipped, for such clinical tests, to be sound of judgement, and to be keen in his sense-preceptions. It is no wonder that, with such meticulous elaboration of the methods of examination, the physicians of India, were far-famed in the past, for their skill in diagnosis and healing. This medical glory of India, was at its zenith, during the time beginning with the period just preceding Buddha, until the 8th century A. D., when the physicians of India, were invited to Jundishapur and Baghdad, for consultation, and, were put in charge of the hospitals. Its highest achievement was, during the period of Asoka, when the culture of India, was carried across her oceans to the south, and the mighty mountains and the table-lands to the north. The greater India of that day, including *Tibet*, parts of *Java*, *Sumatra* in the east and extending up to *Bactria* and *Persia*, almost upto the shores of *Greece*, in the west was built, not by military conquest, not by invasions and commercial exploitation, but by the devout and humanitarian priests and missionaries, who carried the sacred words of knowledge, and the means of healing, along with them. In a word, they possessed the means of healing, both spiritual and physical. That is an ideal, that India of ancient times, pursued, without laying herself open, to the charge of imperialism and exploitation, in the wrong sense. Hers was the imperialism of the spirit and of knowledge, whose empire knew no bounds, not even of time, space, and transcended the distinctions of *race*, *colour*, and *religion*. In a word her domain was, the heart and soul of man i. e. of all mankind, and, she built it up, with all the strength at her command.

YOUR ENTRANCE IN LIFE IS OPPORTUNE AND AUSPICIOUS.

Young friends, your entrance in the new

phase of the medical career, is, very opportune and auspicious, as it coincides with the new era, that has begun in *India*, in *Indian medicine*, and in the *medicine of the world*. The new era of independence or स्वराज्य in India, has awakened the whole nation, to the new life and outlook, that lie ahead. A regular renaissance, is taking shape, and advancing, with a surprisingly progressive tempo, in all spheres of activity *social*, *political*, *educational*, *economic*, *medical* and *other spheres* of national importance.

1. Renaissance of Ayurveda.

The renaissance of Ayurveda, had already begun, but it was progressing very slowly. With the quickening impetus of independence, Renaissance of Ayurveda has accelerated its speed, and progresses with *dynamic force*, to restore its pristine glory. As it happens in every renaissance, there occurs, a crucial tussle, between the two extreme schools of thought, one conservative and the other the liberal one. This double phenomena, serves the useful purpose, of *adoption* and *assimilation* of good of both.

It is inevitable, that issues so important and so stimulating, should pass through, a period of controversy and disagreement.

At the present, *happily*, battle-lines are getting shortened, and both are coming nearer and nearer every day, and one can feel that the day is not far off, when *diversity will* be *converted into unity in the interest of the whole world*.

The present unhappy position, is an *artificial creation*. Both groups being ignorant of the spirit of each other, have assumed the position of rival systems of medicine. This confusion will disappear, if one thinks seriously about this matter, and *studies the history of* medical science in the world. Science and scientific world, have always been one, and will always remain one. It is ridiculous to say, that, scientific truths can possibly vary with the orient or the occident. Theories and hypothesis or methods of approach, may differ, but facts and scientific truths will always be the same. They cannot be labelled Eastern or Western; they are universal. Whenever knowledge is imperfect, as it undoubtedly is, in the case of medical science, such difference of opinion and theories, are inevitable; but no true scientist, Eastern or Western, would ever reject a proposition, merely, because it is advanced, by one born or living in a country different from his. On the contrary, if it is proved that, the other view is better than his own, he would not have the least hesitation in readily accepting it. Ever since the dawn of history, there has been free and unrestricted communion, between the East and the West in the domain of learning. In medicine, as in other branches of knowledge, each has freely and zealously given to, and taken from, the other in the past. Even when kings were engaged in mortal strife, the men of medicine, were freely fraternising, as members of, that universal brother-hood of knowledge and wisdom, which knows, no distinctions of *race*, *creed* or *community*. The supreme object of all students of medicine, Eastern or Western, is the maintenance of health, the prevention and the cure of disease. There is no better way of working, towards the fulfilment of this object, than, to think in terms of the whole of Humanity, and not those of lesser units, such as *Europeans*, the *Asiatics* and the like, which, sometimes, unfortunately, may I also add, divide man, from fellow man, even in the colourless domain of science. I need not emphasize, that India survives, because, she has always been animated, by universal spirit. *Our science is universal*. Our preceptors thought in terms of universal good. Their precepts were universal. Many years ago, Charakacharya laid down the following for the guidance of his disciples :

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते।
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत्॥

'That is the right medicine, which makes

for health, and he is the best of physicians, who relieves people of disease.

Modern science, too, is animated with the same spirit. Such differences as appear, are *merely* superficial and incidental, to development in different periods and countries. B. C. 600 to A. D. 600 was the Ayurvedic period in India. Greek and Roman medicine under Hippocrates and Galen, developed, during nearly the same period. Then came the Arabic medicine, which took freely, from both East and West, and kept the torch of scientific medicine alive. European renaissance started, on the Arabic synthesis, and consolidating these foundations, by the meticulous study of the original Greek science, made a quick stride, and spread all over the world. But in its foundation, *it missed* absorbing two main sources of knowledge—India and China. Its foundations would have been stronger, if the distilled experience and scientific knowledge, of more than half the human race, tried and tested for more than two thousand years, had been added to it.

Thus the science of medicine, when looked upon as a whole, is one and the same,its aim is to find out, and make use of the best methods, of freeing humanity, from disease and of keeping it in perfect health. This is the spirit of Ayurveda and this is also the spirit of modern science. Under the banner of unity, let the exponents and experts, of the so-called rival systems, meet together, and frame a comprehensive medical scheme, which is best suited to the needs of India.

One trained solely in Western science, possessing high ambitions and intellectual capacity, is tempted, to imitate in toto, the western methods of medical relief. In his over enthusiasm for the Western science, he fails to study, the condition of his land and people. India with a continental area of land, with an enormous population, amounting to one fifth of the whole human race, with seven lacs of villages, with stark poverty on all sides, with scanty means of communication, with illiteracy preponderating, with its outlook tinged with philosophy and inspired by religion in every phase of life in one form or another, with its diversity of *races*, *climate*, *season*, *diet*, *language* and many other things, is likely to make him miss the mark.

Moreover, medicine is not the mechanical science. It has to deal with the living body of man, and so the knowledge of his *feelings* and *emotions*, his *inclinations* and *proclivities*, his *constitution* and *vitality*, his *passions* and *aspirations*, is most essential, for the successful application of theoretical knowledge of any moment.

A harmonious adjustment of all branches of knowledge, will be necessary, for achieving some concrete good to humanity. Modern science or knowledge is making progress, with an incredibly rapid stride, but that science, if detached from humanism, if uncontrolled, may serve either purpose, of, *harming* or *helping* humanity. We have witnessed, both the eventualities in these days—Atomic bomb and Penicillin. Knowledge has outstripped the wisdom, and morality lags as a very footsore companion, behind advancing science. But harmonious progress of all sciences will give us, the wisdom of, when and where and how, to use that colossal power of healing or killing man.

The other school of practitioners, being in a dependent state, and living in stagnation, and under suppression for centuries, and ruined in many aspects, has long been, in a very pessimistic mood. Its spirit has only recently awakened, and it has again begun to be hopeful. But members of this school are often afraid, at the bottom of their hearts, that, if they join forces, with the Western science, they feel that, the individuality, which they have been able to preserve so long, will get submerged, in the new colossal tide of modern science. This is entirely an unfounded fear, and arises, from an inadequate appreciation, of the eternal value and worth, of the teachings of their Rishis.

2. New era of medicine has set in where Ayurveda has a message and material to give.

The concept of health has been greatly changed, and so is altered, the scope of medicine. It is now no more, a mere curative science, but is becoming dominantly a preventive one, and hopes to be a creative science of promoting health. Ayurveda has a *message and material to give for this purpose.*

The modern progress of science, has greatly diminished, the incidence of epidemics and fatal diseases, and thus increased the possibility of longevity of human life. Great length of life without *vigor*, *energy*, *enthusiasm* and *outlook* will be a personal as well as social misfortune. Ayurveda has developed the subject of longevity, as a special branch. It may be very helpful, to solve this problem of the whole world.

3. Modern medicine is entering into a new phase, in which it is very akin, to the basic concepts of Ayurveda. Analytical medicine is returning, to synthetic or holistic concept of personality of man, as a whole. Ayurveda gave first importance, to the man as a whole. Environmental factors of the physical world being nearly controlled, the main *stress* and *distress* of man, are now psychic, and so modern medicine is now becoming dominantly psycho-somatic.

Ayurveda made its very beginning with psycho-somatic concept.

Human beings are bio-social animals, and so *bio-social homeostasis* is needed to maintain their health, as well as the global health. Here too, Ayurveda is the first, to have such an all comprehensive universal concept.

There is thus surprising similarity, between the concept of health, recently evolved, in the new era of medicine by, World Health Organization, and the concept of health formed two millennia back by Ayurveda.

The definition of health, contained in the constitution, of the World Health Organization, is, that health is a state of complete *physical*, *mental* and *social* well-being, and not merely the absence of disease or infirmity.

Ayurveda, two thousand years back, had similarly set up, for itself, the very lofty ideal of positive health, perfect in its minutest detail.

The ideal healthy man of Charaka, is he, who is a well-wisher of all creatures, who does not covet other people's goods; who is a teller of truth, who is peace loving, who acts with deliberation, is not negligent, is devoted to the true ends of life (viz : virtue, wealth, and enjoyment) without letting any one end come in conflict with the other two; who is reverential, to those who are worthy of reverence; of a scholarly, scientific and retiring disposition; partial to the company of elders, of well curbed passions of desire, anger, envy, pride and conceit; constantly given to charitable acts ; devoted always to austerity, knowledge and quietitude; endowed with spiritual insight, one-minded, contemplative of good in this world and the next, and endowed with memory and understanding. C. S. 30 - 24.

हितैषिण: पुनर्भूतानां, परस्वादुपरतस्य, सत्यवादिनः, शमपरस्य, परीक्ष्यकारिणोऽप्रमत्तस्य, त्रिवर्गं परस्परेणानुपहतमुपसेव्यमानस्य, पूजार्हसंपूजकस्य, ज्ञानविज्ञानोपशमशीलस्य, वृद्धोपसेविनः, सुनियतरागरोषेर्ष्यामिदमानवेगस्य, सततं विविधप्रदानपरस्य, तपोज्ञानप्रशमनित्यस्य, अध्यात्मविदः, तत्परस्य, लोकमिमं चामुं चावेक्षमाणस्य, स्मृतिमतिमतो हितमायुरुच्यते । च. सू. ३०, २४

In any case, all over the world, people have realised the preventive and positive nature of medicine, and the *ministers* concerned are now known as the holders of Health portfolio instead of medical portfolio. They might, with greater truth, be called the holders of portfolio of social life, preferably the holders of portfolio of Ayurveda (Science of Life).

OUR IDEAL AND GOAL.

I look forward to a time, when there will

be *no separate rolls* of Vaidyas and Doctors, *no separate colleges* for Ayurveda and Modern medicine. That time is surely and quickly going to come, when in India at any rate, every medical man, will be required, to know the basic knowledge of Ayurveda and Modern medicine, and also, how best to bring them into application for an *integrated outlook on health, disease* and *its cure.*

I wish that in future, all medical colleges, at any rate those in India, will go by the name, of '*Ayurveda Vidyalayas*'. To those who are accustomed, to think of Ayurveda as an archaic system of medicine, this may appear an alarming wish, - one that threatens to put the clock back. But it is up to us, to educate these people, out of their ignorant fears; it is upto us, to demonstrate to the world, that Ayurveda is neither archaic, nor a mere system. Ayurveda is a *living science*, with a scope as wide as life itself. The recent and passing disrepute, into which the word 'Ayurveda' has fallen, and lost its correct meaning, cannot obscure, the glorious history, of two millenia of medical achievement and progress, for which it stands. In reviving the name, *we wish to revive the spirit, that animated* it in the past—a spirit, that recognises no limitations of any kind, *geographical, racial* or *religious.* Ayurveda represented, and represents, the *universal science of medicine*, which according to the needs of the particular time and country, may take this or that form of expression. Thus, in an Ayurvedic college, one may study *Arabic* or *American medicine*, as legitimately, as Indian or Chinese medicine. Ayurveda is thus, truly *international in spirit and scope.* Even as far back as the days of Charaka, the great Rishi Atreya mentions, the existence of many systems of medicine, prevalent in India.

विविधानि हि शास्त्राणि भिषजां प्रचरन्ति लोके।

च. वि. ८, ३

'Many treatises of medicine, are current in the world.'

The student in these colleges, should receive such a thorough training, that after graduation, one can safely entrust him, with the living human body, without any qualms of conscience. Students passing from these colleges, should not hanker after, the popular appellation of *doctor*, which carries with it the qualification for treating the physical body mainly. They should rather aspire after, the ancient and honoured name of *Vaidya*, which denotes, the knower of the complete science. (वैद्य from विद् to know).

Some will call this a *mere dream.* Even if it is a dream, let me say that, the dream is taking shape. I know it will take time, before it emerges full-fledged. I know that, the path of the pioneer, is not strewn with roses. But at the same time, I do know that, the dream will come true at no distant future, and this distance can be shortened, if all people of *goodwill philanthropists, humanitarians, statesmen, scholars* - unite, in making their contribution, towards the attainment of this goal, and I venture to predict, that the result of such united efforts, will far surpass, the brightest dream of an optimist. The duty then, of *the students*, that are undergoing training in the few pioneer *institutions* now running, is to see that, they try to achieve this end, as early as possible. They should not take up, their training, in the light of an 'open sesame', to careers, but it should be, the full-time mission of their lives. It is by taking such a view, that the cause of Ayurveda, will be advanced. It is such missionaries, that will win for Ayurveda, its rightful place, in the comity of other systems; it is by such devotion, and singleness of purpose, that the *glory that WAS Ind, will be transformed into the glory that IS Ind.*

YOUNG STUDENTS—OUR HOPES.

Without under-estimating the value of the progress, already achieved in the field of Ayurveda, we feel that, much remains to be done. What a vast amount of ignorance, and prejudice are still prevalent about Ayurveda, in the educated class, and our brethren doctors, who are trained in Western

medicine. Laity is indifferent. It tends to accept, which is more agreeable or available or convenient to it. *Prejudice may be one of interest* or of *ignorance*. The *first* is wilfully preferred, and the second is blindly adopted. And it is a stupendous task, to remove either type of prejudice. It will need time, patience, perseverance and energy; and *to achieve this we look unto the young generation* - mean present students of all Ayurvedic colleges. May you scatter the seeds of faith in Ayurveda, in the public mind, and carry its message of universal humanity, to every home of India. Once planted in the fertile soil, of people's mind, it will continue to flower for ages, and bear fruits for many generations. You must work for harmony and co-operation, in *every stratum of life, from the village upto the international organization.* I earnestly exhort you, to this course of beneficent service, because I feel that, the young men of the country, are at this moment the main hope.

Youth is generous; its patriotism is free from selfishness; it is full of just and ardent impulses. Early manhood, it has been truly said, is sanguine. Men of this state of existence, have a long life before them, and they naturally feel, a deep interest in the events, which are to influence, their whole future career. May I not then flatter myself, that you young men, will lay it to heart, to foster the growth, and spread, of our distinctive national culture amongst our fellow men ?

BLESSINGS

Friends, *torch bearers of Ayurveda,* before concluding my say today, I give you my whole-hearted *blessings* for your bright and bounteous future career, both as practitioners and *creators of new medicine in India* and the *world.* Jai Hind.

NOTE OF PRAGJYOTISHPUR.

I feel an inexplicable joy to be in Gauhati. As you may be knowing Gauhati is identified by Indologists as Pragjyotishpur of Pauranic fame. That city was the capital of Narakasur or Bhaumasur, who fought with Shri Krishna. My astonishment is all the more greater when I remember the tradition persisting in Saurashtra that a place called Gop some forty miles south of Jamnagar is a place where Bhaumasur's pragjyotishpur stood on the banks of the river वरतु referred to as श्रावर्तिका in हरिवंश. Gop possesses the oldest temple in Saurashtra situated as it is on the northern bank of the river with a rock-cut ancient cave adjoining it. The people there even to-day point out a big flat rock (शिला) as the place where Shri Krishna had taken his bath after killing the असुर Thus Gop has its own antiquity and Gauhati has its own antiquity. I may let you know that the गर्गसंहिता in its विश्वजितखंड places Pragjyotishpur at the eastern-most point of Bharat-Varsha whence people crossed into किंपुरुषवर्ष the second country in order of the old जम्बुद्वीप the present Asia Major. It is, therefore, natural that I experience a *mystic joy* on finding such a great similarity in traditions of Gauhati in the eastern-most part and Gop in the western-most part of India, signifying clearly *the oneness of* भारतवर्ष । (Concluded).

——:0:——

पाठकों के विचार

संगठन की आवश्यकता

चरक आयुर्वेद भवन, मोदीनगर के अध्यक्ष, वैद्यराज, कविराज पं० केदारनाथ शर्मा, आयुर्वेद-विशारद लिखते हैं कि आयुर्वेद के बारे में भारतीय, विदेशी सभी प्रकार के बुद्धिजीवी, वैज्ञानिक अब जहाँ उसकी वैज्ञानिकता को दिन-प्रतिदिन स्वीकार करते जा रहे हैं, वहाँ स्वयं भारतीय गण-राज्य की स्वास्थ्य मन्त्रिणी को शंका होने लगी है कि यह आयुर्वेद भारतीय जनता के स्वास्थ्य की रक्षा नहीं कर सकेगा। लोकसभा के प्रत्येक राजनीतिक दल के प्रति-निधियों, डॉक्टरों ने आयुर्वेद को जन स्वास्थ्य के लिए जहां अत्युपयोगी बताया, वहाँ एक कदम आगे बढ़कर स्वास्थ्य मन्त्राणी ने कह दिया कि ग्रामीण जनता भी अब आयुर्वेद को छोड़कर एलोपैथी की शरण में आ रही है या ग्रामीण-जनता आयुर्वेद को पूर्ण नहीं समझती। ऐसे विचार जिस दृढ़ता से राजकुमारीजी ने कहे हैं, उनकी आड़ में जनमत या लोकमत नहीं है, बल्कि हमारे संगठन की कमी है। आज आयुर्वेद भारतीय जनता की नस-नस में समाया हुआ है। भारत का कोई भी कोना ऐसा नहीं है, जहाँ आयुर्वेद की पहुँच नहीं हो। फिर आयुर्वेद राष्ट्रीय चिकित्सा का स्थान ग्रहण न करे, यह आश्चर्य का ही विषय है। आज हमारा संगठन जहां एक ओर आयुर्वेद के महान् सेवकों द्वारा अपनी विजय-पताका, राज्य सरकारों द्वारा आयु-र्वेद वह भी शुद्ध आयुर्वेद पद्धति को प्रमाणित करवाकर, फहरा रहा है, वहाँ हम में से ही कुछ वैद्य महानुभाव इस सफलता को पुराण-पंथियों और रूढ़िवादियों की हठ कह रहे हैं। वह इस प्रकार आयुर्वेद को ऊँचा उठता नहीं देखना चाहते बल्कि वह आयुर्वेद को पश्चिमी वैज्ञानिकों की तरह नये-नये प्रकार से बदलते आविष्कारों के रूप देखना चाहते हैं। जहाँ एक ओर हमारे हजारों वर्षों के सिद्धान्त उसी प्रकार से अटल है, वहाँ इन वैज्ञानिकों ने न जाने कितनी करवटें ली हैं। हम यह कभी नहीं कहना चाहते कि नवीन विज्ञान व्यर्थ है, बल्कि हमारा अभिप्राय इतना ही है कि आयुर्वेद इतनी कसौटी पर चढ़ा हुआ है कि यदि उसे यों ही अपनाकर अमल किया जावे, तो पूरी सफलता मिलेगी।

पूज्य स्वामी श्री शतानन्दजी और उनका आयुर्वेद-विज्ञान, आयुर्वेद-महासम्मेलन के लिए और आयुर्वेद के लिए एक चेतावनी है। आज जहाँ हम आयुर्वेद को लेकर आगे बढ़ना चाहते हैं, वहाँ यह भी आवश्यक है कि हम एकमत हों, हमारे एक विचार हों। स्वामीजी भी आयुर्वेद के सेवक हैं। उनका ध्येय भी आयुर्वेद-प्रचार ही है। फिर भी हम में भिन्नता है। ऐसे ही कार्यों से प्रोत्साहित होकर हमारी स्वास्थ्य मन्त्राणी भी आयुर्वेद को स्वीकार करने को तैयार नहीं होतीं। जनमत हमारे साथ है, विचारक हमारे साथ हैं, फिर क्या कारण है कि हमें चुनौती मिल रही है; अतः आप स्पष्ट रूप से समझ लीजिए कि इतना होने पर भी यदि आयुर्वेद को हम आगे नहीं बढ़ा सके, तो जब पश्चिम के उपासक हमारी पीठ में छुरा घोंप कर दिन प्रतिदिन आगे ही बढ़ते जायँगे और हमें एक प्रकार से विवश करके जनता तक पहुँचेंगे, तब एक बार फिर केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्राणी का गर्जन होगा कि आयुर्वेद अवैज्ञानिक है और वह यों ही नहीं होगा, उसके लिए जनमत तक स्वीकार किया जावेगा। हममें से सभी वर्ग आयुर्वेद के हितैषी हैं। फिर समझ में नहीं आता कि सैद्धान्तिक मतभेदों का लाभ देकर, हम अपने ही हाथों अपना विनाश कर रहे हैं। आज समय आया है कि कोई ऐसा रास्ता हम निकालें। स्वामी श्री शतानन्दजी-जैसे विचारक और श्रद्धेय यादवजी तथा शिव शर्मा जैसे विद्वान् सब मिलकर एक रास्ता बनावें। आखिर सबकी स्वकीर्ति तो आयुर्वेद ही से है।

—o—

आयुर्वेद-जगत

आयुर्वेदीय पद्धति के विकास की आवश्यकता

बरेली में गत २२ अप्रेल को उत्तर प्रदेश के स्वास्थ्य मंत्री श्रीचन्द्रभानु गुप्त ने उत्तर प्रदेश वैद्य-सम्मेलन के विशेष अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए, वैद्यों को यह विश्वास दिलाया कि आयुर्वेद को दूसरी पंचवर्षीय योजना में विशेष स्थान दिया जायगा। इसलिए यह महत्त्वपूर्ण है कि वैद्य अपनी शक्ति इस पद्धति को अधिक अच्छी और कारगार बनाने में लगावें।

श्री गुप्त ने कहा कि मेरे विचार से इस समय देश में लोग चिकित्सा की देशी पद्धति को अधिक पसन्द करते हैं। सरकार भी इस में पुनः जान फूंकने की कोशिश कर रही है। इसकी सफलता इस बात पर निभर करती ह कि इसके समर्थक अपनी रूढ़िवादिता को कहाँ तक खत्म करना चाहते हैं।

उन्होंने इस बात पर खेद प्रकट किया कि राज्य में वैद्यों-हकीमों में आपस में विरोध दिखाई पड़ता है। उन्हें इस तरह की भावनाओं से ऊपर उठना चाहिए।

आपने वैद्यों से अपील की कि वे आधुनिक वज्ञानिक खोजों से दूर रहने की प्रवृत्ति को त्याग दें।

श्री गुप्त ने इस आरोप को गलत बताया कि राज्य सरकार आयुर्वेद के विकास पर उचित ध्यान नहीं दे रही है। उन्होंने कहा कि पिछले चार-पांच वर्षों में इस दिशा में सरकार का खर्च दूना हो गया है। देशी दवाओं की फारमेसी खोली गई हैं और इससे राज्य के सब-के-सब ५३६ सरकारी चिकित्सालयों की आवश्यकता पूरी हो जाती है। उन्होंने यह भी बताया कि फारमेसी का विस्तार करने का इरादा है।

उन्होंने बहुत-सी आयुर्वेदिक संस्थाएँ खोलने की प्रवृत्ति के विरुद्ध चेतावनी दी और वैद्यों से कहा कि वे अपने साधनों को एक साथ जुटाकर एक सुदृढ़ केन्द्रीय आयुवदिक शिक्षा-केन्द्र की स्थापना करें।

श्री गुप्त ने धर्मदत्त-चेरिटेबल आयुर्वेदिक अस्पताल की नई इमारत का उद्घाटन किया और २५ बिस्तरवाले नये जनरल वार्ड का शिलान्यास किया।

कोटा में आयुर्वेदिक प्रदर्शनी

कोटा के दिगम्बर जैन औषधालय में गत २४ अप्रेल को स्वास्थ्य एवं आयुर्वेद-प्रदर्शनी का उद्घाटन राजस्थान के उप-राजप्रमुख श्री महाराव साहब कोटा द्वारा किया गया।

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के अध्यक्ष पं० श्री शिव शर्मा की अध्यक्षता में कार्यवाही प्रारम्भ हुई। श्री महारानी गर्ल्स इन्टर कालेज की छात्राओं द्वारा प्रार्थना व स्वागत गान-किया गया। और श्री डॉ० विद्याशंकर, पूर्व चीफ मेडिकल आफीसर कोटा राज्य का स्वागत-भाषण हुआ। आपने एलोपैथिक डॉक्टर होते हुए भी आयुर्वेद के प्रति अपनी आस्था प्रकट की। उपराज प्रमुख ने अपने उद्घाटन-भाषण में संस्था की सेवाओं एवं प्रगति पर सन्तोष व्यक्त किया।

श्री नाथूलाल जैन 'वीर' द्वारा दिगम्बर जैन औषधालय के गत अर्ध शताब्दी के कार्य एवं प्रगति का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया। आपने औषधालय की तात्कालीय आवश्यकताओं पर भी प्रकाश डाला। इस अवसर पर भारत के राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, राजस्थान के रसदमंत्री श्री भोगीलाल पंड्या, स्वास्थ्यमंत्री श्री कुम्भाराम आर्य, योजनामंत्री श्री टीकाराम पालीवाल, सेठ भागचन्द सोनी अजमेर, श्री लालचन्द सेठी इन्दौर, जवाहरलाल जैन, मंत्री, राजस्थान गांधी-स्मारक-निधि जयपुर, स्वामी जयरामदास, जयपुर द्वारा प्राप्त शुभ-कामना संदेश सुनाये गये।

श्री अमृतलाल यादव, बन एवं सहकारीमंत्री राजस्थान राज्य ने अपने भाषण में आयुर्वेद-चिकित्साप्रणाली को स्वाभाविक मां का दूध बताया, जब कि एलोपैथिक प्रणाली को बोतल का दूध कहा। आपने कहा कि आयुर्वेद-चिकित्सा काफी पुरानी है, जिसका प्रमाण आज भी ग्रामों में स्पष्टतया देखने को मिलता है।

श्री पं० शिव शर्मा ने अपने अध्यक्षीय भाषण में बताया

कि मुगल राज्य ने और अंग्रेजी राज्य ने हमारे देश की इस प्राचीन आयुर्वेद-चिकित्साप्रणाली को समाप्त करने के लिए भरसक प्रयत्न किये। आज अपनी कही जानेवाली सरकार भी इसको येनकेन प्रकारेण समाप्त करने का छिपा हुआ प्रयत्न कर रही है, जब कि विदेशों के लोग आयुर्वेद-प्रणाली के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते जा रहे हैं। हो सकता है कि वैद्य लोग खराब हों, पर उसके लिए आयुर्वेद-प्रणाली को दोषी नहीं कहा जा सकता। दोषी तो है आज की अपनी कही जानेवाली सरकार, जो इस प्रणाली के प्रति अक्षम्य उदासीनता बरतती जा रही है। आपने आयुर्वेद के प्रत्येक पहलू पर विद्वत्तापूर्ण प्रकाश डाला। जिसे उपस्थित जनता ने काफी पसन्द किया।

इसके पश्चात् औषधालय के वैद्यों एवं अन्य कर्मचारियों को पारितोषिक दिया गया। अन्त में सभा की कार्यवाही समाप्त हुई।

उसी रात्रि को कोटा वैद्य-परिषद् की ओर से श्रीशम्भूदयाल सक्सेना के सभापतित्व में एक सभा श्री पं० शिव शर्मा के अभिनन्दन के लिए हुई। सर्व प्रथम श्री कन्हैयालाल वैद्यभूषण द्वारा मंगलाचरण एवं श्री मोतीशंकर द्वारा स्वागत-गान किया गया। आचार्य श्रीनित्यानन्द सारस्वत पिलानी द्वारा आयुर्वेद-चिकित्सा पर प्रकाश डाला गया। श्री पं० रामचन्द्र शर्मा आचार्य द्वारा श्री पं० शिव शर्मा को अभिनन्दन-पत्र अर्पित किया गया। श्री शर्मा ने अभिनन्दन का उत्तर देते हुए बताया कि वैद्यों को आयुर्वेद के प्रचार के लिए सरकार के भरोसे न रहकर अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए और अपना एक सुदृढ़ संगठन बनाना चाहिए।

चिकित्सालय का शिलान्यास

श्री धन्वन्तरिधाम राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, असू, जिला इटावा का शुभ शिलान्यास गत १७ अप्रेल को श्री दत्तात्रेय अनंत कुलकर्णी जी एम० एस-सी, आयुर्वेदाचार्य, उपसंचालक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य (आयुर्वेद) उत्तर प्रदेश द्वारा सादर सम्पन्न हुआ। सर्व प्रथम पुष्प-हार के अनन्तर वैदिक-विधि से मन्त्रों द्वारा स्वस्तिवाचन हवन एवं शिलान्यास कराया गया। तत्पश्चात् सभा का आयोजन किया गया, जिसमें सर्व-प्रथम उपसंचालकजी को ग्रामपंचायत द्वारा मानपत्र प्रदान किया गया। उपसंचालकजी ने इसके लिए हार्दिक बधाई देते हुए, पंचायत के कार्यों की प्रशंसा की। इस कार्य के लिए श्री रामस्वरूप उपाध्याय एवं रघुबरदयाल उपाध्याय ने भवन-निर्माण के हेतु जमीन दान में दी है तथा महात्मा बलरामदासजी प्रज्ञाचक्षु ने चिकित्सालय निर्माण के हेतु एक कमरा बनाने का पूर्ण भार अपने ऊपर लिया है। जिसमें लगभग १५००) व्यय होने की सम्भावना है। ग्राम-पंचायत ने ५००) प्रदान किया है। तथा अन्य समस्त ग्रामवासियों ने भी इस कार्य के लिए तन, मन, धन से पूर्ण करनेके हेतु आश्वासन दिया है। कार्य प्रारम्भ हो चुका है। भवन-निर्माण के पश्चात् पुनः पाठकों को सूचित किया जावेगा।

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, गौचर

हम गौचर की समस्त जनता व आसपास के पड़ोसी ग्रामों की जनता अपनी प्रान्तीय सरकार के प्रति अपना हार्दिक धन्यवाद प्रकट करते हैं।

अपने उच्च अधिकारी महोदय श्री कुलकर्णी जी एम. एस-सी. (उप संचालक, आ० लखनऊ), श्री भट्ट साहब (जिला स्वास्थ्य अधिकारी, पौड़ी, गढ़वाल), श्री बलदेवसिंह आर्य (एम० एल० ए०), श्री भक्तजी (एम. पी.) आदि महानुभावों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिन्होंने उक्त चिकित्सालय को गौचर में अविलम्ब खोलने में हमारी चिर अभिलाषा की पूर्ति की। तिस पर भी गढ़वाल के एक प्रसिद्ध चिकित्सक कविराज श्री सीताराम शर्मा ध्यानी, वी. आई. एस. एस. महोदय को राजकीय चिकित्सालय 'कटरा' बहराइच से यहाँ तबदील कर इंचार्ज रूप में देखकर हमें अपार हर्ष हुआ है।

चिकित्सालय ने गत ९ अप्रेल, ५४ से अपना कार्य सुचारु रूप से आरम्भ कर दिया है और जनता पूर्ण लाभ उठा रही है। रोगी-संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। अधिकारी वर्ग से सविनय प्रार्थना है कि चिकित्सालय के लिए आवश्यक सामान आदि भेजने में शीघ्रता की जाय।

—श्री देवानन्द पं० रा. अ. सरपंच, गौचर, अपर गढ़वाल।

वैद्याओं तथा महिला हकीमों को आर्थिक सहायता

उत्तर प्रदेश सरकार ने निश्चय किया है कि मुफ्त आर्थिक सहायता योजना के अधीन चालू वर्ष में उपयुक्त गाँवों तथा नगरों में ५ योग्य महिला हकीम तथा वैद्याएँ रखी जायँगी।

वैद्याओं तथा महिला हकीमों को, जो छोटे-छोटे नगरों तथा गाँवों में चिकित्सा आरम्भ करने के लिए बसना चाहती

हैं, मुफ्त आर्थिक सहायता देने की योजना १९५२-५३ में आरम्भ की गई थी। आर्थिक सहायता केवल ऐसी ही वैद्याओं तथा महिला हकीमों को दी जायगी, जो उत्तर प्रदेश के बोर्ड आफ इण्डियन मेडीसन से रजिस्टर्ड होंगी। उनको विशेषता दी जायगी, जो मान्यता प्राप्त आयुर्वेदिक तथा यूनानी कालेजों की परीक्षाएँ पास होंगी।

आयुर्वेदीय ओषधियों की परीक्षा

आयुर्वेदीय ओषधियों की कार्यकारिता की जाँच की व्यवस्था गांधी मेमोरियल लेप्रोसी फाउण्डेशन द्वारा की गई है। अतएव, आयुर्वेद के चिकित्सकों को सूचित किया जाता है कि जिन वैद्यराजों के पास कुष्ठ की कोई रामबाण ओषधि हो, उन्हें गान्धी मेमोरियल लेप्रोसी फाउण्डेशन में आवेदन करना चाहिए। क्या औषधें हैं, यह बता देना होगा, जिसमें कि, शुद्ध आयुर्वेदीय चिकित्सकों की एक कमेटी में निर्णय किया जा सके कि वह परीक्षणीय है या नहीं। आवेदन करने की अन्तिम तिथि ३० जून १९५४ है। इसके बाद प्राप्त आवेदन-पत्रों पर विचार नहीं होगा। इस सम्बन्ध का सारा पत्र-व्यवहार हिन्दी या अंग्रेजी में किया जाय। आवेदन का फार्म और सम्बन्धित अन्य जानकारी नीचे लिखे पते से मिलेगी :—
डॉ० आर० वी० वारडेकर, बी० एस-सी०, एम० डी०, मन्त्री, गांधी मेमोरियल लेप्रोसी फाउण्डेशन, वर्धा (मध्यप्रदेश)।

दवाओं के प्रयोग के नियम

गांधी मेमोरियल लेप्रोसी फाउण्डेशन, वर्धा (मध्य-प्रदेश) ने आयुर्वेद की दवाओं का प्रयोग करने के लिए निम्नलिखित नियम बनाये हैं—

वैद्यराज को दवाई का नाम, उसके हरेक घटक की ओषधि का नाम, मात्रा, दवाई बनाने का तरीका, दवाई की मात्रा तथा दवाई से होनेवाले दुष्परिणाम इत्यादि विवरण प्रयोग के शुरू में ही देना पड़ेगा।

शुद्ध आयुर्वेदिक वैद्यों की एक छोटी-सी कमेटी बनाई जायेगी, जो सभी आवेदन-पत्रों पर विचार कर, यह प्रयोग करने की संधि किस आवेदक को दी जाय, इसका निर्णय करेगी।

गांधी मेमोरियल लेप्रोसी फाउण्डेशन के खर्च की दृष्टि से इन आवेदकों में से कुछ ही व्यक्तियों को ऐसे प्रयोग करने की संधि दी जायेगी।

यह प्रयोग एक खास स्थान पर किया जायेगा। स्थान का निश्चय करने में, बीमार कितने हैं, जाँच करने की सहूलियत कितनी है, काम की देखभाल करने के लिए क्या सुविधाएँ हैं, इत्यादि पर विशेष ध्यान दिया जायेगा।

प्रयोग के लिए आवश्यक रोगियों को ढूँढने की जिम्मेदारी आवेदक पर रहेगी। उम्मीद है कि रोगी मिलने में कुछ कठिनाइयाँ नहीं आयेंगी।

इस प्रयोग की देखभाल करने के लिए एक एलोपैथिक डाक्टर फाउण्डेशन की तरफ से नियुक्त किया जायेगा, जो प्राणी-शास्त्र द्वारा तथा और भी आवश्यक जाँच करेगा। यह जाँच, प्रयोग के शुरू में तथा जरूरत पड़ने पर समय-समय पर, की जायेगी। इस प्रयोग की सफलता के बारे में आवश्यक जानकारी उसी के द्वारा लिखी जायेगी।

आवेदक अपने तरीकों से रोगियों की परीक्षा कर सकता है।

आवेदक अपनी दवाई स्वतः निश्चित आवश्यक मात्रा में देगा, या उसमें रद्दोबदल भी कर सकेगा; लेकिन इस दवाई की तथा उसमें किये हुए परिवर्तन के बारे में आवश्यक जानकारी फाउण्डेशन के डॉक्टर को देता रहेगा।

यदि दवा आवेदक ने खुद बनाकर रोगियों को दी होगी, तो भी उसकी जानकारी फाण्उडेशन के डॉक्टर को कराता रहेगा।

दवा के कुछ नशीले तथा कुछ बुरे परिणाम न हों, तो वह किसी चंगे आदमी को, रोगियों को जिस मात्रा में दवा दी जायेगी, उसी मात्रा में देकर, उसके पेशाब तथा खून की जाँच की जायेगी। इस जाँच का मतलब इतना ही होगा कि पेशाब या खून में डी. डी. एस. या उसके सरीखी अन्य दवाइयाँ आवेदक ने अपनी दवा में मिश्रित की हैं या नहीं।

ऊपर लिखे हुए तरीकों से आवेदक की दवा की जाँच करने पर वह कुष्ठ रोगियों को आवश्यक मात्रा में दी जायेगी और उन रोगियों की पेशाब तथा खून की डी. डी. एस. या उसके सरीखी अन्य दवा के लिए किसी वक्त परीक्षा की जाएगी।

गांधी मेमोरियल लेप्रोसी फाउण्डेशन की तरफ से २० कुष्ठ रोगियों के रहने तथा भोजन की व्यवस्था की जाएगी। इस प्रयोग के लिए जो कुछ भी आवश्यक खर्च होगा, फाउण्डेशन करेगी। साथ ही, आवेदक का वेतन भी,

जो मासिक ७५) से अधिक नहीं होगा, फाउण्डेशन देगी। यदि एक ही ग्राम में, जिनके रहने के लिए मकान तथा भोजन का प्रबन्ध है, ऐसे २० कुष्ठ रोगी मिल जायें, तो उन रोगियों पर रहने का तथा खाने का खर्च करने की आवश्यकता नहीं होगी। सिर्फ दवा शुरू करने के बाद जो कुछ विशेष आहार आवेदक के कहने से देना पड़ेगा, वही दिया जाएगा और उसका खर्च फाउण्डेशन देगी।

राजकीय आयुर्वैदिक चिकित्सालय, सिद्धसोड़

गत १९ अप्रेल को राजकीय औषधालय सिद्धसोड़ भवन-निर्माण की सभा, श्री परमानन्दजी शास्त्री की अध्यक्षता में हुई। सर्वप्रथम वैद्य इन्चार्ज कुलानन्द नौटियाल आयुर्वेदाचार्य ने औषधालय-निर्माण-कमेटी बनाने का प्रस्ताव किया और श्री उमरावसिंह रावत ने समर्थन किया। श्री परमानन्दजी शास्त्री सभापति, श्री शेरसिंहजी मन्त्री, श्री गोकलसिंहजी कोषाध्यक्ष, और श्री उमरावसिंहजी, प्रधान प्रचारक चुने गये।

इसके बाद २२०० रुपये में औषधालय-भवन-निर्माण करने का ठेका दिया गया। श्री उपसंचालक महोदय, आयुर्वेद विभाग उत्तर प्रदेश से यहाँ की जनता ने प्रार्थना की कि दीन-हीन जनता की ओर ध्यान देकर, इस औषधालय के हेतु अनुदान देकर वे कृतार्थ करें। अन्त में भगवान् धन्वन्तरि की पूजा करके औषाधालय सिद्धसोड़ का निर्माण प्रारम्भ कर दिया गया और शास्त्रीजी ने, श्री कुलानन्द नोटियाल आयुर्वेदाचार्य जिस लोकप्रियता व कार्यकुशलता से औषधालय में कार्य कर रहे हैं, उसकी प्रशंसा की।

आयुर्वेद सेवा-समिति की सभा

श्री स्वामी दयानिधि महाराज के सभापतित्व में गत २७ अप्रेल को आयुर्वेद-सेवा-समिति, बाबा कालीकमलीवाले हृषीकेश के अध्यापक, चिकित्सक, वैद्य, तथा समस्त कर्मचारियों की एक सभा चिकित्सालय-भवन में हुई, जिसमें निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ—

श्री १०८ बाबा कालीकमलीवाले की आयुर्वेद-सेवा-समिति के समस्त विभागों के कर्मचारियों की यह सभा श्री पं० ठाकुरदत्तजी शर्मा वैद्य, आविष्कारक अमृत धारा देहरादून की स्वर्गीया धर्मपत्नीजी के देहावसान पर हार्दिक शोक प्रकट करती है और उनके शोक-सन्तप्त परिवार के साथ संवेदना प्रकट करती है। भगवान् से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति एवं सद्गति प्रदान करें और शोक-सन्तप्त परिवार को धैर्य प्रदान करें।

यह भी निश्चय हुआ है कि इस शोक-प्रस्ताव की प्रतिलिपि वैद्यजी की सेवा में देहरादून भेजी जावे, तथा समाचार पत्रों में प्रकाशित कराई जावे।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के बिक्री-केन्द्र का उद्घाटन

गत २७ अप्रैल को लखनऊ अमीनाबाद में धन्वन्तरि औषधालय के नाम से श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के बिक्री-केन्द्र का उद्घाटन-समारोह बड़ी सजधज से संपन्न हुआ। इस अवसर पर भवन के प्रतिष्ठापक वैद्यराज श्री रामनारायणजी शर्मा उपस्थित थे।

उन्होंने अपने संक्षिप्त भाषण में आयुर्वेदोत्थान के विषय में अपने विचार प्रकट किये और यह भी कहा कि भगवान् उन्हें प्रलोभन से बचाये रखे, जिस से वह आयुर्वेद की सच्ची सेवा कर सकें।

उत्तर प्रदेश सरकार के आयुर्वेद-विभाग के उपसंचालक श्री दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी ने अपने सारगर्भित भाषण में भारत-भर में फैले हुए, भवन के ओषधि-व्यवसाय और उनके द्वारा निर्मित औषधियों की प्रामाणिकता प्रकट करते हुए आयुर्वैदिक सेवाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

धर्मार्थ औषधालय व स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० झाँसी द्वारा संचालित श्री धर्मार्थ औषधालय तथा स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र द्वारा गत अप्रेल मास में ४१३२ रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई, जिन में ८७७ नये रोगी आये। उपरोक्त नये रोगियों की संख्या रोगानुसार नीचे लिखे मुताबिक है—

प्रतिश्याय १५, क़ास १४०, ज्वर ५०, दीर्घ कास ११, श्वास ११, अतिसार ५०, आमातिसार २७, टाइफाइड २, वातव्याधि ५०, प्रदर १५८, रक्तपित्त २८, स्नायुदौर्बल्य २२, ग्रहणी ५, कामला १०, अनिद्रा ३, रक्तविकार ४०, बालरोग २५, शिरोरोग २०, नेत्ररोग ८१, नाशार्श २, कर्णरोग २९, वृषणशोथ १०, हिस्टीरिया २, उदर रोग २, मन्दाग्नि १०, मूत्रकृच्छ्र ८, प्रमेह १५, रक्तचाप २, विविध १५।

आन्ध्र आयुर्वेद-परिषद् की बैठक

आंध्र सरकार द्वारा गठित आयुर्वेद-परिषद् की बैठक बेजवाड़ा में ३० अप्रेल को सायंकाल श्री नोरीराम शास्त्री गारू के निवासस्थान पर हुई।

बैठक में परिषद् के ११ में से सात सदस्य उपस्थित थे। परिषद् के अध्यक्ष डॉ० ए० लक्ष्मीपति, मद्रास ने सभापतित्व किया।

आयुर्वेद की शिक्षा, वैद्यों का रजिस्ट्रेशन, ग्राम्यवैद्यों का प्रशिक्षण और आयुर्वेद में ऋषिअर्चन से सम्बन्धित विषयों पर विचार-विमर्श करने के बाद अनेक प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

परिषद् के आलोच्य विषयों तथा सुझाव सम्बन्धी नियमों के बारे में सरकार का नियमित आदेश प्राप्त होने पर परिषद् की पुनः बैठक होगी।

मलेरिया विषयक प्रचार

राष्ट्रिय मलेरिया-नियंत्रण कार्यक्रम को क्रियान्वित करने में लोगों का व्यापक सहयोग प्राप्त करने के लिए ७ से १२ जून, १९५४ तक मलेरिया विषयक प्रचार-सप्ताह मनाया जायगा।

हर साल लगभग साढ़े सात करोड़ व्यक्ति मलेरिया से पीड़ित होते हैं। लगभग आठ लाख व्यक्ति इस रोग के सीधे प्रभाव से और इतने ही अप्रत्यक्ष प्रभाव से मरते हैं। राष्ट्रिय मलेरिया-नियन्त्रण कार्यक्रम, जिसके लिए योजना आयोग ने १० करोड़ रु० की व्यवस्था की है, संसार में अपने ढंग का सबसे बड़ा कार्यक्रम है। यह आन्दोलन अप्रैल, १९५३ में शुरू किया गया था और नवम्बर, १९५३ तक सारे भारत में ४ करोड़ ३० लाख से भी अधिक व्यक्तियों की इस रोग से रक्षा की गई, ८५ लाख से भी अधिक घरों में कीटाणुनाशक दवा छिड़की गई और मलेरिया के लगभग ३, ४५,००० रोगियों की चिकित्सा की गई।

मलेरिया-नियन्त्रण का सन्देश विभिन्न शहरों, कस्बों और गावों में जितने अधिक लोगों तक पहुँचेगा, उतना ही यह कार्यक्रम सफल होगा। अतएव, केन्द्रीय स्वास्थ्य, मंत्रालय ने राज्य सरकारों से अनुरोध किया है कि वे सभी साधनों द्वारा इस आन्दोलन को अधिक-से-अधिक प्रचारित करें।

अखिल भारतीय वैद्य-हकीम कांग्रेस

बम्बई के प्रमुख वैद्यों व हकीमों की एक सभा हाल ही में वैद्य अमोलकचन्द सीताराम मिश्र के औषधालय, नर-नारायण मन्दिर, कालबादेवी रोड में हुई, जिसमें अ० भा० वैद्य-हकीम कांग्रेस की स्थापना की गई। इसका प्रथम अधिवेशन शीघ्र ही बुलाने का निश्चय किया गया है। अधिवेशन के उपस्वागताध्यक्ष वैद्य पं० कन्हैयालाल जी भेड़ा, वैद्य पं० सीतारामजी मिश्र, वैद्य पं० प्यारेलाल-जी शर्मा आदि प्रमुख विद्वान्, स्वागत मंत्री वैद्य पं० अमोलकचन्द जी मिश्र तथा सहकारी मंत्री श्रीमती चंचल बहन देसाई, अली-महम्मद जीवाभाई, वैद्य पं० अमृतलाल-जी एनापुरे, कोषाध्यक्ष श्री प्रह्लादराय त्रिवेदी और प्रचार मन्त्री वैद्य पं० देव शर्मा निर्वाचित हुए।

वैद्य-हकीम कांग्रेस का कार्यालय—नरनारायण मन्दिर. २२९, कालबादेवी रोड, बम्बई–२ में रखा गया है। अधिवेशन की तैयारियाँ जोर-शोर से चल रही हैं।

नासिक नगर आरोग्य सप्ताह

नासिक नगरपालिका, रोटरी क्लब, मेडिकल एसो-सिएशन और नासिक नगर वैद्य-मण्डल ने गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी सम्मिलित रूप से आरोग्य-सप्ताह का आयोजन किया। इस अवसर पर सभी वार्डों में सफाई की गई। नागरिकों को सफाई की आवश्यकता से अवगत कराने के लिए व्यापक प्रचार-कार्य किया गया। उप-र्युक्त चारों संस्थाओं के सदस्यों और म्युनिसिपल अधि-कारियों ने नगर की सफाई की व्यवस्था की और नागरिकों के स्वास्थ्य को अक्षुण्ण रखने के उपायों पर विचार-विमर्श कर म्युनिसिपल-अध्यक्ष के समक्ष सुझाव उपस्थित किये गये। घरों की सफाई के लिए भी कई योजनाएँ प्रस्तुत की गईं। इस अवसर पर प्रदर्शनी का भी आयोजन हुआ। नासिक नगर वैद्य-मण्डल द्वारा प्रदर्शिनी में अनेक प्रकार की वनस्पतियों, खाद्य पदार्थों, घरेलू ओषधियों तथा फल एवं शाक-सब्जियों का प्रदर्शन किया गया। इस प्रकार जनता को आरोग्यरक्षा के उपाय बताने की चेष्टा की गई। नासिक नगर वैद्य-मण्डल के प्रमुख सदस्यों ने जनता को स्वास्थ्य-रक्षा के लिए अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिये। इस प्रदर्शिनी से करीब ३० हजार व्यक्तियों ने लाभ उठाया। प्रान्तीय मण्डलों को प्रत्येक जिले में ऐसी प्रदर्शिनियों का प्रतिवर्ष आयोजन करना चाहिए, जिससे जनता आरोग्य-रक्षा के उपायों से अवगत हो सके। ऐसा होने पर जनता अपने स्वास्थ्य की ठीक-ठीक देख-रेख करने लगेगी और विदेशी औषधों का देश में आयात कम होने लगेगा। नासिक के शिवाजी बाग में नित्योपयोगी और घरेलू आवश्यकता की १०० वनस्पतियाँ लगाने के लिए वैद्य-मण्डल

प्रयत्नशील है, जिससे सर्वसाधारण की जानकारी बढ़े और रोगों को दूर करने में जनता उन वनस्पतियों का उपयोग कर सके।

नासिक नगर वैद्य-मण्डल का चुनाव

गत मई मास के द्वितीय सप्ताह में नासिक नगर वैद्य-मंडल का चुनाव हुआ और निम्नलिखित पदाधिकारी चुने गये :—

अध्यक्ष—वैद्य वि० मो० दातेजी, उपाध्यक्ष—वैद्य पी० पी० टापरजी, मंत्री—वैद्य ग० भ० लोखंडेजी, वैद्य श्रीरामकृष्ण करमरकरजी (आयुर्वेदाचार्य), कोषाध्यक्ष—वैद्य ब० न० रानडेजी, आय-व्यय निरीक्षक—वैद्य दि० कृ० देवधरजी, अध्ययन-मंडल के प्रमुख—वैद्य त्र्यंबक शास्त्री दाते।

अध्ययन-मण्डल का समारोह

नासिक नगर वैद्य-मंडल के अध्ययन-मंडल का समारोह दिनांक ६ मई को मनाया गया। समारम्भ लोकसभा हॉल में हुआ। समारंभ में वैद्यराज बिन्दु-माधव शास्त्री पंडितजी का "प्रमिताशन जन्य अस्थिक्षय व अस्थिभंग-चिकित्सा" विषय पर व्याख्यान हुआ। तत्पश्चात् रसपान हुआ।

डा० ए० लक्ष्मीपति अभिनन्दन-ग्रन्थ

आयुर्वेद शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् और अखिल भारतीय आयुर्वेदिक कांग्रेस के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ० ए० लक्ष्मीपति की ७५ वीं वर्षगाँठ के अवसर पर आगामी ३ मार्च १९५५ को उन्हें एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करने का आयोजन किया जा रहा है। इस ग्रन्थ में प्रमुख आयुर्वेद विद्वानों तथा आयुर्वेद की उन्नति में दिलचस्पी रखनेवाले आधुनिक डाक्टरों के आयुर्वेद विषयक ७५ निबन्ध रहेंगे। मेरा सुझाव है कि महामण्डल और विद्यापीठ को स्थायी समिति की आगामी बैठक में अंग्रेजी, हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के अन्य विशेष लेखों के सम्पादन के लिए सम्पादक-मण्डल का चुनाव किया जाय।

सम्मेलन-पत्रिका के माध्यम से चन्दे के लिए अपील निकाली जाय और आयुर्वेद-सम्मेलन-पत्रिका में चन्दा देने वालों की सूची प्रकाशित की जाय। अभिनन्दन-ग्रन्थ का प्रकाशन विद्यापीठ द्वारा, समारोह समिति की ओर से किया जाय और अभिनन्दन-ग्रन्थ की बिक्री से होने-वाली सारी आय विद्यापीठ के कोष में दे दी जाय।

मेरा प्रस्ताव है कि संस्कृत के निबन्धों के लिए जामनगर के आयुर्वेदाचार्य श्री आर० आर० पाठक को, हिन्दी के लेखों के लिए कानपुर के श्री बद्रीविशाल त्रिपाठी को और अंग्रेजी के लेखों के लिए श्री आयुर्वेदाचार्य पण्डित शिव शर्मा को सम्पादक नियुक्त किया जाय। तेलगू भाषा के लेखों का सम्पादन-भार ग्रहण करने के लिए मैं प्रस्तुत हूँ। —मुक्कम वेंकट शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, सदस्य, कार्यकारिणी समिति, संचालक, विद्यापीठ परीक्षा, आन्ध्र राज्य।

पेप्सू के वैद्यों को सूचना

पेप्सू के प्रत्येक वैद्य महानुभाव को सूचित किया जाता है कि श्री महेशदत्त शर्मा, प्रधान मन्त्री, पटियाला राज्य संघ आयुर्वेद सम्मेलन के अस्वस्थ होने के कारण श्री ओम-प्रकाशजी, इन्दु फार्मेसी, फगवाड़ा, कार्यवाहक मन्त्री के रूप से कार्य कर रहे थे। अब श्री महेशदत्त शर्मा स्वस्थ हैं। गत ६ मई से आपने अपना प्रधान मन्त्री-पद का कार्य-भार संभाल लिया है। इसलिए पटियाला राज्य-संघ आयुर्वेद सम्मेलन के सम्बन्ध में हर प्रकार का पत्र-व्यवहार निम्नलिखित पते पर किया जाय। —श्री महेश दत्तशर्मा, प्रधान मन्त्री, पटियाला राज्य संघ आयुर्वेद सम्मेलन कार्यालय, सरहिन्द (पेप्सू)।

द्विवर्षीय डाक्टरी कोर्स निरर्थक

आयुर्वेदाचार्य श्री बद्रीदत्त जोशी वी. आई. एम. एस. गवर्नमेन्ट आयुर्वेदिक कालेज, पटियाला लिखते हैं— "केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् की, जो ९ से ११ फरवरी तक राजकोट में दूसरी बैठक हुई थी, उसमें खासकर मैट्रिकुलेशन के उपरान्त द्विवर्षीय डॉक्टरी कोर्स की योजना रखकर पास कर ली गई। इस योजना को स्वास्थ्य मंत्रिणी महोदया ने पहली बैठक में भी प्रस्तावित किया था; किन्तु भारतीय राज्यों ने इस योजना की भयंकरता को भली प्रकार जान कर ठुकरा दिया। पुनः इस वर्ष उन्होंने अपने पक्ष की वृद्धि करके विजय प्राप्त कर ही ली है।

मेरे विचार से यह योजना आयुर्वेद-नाशार्थ रखी गई है, किन्तु इसका उल्टा प्रभाव होकर यह जन-स्वास्थ्य-नाशक होगी; क्योंकि जब वे अल्पशिक्षित व्यक्ति गाँवों में जाकर सल्फाग्रुप व एन्टीबायोटिक का प्रयोग करेंगे, तो ग्रामीण लोगों का स्वास्थ्य रोग से नष्ट न होकर इन विषयुक्त

भयंकर ओषधियों के उपद्रवों द्वारा खराब होगा और उन को शीघ्र ही अकाल-मृत्यु की ओर अग्रसर करेगा। चूँकि इतने अल्प समय में वे विशाल चिकित्सा-ज्ञान का चतुर्थांश भी ग्रहण नहीं कर सकते हैं, अतः केवल देश के द्रव्य का ही अपव्यय होगा।

वर्तमान समय पर प्रान्तों में आयुर्वेदिक कॉलेज अच्छे चल रहे हैं। उन कालेजों की प्रवेश योग्यता कम-से-कम हाइ-स्कूल या एफ. एस. सी. रखी गई है। इसके उपरान्त ५ या ६ वर्ष उनको नियमित रूप से कालेजों में प्रैक्टिकल सहित ६५ प्रतिशत एलोपैथिक शिक्षा दी जाती है। साथ ही आयुर्वेद का प्रकाण्ड विद्वान् तैयार किया जाता है।

उदाहरणार्थ—

(१) बी. आई. एम. एस. इन्डियन मेडीशन बोर्ड लखनऊ (२) ए. एम. एस. बनारस विश्वविद्यालय और (३) आयुर्वेदालंकार गुरुकुल कांगड़ी की उपाधियाँ देकर तैयार किया जाता है, साथ ही केन्द्रीय स्वास्थ्य-परिषद् ने इस उक्त प्रकार से प्रचलित कोर्स की सिफारिस की तथा प्रान्तीय सरकार से इस प्रकार निर्देश दिये जाने का भी स्पष्टीकरण किया। किन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि उनकी सिफारिश के अनुकूल ही प्रचलित आयुर्वेद कालेजों के ग्रेजुएट की भारी संख्या में उपेक्षा करते हुए तथा उनके पठनकाल व द्रव्यव्यय को ध्यान में न रखते हुए मैट्रिकुलेशन द्विवर्षीय कोर्ष के अल्पशिक्षित नवयुवकों को ग्रामों में भेजकर ग्रामीण जन-स्वास्थ्य का नाश व द्रव्य का अपव्यय नहीं तो, क्या है? जब कि इस प्रकार के कोर्स द्वारा शिक्षित व्यक्तियों से सुयोग्य स्नातक उक्त प्रकार के कालेजों से निकलते हैं तथा काफी संख्या में वे प्राप्य हो सकते हैं। साथ-ही-साथ वे दोनों पद्धतियों से जन-स्वास्थ्य को सुधार सकते हैं। अच्छा तो यह होता इस द्रव्य को स्वास्थ्य के अन्य विभागों में व्यय किया जाता। स्वास्थ्याधिकारीगण इस पर ध्यान से विचार करने की कृपा करेंगे।

आयुर्विज्ञान-परिषद्, मुजफ्फरपुर

मुजफ्फरपुर, के जालान दातव्य औषधालय के भवन में "आयुर्विज्ञान-परिषद्" की एक सभा आयुर्वेदोपाध्याय पं० श्री रामदेवजी वैद्य के सभापतित्व में गत ११ मई को हुई, जिसमें आयुर्वेद् पंचानन पं० श्री जगन्नाथ प्र० जी शुक्ल साहित्य-वाचस्पति, प्रयाग को परिषद् की ओर से मानपत्र दिया गया।

परिषद् के संयोजक वैद्य सीताराम शास्त्री जी ने मान्य अतिथि का परिचय कराते हुए उनके जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं पर प्रकाश डाला। तदनन्तर कवि जवाहर के अपने सुमधुर कण्ठस्वर से मानपत्र गाकर सुनाया।

मानपत्र का उत्तर देते हुए श्री शुक्लजी ने कहा कि हम लोगों को यह पूर्ण आशा थी कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विदेशियों द्वारा विध्वस्त आयुर्वेद के पुरातन किले का जीर्णोद्धार करने के लिए हमारे देशनायकों की सरकार भरपूर प्रयत्न करेगी। स्वतन्त्रता-संग्राम के सिलसिले में हमारे नेताओं ने विदेशी वस्त्र, विदेशी दवा और विदेशी वस्तुओं को त्यागकर खादी, आयुर्वेदीय दवा और स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने की बड़ी जोरदार सिफारिशें की थीं। आज के दर्जनों पदारूढ नेताओं के भाषणों के उद्धरण हमारे पास हैं। पर आज केन्द्रीय स्वास्थ्य-विभाग के द्वारा आयुर्वेद के साथ सौतेला, डाहपूर्ण व्यवहार होता है। यह कितने दुःख की बात है। सरकार ने इस वर्ष एलोपैथिक संस्थाओं को सोलह करोड़ छत्तीस लाख एकतीस हजार रुपये दिये हैं; पर आयुर्वेद के नाम पर केवल पाँच लाख रुपये, यह कहाँ तक न्याय संगत है? सरकारी पैसे में अधिकांश भाग गरीब जनता का है; पर सरकार गरीब जनता की देशी चिकित्सा-प्रणाली के अभ्युत्थान के लिए पर्याप्त पैसा खर्च करना नहीं चाहती। बजट बनाते समय गरीबों की सुख-सुविधा को भूलना एक महान् अपराध है।

ऐसा बोध होता है कि हमारी स्वास्थ्य मन्त्रिणी आयुर्वेदीय चिकित्सा-प्रणाली को बार-बार अवैज्ञानिक बतला कर इस विज्ञान से अपनी अनभिज्ञता का परिचय देती हैं। उन्हें विधिवत् आयुर्वेद के वैज्ञानिक पहलुओं का गम्भीर अध्ययन करना चाहिए। विश्व की समस्त चिकित्सा-प्रणालियों के उद्गम-स्रोत आयुर्वेद को यूनानी, होम्योपैथी, नेचरोपैथी, आदि की कतार में खड़ा करना तो इसका उपहास करना मात्र है। आयुर्वेद की प्राचीनता, भारतीयता, स्थायी गुणकारिता, सौम्यता और सुलभता जैसी खूबियों पर तो प्रत्येक भारतीय-संस्कृति-पूजक को गर्व करना चाहिए।

सरकार ने आयुर्वेदीय अन्वेषण के लिए कुछ संस्थाएँ खोली हैं, पर उनके उच्चाधिकारी एलोपैथ लोगों को बनाया है। मेरी राय में उनके द्वारा आयुर्वेद की किंचित् मात्र भी सेवा नहीं हो सकती और यही कारण है कि अन्वे-

षण-कार्य में अपेक्षित प्रगति नहीं आ रही है। आयुर्वेद के "त्रिदोषवाद" "पंचमहाभूत" जैसे गूढ़ सिद्धान्तों की जाँच, काँच की परख-नली में, नहीं की जा सकती।

उनका सही मूल्यांकन तो आतुरालयों में रोगियों की चिकित्सा करते हुए ही देखा जा सकता है।

वर्त्तमान काल में हम भारतीय चिकित्सा-विज्ञान के उपासकों का उत्तरदायित्व बहुत बढ़ गया है। हम-लोगों को अखिल भारतीय पैमाने पर ग्राम-पंचायतों की सहायता से ग्रामीण जनता की स्वास्थ्य-रक्षा के हेतु निःस्वार्थ भाव से ग्राम-ग्राम में जाकर आयुर्वेद का प्रचार करना चाहिए।

चमोली-गढ़वाल समाचार

१० अप्रेल को श्री सोवतसिंह, सबडिवीजनल ऑफी-सर की अध्यक्षता में डिवीजनल विकास-बोर्ड की मीटिंग हुई, जिसमें सभी विभागों के निरीक्षक, मेडीकल-विभाग के चिकित्सक तथा गैर सरकारी सदस्य वकीलगण भी उपस्थित थे।

सभी सदस्यों ने अपने-अपने विभागों की उन्नति के सम्बन्ध में सुझाव एवं प्रस्ताव पेश किये। आयुर्वेद विभाग की ओर से पं० श्री सुरेन्द्रदत्त पैनोली, इन्चार्ज, चन्द्रापुरी डिस्पेन्सरी ने निम्नलिखित सुझाव रखे, जो सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए और श्रीमान् अध्यक्ष महोदय ने आयुर्वेद सम्बन्धी सुझावों पर अत्यन्त दिलचस्पी लेते हुए सुझावों को सूची में उचित स्थान दिया। मुख्य सुझाव इस प्रकार हैं:—

१—चमोली डिवीजन में राज्य की ओर से ७ आयुर्वेद-चिकित्सालय हैं। उनमें से केवल १ का ही अपना मकान है। शेष ६ चिकित्सालय किराये के मकानों में हैं। मकान की कमी के कारण बहुत ही अड़चन है। स्टाफ के रहने की भी व्यवस्था नहीं है, जिससे जनता की सेवा अपूर्ण ही होती है। अतः सरकार को चाहिए कि प्रतिवर्ष कम से कम दो चिकित्सालय-भवन निर्माण किए जायँ।

२—प्रत्येक चिकित्सालय में इन्डोर वार्ड की व्यवस्था की जाय।

३—श्री केदारनाथ, बद्रीनाथ, वैदनीबुग्याल के स्थानों से दिव्य ओषधियों का संग्रह कर रुद्रप्रयाग में ओषधि-भंडार स्थापित किया जाय।

बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय, नागपुर

धर्मार्थ औषधालय, वाकररोड, नागपुर में अप्रैल, १९५४ में ४४६९ रोगियों की चिकित्सा की गई, जिनमें ५०३ नये और ३९६६ पुराने रोगी थे।

ज्वर ८५, वात ३८, हृदयशूल ३, शितपित्त ३, जीर्ण-ज्वर १९, आमवात ११, दौर्बल्य ३, रक्तपित्त ४, मन्थर-ज्वर ५, शिरोरोग १५, प्रमेह १७, पीनस १, अतिसार ७, दन्तरोग ५, मूत्रकृच्छ्र ३, शूल ३, आमातिसार १२, हब्बा-डब्बा ४, उपदंश ३, पार्श्वशूल ३, संग्रहणी ३, प्रसूति ७, रजोवरोध ३, कामला-पांडु ६, अर्श ६, प्रदर १२, मुख-पाक ६, कुष्ठ १, अजीर्ण १७, प्रतिश्याय १९, नेत्ररोग ११, हिक्का २, मंदाग्नि ५, कास ६०, गंडमाला ५, उदर-रोग १९, राजयक्ष्मा ३, कर्णरोग ३, उष्णता (दाह) १४, कृमिरोग १२, भ्रम ६, यकृत् ४, श्वास ९, आघात ३, गुल्म २, अम्लपित्त ६, पामा (रक्तविकार) १८।

भूल सुधार

'सचित्र आयुर्वेद' के गतांक में १ अप्रेल, १९५४ ई० को योग्यता प्रतिबन्ध पार करने वाले वैद्यों और हकीमों की सूची में उत्तर प्रदेश आयुर्वेद विभाग की भूल से क्रम संख्या ७९, श्री बनवारीलाल, मथुरा और क्रम संख्या ८०, श्री ताराचन्द्र जैन, मथुरा के नाम प्रकाशित हो गये थे। इन दोनों वैद्यों ने योग्यता प्रतिबन्ध पार नहीं किया है। पाठक कृपया भूल सुधार लें। —संपादक

—:०:—

बैद्यनाथ-प्रकाशन की कुछ वैद्योपयोगी पुस्तकें

आरोग्य-प्रकाश

(१० वाँ संस्करण)

(आरोग्य-स्वच्छता और चिकित्सा पर श्रेष्ठ ग्रन्थ)

भारत प्रसिद्ध श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के मैनेजिंग डायरेक्टर वैद्यराज पण्डित रामनारायण शर्मा वैद्यशास्त्री ने ५-६ वर्ष में बड़ी मेहनत से स्वयं इस ग्रन्थ को लिखा है। ग्रन्थ का एक-एक वाक्य हजारों रुपयों का काम देता है। इसके ९ संस्करणों में ८३००० प्रतियाँ छपकर बिक चुकी हैं और १० वें संस्करण में १५ हजार फिर छापा गया है। इसीसे इसकी लोकप्रियता और उपयोगिता स्पष्ट मालूम होती है। प्रचार की दृष्टि से मूल्य भी बहुत कम रखा गया है। मूल्य २), डाकखर्च ।।=)

आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान

ले० वैद्य रणजितराय

वाइस प्रिन्सिपल आयुर्वेदीय म० वि० सूरत

आधुनिक मूलतत्त्वों के साथ आयुर्वेदोक्त तत्त्वों का समन्वय करने के लिए किस दृष्टि से प्रयास होना चाहिए, इस विषय में यथा स्थान विद्वान् लेखक ने अपना मत प्रकाशित किया है। आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान अन्य सभी आयुर्वेदीय विषयों का आधारभूत है। अतः उसका अध्यापन किस शैली से होना चाहिए, इस बात का विवेचन करते हुए विषय को नया ही रूप देने का सफल प्रयास किया गया है। मूल्य—६)

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर

आयुर्वेद सारसंग्रह

(दूसरा संस्करण)

हिन्दी में ऐसी आयुर्वेदीय पुस्तकों की कमी थी, जिनमें एकत्र रोग-विचार के साथ चिकित्सा, औषध-निर्माण, अनुपान, पथ्यापथ्य आदि का विवरण समझा कर सरल भाषा में दिया हो। इससे सर्व साधारण पाठकों के सामने बहुत दिक्कतें आती थीं। प्रस्तुत पुस्तक में आयुर्वेद-साहित्य की इसी कमी को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा बनाई जानेवाली प्रायः सभी दवाओं की निर्माण-विधि तथा उनके गुण-धर्म और प्रयोगविधि के साथ सभी वैद्योपयोगी बातों का वर्णन सरल हिन्दी भाषामें किया गया है। मूल्य—७)

सिद्धयोग संग्रह

(तीसरा संस्करण)

आयुर्वेदोद्धारक, आयुर्वेद-मार्त्तण्ड, वैद्य वाचस्पति वैद्य यादव जी त्रिकमजी आचार्य द्वारा लिखित यह ग्रन्थरत्न है। इसमें जितने प्रयोग लिखे गये हैं, वे सब श्रीयुत आचार्य जी के अनेक बार के अनुभव-सिद्ध हैं। इस पुस्तक में यह विशेषता है कि रोगाधिकार के अनुसार ही दवाओं के प्रयोग लिखे गये हैं, जिससे सर्व साधारण जन भी इस पुस्तक के द्वारा सफलतापूर्वक चिकित्साकार्य कर सकते हैं। वैद्यों के लिए तो बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ है। मूल्य—२।।)

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर।

पदार्थ-विज्ञान

ले० वैद्य रामरक्ष पाठक आयुर्वेदाचार्य,
सीनीयर फिजिशियन-आयुर्वेद रिसर्च विभाग-जामनगर

इस ग्रन्थ में प्रमाणों का तुलनात्मक विवेचन, स्वास्थ्य-संरक्षण तथा रोगप्रतीकारार्थ उपयोग में आनेवाले पदार्थों का विवेचन करते हुए आयुर्वेद के मूलभूत त्रिदोष-सिद्धान्त की जननी-प्रकृति और उससे उद्भूत तत्त्वों की छान-बीन की गयी है। साथ ही यह भी दर्शाया गया है कि पूर्वजन्मकृत पापों का परिणाम भोगने के लिए किस प्रकार सगुण-आत्मा भिन्न-भिन्न योनियों में प्रवेश कर अपने कर्मों का फल भोगती है। मूल्य--३।।)

यूनानी सिद्धयोग संग्रह

यूनानी चिकित्सा-पद्धति का महत्त्व सभी जानते हैं। इसके नुस्खे आयुर्वेदीय नुस्खों की भाँति ही लाभदायक और तुरन्त फायदा करने वाले तथा सस्ते होते हैं। आयुर्वेदीय चिकित्सक भी यूनानी दवा से लाभ उठावें, इसलिये एक अनुभवी चिकित्सक से यह ग्रन्थ सरल हिन्दी भाषा में लिखवाया गया है। चिकित्सकों तथा सर्वसाधारण दोनों के लिए बहुत उपयोगी पुस्तक है। मूल्य--२।।)

उपचार-पद्धति

(पंचम संस्करण)

सर्वसाधारण गृहस्थ के सैकड़ों रुपये प्रति वर्ष बच सकते हैं, यदि उन्हें उपचार और पथ्य का साधारण ज्ञान भी हो जाय। इसी लक्ष्य को सम्मुख रखकर इस पुस्तक का प्रकाशन हमने किया है। इसमें रोगियों की परिचर्या का विवेचन दिया गया है। मूल्य--।=)

प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०,
कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर

मानस-रोग विज्ञान

(ले० डॉ० बालकृष्णजी अमरजी पाठक)

आज के युग में जब कि काम, क्रोध आदि तथा मिरगी (अपस्मार), उन्माद, न्यूरेस्थीनिया, मानसिक अस्थिरता आदि मानसिक रोग मनुष्य जाति को बुरी तरह से त्रस्त कर रहे हैं, यह पुस्तक एक नवीन सन्देश देती है। अनुभवी लेखक की मँजी हुई लेखनी और तीक्ष्ण तर्कों ने प्रस्तुत पुस्तक के विषयों पर उपयुक्त सामग्री का सुन्दर और अधिकारपूर्ण रूप से सम्पादन किया है। हमारा विश्वास है कि वैद्य समाज, आयुर्वेद के शिक्षक और विद्यार्थी तथा साथ ही साथ सर्वसाधारण जनता के लिए भी यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी होगा। मूल्य--५।।)

त्रिदोष-तत्त्व विमर्श

ले० वैद्य रामरक्ष पाठक, आयुर्वेदाचार्य

इस ग्रन्थ में आयुर्वेद के आधारभूत त्रिदोष-सिद्धान्त का शास्त्रीय विवेचन विधिवत् किया गया है। मानव-शरीर के अनेकानेक द्रव्यों में वात-पित्त-कफ प्रधान हैं, इसी तथ्य को केन्द्रित कर विद्वान् लेखक ने त्रिदोष तत्त्व के विभिन्न स्वरूपों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है, जिससे ग्रन्थ की शास्त्रीयता निखर गयी है। प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्ययन के बाद त्रिदोष तत्त्व और पंच महाभूत का ज्ञान सरलता से हो जाता है। आयुर्वेद के जिज्ञासुओं के लिए पुस्तक बहुत उपादेय है। मूल्य--२।।=)

किशोर-रक्षा और ब्रह्मचर्य

किशोर-बालकों की हस्तमैथुन-रूपी सर्वस्व नाशकारी व्याधि से बचाने के लिए सफल उद्योग किया गया है। मूल्य--।≡)

प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०,
कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर

आयुर्वेदीय क्रियाशारीर और आयुर्वेदीय पदार्थविज्ञान के सुविदित लेखक

वद्य रणजितराय देसाई

आयुर्वेदालंकार, आयुर्वेदाचार्य

वाइस-प्रिंसिपल, आयुर्वेद महाविद्यालय, सूरत

की

शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली

अभिनवकृति

सार्थ

आयुर्वेदीय हितोपदेश

आयुर्वेद के रहस्यावबोधन के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है, यह सर्ववादि संमत है। प्रायः आयुर्वेदीय पाठचक्रमों में प्रारम्भिक परीक्षा में एक पाठ्य और परीक्षा विषय के रूप में संस्कृत का समावेश है भी। परन्तु बहुधा उसका अध्ययन-अध्यापन हितोपदेश, पञ्चतन्त्र प्रभृति आयुर्वेद-बाह्य ग्रन्थों द्वारा होता है। कई प्रविदित कारणों से यह पद्धति विद्यार्थी और अध्यापक दोनों के लिए अप्रीतिकर प्रतीत हुई है। अच्छा यह है कि, आयुर्वेद की संहिताओं से ही आयुर्वेद के वचनों का संग्रह कर उन्हें ग्रन्थबद्ध किया जाए और ऐसे ग्रन्थों का संस्कृत विषय की पाठ्यपुस्तक नियत किया जाए। इसका एक सुफल यह भी होगा कि आयुर्वेद के वचनों और सिद्धान्तों में विद्यार्थी का अनायास प्रवेश हो जाएगा।

विद्यावयोवृद्ध महानुभावों का आशीर्वाद तथा मित्रों का प्रोत्साहन प्राप्त कर वैद्य रणजितरायजी **आयुर्वेदीय हितोपदेश** नाम से इसी पद्धति का एक ग्रन्थ रच रहे हैं। वैद्यजी की कृति **आयुर्वेदीय क्रियाशारीर** तथा **आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान** का जिन्हें परिचय है एवं जिन्होंने **सचित्र आयुर्वेद** में नियमित प्रकाशित होनेवाली आपकी लेखमालाएँ देखी हैं वे जान सकते हैं कि ग्रन्थ इस दृष्टि से कितना उपयोगी होगा। ग्रन्थ में मूल वचनों का हिन्दी भाषान्तर, व्याख्या तथा नव्यमत से समन्वय भी दिया गया है, जो वैद्यजी की अपनी विशेषता है।

ग्रन्थ की छपाई जोरों से हो रही है। इस बात का ध्यान रखा गया है कि ग्रन्थ अगला सत्र आरम्भ होने के पूर्व ही हमारे मान्य पाठचक्रम-निर्माताओं, अध्यापकों तथा छात्रों के हाथों में पहुँच जाए। मूल्य लगभग २।।) ३) होगा। अभी से आर्डर भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करा लीजिए।

बैद्यनाथ दशमूलारिष्ट

प्रसूता स्त्रियों को दशमूल का सेवन एक पुराना देशी रिवाज है। इससे बच्चा पैदा होने के बाद की कमजोरी दूर होती है। इसी प्राचीन पद्धति के अनुसार ताजे उपयोगी औषधि-मूलों के स्वरस में अष्टवर्ग और कस्तूरी आदि अनेक परमोपयोगी औषधें मिलाकर बैद्यनाथ दशमूलारिष्ट प्रस्तुत किया गया है।

इससे

प्रसूता स्त्रियों की प्रत्येक अवस्था—संग्रहणी, मन्दाग्नि ज्वर, खाँसी, दुर्बलता आदि में चमत्कारपूर्ण लाभ होता है। इसके अतिरिक्त हड्डियों की कमजोरी, स्त्रियों के कोख का दर्द, आलस्य-तन्द्रा, रक्तस्राव आदि अवस्था में भी यह परम उपयोगी है।

BAIDYANATH
DASHAMOOLARISHTA
बैद्यनाथ
दशमूलारिष्ट
(कस्तूरी मिश्रित)
बल, वीर्य, रक्तवर्धक श्रेष्ठ टानिक
प्रसूत रोग की अमोघ दवा. मन्दाग्नि, कास, श्वास सन्निपात, धातुक्षीणता क्षय आदि की महौषध
SHREE BAIDYANATH AYURVED BHAWAN LTD.
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० कलकत्ता

REGISTERED
SHREE BAIDYANATH AYURVED BHAWAN LTD.
CALCUTTA
TRADE MARK

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

सचित्र आयुर्वेद

...म्बर, १९५४

श्री दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी, एम० एस-सी०

डिप्टी डायरेक्टर, आयुर्वेद विभाग, उत्तर प्रदेश

आप पाँच वर्ष के लिए डिप्टी डायरेक्टर नियुक्त हुए थे। आगे यह प्रश्न था कि इस पद पर अब किसकी नियुक्ति होगी। हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि उत्तर प्रदेशीय सरकार ने और भी ५ वर्ष के लिए आपके कार्यकाल को बढ़ा दिया है। इसके लिए उत्तर प्रदेशीय सरकार को धन्यवाद और श्रीयुत कुलकर्णी जी को बधाई है।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

'सचित्र आयुर्वेद' का सर्वजन समादृत विशेषांक

'राजयक्ष्मा अंक'

पर कुछ स्वतः प्राप्त सम्मतियाँ

उपयोगी और मार्गप्रदर्शक विशेषांक

कविराज पं० नित्यानन्द शर्मा, वैद्यवाचस्पति (स्वर्ण पदक प्राप्त) डी० एल० सी० एल० डायरेक्टर-आयुर्वेद विभाग, राजस्थान-राज्य, जयपुर लिखते हैं :—

"राजयक्ष्मा विशेषांक' प्राप्त हुआ—धन्यवाद। इस विशेषांक को मैंने विशेष ध्यान और रुचि से देखा है, क्योंकि राजयक्ष्मा रोग इस समय भारतवर्ष के लिए एक विशेष समस्या है। भारत सरकार की रिपोर्ट के अनुसार प्रति मिनट एक यक्ष्मारोगी की मृत्यु होती है। यह स्थिति अत्यन्त भयावह है और इसका कुछ हल निकालने में ही राष्ट्र का हित है। इस विशेषांक में आपने इस रोग के समस्त पहलुओं पर उत्तम साहित्य-संकलन किया है, जो वैद्य, डाक्टर और जनता सब के लिए एक-सा उपयोगी और मार्ग प्रदर्शक है। यदि विचारपूर्वक इसका अध्ययन कर इस पर कदम उठाने का प्रयत्न किया गया तो निस्सन्देह इससे बहुत कुछ देश एवं समाज की सेवा हो सकेगी। लेख विद्वत्तापूर्ण, गम्भीर एवं खोजमय हैं। अंक सुन्दर एवं आकर्षक है। अल्प वार्षिक मूल्य में इतना उत्तम साहित्य देना आपके सेवाभाव का ही द्योतक है।"

—नित्यानन्द शर्मा

ऐतिहासिक महत्व का कार्य

राष्ट्रकवि श्री रामधारी सिंह 'दिनकर', सदस्य, राज्यपरिषद, नयी दिल्ली लिखते हैं :—

'राजयक्ष्मा के आतंक से सारा देश अवगत हो रहा है एवं अब इस देश में भी यह प्रयास चलने लगा है कि इस राक्षसी रोग को किसी न किसी प्रकार रोका जाय। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि "सचित्र आयुर्वेद" ने इस समस्या को हाथ में लिया है एवं एक सर्वसुन्दर विशेषांक प्रकाशित करके जनता को इस रोग की भयंकर व्याप्तियों से परिचित कराने की चेष्टा की है। हिन्दी में **'सचित्र आयुर्वेद'** अपने ढंग का अकेला पत्र है। यह अनेक वर्षों से देश की अद्भूत् सेवा करता आ रहा है। किन्तु, **'राजयक्ष्मा विशेषांक'** तो ऐतिहासिक महत्त्व का कार्य है। बधाई।'

—रामधारी सिंह दिनकर

आयुर्वेद जगत का अद्वितीय रत्नाकर

आचार्य किशोरीदास जी वाजपेयी लिखते हैं :—

प्रिय झा जी, नमस्कार। **'सचित्र आयुर्वेद'** का राजयक्ष्मा अंक मिला। आयुर्वेद जगत में यह अद्वितीय रत्नाकर है। अपने विषय का इतना गम्भीर, सुलभ तथा सर्वांग पूर्ण सन्दर्भ अभीतक देखने में न आया था। यह स्थायी साहित्य है—अलग पुस्तकाकार छपने की जरूरत है।

भाषा **'सचित्र आयुर्वेद'** की मंजी हुई है। मैं हिन्दी की प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाएँ देखता हूँ। जैसी शुद्ध भाषा आपके पत्र में देखने को मिलती है, अन्यत्र कहीं नहीं—हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा के प्रकाशनों में भी नहीं।

—किशोरीदास वाजपेयी

प्रशंसनीय प्रकाशन

श्रीनाझर आयुर्वेद विद्यालय सूरत के वायस-प्रिन्सिपल वैद्य रणजितराय देसाई लिखते हैं :—

'सचित्र आयुर्वेद' के राजयक्ष्मा विशेषांक के विषय में मेरा यह निश्चित मत है कि प्रायः सभी लेखकों ने आयुर्वेद का अवगाहन कर, विरोध की चिन्ता किये बिना, आयुर्वेद का अनुभवपूत मत निर्भीकता से प्रतिपादित किया है। क्षय में मांस का समर्थन, प्रमिताशन से अस्थिक्षय-भंग, आयुर्वेदिक सेनेटोरियम आदि विषय इस बात के कुछ उदाहरण है। सभी दृष्टियों से यह प्रकाशन प्रशंसनीय है।

—वैद्य रणजित राय

यक्ष्मा विषयक अनुपम साहित्य-संग्रह

वैद्यरत्न डॉ० कविराज प्रताप सिंह, डी० एस० सी०, (आयुर्वेद), प्राणाचार्य, रसायनाचार्य, भूतपूर्व डायरेक्टर आयुर्वेद-विभाग, राजस्थान गवर्नमेंन्ट, प्रिंसिपल, राजकुमार सिंह आयुर्वेदिक कॉलेज, इन्दौर लिखते हैं :—

सचित्र आयुर्वेद का "राजयक्ष्मा विशेषांक" पढ़कर परम प्रसन्नता हुई ! आयुर्वेद जगत के मासिक पत्रों में इस पत्र का एक विशेष स्थान है। लेख सब ही एक से एक उत्तम पठनीय और मननीय हैं।

इस विशेषांक को तो साहित्य भंडारों में सर्वत्र उपस्थित रखना चाहिये ताकि जनसाधारण इसका अध्ययन कर इस भयंकर व्यापक रोग के सर्वाङ्गीण ज्ञान को प्राप्त कर बचने की चेष्टा करें।

आयुर्वेद के चिकित्सकों और विद्यार्थियों के लिये यह अंक बड़े महत्त्व का है। पौर्वात्य, पाश्चात्य यक्ष्मा सम्बन्धी ज्ञान एकत्र सार भाग इसमें संकलित हैं।

मैं आयुर्वेद के उपासकों से यह प्रार्थना करूँगा कि इस मासिक का व्यापक प्रचार कर आयुर्वेद साहित्य की ठोस सेवा करने वाले **श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन** के संचालकों का उत्साहवर्धन करें। आशा है, केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रिणी श्रीमती राजकुमारी अमृत कौर जी इस अंक को सर्वत्र राजकीय चिकित्सालयों में पहुँचाकर यक्ष्मा निरोध कार्य को व्यापक बनाने में सहायक होंगी। राष्ट्र भाषा में यक्ष्मा पर इतना ठोस साहित्य आजतक प्रकाशित नहीं हुआ है। पत्र की छपाई-सफाई और चित्र दर्शनीय हैं।

—कविराज प्रताप सिंह

अत्युपयोगी विशेषांक

आयुर्वेद बृहस्पति साहित्याचार्य वैद्य घनानन्द पन्त विद्यार्णव लिखते हैं :—

'सचित्र आयुर्वेद' का राजयक्ष्मा विशेषांक अत्युपयोगी है। जिस प्रकार यह पत्र प्रतिमास उन्नति कर रहा है, यह अंक उसके अनुरूप है। इससे राजयक्ष्मा के विषय में सर्वसाधारण को अच्छा ज्ञान मिलेगा तथा देश में विकराल रूप से फैले हुए यक्ष्मा के निरोध में भी सहायता प्राप्त होगी। आयुर्वेद के छात्रों के लिये उपयोगी इसलिये भी है कि इसमें प्राच्य और पाश्चात्य क्षय-विज्ञान का सम्मिश्रण है। इस विषय पर यक्ष्मा के रोगी की इस प्रकार की सप्रयोग चिकित्सा प्रारम्भ से अन्ततक जिन-जिन अवस्थाओं में जो वैद्य करें उनका क्रमवद्ध और अनुभवपूर्ण विवरण आगे के अंकों में दें। इस पत्र द्वारा हिन्दी साहित्य की भी अच्छी सेवा हो रही है।

—वैद्य घनानन्द पन्त

महत्वपूर्ण, संग्रहणीय, अनुपम विशेषांक

कविराज पुरुषोत्तम देव मुलतानी आयुर्वेदालंकार, प्रधान चिकित्सक, राजकीय आयुर्वेद चिकित्सालय, हैदराबाद (दक्षिण) लिखते हैं :—

'सचित्र आयुर्वेद' उन गिनती के पत्रों में है, जो गत कुछ वर्षों से आयुर्वेद जगत को निरन्तर उपयोगी एवं ज्ञानवर्द्धक सामग्री दे रहा है। सामग्री के चयन में यह विशेष सावधान रहता है और अपने प्रारम्भ-काल से उसने जो मार्ग अंगीकार किया है, उसपर वह सतत जारूक रहकर दृढ़तापूर्वक चल रहा है। यों तो उसके प्रत्येक अंक में सुपाठ्य सामग्री रहती है, लेकिन उसका **'राजयक्ष्मा विशषांक'** विशेष रूप से महत्वपूर्ण, संग्रहनीय तथा अनुपम है। इसे हन्दी में **'राजयक्ष्मा का इन्साइक्लोपीडियां'** कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। राजयक्ष्मा का प्रसार, प्रतिकार, इतिहास, निदान, विवेचन और चिकित्सा आदि सभी विषयों का इसमें समावेश है।

केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारें जितना धन बी०सी० जी० के टीके लगाने में व्यय कर रही हैं, उसका शतांश भी यदि इस विशेषांक के प्रचार-प्रसार में व्यय किया जाए तो हमारा विश्वास है कि इसके द्वारा जनता जनार्दन तक 'बल की उपासना' का सच्चा संदेश पहुँचाया जा सकेगा, और करोड़ों रुपयों की वेक्सीन की अपेक्षा यह 'अमर मन्त्र' राष्ट्रपति के शब्दों में 'मानव जाति के शक्तिशाली शत्रु' को पराजित करने में अवश्य समर्थ सिद्ध होगा। इस श्रेष्ठ प्रकाशन के लिए के सम्पादक और प्रकाशक दोनों ही हमारे साधुवाद के पात्र हैं।

—कविराज पुरुषोत्तम देव मुलतानी

अत्यन्त गम्भीर और उपादेय ग्रन्थ

श्री ताराशंकर मिश्र वैद्य आयुर्वेदाचार्य, वाइस प्रिंसपल-अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय, काशी, सदस्य-उत्तर प्रदेशीय भारतीय चिकित्सा-परिषद लिखते हैं :—

'**सचित्र आयुर्वेद का**' राजयक्ष्मा विशेषांक पढ़ गया। आयुर्वेद के चोटी के विद्वानों ने इसे उत्तम सामग्रियों से सजाया है। निस्सन्देह अधिकतर लेख अत्यन्त गम्भीर और उपादेय है। जहाँ तक हमारा विचार है, **सचित्र आयुर्वेद** का स्तर बहुत ऊँचा है। प्रस्तुत विशेषांक में भी इसको निभाया गया है। सम्पादन एवं प्रकाशन भी बहुत सुन्दर हुआ है। कुल मिलाकर यह विशेषांक आयुर्वेद की शोभा है।

—ताराशंकर वैद्य

आयुर्वेद की सराहनीय सेवा

• **आयुवदाचार्य द्विवेदी बाबूराम शर्मा शास्त्री, वैद्यरत्न भिग्मणि, रायपुर लिखते हैं :—**

'**सचित्र आयुर्वेद**' का राजयक्ष्मा अंक मिला। प्रस्तुत अंक में लेखों का चयन एवं सम्पादन बड़ी योग्यता पूर्वक किया गया है। **श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा** जो आयुर्वेद की ठोस सेवा हो रही है, वह सराहनीय है। **सचित्र आयुर्वेद**ने आयुर्वेद जगत में अपना एक विशेष स्थान बना लिया है। यह अंक भी उसकी प्रतिष्ठा के अनुकूल है। आशा है कि इस अंक द्वारा सर्वसाधारण को राजयक्ष्मा के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त हो सकेगी। मैं इसके लिये पत्र सञ्चालकों की तथा सम्पादक मण्डल की हृदय सराहना से करता हूँ।

—वैद्य बाबूराम शर्मा द्विवेदी

आयुर्वेद के अभ्युत्थान में सहायता

महेन्द्र रसायनशाला इलाहाबाद के अध्यक्ष कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय लिखते हैं :—

सचित्र आयुर्वेद के "राजयक्ष्मा विशेषांक" का नयनाभिराय अंक प्राप्त हुआ। लेखों का चयन सुरुचि पूर्ण, ज्ञान वर्द्धक एवं उपयोगी हुआ है। हमारी राय में राजयक्ष्मा के सम्बन्ध में आयुर्वेदीय दृष्टिकोण उपस्थित करने के लिए यह अमर कृति है। आपलोगों के इस सत्प्रयास से जहाँ आयुर्वेद के अभ्युत्थान में इस अंक से यथेष्ट बल मिलेगा वहाँ चिकित्सा-जगत में आयुर्वद चिकित्सकों के यश अर्जनार्थ यह अंक कल्पवृक्ष के समान सिद्ध होगा। मुझे सभी लेख सारगर्भित प्रतीत हुए। इस अंक की सफलता के लिए सम्पादक और प्रकाशक दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं। इस अंक के लिए मेरी ओर से बधाई स्वीकार करें।

—महेन्द्रनाथ पाण्डेय

स्थायी साहित्य का निर्माण

फैजाबाद से कविराज मदनगोपाल वैद्य, एम० एम० एस०, सदस्य उत्तर प्रदेश विधान सभा लिखते हैं :—

'**राजयक्ष्माङ्क**' प्राप्त हुआ। इसकी सजधज व ठोस सामग्री देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। आज '**सचित्र आयुर्वेद**' आयुर्वेद-उन्नति का एक मापदण्ड बन गया है। इसमें प्रकाशित मौलिक लेखों से स्थायी साहित्य का निर्माण हो रहा है। मैं इसकी उन्नति की शुभकामना करता हूँ।

—मदन गोपाल वैद्य।

सभी के लिए लाभदायक

कविराज श्री राखालदास सेन काव्यतीर्थ, कलकत्ता लिखते हैं :—

'आयुर्वेद के किसी एक विशेष विषय पर सर्वांगपूर्ण ग्रन्थ रचना और प्रकाशन **श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०** का एक महत्वपूर्ण और गौरवजनक कार्य है। '**सचित्र आयुर्वेद**' का राजयक्ष्मा विशेषांक पढ़कर मुझको परम सन्तोष हुआ है। यक्ष्मा रोग के सम्बन्ध में प्राचीन एवं नवीन मतवाद एवं आयुर्वेद के मत से चिकित्सा विषयक जो तत्त्व और तथ्य वर्णित हुए हैं, उनसे आयुर्वेदीय चिकित्सकों, विद्यार्थी और जनसाधारण का विशेष भाव से उपकार होगा, ऐसी आशा की जा सकती है। इस प्रकार का सुन्दर और ठोस सामग्री से परिपूर्ण अंक प्रकाशित करनेके लिए सम्पादक मण्डल को मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।'

—कविराज राखालदास काव्यतीर्थ।

आयुर्वेद के महत्व की वृद्धि

कविराज काहनचन्द्र वर्मा, वैद्य रत्न, शिमला लिखते हैं :--

६ वर्ष से लगातार प्रकाशित होने वाले **"सचित्र आयुर्वेद"** के ७ वें वर्ष के प्रथमाङ्क **'राजयक्ष्मा अंक'** का मुताला किया। राजयक्ष्मा की समस्या हमारे देश की एक बहुत बड़ी समस्या है। इस अंक के द्वारा राजयक्ष्मा निवारण की जनता को पूरी जानकारी दी गई है। वैद्यों एवं साधारण जनता से मैं निवेदन करूँगा कि वे इस **राजयक्ष्मा अंक को मंगाकर विद्वान संपादक** का परिश्रम सफल करें। मेरा विश्वास है कि उक्ताङ्क से जगत में आयुर्वेद का महत्व और भी बढ़ेगा। भगवान् धन्वतरि से प्रार्थना है कि यह पत्र दिन प्रति दिन उन्नति पथगामी हो। यही मेरी शुभ मंगलकामना है।

--काहनचन्द वर्मा, वैद्यरत्न, राष्ट्रभाषा-प्रवीण

सरकार की मोहनिद्रा भंग करने में सहायक

स्वामी देवेन्द्राचार्य शास्त्री विद्यारत्न लिखते हैं :--

"सचित्र आयुर्वेद" का "राजयक्ष्मा विशेषांक" भारतीय जनता और सरकार की मोहनिद्रा भंग करने और सही दिशा की ओर मार्ग प्रदर्शन करने में पर्याप्त सक्षम हुआ है। मनीषियों के तथोक्त मार्गों का अवलम्बन कर यक्ष्मा ही नहीं अपितु शेष सभी भयावह रोगों का समूलोन्मूलन कर देश सशक्त हो सकेगा। भगवान् सबको शीघ्र सुबुद्धि प्रदान करें।

--स्वामी देवेन्द्राचार्य शास्त्री विद्यारत्न

यक्ष्मा विषयक ज्ञान का भण्डार

कलकत्ता के सुविख्यात दैनिक पत्र 'सन्मार्ग'ने 'सचित्र आयर्वेद' के राजयक्ष्मा विशेषांक पर निम्नलिखित शुभ सम्मति दी हैः-

'सचित्र आयुर्वेद' एक प्रसिद्ध आयुर्वेदीय मासिक पत्रिका है, जो विगत ६ वर्षों से जनता जनार्दन की सेवा करती आ रही है। प्रतिवर्ष नव वर्ष के उपलक्ष में प्रकाशकों की ओर से एक विशेष विषय पर पत्रिका का विशेषांक निकाला जाता है। इस वर्ष का राजयक्ष्मा विशेषांक है। विषय बहुत ही सामयिक चुना गया है। आज राजयक्ष्मा की समस्या देश की बहुत बड़ी समस्या है। भारत में बहुत भारी संख्या में लोग इस बीमारी से मर रहे हैं। इसके निरोध के लिये प्रचार की बहुत आवश्यकता है। पत्रिका का उपर्युक्त विशेषांक इस दिशा में काफी सहायक होगा। राजयक्ष्मा कैसे फैलता है, बचने के उपाय, पथ्यापथ्य आदि सुन्दर विषयों पर सुन्दर लेख संग्रह किये गये हैं, जो सभी पठनीय हैं। सुन्दर आर्ट पेपर पर यक्ष्मा विषयक अनेक एक्सरे चित्र भी दिये गये हैं। रंगीन चित्र भी सम्बन्धित विषय पर दिये गये हैं। अंक सर्वांग सुन्दर और सभी विषयों से परिपूर्ण है। **सचित्र आयुर्वेद** के प्रकाशकों का आयुर्वेद प्रेम और सेवा भावना इस अंक से स्पष्टतया झलकती है। सर्वसाधारण खरीद सकें, इस दृष्टि से मूल्य भी कम रखा गया है। आशा है जनता इस अंक को पढ़कर राजयक्ष्मा विषयक हर तरह का ज्ञान प्राप्त करेगी।

--'सन्मार्ग' कलकत्ता

आयुर्वेद जगत का महान उपकार

'सचित्र आयुर्वेद' के राजयक्ष्मा विशेषांक पर कलकत्ता के सुप्रसिद्ध दैनिक 'विश्वबन्धु' की सम्मति--

'सचित्र आयुयुर्वेद' ने आयुर्वेद जगत का बड़ा उपकार किया है और हिन्दी में गवेषणा तथा विद्वत्तापूर्ण लेखों द्वारा आयुर्वेद का प्रसार किया है।

इसका प्रस्तुत राजयक्ष्मा विशेषांक वहु प्रचारित योजनानुसार प्रकाशित हुआ है और आशा से अधिक सफलता प्राप्त हुई है। राजयक्ष्मा का इस देश में कृत्रिम आहार-विहार द्वारा प्रसार हो रहा है और इस सम्बन्ध में साधारण अज्ञानता तथा चिकित्सकों में विशद ज्ञान के अभाव से आवश्यक एवं वांछनीय कार्य नहीं हो पाया है।

प्रस्तुत विशेषांक में इस भयानक मानव-संहारक रोग का विशद वर्णन, रूप, चिकित्सा, उपचार-प्रणाली, सतर्कता मूलक कार्य, रोगाक्रान्त होने के कारण, बचने के उपाय आदि पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है।

विशेषांक में राजयक्ष्मा पर विशिष्ट वैद्यों, हकीमों तथा डॉक्टरों के लेख दिये गये हैं जो विद्वत्ता, अध्ययन, गवेषणा तथा व्यावहारिक ज्ञान एवं अनुभव पर आधारित हैं।

एसा सुन्दर साहित्य प्रकाशित करने के लिये हम **श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०** तथा उसके संचालक **श्री रामनारायण शर्मा** को साधुवाद देते हैं और आशा करते हैं कि आयुर्वेद जगत् तथा सर्व साधारण में इस महत्प्रकाशन का स्वागत होगा।

--'विश्वबन्धु' कलकत्ता।

सुप्रसिद्ध विद्वान् वैद्यों और सहयोगियों की दृष्टि में

वैद्यनाथ प्रकाशन

आयुर्वेदीय व्याधिविज्ञान (पूर्वार्द्ध)

लेखक—आयुर्वेदमार्त्तण्ड वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य

इस ग्रन्थ के लेखक पूज्यपाद यादवजी महाराज आयुर्वेद शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। आपने विशुद्ध आयुर्वेदिक ग्रन्थों का निर्माण कर आयुर्वेद साहित्य की अनुपम सेवा की है, यह भारतवर्ष के प्रत्येक आयुर्वेद प्रेमी भली भाँति जानते ही हैं। यह पुस्तक प्राचीन आयुर्वेदिक आर्ष ग्रन्थों का सार रूप है। इस ग्रन्थ में व्याधि के विनिर्णयार्थ निदान, पूर्वरूप, रूप आदि और शारीरिक-मानसिक भेद, निज, स्वाभाविक, आगन्तुक भेद आदि के विज्ञान को पृथक्-पृथक् पाँच अध्यायों में बहुत उत्तमतापूर्वक संकलित किया गया है। आचार्य श्री ने इस गम्भीर विषय का सुन्दर सरल हिन्दी भाषा में इस तरह विशद विवेचन किया है कि सामान्य बुद्धि वाले विद्यार्थी भी इसे हृदयंगम कर सकते हैं।

आपके ग्रन्थ अभी तक जो प्रकाशित हुए हैं, वे सब गागर में सागर भर देने के समान हैं। वे आयुर्वेद संसार में विशुद्ध विचार दर्शाने वाले और समादरणीय माने गये हैं। यह ग्रन्थ भी उसी कोटि का है, किन्तु मैं उन सब में इसे अधिकतर आदरणीय मानता हूँ।

प्राचीन संहिता ग्रन्थ, टीकाएँ और स्वतन्त्र ग्रन्थों के अनेक स्थानों में परस्पर मतभेद प्रतीत होता है एवं अनेक स्थानों में शैली-भेद होने से पारिभाषिक शब्दों के अर्थ दूसरे ही हो जाते हैं। इन सब को सामान्य बुद्धि वाले वैद्य एवं विद्यार्थी-वृन्द तो कभी नहीं जान सकते। क्वचित् विद्वानों को भी भ्रान्ति या व्यामोह हो जाता है। ऐसी अवस्था में व्याधि-विज्ञान का ठीक मार्ग दर्शन कराने वाला एक भी ग्रन्थ अभी तक नहीं था। यह अभाव विद्वानों को खटकता रहता था। इस अभाव की पूर्ति इस 'आयुर्वेदीय व्याधि-विज्ञान' से हुई है।

आचार्य श्री ने इस ग्रन्थ का प्रकाशन कर आयुर्वेद-साहित्य की अनुपम सेवा की है, जो आयुर्वेद-विज्ञान के लिए बहुत उपकारक है। विशेषकर अध्यापकों और छात्रों के लिए तो यह आशीर्वाद रूप है।

इस ग्रन्थ से आयुर्वेद के पारिभाषिक शब्दों का सच्चा तात्पर्य और सिद्धान्तों का परिचय सन्देह और विपर्यय रहित सम्यक् प्रकार से मिल सकेगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। इस पुस्तक का वैद्य समाज में सर्वत्र प्रचार हो, यह मैं हृदय से चाहता हूँ।

—रामगोपाल पुरोहित

पुस्तक प्रत्येक वैद्य के स्वाध्याय की है। मैंने इसका स्वाध्याय आरंभ कर दिया है। इतना सुन्दर संग्रह आपके अतिरिक्त अन्य कोई करने में समर्थ नहीं हो सकता। आपकी यह अमर कीर्ति आयुर्वेद जगत् में सदा स्मरणीय रहेगी। हिन्दी बड़ी परिमाजित है। यह हिन्दी और संस्कृत का गंगा-जमनी संगम, वैद्यों के ज्ञान को पवित्र करनेवाला है। दूसरा भाग कबतक प्रकाशित हो जायेगा?

—कविराज प्रतापसिंह

सुहृद्वर्य वैद्य श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य, आयुर्वेद-जगत् के सूर्य हैं। उनके अथक परिश्रम और वृद्धावस्था में भी ग्रन्थ लेखन के अद्भुत अध्यवसाय को देखकर विस्मित हो जाना पड़ता है। यह ग्रन्थ भी आपके आयुर्वेदशास्त्रोद्धार की एक कड़ी है।

आयुर्वेद की संहिताओं और प्रकीर्ण ग्रन्थों में बिखरे निदान विषयक समग्र साहित्य को एकत्र संकलित और सुक्रम से व्यवस्थित करके सरल भाषा में विषय का सारगर्भित प्रतिपादन किया गया है। निदान (Diagnosis) करने के लिए आयुर्वेद किन-किन तत्त्वों को आवश्यक मानता है, उन सब का सोपपत्तिक विवेचन और सप्रयोजन विवरण आपने दिया है। इस भांति आधुनिक शिक्षार्थियों और अध्यापकों के लिए यह ग्रन्थ अनुपम लाभदायक सिद्ध होगा। ऐसा सर्वांगीण विद्वत्तापूर्ण और सरल ग्रन्थ इस विषय पर अबतक प्रकाशित नहीं हुआ। यह कार्य आप सदृश आयुर्वेद के सर्वतोमुखी पंडित और अनुभवी चिकित्सक एवं सम्पादक की प्रतिभा द्वारा ही सम्भव हुआ है। आयुर्वेद-जगत् आपकी इस अमूल्य देन से कभी उऋण नहीं हो सकता।

—वैद्य खयालीराम द्विवेदी

वैद्यनाथ प्रकाशन का अनुपम ग्रन्थरत्न

संक्रामक रोग विज्ञान

लेखक—श्री बालकराम शुक्ल, आयुर्वेदशास्त्राचार्य

पर

हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के मुखपत्र 'सम्मेलन पत्रिका की सम्मति—

"इधर कुछ वर्षों से आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माण में **श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड** ने विशेष यश प्राप्त किया है। देश के प्रत्येक अंचल में उसकी एजेन्सियाँ तथा बिक्री केन्द्र तो हैं ही, अब चार स्थलों पर उसके निर्माण केन्द्र भी बन गये हैं। आयुर्वेद की एक प्रशस्त मासिक पत्रिका भी उसके तत्वावधान में प्रकाशित होती है। साथ ही इधर अनेक उत्तमोत्तम आयुर्वेदिक ग्रन्थों का प्रकाशन भी उसने किया है। अब हिन्दी राष्ट्रभाषा हो चुकी है। ज्ञान-विज्ञान के विविध विषयों की शिक्षा अब हिन्दी के माध्यम से होगी। अतः हिन्दी में सभी विषयों के उत्तमोत्तम ग्रन्थों की अनिवार्य आवश्यकता है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ अभी तक संस्कृत में ही थे, कुछ के अच्छे हिन्दी अनुवाद भी हो चुके हैं, किन्तु उतने ही से आयुर्वेद का समूचा शास्त्रीय ज्ञान केवल हिन्दी जानने वालों को नहीं प्राप्त हो सकता। अब इस बात की भी आवश्यकता है कि नूतन वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा आयुर्वेदिक रहस्यों का विश्लेषण एवं परीक्षण किया जाय तथा उसके अधिकारी विद्वानों द्वारा पाश्चात्य औषध विज्ञान एवं औषध-पद्धति की तुलनात्मक समीक्षा की जाय। इस नूतन दृष्टिकोण से न केवल आयुर्वेद का ही कल्याण होगा वरन आयुर्वेद पर अडिग आस्था रखनेवाली तथा निर्धनता के कारण एलोपैथी की मूल्यवान् औषधियों का उपयोग करने में असमर्थ सर्व-साधारण जनता का भी लाभ होगा। साथ ही उन लोगों का मतिभ्रम भी दूर होगा जो आयुर्वेदिक पद्धति को अवैज्ञानिक अथवा अविश्वासमूलक समझ कर उसकी उपेक्षा करते हैं।

"यह प्रसन्नता का विषय है कि **श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०** जैसी सर्व साधन सम्पन्न आयुर्वेदिक संस्था ने इस कार्य की ओर तत्परता और निष्ठा से ध्यान दिया है। प्रस्तुत पुस्तक आयुर्वेद के सिद्धहस्त लेखक तथा निपुण वैद्य पं० बालकराम शुक्ल की अनवद्य रचना है। श्री शुक्ल जी एक परम अनुभवी तथा प्रख्यात वैद्य एवं लेखक ही नहीं हैं, पाश्चात्य रोग-विज्ञान एवं औषध पद्धति की भी उन्हें यथेष्ट जानकारी है। अपनी इस महत्वपूर्ण पुस्तक में उन्होंने संक्रामक रोगों के तुलनात्मक निदान एवं उनकी चिकित्सा का सविस्तार वर्णन किया है। यद्यपि रोग के निदान एवं चिकित्सा-पद्धति का क्रम आयुर्वेदिक ही है; किन्तु साथ ही साथ एलोपैथिक निदान क्रम एवं ओषधियों की भी उन्होंने समीक्षा एवं परीक्षा की है। पाश्चात्य विद्वानों को जीवाणुवाद का सिद्धान्त स्थिर हो जाने के बाद इधर संक्रामक रोगों के निदान एवं चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त हुआ है, किन्तु भारतीय आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में ईसा के हजार वर्ष पूर्व ही इन संक्रामक रोगों के ऐसे कारण बताये गये थे, जो जीवाणुवादियों के कारणों से मिलते जुलते तो हैं ही, उनकी चिकित्सा भी अमोघ और स्वल्प-व्यय सुलभ है। जहाँ सूजाक, उपदंश, मियादी बुखार, यक्ष्मा आदि दुर्दान्त संक्रामक रोगों में जीवाणुवादियों के वैक्सीन उतने लाभदायक नहीं होते वहाँ आयुर्वेदिक सिद्धान्त की सस्ती औषधियाँ कारगर होती हैं। जीवाणु सम्बन्धी सिद्धान्त न मानने पर भी आयुर्वेदज्ञ इन संक्रामक रोगों की चिकित्सा में एलोपैथी से पीछे नहीं थे। किन्तु इस ग्रन्थ में विद्वान् लेखक ने पश्चिम के नूतनतम सिद्धान्तों एवं ओषधियों की विवेचना के साथ प्रत्येक संक्रामक रोग के आयुर्वेदिक भेदोपभेदों की स्वरूप परीक्षा एवं अनुभत औषधियों की चर्चा की है। पुस्तक नितान्त उपादेय तथा सर्व-जनोपयोगी है, और निस्संदेह शुक्ल जी ने अपनी अनवद्य रचना के द्वारा हिन्दी जगत् एवं आयुर्वेद प्रेमियों का महान् कल्याण किया है"। पुस्तक का मूल्य इतना कम है कि इस महर्घता के युग में हमें आश्चर्य हुआ है कि ऐसी सुन्दर एवं आकर्षक पुस्तक का लागत मूल्य भी ६) रुपये से अधिक पड़ेगा।

निश्चय ही **श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०** अपनी इस प्रकार की जनोपकारी प्रवृत्तियों के कारण जनता के असीम आदर और धन्यवाद का पात्र है।

'सचित्र आयुर्वेद' के पाठकों को महत्वपूर्ण सूचना

भारतीय जनता और भारतीय चिकित्सा-पद्धति--आयुर्वेद की पिछले छः वर्षों से पूर्ण सफलता, सुयोग्यता एवं सत्यता के साथ सेवा करता हुआ 'सचित्र आयुर्वेद' अब अपने गौरवपूर्ण जीवन के सातवें वर्ष में प्रविष्ट हुआ है। आयुर्वेद के पुनरुद्धार तथा राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के गौरवपूर्ण आसन पर इसको पुनः प्रतिष्ठित करने के हमारे प्रयासों की सर्वत्र सराहना हुई है। 'सचित्र आयुर्वेद' के प्रति विद्वान वैद्यों और डाक्टरों की समान रूप से सहानुभूति है और उनके महत्वपूर्ण निबन्धों से इसका प्रत्येक अंक परिपूर्ण रहता है। प्रतिवर्ष नववर्षोपलक्ष में 'सचित्र आयुर्वेद' का वृहदाकार विशेषांक प्रकाशित होता है। इस वर्ष का विशेषांक--'राजयक्ष्मा अंक' आप देख ही चुके हैं। 'सचित्र आयुर्वेद' की श्रेष्ठता, उपादेयता और लोकप्रियता का यह प्रमाण है कि इसको आयुर्वेद के समर्थकों, सेवकों, चिकित्सकों एवं जनता की पूरी सहानुभूति प्राप्त है। लेकिन 'सचित्र आयुर्वेद' को सर्वाङ्गपूर्ण और सर्वश्रेष्ठ आयुर्वेदीय पत्रिका बनाने में हमें अपार आर्थिक हानि उठानी पड़ रही है। अतएव, इस व्यय-भार को कुछ हल्का करने के लिए आगामी जनवरी १९५५ से हमने 'सचित्र आयुर्वेद' का वार्षिक शुल्क ५) (पांच रुपये) तथा प्रति अंक का मूल्य आठ आने करने का निश्चय किया है। हमें विश्वास है कि 'सचित्र आयुर्वेद' के प्रति आयुर्वेद-प्रेमीजनों का पूर्ण सहयोग सदा कायम रहेगा।

राजयक्ष्मा विशेषांक की प्राप्ति सम्बन्धी शिकायतें

हमें अपने अनेक कृपालु पाठकों से ऐसी शिकायतें मिली हैं कि उनके पास अबतक 'राजयक्ष्मा विशेषांक' की प्रतियां नहीं पहुँचीं। उन पाठकों को हम सूचित करते हैं कि कार्यालय से विशेषांक की प्रतियों को (Under Certificate of Posting) डाकखाने की सर्टिफिकेट के साथ भेजा गया है। इसपर भी यदि किसी पाठक को विशेषांक नहीं मिला हो तो वे अपने इलाके के डाकखाने में इस सम्बन्ध में पूछताछ करें और विशेषांक के नहीं पहुँचने के बारे में वहां के पोस्टमास्टर से लिखाकर हमारे पास भेजें। इस प्रकार की लिखित सूचना मिलने पर हम आवश्यक कार्रवाई करेंगे। आशा है, हमारे पाठक इस विषय में हमें सहयोग देंगे।

—स० सम्पादक

विषय-सूची

वार्षिक मूल्य ४) राजयक्ष्मा-विशेषांक २) साधारण एक प्रति का ।=)

विगत मई में गया में सम्पन्न सर्वोदय सम्मेलन के अवसर पर आयुर्वेदीय प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया था।

श्री पं० रामनारायण शर्मा वैद्य शास्त्री का कलकत्ते में अभिनन्दन !

उपर के चित्र में पं० रामनारायण शर्मा वैद्य शास्त्री अभिनन्दन के उत्तर में अपनी कृतज्ञता ज्ञापन कर रहे हैं।
नीचे के चित्र में अभिनन्दन-समारोह के सभापति कविराज हरिवक्ष जोशी अपना अध्यक्षीय भाषण दे रहे हैं।
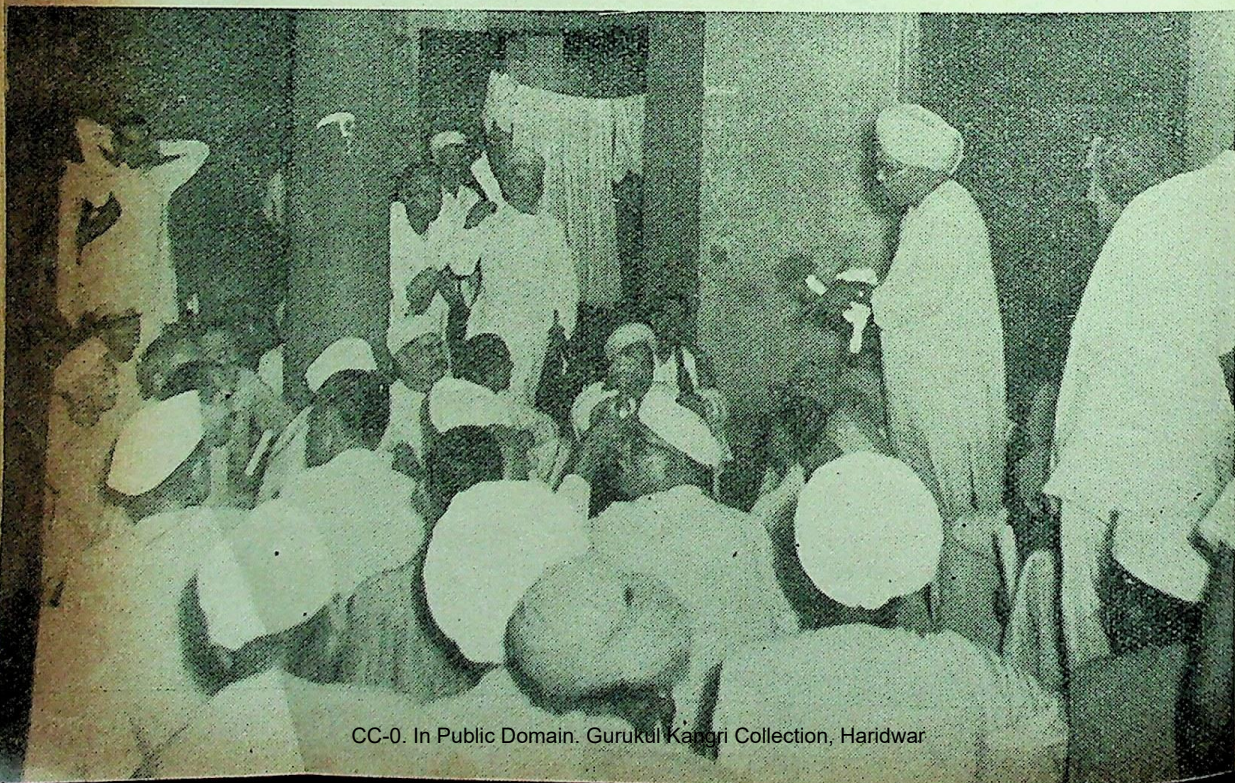
।। श्री धन्वन्तरये नमः ।।

आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन समादृत और सर्वाधिक बिक्री होनेवाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख मासिक पत्र

सचित्र आयुर्वेद

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ।।

वर्ष ७	कलकत्ता, सितम्बर, १९५४	अंक ३

आयुर्वेद--अन्तरराष्ट्रीय औषधि-विज्ञान

मैं उस दिन की कल्पना कर रहा हूँ, जबकि डाक्टरों और वैद्यों की पृथक् कक्षाएँ नहीं होंगी, आयुर्वेद और आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान के लिए पृथक् कालेज नहीं होंगे। वह समय अवश्य ही और शीघ्र ही आ रहा है, जबकि कम-से कम भारत में प्रत्येक चिकित्सक के लिए यह आवश्यक होगा कि वह आयुर्वेद और आधुनिक विज्ञान का ज्ञान रखे और स्वास्थ्य, रोग एवं उसकी चिकित्सा पर समन्वयात्मक दृष्टिकोण रखकर उनका उपयोग करे।

मेरी कामना है कि भविष्य में भारत के सभी मेडिकल कालेजों के नाम आयुर्वेद विद्यालय हों। जो लोग आयुर्वेद को पुरानी चिकित्सा-पद्धति मानने के अभ्यस्त हो चुके हैं, उनको यह कामना भयकारक प्रतीत हो सकती है। लेकिन इन व्यक्तियों के भय को निर्मूल करना हमारा कर्तव्य है; हमें संसार को यह दिखा देना चाहिये कि आयुर्वेद अवैज्ञानिक या पुरानी पद्धति नहीं है। आयुर्वेद के नाम की हाल में जो अख्याति हुई है और उसका वास्तविक अर्थ विलुप्त हो गया है, उससे आयुर्वेद की दो हजार वर्षों की महान प्रगति और सफलता के इतिहास पर पर्दा नहीं डाला जा सकता। आयुर्वेद की सुख्याति को पुनः प्रवर्तित करने के लिए हम आयुर्वेद की मूल-भावना को, जिसमें भौगोलिक, जातीय, धार्मिक या अन्य किसी प्रकार के भेदभाव का स्थान नहीं था, हम पुनः प्रवर्तित करना चाहते हैं। आयुर्वेद अखिल विश्व के औषधि-विज्ञान का प्रतिनिधित्व करता था एवं करता है और स्थान-काल की आवश्यकता के अनुकूल इसको किसी रूप में व्यक्त किया जा सकता है। इस प्रकार एक आयुर्वेदिक कालेज में कोई व्यक्ति अरबी या अमरीकी औषधि-विज्ञान का अध्ययन भारतीय या चीनी औषधि-विज्ञान की भांति वैध रूप से कर सकता है। अतः आयुर्वेद की भावना और लक्ष्य वास्तव में अन्तरराष्ट्रीय है। चरक के काल में भी प्राचीन भारत में अनेक प्रकार के औषधि-प्रणालियों का अस्तित्व कायम रहने का उल्लेख महर्षि अत्रेय ने किया है।

डा० पी० एम० मेहता

एम० डी०, एम० एस० ; एफ० सी० पी० एस०

सम्पादकीय

श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव

एक राष्ट्रीय स्वास्थ्य त्योहार

"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत" अर्थात् "उठो—आलस्य छोड़ो, जागो—अज्ञान को दूर करो, ज्ञान बढ़ाओ, प्राप्त करने योग्य अच्छी चीजें सीखो, नये-नये आविष्कार करो।" जीवन का कैसा सुन्दर सार्वभौम लक्ष्य है। इसी में सब कुछ समाविष्ट है, गागर में सागर भरा है। सांसारिक वैभव और स्वर्ग सुख के शिखर पर आसन जमाने के अनन्तर जन्म-मरण के दुःख से सर्वदा के लिए मुक्त होकर अनन्त आनन्दमय होना ही प्राणिमात्र की इच्छा का केन्द्र बताया जाता है। सार्वभौम राज्य प्राप्त करना सांसारिक वैभव की सीमा है, इन्द्र पद प्राप्त करना स्वर्ग सुख की हद है, सच्चिदानन्दरूप परमात्मा में अपनी आत्मा का अभेद स्थापित करना मुक्ति का अन्तिम स्वरूप है, इस प्रकार सुख की तीन ही अवस्थाएँ हैं। और किसी प्रकार से सुख प्राप्त करना ही प्राणी का चरम लक्ष्य है।

पूर्वोक्त सुख तबतक प्राप्त नहीं होता जब तक दुःख दूर नहीं होता। दुःखों में प्रधान दुःख शारीरिक और मानसिक रोग हैं। जब तक मनुष्य किसी शारीरिक अथवा मानसिक रोग से पीड़ित है, सार्वभौम राज्य प्राप्त करके भी वह सुख अनुभव नहीं करता और न वह स्वर्ग और मुक्ति प्राप्त करना ही चाहता है। वह चाहता है किसी प्रकार उसकी रोग जन्य पीड़ा को शान्त करना जो उसके सारे सुखों में बाधक है। इस लिए रोग दूर करना सबसे प्रथम कर्तव्य है। इस विषय पर श्रीमद्भागवत की अति महत्वपूर्ण उक्ति पढ़िये—

"नैवाहं कामये राज्यं, न स्वर्गं, नापुनर्भवम्।
कामये दुःख दग्धानां प्राणिनामार्ति नाशनम्।"

"मैं सार्वभौम राज्य नहीं चाहता, स्वर्ग और मोक्ष की भी मुझे इच्छा नहीं, मैं तो रोग से पीड़ित मनुष्यों की छटपटाहट और कराहट मिटाना चाहता हूँ।" यह है एक राजा का शुभसंकल्प। इसी शुभसंकल्प को लेकर भगवान् धन्वन्तरि ने मनुष्यलोक में अवतार लिया था।

"अहं हि धन्वन्तरिरादिदेवो जरारुजामृत्युहरो नराणाम्
शल्याङ्गमङ्गैरपरैरुपेतं प्राप्तोऽस्मि गां भूय इहोपदेष्टुम्।"
—सुश्रुत

मैं धन्वन्तरि ही पहला देवता हूँ जिसने मनुष्यों के रोग और अकाल मृत्यु का नाश किया है। शल्याङ्ग प्रधान सब अङ्गों सहित आयुर्वेद का उपदेश देने के लिए मैं पृथ्वी पर आया हूँ।

प्राणिमात्र के रोग दूर करना साधारण काम नहीं। मनुष्य अपने व्यक्तिगत रोग दूर करने में भी सदा सफल नहीं होता तो अकेला समष्टि या प्राणिमात्र या मनुष्यमात्र के रोग कैसे दूर कर सकेगा?

यह असम्भावना दोष दूर करने के लिए मनुष्य ने एक राष्ट्र व्यवस्था की कल्पना की थी और उसकी सुरक्षा के लिए एक राज्य की स्थापना की थी। कोई व्यक्ति अपने में सद्गुणों का संचय करने या न करने के लिए सबसे अधिक उत्तरदायी है। इसी प्रकार राष्ट्र में सामूहिक तौर पर सद्गुणों के प्रसार का उत्तरदायित्व राज्य पर सबसे अधिक है। सामूहिक रूप से प्रजा के अशिक्षित और अस्वस्थ होने का अर्थ राज्य के शिक्षा और स्वास्थ्य विभाग की खराबी है।

व्यक्तिगत और सामूहिक रोगों को दूर करने का उपाय हमारे देश में सबसे प्रथम भगवान् धन्वन्तरि ने दिखाया था। इसलिए हमें व्यक्तिगत और सामूहिक रूप में भी भगवान् धन्वन्तरि का सदा कृतज्ञ रहना चाहिए। कृतज्ञता प्रकाशित करने का एक ही मार्ग मनुष्य के सामने है—उस व्यक्ति की पूजा। व्यक्ति पूजा की दो पद्धति हमारे देश में प्रसिद्ध है—साकार और निराकार पूजा। उस व्यक्ति का साक्षात् या उसकी प्रतिभा आदि का पूजन करना साकार पूजा-पद्धति है। उसके बताये सिद्धान्तों पर चलना उस की निराकार पूजा करना है। जो मनुष्य प्रतिदिन भगवान धन्वन्तरि की प्रतिमा का, चन्दन-अक्षत आदि से श्रद्धापूर्वक पूजन करेगा, वह उनके सिद्धान्तों की अवहेलना करके चलेगा यह बात समझ में आने लायक नहीं है;

इसी प्रकार जो सदा निष्ठा से उनके सिद्धान्तों का पालन करता होगा, वह उनकी प्रतिमा के पूजन से घृणा करेगा यह नहीं हो सकता। इससे यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि भगवान् धन्वन्तरि जी के स्वास्थ्य-सिद्धान्तों पर चलने वाले मनुष्य—भले ही वे किसी धर्म के अनुयायी क्यों न हों—उनकी प्रतिमा का पूजन करने में जरा भी नहीं हिचकिचायंगे।

भगवान् धन्वन्तरि की साकार पूजा का दिन 'धन-तेरस' के नाम से, दिवाली से दो दिन पहले प्रतिवर्ष हमारे सामने आता है। उस दिन वर्ष भर नीरोग रहने के लिए प्रत्येक घर में भगवान् धन्वन्तरि की प्रतिमा का लोग श्रद्धा से पूजन करते हैं। उनकी निराकार पूजा तो उनके बतलाये हुये स्वास्थ्य सिद्धान्तों का—समय पर सोना, जागना, मल-मूत्र को त्याग करना, व्यायाम, अंग मर्दन, तेल की मालिश, स्नान, सन्ध्या, ईश्वर स्मरण—भजन, पूजन, योग-क्षेम, संयम, भोग विलास आदि सब कार्यों को नियत समय पर करना—पालन करने के कारण हम सब लोग सर्वदा करते ही हैं।

यह सब तो होता है किन्तु हम यह चाहते हैं कि यह सर्वजन कल्याणकारी त्यौहार एक राष्ट्रीय त्यौहार के रूप में मनाया जाय—जैसे १५ अगस्त को सारे भारत में भारतीय स्वतन्त्रता का एक महान् उत्सव सब लोग मनाते हैं, सब मिलकर नया झंडा चढ़ाते हैं, झंडाभिवादन करते हैं, स्वतन्त्रता के महत्त्व को समझाने के लिए हर नगर और गांव-गांव में सभा करते हैं, व्याख्यान आदि से प्रचार करते हैं—उसी प्रकार 'धन्वन्तरि त्रयोदशी' को राष्ट्रीय स्वास्थ्य सप्ताह का रूप देकर यह त्यौहार एक ही नियत समय और नियत रीति पर सारे भारत में मनाया जाय, क्योंकि स्वतन्त्रता और स्वास्थ्य एक-सा महत्त्व रखते हैं—स्वास्थ्य से स्वतन्त्रता और स्वतन्त्रता से स्वास्थ्य की रक्षा होती है। गुलाम स्वस्थ नहीं हो सकता तो बीमार स्वतन्त्र नहीं रह सकता। इसलिए हम अपनी सरकार से प्रार्थना करते हैं और साथ-साथ अपने देश की स्वतन्त्र प्रजा से भी कि जैसे वह राष्ट्रीय स्वतन्त्रता दिवस के उत्सव को मनाने में दिलचस्पी रखती है, उसी प्रकार राष्ट्रीय स्वास्थ्य सप्ताह महोत्सव मनाने में भी तन-मन-धन से योग दे।

स्वास्थ्य सप्ताह में ध्यान देने योग्य विषय हमारी समझ में—सफाई, व्यायाम, भोजन और संयम का महत्त्व समझना-समझाना और व्यवहार में लाना होना चाहिए। सफाई में शरीर की, कपड़ों की, खाने-पीने के सामान की, भीतर-बाहर से मकानों और गली-महल्लों की सफाई पर ध्यान देना चाहिए। व्यायाम में देशी विदेशी कसरत-खेल-कूद सैनिक परेड आदि होने चाहिए। भोजन में—स्वास्थ्यकर भोजन की वस्तुओं का प्रदर्शन, गली-सड़ी चीजों के परिवर्जन का प्रदर्शन साक्षात् अथवा चित्रों द्वारा करना चाहिए। संयमी मनुष्यों का साक्षात् अथवा चित्रों द्वारा प्रदर्शन करा कर उसके विरुद्ध व्यभिचारजनित रोगों का ज्ञान और आतशक और कुष्ठ आदि व्याभिचार-जन्य रोगियों के चित्रों का प्रदर्शन होना चाहिए, जिससे स्वास्थ्य की ओर सभी लोगों का ध्यान आकृष्ट हो।

स्वास्थ्य-सप्ताह में एक दिन ऐसा नियत किया जा सकता है जिसमें सभी लोग बड़े-बड़े नगरों से लेकर छोटे-छोटे गांवों तक घरों की लिपाई-पुताई, सफाई, धुलाई के साथ-साथ गली-महल्लों के भी कूड़े-करकट की सफाई करें। वह काम मजदूरों से करावें या स्वयं करें। इकट्ठा हुए कूड़े-करकट को नगर पालिका (म्युनिसिपालिटी) की गाड़ियाँ भर ले जांय। नहीं तो किसी एक स्थान पर इकट्ठा करके उसमें आग लगा दी जाय, जिससे ग्राम, निगम, नगर और जनपद अर्थात् छोटे-बड़े ग्रामों से नगरों तक रहने के स्थानों में कहीं भी कूड़ा-करकट न मिले। ऐसा करने से मक्खी और मच्छरों की सफाई हो जायगी। लाचार बीमारों को छोड़ कर सब लोग सुखोष्ण जल से स्नान करें—शरीर को मोटे कपड़े से खूब रगड़-रगड़ कर धोकर, मोटे कपड़े से पोंछ कर सुखा लें और साफ-सुथरे कपड़े पहनें। दूसरे दिन गांव-गांव में, शहरों और मुहल्लों में सभा करें, जिनमें स्वास्थ्य के नियमों का जनसाधारण में प्रचार करें। उसमें भोजन, निद्रा, ब्रह्मचर्य और व्यायाम-स्वास्थ्य के इन चारों चरणों का महत्त्व लोगों को समझाया जाय—खाने योग्य उत्तम अन्न, घी, दूध, फल, अण्डे आदि एवं आहार में उत्तम सामग्री होने का परिणाम तथा सड़े-गले त्याज्य सामग्री से हानियों का प्रदर्शन कर आहार के साथ स्वास्थ्य का सम्बन्ध समझने में लोगों की सहायता करें। खुली हवा में खुले मुंह खाने से लाभ, बंद मकानों में मुँह ढंककर सोने की हानियां, सोने और जागने में नियमित रहने के लाभ आदि बताएं। ब्रह्मचर्य के लाभ और इसके

अभाव से होनेवाली हानि से जन साधारण को अवगत कराना चाहिए। देशी व्यायामों में सारे शरीर का व्यायाम एक समान होता है जैसे कुश्ती, दण्ड, बैठक। इसी प्रकार देशी खेलों में जैसे कबड्डी आदि—पर इच्छा हो तो विदेशी व्यायाम और खेलकूद करें। पहलवानों की कुश्तियां, सेना की परेड और पोलो तथा घुड़दौड़ आदि का प्रदर्शन करें। व्यायाम को स्वास्थ्य के लिए अच्छा समझ कर बहुत लोग अपनी शक्ति से अधिक और समय-कुसमय व्यायाम करके स्वास्थ्य को उलटा बिगाड़ लेते हैं ऐसी हानियों से बचाने के लिए न केवल व्यायाम से अपितु आहार आदि के हीन मिथ्या अतियोग से होने वाले दोषों से जनता को परिचित कराएं और उचित समय के साथ इन सबकी घनिष्ठता है, यह समझाएं। भगवान् धन्वन्तरि के बताये हुए स्वास्थ्य के यही मूल सिद्धान्त हैं। विज्ञ लोगइन सब सिद्धान्तों का परिचय कराएं। इसके साथ ही स्वास्थ्य का नाश करने वाले तत्त्व जैसे चाय, गन्दा साहित्य, अश्लील सिनेमा, सह-शिक्षा, गन्दी-गोष्ठी आदि की बुराइयां बतानी चाहिएं। इनका स्वास्थ्य पर पड़नेवाला बुरा प्रभाव, इनसे होने वाले शारीरिक और मानसिक रोगों से सर्व साधारण को सूचित करना चाहिए। साधारण सादा और तड़क-भड़क के जीवन में स्वास्थ्य के लिए कौन-सा जीवन श्रेष्ठ है, कैसे जीवन से रोग अधिक होते हैं, यह बात रोगियों के आँकड़ों से समझानी चाहिये। प्रोग्राम लंबा होने के कारण एक दिन में समाप्त न हो तो दो-तीन दिन में विभक्त कर लेना अच्छा होगा। यह सब प्रोग्राम जन-रुचि के अनुसार आकर्षक बनाना चाहिए, जिससे सब लोग, बालक और युवा खास तौर पर भाग लें। छोटे-छोटे बच्चों को कुछ मिठाई और खेल कूद में विजयी बालकों को कुछ इनाम की व्यवस्था हो, जिससे उनमें तथा अन्य बालकों में भी उत्साह की वृद्धि हो। ब्रह्मचर्य, व्यायाम और स्वास्थ्यकर आहार पर लिखी गई छोटी-छोटी पुस्तिकाएं और महापुरुषों की जीवनी पुरस्कार के रूप में बांटी जाय। वैद्य, डाक्टर और हकीम रोगियों को मुफ्त देखें और अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार इस सप्ताह में औषधि भी मुफ्त बांटे। इसके अतिरिक्त और उपयोगी कार्यक्रम बनाकर भी यह सप्ताह मनाया जा सकता है।

इस प्रकार के त्योहार के लिए 'धनतेरस' एक महान् उपयोगी समय है। एक तो इस समय दिवाली का एक ऐसा पर्व आता है, जिसमें लोग प्रायः अपने-अपने घरों की लिपाई-पुताई-मंजाई-धुलाई करते हैं। जो थोड़े लोग दिवाली के नाम से इस प्रकार की सफाई में सम्मिलित होना नहीं चाहते, राष्ट्रीय स्वास्थ्य सप्ताह के नाम से उन्हें भी इसमें सम्मिलित होने से कोई परेशानी नहीं होगी। दूसरे इस ऋतु में पित्त ज्वर अर्थात् मलेरिया बहुत फैलता है—जो इस देश के भयानकतम रोगों में से प्रधान है। इसका नाश करने के लिए राज्य भी कोशिश कर रहा है, यद्यपि उलट-पुलट मार्ग से कोशिश करने के कारण राज्य को इस कार्य में सफलता नहीं मिली। यदि राज्य का स्वास्थ्य विभाग अपना मार्ग कुछ बदल दे तो विश्वास है कि राज्य अपने शुभ ध्येय में बहुत शीघ्र सफल हो जाय। इस वर्ष जून मास में राज्य ने अपनी योजना के अनुसार सारे भारत-वर्ष में मलेरिया सप्ताह मनाया था। सरकार को यह राय न जाने किस बुद्धिमान ने दे दी कि मलेरिया सप्ताह जून मास में मनाओ, जबकि मच्छड़ बहुत ही कम होते हैं। मलेरिया सप्ताह यदि इन दिनों में मनाया जाता तो समय की अच्छी उपयोगिता भी उसके साथ होती क्योंकि मले-रिया के मच्छड़ों का इन दिनों में ही जोर होता है और मलेरिया का जैसा प्रकोप इस ऋतु में होता है वैसा अन्य किसी भी ऋतु में नहीं होता। भारत के लाखों स्त्री-पुरुष इस ऋतु में प्रतिवर्ष मलेरिया के कारण मृत्यु-मुख में चले जाते हैं। इसलिए वैसे सप्ताहों को मनाने के लिए यही ऋतु उपयोगी है। "वैद्यानां शारदी माता" का तात्पर्य भी यही है कि शरद् ऋतु में रोग अधिक फैलता है और उसका रूप जन साधारण के लिए भयानक होता है। रोगों से भयभीत होने के कारण इस ऋतु के लिए आम लोगों की ऐसी धारणा बन गयी थी कि जो शरद् ऋतु में जीवित रह गया, उसके जीवन को अगली शरद् ऋतु तक मृत्यु का कोई भय नहीं रहा। शायद यही तात्पर्य "जीवेम शरदः शतम्"—यह ऋचा ध्वनित करती है। अन्य ऋतुओं का नाम न लेकर 'शरद्' का खास तौर पर नाम लेने का कुछ तो विशेष अर्थ होना चाहिए।

श्री धन्वन्तरि त्रयोदशी के अवसर पर स्वास्थ्य सप्ताह मनाने की सलाह का अन्य एक विशेष कारण है लम्बी छुट्टियों का सदुपयोग। इस समय त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावास्या, प्रतिपदा और द्वितीया इस प्रकार पांच छुट्टियां तो बहुत से महकमों में लगातार होती ही है। उनमें केवल

दो छुट्टी और मिलाने से पूरा सप्ताह बन जाता है। इसलिए धन्वन्तरि त्रयोदशी जैसा स्वास्थ्य सप्ताह के लिए उपयोगी समय साल भर में दूसरा कहीं भी प्राप्त नहीं होता। यदि कुछ विभागों में दो छुट्टी राज्य न भी बढ़ावे तब भी पांच दिन के कार्यक्रम में तो सभी लोग अनायास सम्मिलित हो ही सकते हैं। यह कम नहीं है।

थोड़ी देर के लिए यदि यह मान भी लें कि स्वास्थ्य सप्ताह मनाने के लिए दूसरा भी कोई समय नियत कर सकते हैं, किन्तु उस समय का श्रीधन्वन्तरि के जन्म के साथ सम्बन्ध नहीं जुड़ सकेगा। जिस महापुरुष के पृथ्वी पर जन्म लेने का एकमात्र हेतु जनस्वास्थ्य सुधारना था, जो जनता का इतना बड़ा उपकार कर गया, उसकी जन्म-तिथि पर न मनाकर स्वास्थ्य सप्ताह मनाने के लिए कोई अन्य समय ढूंढ़ा जाय, यह तो नितान्त अभद्र कल्पना प्रतीत होगी। मनुष्य इतना कृतज्ञता रहित बल्कि कृतज्ञता विपरीत कार्य कैसे कर सकता है। इसलिए इस कार्य में किसी प्रकार की शंका न करके राष्ट्रीय स्वास्थ्य सप्ताह श्री धन्वन्तरि जयन्ती के शुभ अवसर पर ही मनाना चाहिए और इसमें सरकार तथा जनता का सहयोग इसी प्रकार होना चाहिए जैसे १५ अगस्त के दिन स्वतन्त्रता दिवस मनाने में होता है। चिकित्सकों और सरकारी स्वास्थ्य विभागों से विशेष अनुरोध है कि वे इस आयोजन को सफल बनावें।

देश, धर्म और वर्ण आदि भेदों के अभिमान को त्याग कर भूमण्डल की सारी जनता का इस सप्ताह को मनाने का समान अधिकार है। इसके लिए किसी विशेष समुदाय से विशेष अनुरोध करने की यद्यपि कतई आवश्यकता नहीं है तथापि चिकित्सक बन्धुओं से और सरकारी स्वास्थ्य विभाग से हम यह विशेष अनुरोध इसलिए करते हैं कि जन स्वास्थ्य कार्य ही उनका मुख्य कर्तव्य है।

उत्तर प्रदेश सरकार के डिप्टी डाइरेक्टर-आयुर्वेद श्री दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी जी ने, इस कार्य के महत्व को समझ कर, इसमें सम्मिलित होने के लिए गत वर्ष इन्ही दिनों में जनता को 'सचित्र आयुर्वेद' के द्वारा बहुत प्रेरित किया था। राष्ट्रीय स्वास्थ्य सप्ताह का तारीखवार एक विशेष कार्यक्रम बनाकर 'सचित्र आयुर्वेद' में प्रकाशित करा कर जनता के सामने रखा था। उनकी प्रेरणा ने जनता का समुचित पथ प्रदर्शन किया था। बहुत से नगरों में गत वर्ष, उनके बनाये हुए कार्यक्रम के अनुसार ही, स्वास्थ्य सप्ताह मनाया गया था। हम कुलकर्णी जी से प्रार्थना करते हैं इस बार भी कोई अच्छा कार्यक्रम बनाकर जनता के सामने रखें। अपनी सुविधा के अनुसार उस कार्यक्रम में थोड़ा-बहुत हेर-फेर हो सकता है, किन्तु योजनापूर्वक किसी कार्य को चलाना श्रेष्ठ समझा जाता है। इसमें वैद्य बन्धुवों को अपना अस्तित्व और उपयोगिता प्रमाणित करने के लिये सर्वत्र एक-सा कार्यक्रम स्वीकृत करना चाहिए। वह कार्यक्रम कैसा हो, इसका सुझाव 'सचित्र आयुर्वेद' में प्रकाशित करने के लिए भेजें। सुझाव समयानुसार हो, जिससे साधारण जनता का आकर्षण सम्भव हो। धन्वन्तरि त्रयोदशी को सब वैद्य जनता को मिलाकर अपने ग्राम, कस्वा, महल्ला, शहर में सभा अवश्य करें। उसमें सर्वसाधारण से स्वास्थ्य विषयक प्रस्ताव पास कराकर उसकी एक प्रति केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्राणी, नयी दिल्ली को भेजें, और एक प्रति "सचित्र आयुर्वेद पो० बीडन स्ट्रीट, जोड़ा सांकू, १, गुप्ता लेन, कलकत्ता-६" पते पर भेजें तथा स्थानीय समाचार पत्रों में प्रकाशित करावें। प्रस्तावों में एक प्रस्ताव यह अवश्य रहे कि 'हम राज्य से प्रार्थना करते हैं कि आयुर्वेद को प्रोत्साहन देने के लिए देश के प्रधान नगरों में सर्वाङ्गपूर्ण आयुर्वेद महाविद्यालयों और रुग्णालयों की स्थापना सरकार करे जिससे आयुर्वेद को समुचित प्रोत्साहन मिले।' अन्य आवश्यक प्रस्ताव भी स्वीकृत होने चाहिए।

—:०:—

स्वास्थ्य मंत्राणी के अस्वस्थ विचार

भारत के केन्द्रीय शासन में जैसा अभारतीय मनोवृत्ति का समावेश हुआ है, वह भारत की परम्परा, संस्कृति, साहित्य-ज्ञान-विज्ञान के लिए बहुत ही बाधक बन गया है। भारत के अन्न-जल-वायु से इन शासकों के शरीर तो अवश्य बने हैं, परन्तु इनके अन्तर का विकाश विदेशी विकारों से दूषित होकर हुआ है। इस कारण जैसी अपने राष्ट्र की, अपने ज्ञान-विज्ञान की, परम्परा और इतिहास की प्रतिष्ठा होनी चाहिए, वह दुराशामात्र बन कर रह गयी है।

हमारे देश की स्वास्थ्य मन्त्राणी राजकुमारी अमृतकौर हैं, जो चिकित्सा क्षेत्र में अंग्रेजों की एजेंसी लिए डॉक्टरी को गांव-गांव में फैला देना चाहती है और दवाइयों की करोड़ों की रकम विदेश भिजवाने का संकल्प लिए शासन में सत्ताधारी बनी हुई हैं। उन्हें देश की सर्वमान्य, श्रेष्ठ, सरल, सुलभ और सस्ती आयुर्वेदिक या यूनानी चिकित्सा-पद्धति में विश्वास नहीं, अनुभव नहीं, योग्यता नहीं। जिस आयुर्वेद ने इस राष्ट्र में जन्म लेकर अपनी गम्भीर गवेषणा द्वारा असाधारण सिद्धियाँ प्राप्त की है, सिद्धान्त निश्चित किए हैं, गहरी छानबीन के बाद शास्त्र-ग्रन्थों का निर्माण किया है, उनके प्रति अज्ञानवश उपेक्षा कर स्वास्थ्य मंत्राणी जो मनोवृत्ति प्रकट करती रही हैं, वह वास्तव में उनके अज्ञान और अयोग्यता का ही प्रमाण है। उन्हें मालूम नहीं कि चिकित्सा में आयुर्वेद की जोड़ में दुनिया में कोई उत्कृष्ट विज्ञान नहीं। आयुर्वेद ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, जैसी गहराई से उन पर सूक्ष्मावलोकन किया है, तथ्यान्वेषण किया है, विकार-विवेचन और निदान में नैपुण्य उपलब्ध किया है, वैसा डॉक्टरी ने अब तक समस्त-सुविधा उपलब्ध करके भी नहीं किया। आयुर्वेद केवल प्रयोगशील विज्ञान ही रहा है। परन्तु उसकी महत्ता, उपयोगिता, विशेषता और वैज्ञानिकता से अनभिज्ञ रह कर ही स्वास्थ्य मन्त्राणी यह कहने का दुःसाहस कर सकती है कि "आयुर्वेद में चाहे जैसे गुण हो, उसे अपना कर मैं देश को पीछे नहीं ले जाना चाहती?" यह भारत और उसके विज्ञान का दुर्भाग्य है कि उसे अपनी ही भूमिपर अपने ही व्यक्ति से अवहेलना प्राप्त हो। जहाँ तक हम समझते हैं, स्वास्थ्य मंत्राणी न तो डॉक्टरी विज्ञान से परिचित हैं न किसी भारतीय विज्ञान से ही! वे जिस वर्ग से सम्बन्धित हैं, उसके संस्कार सर्वथा अभारतीय ही हैं। आयुर्वेद विज्ञानवेत्ताओं को बहुत दिनों से मंत्राणीजी की कृतियों ने सतर्क बना दिया था, अब उनकी स्पष्ट वाणी ने सावधानी की सूचना दे दी है। अब हमारा मार्ग सरल और खुला है। हमें शासन से किसी प्रकार की आशा नहीं करनी चाहिए। अपने पथ पर अपने पुरुषार्थ पर ही प्रगति कर अपने विज्ञान को ऊपर लाना होगा। यदि राजकुमारीजी की साधारण भी सहयोग-भावना रही होती तो वे इन वर्षों में आयुर्वेद की प्रगति के लिए वैज्ञानिक अनुसन्धान की कोई सुविधा देतीं और डॉक्टरों के अनुपात में वैद्यों को भी उनके प्रयोग कर चिकित्सा-चमत्कार प्रदर्शित करने का अवसर प्रदान करतीं। आज डॉक्टरों, विदेशी दवाइयों और उनके निर्माण के लिए सरकार जो बेहद धनराशि लुटाती है, उसने आयुर्वेद के लिए कौन-सा उल्लेखनीय कार्य किया, प्रोत्साहित किया, अनुसंधान का अवसर दिया? इसी से उसकी उपेक्षा वृत्ति अपने देश की चिकित्सा पद्धति के लिए प्रकट हो जाती है।

हम देश के विद्वान सुयोग्य चिकित्सक वैद्यों से अनुरोध करेंगे कि वे राजकुमारीजी को दिखा दें कि आयुर्वेद ही भारत के लिए हितकर है और जनता उसे सम्मान से ही नहीं देखती, प्रेम से अपनाती भी है। हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारा शास्त्र विशुद्ध विज्ञान है, आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर भी वह खरा उतरेगा। स्वास्थ्य मंत्राणी का यह कहना कि "किसी उपचार पद्धति को स्वीकार करना आम लोगों के अधिकार की बात है" हम सिद्ध कर दिखा दें कि लोग देशी उपचार को ही पसन्द करते हैं।

यद्यपि डॉक्टरी उपचारों को सरकारी सहायता प्राप्त हैं, परन्तु यह स्पष्ट है कि आज इस पद्धति की मंहगाई, प्रयोगशीलता और उपचारकों के व्यवहार ने जनता में इसका महत्व घटा दिया है, और धीरे-धीरे वैद्यकीय उपचार की ओर उसकी अभिरुचि बढ़ रही है। यह डाक्टरी से सस्ता, सुलभ भी है, इसका लाभ लेकर आयुर्वेदविज्ञों को जनता के निकट अधिकाधिक पहुँचने और क्षेत्र अधिकार करने का प्रयास करना चाहिए। हमें विश्वास है कुछ ही समय में

राजकुमारी जी के उन्नत्त मस्तक को आयुर्वेद के चरणों में झुकने का विवश होना पड़ेगा।

आयुर्वेदीय चिकित्सकों पर टैक्स

सबसे पहले १९१२ में बम्बई-राज्य में डाक्टरों के रजिस्ट्रेशन का नियम बना और भारत के सभी राज्यों में क्रमशः जारी हुआ। डाक्टरों को सिर्फ एक बार रजिस्ट्रेशन फीस देनी पड़ती है और उसके बाद वे किसी प्रकार का टैक्स देने से सदा के लिए मुक्त हो जाते हैं। वैद्यों के रजिस्ट्रेशन का नियम १९२७ ई० से आरम्भ हुआ और एक बार रजिस्ट्रेशन फीस देने की प्रथा उत्तर प्रदेश, बम्बई आदि राज्यों में चालू हुई। डाक्टरों की मेडिकल कौंसिल तथा वैद्य-हकीमों के मेडिसिन बोर्ड का सारा खर्च सरकार ही बर्दाश्त करती है। लेकिन अब होमियोपैथों की रजिस्ट्री भी आरम्भ हुई है और ऐसा प्रतीत होता है कि कई बोर्डों का खर्च चलाने में सरकार के लिए कठिनाई होने लगी है। बंगाल सरकार ने अपने राज्य के बोर्ड को बहुत पहले से सहायता देना बन्द कर रखा है और बंगाल के बोर्ड ने राज्य के वैद्यों से चन्दा एकत्र कर अपना व्यय-निर्वाह करना आरम्भ कर दिया है। उत्तर प्रदेश और बम्बई के बोर्ड के सम्मुख भी ऐसी समस्या उपस्थित हुई थी, लेकिन वैद्यों के तीव्र विरोध के कारण कोई सालाना टैक्स लागू नहीं किया जा सका। सर्वप्रथम यह सालाना टैक्स दिल्ली राज्य में बोर्ड के रजिस्ट्रार श्री मजुमदार ने लागू किया। वहाँ प्रत्येक वैद्य से ११) सालाना टैक्स लिया जा रहा है। दिल्ली का यह संक्रामक रोग अन्य प्रान्तों में भी फैलने की चेष्टा कर रहा है। उत्तर प्रदेश की सरकार ने अब बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन को लिखा है कि वह अपने प्रान्त के वैद्यों पर सालाना टैक्स लागू करने की चेष्टा करें। अन्यान्य राज्य सरकारें भी ऐसा करने की चेष्टा कर सकती हैं। अतएव हम विभिन्न राज्यों के बोर्डों से अनुरोध करेंगे कि वे वैद्यों पर किसी प्रकार के सालाना टैक्स लागू करने की चेष्टाओं को विफल करने के लिए कटिवद्ध रहें। यदि सालाना टैक्स लागू करना ही है तो डाक्टर-हकीम-वैद्य-होमियोपैथ—सभी चिकित्सकों पर समान रूप से यह लागू किया जाय। अन्यथा, हम यह मानने को बाध्य होंगे कि सरकार अन्य चिकित्सकों के साथ पक्षपात और आयुर्वेद पर कुठाराघात कर रही है।

आयुर्वेद के प्रति अन्याय

उत्तर प्रदेश सरकार ने कुछ वर्ष पूर्व लखनऊ में एक आयुर्वेदिक कालेज खोला था और लखनऊ मेडिकल कालेज के एक विभाग रूप में उसका संचालन किया था। किन्तु एलोपैथ-संचालकों की उदासीनता के कारण आयुर्वेदिक कालेज धीरे-धीरे क्षीण हो कर बन्द हो गया और आयुर्वेद की उन्नति के लिए प्रदत्त विशाल अर्थराशि मेडिकल कालेज को अनायास ही मिल गयी।

सरकार ने इस वर्ष पुनः लखनऊ में एक नया आयु-आयुर्वेदिक कालेज गत १ अगस्त को खोला है। हमें आशा थी कि पिछली असफलता को ध्यान में रख कर सरकार कुछ ऐसा प्रवन्ध करेगी, जिससे वास्तव में आयुर्वेद की उन्नति हो। लेकिन हमारी आशाओं पर आरम्भ में ही पानी फिर गया। इस कालेज के प्रिन्सिपल पद पर स्वास्थ्य-विभाग के भूतपूर्व डायरेक्टर डाक्टर याज्ञिक को बिठाया गया है, जो आयुर्वेद के विद्वान नहीं हैं। अतएव, हम नहीं समझते कि वहाँ के पाठ्यक्रम से आयुर्वेद की उन्नति की कोई सम्भावना है। प्रथम आयुर्वेदीय कालेज की दुर्दशा एलोपैथी के अधीन रखने के कारण ही हुई थी। इस कालेज को भी एक एलोपैथ डाक्टर के अधीन रख कर सरकार ने आयुर्वेदाचार्यों का अपमान और आयुर्वेद के प्रति अन्याय किया है। कालेज की संचालन समिति में भी किसी वैद्य को सदस्य-पद नहीं दिया गया है। यह बड़े ही खेद की बात है। आयुर्वेद-प्रेमी जनता सरकार के ऐसे कार्यों को कदापि सहानुभूति की नजरों से नहीं देख सकती। अतएव, उत्तरप्रदेश की सरकार से हमारा अनुरोध है कि यदि वह वास्तव में आयुर्वेद की उन्नति चाहती है तो उसे एलोपैथ अधिकारियों के शासन से मुक्त कर जनता का विश्वास एवं सहानुभूति प्राप्त करे। यदि ऐसा वह नहीं कर सकती हो तो आयुर्वेद की उन्नति का नाम लेकर स्वांग रचना बन्द करे और उसे जनता के भरोसे छोड़ दे।

श्री यादवाभिनन्दन ग्रन्थ

आयुर्वेद के व्यापक क्षेत्र को आज किसी भी दिशा में देख लीजिए, उसमें सर्वत्र श्रीयादवजी त्रिकमजी आचार्य का पुण्य-दर्शन आपको होगा। अध्यापन, चिकित्सा, औषध निर्माण, प्राचीन-संहिता ग्रन्थों और मध्यकालिक रस-ग्रन्थों का सम्पादन और प्रकाशन, अभिनव ग्रन्थ-रचना, सभा-सम्मेलनों का संचालन, शास्त्र-चर्चा-परिषत् की स्थापना, सामर्थ्याधिकार सम्पन्न व्यक्तियों में आयुर्वेद के लिए विश्वास और भक्ति उत्पन्न करना आदि अति महत्त्वपूर्ण कार्यों से आयुर्वेद की सतत सेवा करके श्रीयादवजी ने प्रत्येक विद्वान् वैद्य के हृदय में अपने प्रति दृढ़-भक्ति उत्पन्न करा ली है। आज सभी वैद्य श्री यादवजी की अनेकविध-आयुर्वेदिक सेवाओं से उपकृत हैं।

आचार्य जी की इन सेवाओं के लिए कृतज्ञ समग्र भारत के वैद्यों के हृदय में यह ध्वनि उत्पन्न हुई और इसने शीघ्र ही आकाशमण्डल को प्रतिध्वनित कर दिया कि श्री यादव जी के सम्मान में वृहद्रूप में निखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन करके उनको अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित किया जाय। तदनुसार बहुत से वैद्यों ने श्री यादवाभिनन्दन ग्रन्थ के लिए अपने-अपने लेख भेजे, जिनमें बहुत से लेख, विशेष करके पद्यमाला श्री यादवजी की यशोगाथा थी। उन्हें देखकर महामना श्री यादवजी ने कहा--'इस अभिनन्दन-ग्रन्थ का क्या होगा, इस स्तोत्र-संग्रह का पाठ करके किसी को क्या मिलेगा, इतना रुपया एक व्यर्थ कार्य के लिए खर्च क्यों किया जाय? यदि अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करना बहुत आवश्यक समझा जा रहा है तो उसमें ऐसे लेखों का संग्रह होना चाहिए जिनसे आयुर्वेद के क्षेत्र में लोगों की कुछ ज्ञान-वृद्धि हो।' यह कितने विशाल हृदय की बात है। तदनुसार स्तुति परायण लेख निकाल कर आयुर्वेद सम्बन्धी कोई नयी खोज, किसी रोग-विशेष पर बहुत बार के सुपरीक्षित अनुभव, आयुर्वेद सम्बन्धी विशेष विचार, जिनका श्री यादवजी से घनिष्ठ सम्बन्ध हो, केवल इसी प्रकार के लेखों के आधार पर इस ग्रन्थ के प्रकाशन का निश्चय किया गया।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का सारा व्यय भार श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० ने अपने ऊपर लेकर ग्रन्थ छपाना आरम्भ कर दिया है। इसका कुछ भाग छप भी गया है। अब वैद्य स्वयं सोच सकते हैं कि यह ग्रन्थ कितना महत्त्वपूर्ण होगा। इसके लिए उपर्युक्त विचारों का ध्यान रख कर लेख भेजने के लिए सभी विद्वान् लेखकों से अनुरोध किया जाता है। जो विद्वान् वैद्य अपना लेख इस ग्रन्थ में प्रकाशित कराना चाहें उन्हें-पं० श्री रामनारायण शर्मा वैद्य शास्त्री, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, गुसाईंपुरा, 'झाँसी' के पते पर अपना लेख शीघ्र भेज देना चाहिए। यह ग्रन्थ भारत के कोने-कोने में सभी श्रेणी के वैद्यों के हाथों में जायगा, इसलिए सभी वैद्य इसकी उपयोगिता का ध्यान रखते हुए इसमें निस्संकोच अपना लेख भेज सकते हैं। उपयोगी लेखोंको चाहे वह किसी ने लिखें हो स्थान अवश्य दिया जायगा। देर से आये हुए लेख नहीं छापे जायंगे।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

गुसाईंपुरा, झाँसी

कौमारभृत्य की व्यापक मर्यादा

वैद्य रणजितराय

सुश्रुत-संहिता के सूत्रस्थान के प्रथम अध्याय में कौमार-भृत्य-नामक आयुर्वेद के आठ अङ्गों में से एक का लक्षण बताते हुए तन्त्रकार ने कहा है :

कौमारभृत्यं नाम कुमारभरणधात्रीक्षीरदोषसंशोधनार्थं दुष्टस्तन्य-ग्रहसमुत्थानां च व्याधीनामुपशमनार्थम् ।

—कुमार के भरण नाम धारण-पोषण के लिए एवं धात्री के स्तन्यगत दोषों के संशोधनार्थ, अथ च दूषित स्तन्य के सेवन से उत्पन्न निज शारीर रोगों तथा नव-बालग्रहों के आवेश से उत्पन्न आगन्तुक व्याधियों के उप-शमनार्थ जिस अङ्ग का उपदेश हुआ है, उसे **कौमार-भृत्य** किंवा **बालतन्त्र** कहते हैं ।

कौमारभृत्य का विषय यद्यपि यहाँ इतना ही बताया है, तथापि प्रकरणान्तरों में इसका विस्तार विशेष बताया गया है । उसका निर्देश करना उचित प्रतीत होता है । सुश्रुत संहिता-सूत्रस्थान ३।३७ में कहा है :

कुमारतन्त्रमित्येतच्छारीरेषु च कीर्तितम् ।।

नाम, यहाँ कुमार तन्त्र का विषय बताया गया है । एतदतिरिक्त, शारीरस्थान में भी कुमारतन्त्र के विषय का निर्देश किया गया है । इसकी टीका में **डह्लन** कहता है ।

किमेतावदेव कुमारतन्त्रमथवाऽन्यदप्यस्ति, इति पृष्ट आह—शारीरेषु च कीर्तितमिति । किं तच्छारीरेषूक्तमिति ? तद्यथा—रजःशुद्धिः, गर्भावक्रान्तिरित्यादि ।

तात्पर्य, प्राकृत और दोष-दूषित रज (आर्तव) के लक्षण, दुष्ट रज के शोधन (समीकरण) के उपाय तथा गर्भ का प्रादुर्भाव, उसका अवतरण (प्रसूति) आदि जो विषय शारीरस्थान के द्वितीय, तृतीय तथा दशम अध्यायों में विवृत हुए हैं वे भी कौमारभृत्य के अङ्गभूत हैं ।

कुमार किंवा बाल शब्द से सामान्यतया छोटे बच्चे का ही बोध होता है । परन्तु कौमारभृत्य में इसका अर्थ बहुत ही व्यापक है । सुश्रुत, शारीरस्थान १०।५२ में कहा गया है :

शक्तिमन्तं चैनं ज्ञात्वा यथावर्णं विद्यां ग्राहयेत् ।।

—अर्थात्, 'कुमार विद्योपार्जन सुलभ क्लेश के सहन में समर्थ हो जाए तो उसे अपने वर्ण के अनुसार योग्य विद्या का ग्रहण कराए ।' अनन्तर सूत्र में आचार्य कहते हैं :—

अथास्मै पञ्चविंशतिवर्षाय षोडशवर्षां पत्नीमावहेत् ।

—कुमार पच्चीस वर्ष का हो जाए तो उसके साथ षोडशी पत्नी का पाणि-ग्रहण कराए ।' इन बचनों का फलितार्थ यह है कि विद्याभ्यास और विवाह-पर्यन्त पुरुष कुमार ही कहाता है ; किं बहुना, दोनों कौमारभृत्य के ही विषय हैं ।

ऊपर रजःशुद्धि, गर्भशुद्धि और प्रसूति को कौमार-भृत्य के ही अङ्गविशेष कहा है । प्रकरणान्तर में रजः-शुद्धि विषय का योनिव्यापत् नाम से विस्तार किया गया है । योनि शब्द यहाँ संपूर्ण गर्भयन्त्र के लिये प्रयुक्त हुआ है । तात्पर्य यह है कि, **योनिव्यापत्** का अर्थ वह है, जिसे हम वर्तमानकाल में स्त्री रोग कहते हैं ।

प्रसूति-कर्म कौमारभृत्य का ही है । अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने स्पष्ट कहा है :—

आपन्नसत्त्वायां कौमारभृत्यो गर्भमर्मणि प्रजनने च वियतेत । —प्रथमाधिकरण, अ० १७

—स्त्री आपन्नसत्वा (सगर्भा) होने पर कौमारभृत्य को (कौमारभृत्य के आचार्य को) गर्भ के पोषण और प्रसव-सम्बन्धी प्रयत्न करना चाहिए । प्राचीन काल में कौमारभृत्य यह कर्म करते भी थे । रघुवंश के अधो-लिखित पद्य से इसका प्रत्यय होगा ।

कुमारभृत्या कुशलैरनुष्ठिते
भिषग्भिराप्तैरथ गर्भमर्मणि ।
पतिः प्रतीतः प्रसवोन्मुखीं प्रियां
ददर्श काले दिवमभ्रितामिव ।। अ० ३।१२

कौमारभृत्य में कुशल चिकित्सकों द्वारा राज्ञी (सुद-क्षिणा) के गर्भ का पोषण कर दिये जाने पर पति (राजा दिलीप) ने प्रमुदित हो अपनी आसन्नप्रसवा प्रिया को मेघ-मण्डित आकाश के सदृश पाया (मूल में उपमा की संपूर्णता के निमित्त आकाश के लिए स्त्रीलिङ्गी 'द्यौः' शब्द ही व्यवहृत हुआ है) ।

किसी पुरुष को बाल अथवा कुमार कितने वय तक कहें, इस वस्तु का निर्देश करते हुए तन्त्रकारों ने इसी विषयकी प्रकारान्तर से चर्चा की है। **चरक** ने कहा है :—

तत्र बालमपरिपक्वधातुमजातव्यञ्जनं सुकुमार-सक्लेशसहमसंपूर्णबलं श्लेष्मधातुप्रायमाषोडशवर्षम्। विवर्धमानधातुगुणं पुनः प्रायेणानवस्थितसत्त्वमात्रिंशद्वर्ष-मुपदिष्टम्॥ च० वि० ८।१२२

बाल (कुमार) के दो प्रकार बता कर दोनों के लक्षण यहाँ बताए हैं—बाल (कुमार) के दो भेद हैं—**अपरिपक्व-धातु** तथा **परिपक्वधातु**। जिस बाल के धातु परिपक्व (संपूर्ण पुष्ट)[१] न हुए हों, व्यञ्जन (लिङ्गद्योतक बाह्य चिह्न)[२] जिसके प्रादुर्भूत न हुए हों, जो सुकुमार हो, क्लेश-संहिष्णु तथा संपूर्ण बलवाला न हो, जिसमें श्लेष्मा का प्रायः प्राधान्य हो, उसे **अपरिपक्वधातु** नामक बाल कहते हैं।

इसके अनन्तर तीस वर्ष के वय पर्यन्त, जिसमें रस-रक्तादि धातुओं के अपने-अपने गुण विवर्धमान नाम उत्त-रोत्तर पुष्ट होते हों, अथ च जिसमें मन प्रायः अस्थिर हो (बुद्धि-निश्चय और हृदय की वृत्ति चञ्चल हो) उस वय में वर्तमान पुरुष को **विवर्धमानधातु** नामक बाल कहते हैं।

सुश्रुत ने वयोविभाग कुछ भिन्न किया है। तथापि उसने बाल की जो मर्यादा कही है वह विचारणीय है। वह कहता है—

तत्रोनषोडशवर्षीया बालाः। सु० सू० ३५-२३

'सोलह वर्ष से न्यून वय वाले पुरुष बाल कहे जाते हैं।' यहाँ बाल की यह परिभाषा सुश्रुत ने की है तथापि स्मरण रखना चाहिए कि उसने पच्चीस वर्ष पर्यन्त पुरुष को कौमारभृत्य के ही संरक्षण का विषय कहा है।

हारीत संहिता के अधोलिखित पद्य में **बाल-चिकित्सित** (कौमारभृत्य) का लक्षण बताते यह सब बात स्पष्टतर शब्दों में कही है :

गर्भोपक्रमविज्ञानं सूतिकोपक्रमं तथा।
बालानां रोग शमनं क्रिया बालचिकित्सितम्।

अर्थात्—गर्भ के आदिकारणभूत शुक्र और शोणित की शुद्धि (उनकी गर्भोत्पादन-क्षमता) के लक्षण, उनकी दुष्टि के लक्षण, दुष्टि के उपचार, गर्भ की अनुत्पत्ति किंवा विकृति के हेतुभूत योनि-व्यापत् (स्त्री-रोग) तथा उनकी चिकित्सा, शुक्र और शोणित का संमूर्च्छन[१] से उत्पन्न गर्भ और शरीर[२] की स्थिति, पुष्टि और वृद्धि के लक्षण, गर्भ तथा गर्भिणी को होनेवाले रोगों के निदान—लक्षण-चिकित्सा, प्रसव की विभिन्न अवस्थाओं के लक्षण, प्राकृत-वैकृत प्रसूति में सूतिका तथा शिशु की परिचर्या, प्रसवोत्तर प्रसूता के आरोग्य का रक्षण; धात्री तथा क्षीरोपयुक्त प्राणियों के शुद्ध-अशुद्ध स्तन्य के लक्षण, दूषित स्तन्य और क्षीर की शुद्धि के उपाय, बालों (कुमारों) का पोषण, अपरंच, स्तन्यादि दूषित अन्न-पान किंवा बालग्रहों के कारण होनेवाले रोगों की अनुत्पत्ति[३] तथा प्रशमन के उपाय—इन विषयों का विवरण आयुर्वेद के आठ अङ्गों में से जिस अङ्ग में हुआ है उसे कौमारभृत्य, बालतन्त्र, बालचिकित्सा या कुमारतन्त्र कहते हैं।

संक्षेप में नव्य मत से कहना हो तो आधुनिकों की मिड-वि्फरी या प्रसूतितन्त्र, गायनेकोलॉजी या योनिव्यापत् (स्त्रीरोग विज्ञान), पीडिएट्रिक्स अथवा बालरोगविज्ञान और चाइल्ड-एजुकेशन नाम कुमार के सम्पूर्ण शिक्षण और प्रशिक्षण का शास्त्र इन सब का समावेश प्राचीनों ने एक ही अङ्ग कौमारभृत्य में किया है। मूढगर्भ के आहरण का विचार शल्यतन्त्र में किया गया है।

इस प्रकार पुरुष के शारीर-मानस उभय निर्माण का आधार कौमारभृत्य ही है। अतएव काश्यप-संहिता में कहा है :—

कौमारभृत्यमष्टानां तन्त्राणामाद्यमुच्यते।
आयुर्वेदस्य महतो देवानामिव हव्यपः॥

—जैसे देव-समाज में इन्द्र वरिष्ठ हैं वैसे महान् आयुर्वेद के अष्ट-अङ्गों में कौमारभृत्य का पद अग्र है।

विचार कीजिए, कितना गम्भीर उत्तरदायित्व है

(शेषांश पृष्ठ २७८ पर)

१—डिवेलप्ड। डिवेलप होने के लिए नव-निर्मित विकसित तथा डिवेलपमेण्ट के लिए विकास शब्द रखा जाता है। पुष्ट एवं पुष्टि प्राचीन पर्याय हैं।

२—सेकंडरी सेक्स केरेक्टर्स" के लिए व्यञ्जन शब्द प्रयुक्त होता है।

१—एकीभाव, फ्युशन, फर्टिलाइजेशन।

२—गर्भ—तीन मास पर्यन्त भ्रूण : शरीर—तीन मास के अनन्तर प्रसव पर्यन्त भ्रूण।

३—प्रिवेंशन्श के लिए संहिताओं में अनुत्पत्ति शब्द आया है।

पाश्चात्यदृशा आयुर्वेदस्वरूपम्

श्री वॉल्टर हार्डिंग मौरर्

गत २ मार्च ५४ के दिन श्री मौरर् ने पूना के आयुर्वेद महाविद्यालय में संस्कृत भाषा में एक भाषण दिया था। श्री मौरर् अमेरिका में वार्शिगटन-स्थित लायब्रेरी ऑफ कांग्रेस के भारतीय विभाग में कार्य करते हैं। आप फुलब्राईट छात्रवृत्ति लेकर संस्कृत के विशेष अभ्यासार्थ पूना आए हुए हैं। आप का संपूर्ण भाषण नीचे दिया जा रहा है। भाषण से विदित होगा कि, वैदेशिक लोक भारतीय संस्कृति, संस्कृत तथा भारत की प्राचीन विद्याओं के अनुशीलन के लिए कितना प्रयास करते हैं। दूसरी ओर हम भारतीयों की इन विषयों के प्रति प्रतिदिन प्रवर्धमान उदासीनता है, जिसका भारतीय संस्कृति के प्रेमियों को विचार करना चाहिए। भाषण में निर्दिष्ट वह भाग विशेष ध्यान खींचता है, जिसमें वक्ता ने अमेरिका के प्राचीन नापित शल्यहर्ताओं के यन्त्र-शस्त्रादि उपकरणों का साम्य आयुर्वेद के उपकरणों से दिखाया है। आशा है,पाठक इस लेख को मनोयोग से पढ़ेंगे।--यह लेख हम आयुर्वेद महाविद्यालय पूना की मुख्यपत्रिका 'आयुर्विद्या' से कृतज्ञता-प्रकाशनपूर्वक उद्धृत कर रहे हैं--स० सम्पादक

आयुर्वेदमहाविद्यालयस्य अधिकारिणः, अन्ये सज्जनाः, प्रियतमाः सुहृदश्च !

यदा सप्ताहत्रयात्प्रागहं पण्डितप्रवरैर्मार्तण्डदीक्षितैरादिष्टः आयुर्वेदमहाविद्यालयस्य विद्यार्थिनां कृते देवभाषायां भवता व्याख्यातव्यमिति, तदा सपद्यतीव सन्तुष्टः सन्त्रस्तश्चाऽहम्। परन्तु अस्य सन्तोषसन्त्रासमिश्रीभावस्य किं कारणमिति सर्वे भवन्तः साश्चर्या विचारयेयुः। तस्मादस्य चित्तवृत्तिद्वैतस्य कारणं मया स्फुटीकर्तव्यम्। यद्यपि संस्कृतां भाषां कतिपयसम्वत्सरान् पठितवानहम्, तथाऽपि वैदेशिको भवामि। मम देशे संस्कृता भाषा श्रोतुं कदाचिन्न शक्यते नोपयुज्यते च। किन्तु तत्र विविधेषु विश्वविद्यालयेषु उत्कृष्टतमगुरूणां सन्निधौ सम्यगध्येतुं शक्या। तत्र च प्रभूता महान्तो ग्रन्थालयाः सन्ति यत्र भारतवर्षस्यैतिहाससाहित्यादिग्रन्थानां विपुलाः संग्रहा विद्यन्ते। अहं अमेरिकादेशस्य महत्तमे ग्रन्थालये उद्यमं करोमि यस्मिन् चतुर्लक्षसंख्याकानि भारतवर्षसंस्कृतविषयाणां पुस्तकानि विद्यन्ते। आङ्ग्लभाषायामस्य ग्रन्थालयस्य नाम "लायब्रेरी ऑफ् कांग्रेस" इति भवति। अयं महाग्रन्थालयः अष्टशताधिकसहस्रतमे (१८००) संवत्सरे स्थापितः। तदा अस्माकं राष्ट्रियपरिषदः सदस्यमात्रैरुपयोक्तव्य आसीत्। परन्तु गच्छता कालेन यथेदं प्रतिष्ठानमवर्धत तथा शनैः शनैः सर्वैः अमेरिकादेशीयजनैः प्रायः उपायुज्यत। तेन "लायब्रेरी ऑफ् कांग्रेस" इति अन्ताराष्ट्रिय पुस्तकालयः सम्भूतः। यदि कश्चिद् अमेरिकादेशवासी भारतीयसंस्कृतेः काञ्चित् शाखामध्येतुमिच्छति तर्हि तस्य तदतीव सुलभम्।

परन्तु यथा पूर्वमुक्तं विदेशे संस्कृतां भाषां भाषितुं न कोऽपि अवकाशः, तस्मादहं संस्कृतभाषायाः वक्ता न भवामि। अतीतकाले एकवारमेव देवभाषया व्याख्यातवानहम्। गणेशमहोत्सवप्रसंगे तिलकमहाराष्ट्रविद्यापीठे मेघदूतविषयकं भाषणं कृतवान्। तस्मात् कारणात् भवन्तः, हे सूक्ष्मबुद्धयः सुहृदः, मम भाषणे दोषान् श्रुत्वाऽपि मम वैदेशिकत्वं स्मरन्तु करुणां च प्रदर्शयन्तु। इदं मम सन्त्रासस्य कारणम्।

अस्मिन् व्याख्याने मदीयस्य सन्तोषस्य किं कारण ? भारतीय वैद्यकशास्त्रस्य अध्ययनं मह्यमतीव रोचते। यतः प्रभृति तानि आयुर्वेदबीजधारिणी अथर्ववेदसूक्तानि मया विश्वविद्यालये अधीतानि ततः प्रभृति भारतीयचिकित्साविद्यायामासक्तोऽहम्। येषु दिनेषु भारतवर्षे मद्गुरोरवस्थानवशात् फिलडेल्फियानगरे विद्यमानं पेन्सिल्वेनियाविश्वविद्यालयं त्यक्त्वा तेषां सूक्तानां पठननिमित्तं प्रिन्स्तनविद्यालयो मया गन्तव्य आसीत्, तानि दिनानि कदाचित् न विस्मरिष्यामि। कौशिकसूत्रविभागैर्युक्तानि त्रिभिः विद्यार्थिभिः साकमधीतानि। समागतानामस्माकं सन्तोषजनकाः ते संस्काराः विनष्टुं नाऽर्हन्ति। भारतीयचिकित्साविद्यायाः मूलभूतानां पुरातनतमानामथर्ववेद-

सूक्तानां पठनात् वैद्यकशास्त्रे कौतूहलं मे जातम्। तस्मात् आयुर्वेदमहाविद्यालये व्याख्यानं ददातु भवानिति संसूचनेन मम मनसि प्रभूतः सन्तोष उद्भूतः। परन्तु आयुर्वेदविषयः मया केवलं मनोविनोदार्थमधीतः, तेन अत्र भवतां पुरस्तात् भयेन शङ्कितेन च मनसा तिष्ठामि : सर्वे भवन्तः आयुर्वेदविद्यार्थिनः वैद्या आयुर्वेदपारङ्गताश्च। अहं तु संस्कृतभाषासाहित्यस्य छात्रमात्रोऽस्मि। तेन—

"प्रमाणसिद्धान्तविरुद्धमत्र
यत्किञ्चिदुक्तं मतिमान्द्यदोषात्।
मात्सर्यमुत्सार्य तदार्यचित्ताः
प्रसादमाधाय विशोधयन्तु ॥"

इति हेमाचार्यविरचितवचांसि स्मरन्तु इति याचे। संवत्सरद्वयात् प्राक् अहं विल्यम्सवर्ग इति नामकं अमेरिकादेशस्थं नगरं गतः यत्र जेफर्सन्, वाशिंगटन इत्यादयः धीरोदात्ताः पुरुषाः अस्मदीयस्वतन्त्रतानिमित्तं नक्तंदिवं प्रायतन्त। यत्र च अमेरिकेतिहासस्य पुराणकाले अब्द-शतद्वयात् पूर्वं निर्मितानि गृहाणि भवनानि तथा च ब्रिटिश-राज्यपालहर्म्यं स्थानीयया ऐतिहासिक परिषदा पूर्वस्थितिं प्रापितं रक्षितं च। पुराणमूलशिलायां कृतं नापितस्य आपणं यदृच्छयाऽहं प्रविष्टवान् यत्र अमेरिकादेशीयस्य पुरातनभाण्डिकस्य सर्वेषामुपकरणानां सविस्मयं निरीक्षणं कृतवान्। भूतकाले नापिता न केवलं केशान् अच्छिन्दन् श्मश्रुं च अतुलन् (यथा अधुना मम देशे), परन्तु तैः कृत्रिम-केशाः संस्कृताः संचूर्णं च क्रेतॄणां मुखोपकेशेषु व्यक्तम्। विशेषतश्च तैः रुग्णोपचारनिमित्तं शस्त्रकर्माणि कृतानि। वैद्योपचारस्मरणार्थं पाश्चात्यदेशेषु नापितापणानां पुरस्ता-देकः स्तम्भः द्रष्टुं शक्यते यः श्वेतरक्तवर्णरेखाभिः पट्ट-शोणितस्थानीयाभिः सम्पन्नः सर्वजनान् पुराकालीननापितस्य व्यापारं स्मारयति। विल्यम्सबर्गनगरस्थे नापितस्य आपणे तेषु शस्त्रकर्मसु प्रयुक्तानि उपकरणानि दृष्टवान्यथा आरासन्दंशकरपत्रसूचिशलाकादीनि तथैव च नानाप्रकारौ-षधगर्भभाजनखल्लभाण्डकाचपात्रादीनि कतिपयांश्च कुम्भान् जलौकसधारणनिमित्तमुपयुक्तान् दृष्टवानहम्। एतान् कुम्भान् दृष्ट्वा सुश्रुतसंहितायां विद्यमानः जलौकाव-चारणीयपरिच्छेदो मनसि उद्भूतः। तत्र सुश्रुतः शोणिताव सेचनार्थं जलौकसानां प्रयोजनमुपदिशति। यथा—

"नृपाढ्यबालस्थविरभीरुदुर्बलनारीसुकुमाराणामनुग्रहार्थं परमसुकुमारोऽयं शोणितावसेचनोपायोऽभिहितो जलौकसः" इति। सुश्रुत सू० १३।३

द्वादशजलौकसान् षट् सविषान् षट् निर्विषांश्च गणयित्वा तेषां प्रग्रहणं प्रयोजनं च यथा—

"तासां ग्रहणमार्द्रचर्मणा, अन्यैर्वा प्रयोगैर्गृह्णीयात्। अथैनाः नवे महति घटे सरस्तडागोदकपङ्कमावाप्य निदध्यात् भक्ष्यार्थे चासामुपहरेच्छैवालं वल्लूरमौदकांश्च कन्दान् चूर्णीकृत्य; शय्यार्थं तृणमौदकानि च पत्राणि" इत्यादि। सु० सू० १३।१७

शोणितावसेकार्थं सुश्रुतः गोःशृङ्गस्य प्रयोगमपि निर्दिशति। तत्राग्रे तनुवस्त्रपटलावनद्धेनशृङ्गेण शोणितमवसेचयेत्। शृङ्गाणि जलौकसाश्च सर्पकृतात् व्रणात् विषस्योद्धारणार्थं विशेषेणोपायुज्यन्त। किन्तु सुश्रुतः यवचूर्णपांशुपूर्णेन मुखेन दंशाचूषणं प्रशंसति। (सु० कल्प० ५।५)

अधिकं तु कर्णमध्ये मलस्य कीटस्य वा अपहरण-निमित्तं शृङ्गस्य प्रयोजनं वर्णयति यथा—

"कर्णच्छिद्रे वर्तमानं कीटं क्लेदमलादि वा।
शृङ्गेणापहरेद्धीमानथवाऽपि शलाकया ॥ इति ॥"
सु० उ० २१।५८

शलाका तन्निमितं विशेषेणोपयुज्यत। सुश्रुतस्य वाग्भटस्य च वचनानुसारेण अलाबुनामकं फलविशेषं शोणितस्यावसेचनार्थे प्रयोक्तुं शक्यते। अस्य फलस्या-न्तरङ्गमपहृत्य एकं दीपनमन्तः निक्षिप्य आतुरस्य मांसच्छेदे स्थापयेत्। तेन श्लेष्मारक्तं च अवसेचयितुं शक्यते। सु० सू० १३।८

यानि औषधभाजनानि अमुष्मिन्नापितापणे मया दृष्टानि तानि चरकसुश्रुतवर्णितपात्राणि मामस्मारयन्। यथा—

"चूर्णाञ्जनं कारयित्वा भाजने मेषशृङ्गजे।
संस्थाप्योभयतः कालमञ्जयेत् सततं बुधः" ॥ इति।
—सु० उ० १५, २७, २८

अन्यत्र च—

एतच्चूर्णाञ्जनं श्रेष्ठं निहितं भाजने शुभे।
दन्तस्फटिकवैदूर्यशंखशैलासनोद्भवे ॥
शातकुम्भेऽथ शृङ्गे वा राजते वा सुसंस्कृते ॥ इति।
सु० उ० १८।९१, ९२

शैलासने भाण्डे मेषशृंगे च संस्थितिः' इति।—चरक

अमेरिकादेशे येषु पात्रेषु औषधानि निक्षिप्तानि तानि प्रायेण काचमयानि काष्ठमयानि च इति मन्ये। किंतु प्राचीना भारतीया वैद्याः औषधीयानि चूर्णानि प्रायः पत्रमयेषु सम्पुटेषु निदधुः। शृङ्गाणि केवलमाग्नेय चूर्णनिधानार्थं प्रायुज्यन्त। विल्यम्सबर्गनगरस्य नापिताः अष्टाङ्गहृदयसंहितायामुपदिष्टेन शस्त्रकोषेण सदृशे शस्त्रकोषे शस्त्रशलाकादीनि अस्थापयन्। वर्तमानकालेऽपि पाश्चात्यदेशीयवैद्याः सूक्ष्माणि उपकरणानि तादृशेषु कोशेषु धारयन्ति।

शस्त्रकोषस्य वाग्भटवर्णनमतिस्पष्टं विस्तृतं च। यथा–

स्यान्नवांगुलिविस्तारः सुधनो द्वादशांगुलः।
क्षौमपट्टोर्णकौषेयदुकूलमृदुचर्मजः॥
विन्यस्तपाशः सुस्यूतः सान्तरोर्णास्थिशस्त्रकः।
शलाकापिहितास्यश्च शस्त्रकोषः सुसंचयः॥ इति।

अ० हृ० सू० २६।३३, ३४

शस्त्रचिकित्सावसरे वैद्यसन्निधौ तादृशाः एव शस्त्रकोषा मया असकृत् दृष्टाः येषु तीक्ष्णशस्त्राणि सव्यवधानानि कार्पासखण्डमध्ये क्रमशः विन्यस्तानि। मम गृहे भोजनोपकरणानि कार्पासवस्त्रनिर्मिते कोषे निहितानि भवन्ति। भक्षणस्यानन्तरं मम स्वसा स्वेषु-स्वेषु स्थानेषु तानि उपकरणानि व्यवस्थाप्य वस्त्रकोषमावर्त्य कृष्णसूत्रेण अग्रथ्नादिति स्पष्टं बाल्यात् प्रभृति स्मरामि। सुश्रुतस्य मतानुसारेण शस्त्राणि साधारण्येन आयसान्यभवन्। वदति हि "तानि प्रायशो लौहानि भवन्ति" इति। किन्तु कदाचित् लौहशस्त्राणामभावं संभावयन्नुपदिशति "तत्प्रतिरूपकाणि वा तदलाभे" इति। सु.सू. ७।७

अन्यत्र विविधधातुमयानि उपकरणानि निरूपयति "ताम्रायसी शातकौम्भी शलाकास्यादनिन्दिता" इति। अपि च

सौवर्णे राजते ताम्रे कांस्ये मणिमये तथा।
पुष्पावतंसं भौमे वा सुगन्धि सलिलं पिबेत्॥ इति।

सु० सू० ४५।१३

उपकरणानि लोहकारेण कृतानि। उपदिशति हि—

शस्त्राण्येतानि मतिमान् शुद्धशैक्यायसानि तु।
कारयेत् करणैः प्राप्तं कर्मारं कर्मकोविदम्" इति॥

सु० सू० ८।१६

एकस्मिन्नवसरे सुश्रुतः सर्वेषु यन्त्रेषु हस्त-
स्यैव प्रधानतां निर्दिशति यथा।

यन्त्रशतमेकोत्तरम्। अत्र हस्तमेव प्रधानतमं यन्त्राणामवगच्छ। किं कारणम्? यस्मात् हस्तात् ऋते यन्त्राणामप्रवृत्तिरेवतदधीनत्वाद्यन्त्रकर्मणाम्। इति। सु०सू० ७।३

प्राचीनभारतीयानामुपकरणानां मुखानि व्यालानांमृगपक्षिणां च मुखैः प्रायशः सदृशानि अभवन्। तेषां च नामानि आयुर्वेदीयासु कृतिषूक्तानि मुखानां स्वरूपाणि लक्षयन्ति। तथा च सुश्रुतः उपदिशति—

तत्र स्वस्तिकयन्त्राणि अष्टादशांगुलप्रमाणानि सिंहव्याघ्रवृकतरक्षुऋक्षद्वीपिमार्जारशृगालमृगैर्वारुककाककङ्ककुररचापभासशशघात्युलूकचिल्लिश्येनगृध्रक्रौञ्चभृङ्गराजञ्जलिकर्णावभञ्जननन्दिमुखानि मसूराकृतिभिः कीलैरवद्धानि मूलेऽङ्कुशवत् वाराङ्गाणि अस्थिविनष्टशल्योद्धारणार्थमुपदिश्यन्ते। इति। सु० सू० ७।१०

अधुनातने काले पाश्चात्यदेशेषु नानाप्रकारमुखोपेतानि यन्त्राणि ईषत्तरसदृशानि उपयुञ्जन्ति। संस्कृतभाषायां यत् सिंहमुखयन्त्रमित्युच्यते तदेवाङ्गल भाषायां "Lion forceps" इत्युच्यते। उपकरणानां लक्षणानि वर्णयित्वा सुश्रुतः निर्दिशति—

समाहितानि यन्त्राणि खरश्लक्ष्णमुखानि च।
सदृढानि सुरूपाणि सुग्रहाणि च कारयेत्॥ इति

सु० सू० ७।१६

त्रीणि विधानानि उपकरणानां दृढीकरणार्थमुक्तानि। एकस्य तु यन्त्रस्य प्रयोजनं विशेषविधानं लक्षयति।

तेषां (शस्त्राणां) पायना त्रिविधा क्षारोदकतैलेषु। तत्र क्षारपायितं शरशल्यास्थिच्छेदनेषु। उदकपायितंमांसच्छेदनभेदनपाटनेषु। तैलपायितं सिराव्यधनस्नायुच्छेदनेषु।

सु० सू० ८।१२

इति सुश्रुतवचनात्। तदुपदेशानुसारेण शस्त्राणामुष्णीकरणस्य अनन्तरं तानि शस्त्राणि क्षारजलतैलेषु निमज्जनीयानि। सुश्रुतोऽत्र अनुरूपतमं पारिभाषिकं शब्दम् "पायना" इति उपयुनक्ति। शस्त्राणां निशानार्थं काचन श्लक्ष्णा शिला प्रायुज्यत। प्राचीनयवनरोमकजनाः औषधीयानि शस्त्राणि तादृशैः पाषाणैः अतेजयन्। यदा भारतीयो वैद्यः व्याधितस्य मुखं व्यादातुं ऐच्छत्तदा दन्तघातान् स्वांगुलीः रक्षितुमंगुलित्राणकमिति यन्त्रं प्रयुक्तवान्।

अंगुलित्राणकं दान्तं वार्क्षं वा चतुरंगुलम्।
द्विच्छिद्रं गोस्तनाकारं तद्वक्त्रविवृतौ सुखम्॥

अ० हृ० सू, २५।२१

—इति तत् वर्णितम्। तदुपयन्त्रम् साम्प्रतकालस्य वैज्ञानिकेन उपकरणेन तुल्यमेव। यथा प्राचीनयवनरोमकवैद्यैः तथा भारतीयवैद्यैरपि व्रणानां मांसच्छेदानां च सीवननिमित्तं नानाप्रकारधातुसूच्यः सूत्राणि च प्रायुज्यन्त। सुश्रुतमतानुसारेण अश्वपुच्छभवाः केशाः प्रायेण सूत्रमिति प्रयुक्ताः। किन्तु सूक्ष्माणि सूत्राणि अन्यैः द्रव्यैरपि संस्कृतानि। वर्तमानकाले सरलाः वक्राश्च सूच्यः भवन्ति। सुश्रुतः काश्चन धनुराकृतीः सूचीः "धनुर्वक्रा" इति नाम्ना निरूपयति। सु० सू० २५-२४

सूत्राणां स्थाने जीवन्त्यः कृष्णपिपीलिकाः व्रणस्य प्रान्तयोः संयोजनार्थमुपयुक्ताः। ताभिर्व्रणं दंशयेत्ततः तासां कायान् अपहरेत् शिरोवर्जम्, यासां मुखानि छिद्रान्तौ दष्ट्वा आसते। अन्त्रे विद्यमानस्य व्रणस्य सीवननिमित्तं तत्र संलग्नं शल्यमुद्धृत्य पिपीलिकानां प्रयोजनमुपदिशति। सु० चि० २।५६

शिरसि व्रणस्य प्रसङ्गे शरशल्यादिसायकेऽपहृते वैद्यः तत्र वालवर्ति प्रावेशयद्यतः।

बालवर्त्यामदत्तायां मस्तुलुङ्गव्रणात् स्रवेत्। इति
सु० चि० २।७०।

व्रणे रोहति चैकैकं शनैरपनयेत् कचम्।
इति वाग्भट्टेनोक्तम्। (उत्तर २६. २८. २९)

चक्षुषि पतितस्य अयसः लेशस्यापहरणार्थं भारतीया वैद्या अयस्कान्तमुपयुक्तवन्तः। वर्तमानकालेऽप्ययमुपायः पाश्चात्य वैद्यैरभ्यस्यते।भिषजः शस्त्रकर्मजनितंदुःखं प्रशमयितुमातुरान् किंचिन्मद्यमपाययन्। यथा—

प्राक्शस्त्रकर्मणश्चेष्टं भोजयेदातुरं भिषक्।
मद्यपं पाययेन्मद्यं तीक्ष्णं यो वेदनासहः॥
न मूर्च्छत्यन्नसंयोगान्मत्तः शस्त्रं न बुध्यते।
तस्मादवश्यं भोक्तव्यं रोगेषूक्तेषु कर्मणि॥ इति।
सुश्रुत सू० १७।११,१२

प्राचीनयवनरोमका वैद्या अपि रुग्णानां सुषुप्त्यवस्थां केश्चन औषधैः जनयितुमशक्नुवन्। बल्लालसेनविरचित भोजप्रबन्धे भोजराजस्य शिरसि शस्त्रकर्म वर्णितम्। तत्प्रसङ्गे स्वप्नजनकचूर्णं धारानिवासिभ्यां वैद्याभ्यामुपयुक्तम् यथा—

ततस्तावपि राजानं मोहचूर्णेन मोहयित्वा शिरःकपालमादाय तत् करोटिकापुटे स्थितं शफरकुलं गृहीत्वा कस्मिंश्चित् भाजने निक्षिप्य संधानकरणयाकपालं पथावदारचय्य संजीवन्या च तं जीवयित्वा तस्मै तदर्शयाताम्। इति।

शस्त्रकर्मणः पश्चात् व्याधितस्यापवरकं विविधद्रव्याणां दहनात् उत्पन्नेन धूमेन शयनासनवस्त्रादिषु सर्वविषेभ्यः विशोधयेत्। एतेन प्रकारेण पिशाचाः निशाचरा ज्वराश्चापहर्तुंशक्यन्ते।

मयूरपिच्छं निम्बस्य पत्राणि बृहतीफलम्।
मरिचं हिंगुमांसी च बीजं कार्पाससम्भवम्॥
छागरोमाहिनिर्मोकं विष्ठा बैडालकी तथा।
गजदन्तश्च तच्चूर्णं किंचिद् घृताविभिश्रितम्॥
गेहेषु धूपनं दत्तं सर्वबालग्रहान् जयेत्।
पिशाचान् राक्षशान् जित्वा सर्वज्वरहरो भवेत्॥

इति शार्ङ्गधरसंग्रहे उपदेशः। यदा भक्षणे कस्यचित् कण्ठे भोजनकणः मत्स्यास्थि वा आसज्यते तदा तस्य स्कन्धे मुष्टिना ताडयेत्। यथा—

"ग्रासशल्ये तु कण्ठासक्ते निःशङ्कमनवबुद्धं स्कन्धे मुष्टिनाऽभिहन्यात् स्नेहं मद्यं पानीयं वा पाययेत्" इति शब्दैः क्रियां प्रशंसति सुश्रुतः। सुश्रुत सूत्र २७.२१

प्राचीनपश्चात्यचिकित्साविद्याया अभ्यासकः भारतीयवैद्यकशास्त्रे त्रिदोषदर्शनभावं विदित्वा महता विस्मयेनोपहतः स्यात्। यवनरोमचिकित्सायां विद्यमानैः पारिभाषिकशब्दैः सदृशा एव आयुर्वेदीयशब्दाः वायुः पित्तं श्लेष्मा चेति। लातिनभाषायां त्रिदोषाः (Hwmor) इत्युच्यन्ते। अयं शब्दः संस्कृतभाषायां क्लेदाः इतिवक्तुं शक्यते। यदा ते त्रयः क्लेदाः साम्यावस्थायां भवन्ति तदा तदर्थं अन्यः पारिभाषिक शब्दः "Complection" इति प्रयुज्यते। संस्कृतभाषायां समाश्लेषणमित्युच्यते। कतिपयशताब्दानि उभौ शब्दौ आंग्लभाषायां Humor Complection इति रूपयोः प्रवेशितौ। अर्वाचीनकाले तयोः शब्दयोः अर्थौ विकृतौ। सांख्यदर्शने उपदिष्टैः सत्त्वरजस्तमोगुणैः सदृशा एव वायुपित्तकफधातवः वर्तन्ते। आयुर्विद्यायाममुं विषयं पठित्वा पौरस्त्य पाश्चात्यदर्शनयोः सारूप्यं कस्यचित् मनसि उद्भवति।

आस्तां तावत्। मदीयव्याख्यानसमापनात् प्राक् सुश्रुतस्य प्रसिद्धं सुस्मरणणीययमुपदेशं पठितुमिच्छामि—

"अधिगतसर्वशास्त्रार्थमपि शिष्यं योग्यां कारयेत्। छेद्यादिषु स्नेहादिषु च कर्मपथमुपदिशेत्। सुबहुश्रुतोपि अकृतयोग्यः कर्मसु अयोग्योभवति। तत्र पुष्पफलालाबुकालिन्दकत्रपुषैर्वारुककर्कारुकप्रभृतिषु छेद्यविशेषान् दर्शयेत् उत्कर्तनपरिकर्तनानि चोपदिशेत्। दृतिवस्तिप्रसेवकप्रभृतिषु उदकपङ्कपूर्णेषु भेद्ययोग्याम्। सरोम्नि चर्मणि आतते लेख्यस्य। मृतपशुसिरासु उत्पलनालेषु च वेध्यस्य। घुणोपहतकाष्ठवेणुनलनालीशुष्कालाबुमुखेषु एष्यस्य। पनसविम्बीविल्वफलमज्जमृतपशुदन्तेषु आहार्यस्य। मधूच्छिष्टोपलिप्ते शाल्मली फलके विस्राव्यस्य। सूक्ष्मघनवस्त्रान्तयोः मृदुचर्मान्तयोश्च सीव्यस्य। पुस्तमयपुरुषाङ्ग प्रत्यङ्गविशेषेषु बन्धयोग्याम्। मृदुमांसपेशीषु उत्पलनालेषु च कर्मसन्धिबन्धयोग्याम्। मुदुषु मांसखण्डेषु अग्निक्षारयोग्याम्। उदकपूर्णघटपार्श्वस्रोतस्यलाबुमुखादिषु च नेत्रप्रणिधानवस्तिव्रणवस्तिपीडनयोग्यामिति।" सु०सू० ९।३,४

नामूलं लिख्यते किंचिन्नानपेक्षितमुच्यते

४०——छात्रोपयोगी निदान-चिकित्सा

अथवा

निदान-चिकित्सा हस्तामलक

वैद्य रणजितराय

प्रतिश्याय की चिकित्सा

चिकित्सा की दृष्टि से तरुण (नवीन) प्रतिश्याय के दो भेद हैं—**ग्राम** तथा **पक्व**। इनके शास्त्रोक्त लक्षण गत लेख में दिए जा चुके हैं। **ग्रामप्रतिश्याय में दोष के पाचन तथा उत्क्लेश** (स्वतः प्रवृत्ति की उन्मुखता) के लिए पुराने गुड़ के साथ ग्रार्द्रक या शुण्ठी या त्रिकटु का सेवन करे। उष्ण (उष्णगुण तथा स्पर्शोष्ण) भोजन करे। तुलसी, कृष्णमरिच, पुदीना, जम्बीर-तृण (हरी चाय)[1] इनका क्वाथ (या इनमें थोड़ी काली चाय मिलाकर बनायी चाय) पिए। इससे स्वेदन, ग्रग्नि-दीपन, रुचि-उत्पत्ति ग्रादि होकर शरीर लघु होता तथा दोष पक्व होता है। साथ ही ज्वर, ग्रङ्गमर्द या शरीर की स्तब्धता हो तो वह भी निवृत्त होता है। सत्य तो यह है कि ज्वरमात्र में, ग्रारम्भ में ही यह क्वाथ पिलाकर रोगी को हल्का वस्त्र उढ़ाकर निवात-गृह में (ऐसे गृह में जिसमें वायु का प्रवेश एक ग्रोर से हो ग्रौर वह भी रोगी पर सीधा न पड़े) सुला देना चाहिए। वस्त्र के प्रावरण से स्वेदन होने में सौकर्य होता है। कृष्णमरिच उत्तम स्रोतोरोधहर, दीपन तथा पाचन है। इसके सूक्ष्म (सूक्ष्म स्रोतों में भी प्रवेश का सामर्थ्य) होने से प्रायः ज्वरहर द्रव्यों की योजना इसके साथ की जाती है। कृष्णमरिच द्वारा स्रोतों का विवरण हो जाने से ज्वरहर द्रव्य भी उनमें प्रविष्ट हो रोग के कारण - भूत दोषका पाचन तथा शमन करने में समर्थ होते हैं। इस उपाय के ग्रतिरिक्त भी ग्रावश्यक हो तो नाड़ीस्वेद ग्रादि के रूप में पृथक् स्वेदन भी करें। स्वेदन का घरेलू व्यवहार प्रचलित भी है।

क्षुधोदय विशेष न हो तथापि शरीर का धारण ग्रौर दोष का पाचन दोनों ग्रभीष्ट हों तो ग्रार्द्रक-सिद्ध दुग्ध ग्रथवा शुण्ठी-चूर्ण के साथ दुग्ध का सेवन करे। ग्रन्य ग्रन्नपान लेना हो तो भी ग्रागे-पीछे दुग्ध का इस प्रकार व्यवहार किया जा सकता है। इसका एक परिणाम यह भी होता है कि प्रतिश्याय में वात का प्राधान्य होने से शुण्ठी तथा ग्रार्द्रक से उसका शमन तथा दुग्ध के स्निग्धत्वादि गुणों से उसका ग्रनुलोमन ग्रौर प्रशमन होकर रोग का बल न्यून होता है।

प्रतिश्यायों के पाचनार्थ **व्योषादि वटी** ग्रति उत्तम ग्रौर चिर-प्रचलित है। इसका कास में भी व्यवहार होता है। एक ग्रहोरात्र में चार-पाँच वटिकाएँ चूसनी चाहिए[1]।

१—जम्बीर शब्द नींबू के लिए ग्रधिक प्रसिद्ध है। परन्तु हरी चाय के लिए भी इस पद का प्रयोग हुग्रा है। सुश्रुत ने शाक वर्ग में (सु. सू. ४६।२३२) में तथा चरक के हरितक वर्ग में (च० सू० २७।१६७) जम्बीर नाम से हरी चाय का ही गुण-कर्म बताया है। जम्बीर तृण के मर्दन से नींबू के समान गन्ध ग्राती है, ग्रतः इसे यही नाम दिया गया है। ग्रंग्रेजी में भी इसी ग्राधार पर इसे लेमन-ग्रास तथा लेटिन में साइम्बोपोगोन साइट्रेटस कहा जाता है। सुश्रुत ने नींबू का वर्णन जम्बीर नाम से तथा चरक ने दन्त-शठ नाम से किया है।

१—व्योषादि वटी सम्प्रति शार्ङ्गधर-संहितोक्त प्रसिद्ध है। इसका पाठ यह है: शुण्ठी, मरिच, पिप्पली, ग्रम्लवेतस, चव्य, तालीशपत्र, चित्रकमूल, श्वेतजीरक, इमली—प्रत्येक एक-एक तोला; त्वक् (दालचीनी), सूक्ष्म एँला, तेजपत्र—प्रत्येक नव माशा। इमली के सिवाय इनका वस्त्रपूत चूर्ण इमली तथा बीस तोले पुराने गुड़ मिला छोटे बेर के समान गोलियाँ बनालें।

व्योषादि वटी, (व्योष-त्रिकटु) का मूल पाठ सुश्रुत उत्तरतन्त्र ग्र० २४ श्लोक १८ वें की टीका में डल्हन द्वारा उद्धृत पाठान्तर में ग्राया है। विदग्ध पाठकों के विनोदार्थ उसे उद्धृत करता हूँ—

अथवा मधु के अनुपान से लें। चूसने से कास के कारणभूत दोष पर क्रिया होने से लाभ होता है।

आम प्रतिश्याय में दोष-पाचनार्थ अनेक यूनानी द्रव्य-मिश्रित क्वाथ वैद्यों द्वारा भी व्यवहार में लाए जाते तथा सद्यःफलदायी भी सिद्ध होते हैं। इनमें कुछ का उल्लेख किया जाता है—

गुलबनफ्शा, उन्नाव (सौवीर, राजबदर, बड़े बेर), छिली हुई मधुयष्ठी, सपिस्तां (लसूड़े), गावजुबां (गोजिह्वा) कृष्णमरिच, सिता—(कृष्णमरिच २१ दाने, सिता २ तोला) शेष प्रत्येक ६ माशा, जल आधा सेर, शेष आधा पाव। गरमागरम दिन में दो वार पिलाएँ।' पिलाकर कपड़ा ओढ़ाकर सुला दें। अथवा—

केवल गुलबनफ्शा और कृष्णमरीच का क्वाथ पिलाएँ। अथवा—

केवल कृष्णमरिच के साथ सितोपला, बताशा आदि कोई मधुर द्रव्य मिला औटाकर (क्वाथकर) पिला दें। अथवा—

खूबकलां (खाकशी) दो तोला, आध सेर जल में औटा, दो छटाँक शेष रख, छान सितोपला मिला पिला दें। अथवा—

उन्नाव ७ अदद, सपिस्तां ७ अदद, बनफ्शा, गावजुबाँ, मुलेठी (मधुयष्ठी), खसखस, सौंफ प्रत्येक ६ माशा, यास-शर्करा (तुरंजबीन)[१] १ तोला, यवकुट कर आध सेर जल में क्वाथ करें। अर्धावशेष रहने पर छान २॥ तोला सितोपला डाल दो भाग कर प्रातः-सायं एक-एक भाग लें।

सद्यः प्रतिश्याय में गरमागरम चने खाने का भी व्यवहार है। यह उत्तम गुणकारी है। इसके पश्चात् एक-दो घण्टे जल न पीना चाहिए।

एरण्ड तैल गरम कर उसका नस्य लेने से तरुण तथा जीर्ण (दुष्ट) प्रतिश्याय, नासाशोथ, अर्बुद आदि में लाभ होता है। इससे भी प्रतिश्यायजनक दोष का शीघ्र पाक होता है। यह घरेलू औषध के रूप में सुप्रचलित है।

आधुनिक वैद्य आम प्रतिश्याय के पाचनार्थ प्रायः **त्रिभुवनकीर्ति** का प्रयोग आर्द्रक-स्वरस तथा मधु के अनुपान से करते हैं। इस रस का पृथक् अथवा संसृष्ट वात कफ प्रधान ज्वरों में तथा विषम ज्वरों में व्यवहार विशेषतया होता है। ज्वर पित्त प्रधान हो तो प्रवाल[१] आदि पित्त-प्रत्यनीक द्रव्यों की योजना इसके साथ करें। विषम-ज्वर में विशेष गुणकारी बनाने के लिए कोई इसे स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी) के स्वरस की भी भावना देते हैं। स्वर्ण-क्षीरी ज्वरघ्न होने के अतिरिक्त विरेचन धर्म के कारण भी विषम ज्वर में विशेषोपयुक्त है[२]। कई वैद्य विषम-

---

× × × कटुत्रिकं चित्रकतिन्तिडीकं तालीशपत्रं चविकाम्ल संज्ञकम्। विचूर्णितं जीरक चूर्ण युक्तमेलाच्छदत्वक् सुरभी कृतंच। मिश्रं पुराणेन गुड़ेन दद्यात् तत्पीनशानां परि-पाचनार्थम्।

वातिक प्रतिश्याय का विचार गत लेख में किया है। सु. उ० २४।१८ में तरुण भिन्न प्रतिश्याय में प्रथम विधान घृतपाक का किया है। उसकी टीका में डल्हन कहता है—'सर्वेषां प्रतिश्यायानां वातात्मकत्वात् सर्वेषामेव सर्पिः पानम्'—प्रतिश्याय-मात्र वातात्मक होने से सभी में घृतपान आदिष्ट है। उल्लिखित पाठान्तर के आरम्भ में और भी स्पष्ट कहा है:

पीनसानां च सर्वेषां हेतुर्यस्मात् समीरणः।
कफपित्ताधिकेऽप्यस्मात् मारुतं समुपक्रमेत्॥

क्योंकि सर्व प्रतिश्यायों का हेतु वायु ही है, अतः कफ-पित्तप्रधान प्रतिश्याय में भी वायु का अनुलीमन-शमन-पाचनादि रूप में उपचार करें।

१—जवासे (यास, यवासक) के क्षुप से एक द्रव रिसकर जम जाता है। यह मधुर होता है। आयुर्वेद में इसका यास शर्करा नाम से शर्करा वर्ग में वर्णन हुआ है। यूनानी वैद्यक में इसका व्यवहार विशेष होता है। इसे तुरंजबीन कहते हैं। यह मृदुविरेचक, विशेषतः पित्तविरेचक एवं विरेचनोपग द्रव्य है। इसके कुछ ललाई और भूरापन लिए श्वेत रंग के छोटे-छोटे दाने होते हैं। यह ईरान और अरबस्तान से आती है।

१—स्मरण रहे, प्रवाल आदि द्रव्य स्वरूपतः शीत हों तथापि उन्हें अर्क आदि उष्ण द्रव्यों से भावित किया गया हो तो वे उष्णगुण हो जाते हैं। शीत क्रिया के लिए इन्हें शीतगुण द्रव्यों की ही भावना देनी चाहिये। सत्य यह है कि प्रत्येक भस्म का प्रयोग वातप्रधान, पित्तप्रधान रोगों पर पृथक्-पृथक् करने के लिए उन्हें तत्तद्दोष प्रत्यनीक द्रव्यों की भावना देनी चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक भस्म दोष भेद से तीन प्रकार की बनानी चाहिए। विज्ञ वैद्यों को इस दिशा में अधिक विचार कर इसे क्रिया में लाना चाहिए।

२—स्वर्णक्षीरी से प्रचुर द्रव-प्रधान विरेचन होता है। इस के पञ्चाङ्ग का स्वरस दो-दो तोला की मात्रा में दिन में दो या तीन वार देने से जलोदर में लाभ होता है। चार-पाँच दिन में ही रोग शान्त होता है। रस के अभाव में अर्क का प्रयोग करें।

ज्वर में ही अधिक गुणाधान के लिए पारिजातपत्र-स्वरस की एक से तीन भावनाएँ देते हैं।

कफ प्रधान ज्वरों में त्रिभुवन कीर्ति के साथ शृङ्ग-भस्म तथा सितोपलादि की योजना की जाती है। शृङ्ग अपने रूक्षोष्ण गुण से कफ का पाचन तथा शमन करता है। इसी गुण के कारण इन तीन कल्पों का उपयोग प्रतिश्यायजनित या स्वतन्त्र कर्णपूय में भी किया जाता है। कारण, सिद्धान्त है--**नास्ति कफाच्च पूयः** (सु० सू० १७।७) पूय कफ के बिना हो नहीं सकता[१]। कर्ण को स्वच्छ कर मुखरोगाधिकारोक्त इरिमेदादि तैल कान में डालें।

नासास्रोत से दोष गले में संक्रान्त होकर शुष्क कास हो गया हो तो उस स्थिति में, प्रतिश्याय निवृत्त हो चुका हो या कास के साथ उसका संकर हो तो भी, त्रिभुवन कीर्ति का व्यवहार न करना चाहिए। इसमें स्थित धत्तूर तथा अन्य रूक्ष द्रवशोपक[२] द्रव्यों के कारण गल-प्रदेश में रूक्षता होकर वात की अधिकतावश कास में वृद्धि ही होती है।

प्रतिश्याय के परिपाक के लिए संप्रति नाक पर बाहर की ओर बाम घिसे जाते हैं अपरंच, यूकेलिप्टस-ऑयल सूंघा जाता है। दोनों उपचार बहुधा गुणकारी होते हैं। यूकेलिप्टस-ऑयल के चार-पाँच बिन्दु बताशे या खाँड पर डालकर खा लेने का भी प्रचार है।

तरुण प्रतिश्याय में उल्लिखित उपचारों से आमता के लक्षण मृदुता को प्राप्त हो जाने पर दोषानुसार उपचार करें। संक्षेप में इसके लिए प्राचीनों का विधान यह है: घृतपान, विभिन्न स्वेद, वमन, अवपीडन नस्य[३], तीक्ष्ण शिरोविरेचन, आस्थापन, धूमपान, कवलग्रह (औषधसिद्धद्रवों के कुल्ले करना)[४]।

प्रतिश्यायमात्र में वायुमूल होने से घृतपान का विधान है। शिरोविरेचन तथा धूम्रपान से निर्गमनोन्मुख दोष सुगमता से निकल जाता है। वर्तमान में प्रायः एतदर्थ नसवार का प्रयोग लोक करते हैं। कट्फल का उपयोग वैद्यजन तीक्ष्ण नस्य आवश्यक हो तो करते हैं। शास्त्रकारों ने दोष-भेद से भिन्न-भिन्न घृत, वामक कल्प, नस्य तथा धूमों के पाठ दिए हैं। उन्हें मूलग्रन्थों में ही देखना चाहिए।

प्रतिश्याय पक्व हो जाने पर उष्ण और निवात स्थान[१] में शयन, आसन तथा विहरण, शिरपर गुरु और उष्ण वस्त्र का धारण, उष्ण जल-पान, तीक्ष्ण शिरोविरेचन तथा धूमपान, यव भोजन सदृश रूक्षान्नपान और **हरीतकी** का सेवन करना चाहिए। शीतजल-पान, व्यवाय, वाक्श्रम, शीतजल से स्नान, चिन्ता, अतिरूक्ष भोजन, वेगावरोध, शोक, व्यायाम और नवीन मद्य का परिहार करना चाहिए।

प्रतिश्याय के साथ वमन, अङ्गसाद, ज्वर, गौरव, अरुचि, अरति और अतिसार हों तो यथोचित दीपन-पाचन उपचार करें। इस स्थिति में त्रिभुवनकीर्ति, शृङ्गभस्म, सितोपलादि औषध रूप में उत्तम हैं। **अनुपान**--आर्द्रक स्वरस तथा मधु। योजना को गुणकारी बनाना आवश्यक हो तो गोजिह्वादि क्वाथ (द्वात्रिंशाङ्ग) ऊपर से पिलाएँ।

उल्लिखित हरीतकी-सेवन प्रतिश्याय में सविशेष स्मरणीय है। महास्रोतगत कफादि दोष उत्क्लिष्ट (परिपक्व होकर स्वयं निर्गमनोन्मुख) होने पर इसका सेवन अत्यन्त उपयुक्त है। मल और वात का विबन्ध न हो तो प्रतिश्याय प्रायः होता नहीं। बार-बार जिन्हें प्रतिश्याय के वेग (दौरा) होते हों, उन्हें हरीतकी के सेवन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। शीत पड़े तो हरीतकी

१--त्रिभुवन कीर्ति का व्यवहार गुजरात, महाराष्ट्र में विशेष होता है। अन्य राज्यों के वैद्यों को भी इसे अपनाना चाहिए।

२--धत्तूर लाला आदि स्रावों को न्यून करता है। वह कर्म यहाँ अभिप्रेत है।

३--औषध के कल्क को वस्त्र में रख उसे दबाकर नासास्रोत में उसके बिन्दु छोड़ना (पीडन के कारण) अवपीडन नस्य कहाता है।

४--दोष गल-प्रदेश में संक्रान्त हो कास न उत्पन्न करे इस हेतु कवल-ग्रह विहित है।

१--**निदानं प्रवातैकदेशम्**--जिस गृह में एक ओर से वायु आवे उसे निवातगृह कहते हैं। प्राचीनों ने व्रणितागार (सर्जिकल वार्ड), सूतिकागार (मेटर्निटी होम), कुमारागार आदि में निवातगृह का ही विधान किया है। यह उपयुक्त भी है। वर्तमान में हॉस्पिटल, ऑफिस आदि चारों ओर से खुले रखे जाते हैं, ऊपर से पंखे की हवा और ठंडे पानी आदि पेयों का सेवन और पथ्य सेवन और साथ ही आईसक्रीम आदि का उपयोग प्रचुर किया जाता है यह गर्हित है। वैद्यों को जनता को इन की हानियाँ दिखाकर इन से बचने की प्रेरणा करनी चाहिए।

समभाग, चतुर्थांश या अष्टमांश शुण्ठी चूर्ण दोष और प्रकृति के अनुसार इसमें मिला देना चाहिए। किसी भी प्रयोजन से हरीतकी का सेवन प्रारम्भ करते हुए कइयों को प्रतिश्याय हो जाता है, किसी को इसके कषायरस के कारण मुखगत बोधक कफ के लेखन के कारण मुख-पाक हो आता है, किसी को गुद-चीर हो आते हैं। प्रायः ये विकृतियाँ स्वयं शान्त हो जाती हैं और हरीतकी का गुण ही शेष रह जाता है। तथापि वार-वार के अनुभव से हरीतकी की असात्म्यता सिद्ध हो जाए तो योग्य औषध का मिश्रण करना चाहिए।

वातिक प्रतिश्याय के उपद्रवभूत कास तथा वैस्वर्य (स्वरभेद) हो गया हो तो क्षारों और लवणों से सिद्ध घृतों का सेवन करें। आधुनिक वैद्य इस दृष्टि से शुद्ध टंकण, कण्टकारी-लवण आदि का व्यवहार करते हैं। घृत, उष्णजल, सैन्धव (या सौवर्चल) संयुक्त कर इनका सुखोष्णावस्था में पान घरेलू औषध के रूप में सुप्रसिद्ध और गुणकारी है। इससे वायु का शमन और अनुलोमन होता है। बच्चों को सैन्धव, सामुद्र या सौवर्चल लवण चूसने को दिया जाता है। वयःस्थ भी इसे ले सकते हैं। बच्चों में क्वचित् इसका अतियोग होने से वमन हो जाता है। उससे सुतरां गुण ही होता है। स्निग्ध, अम्ल, उष्ण भोजन, मांसरस और उष्ण दूध का सेवन करें। प्रति-श्याय और कास में हरिद्राचूर्णसिद्ध दूध का सेवन प्रसिद्ध है और उपयोजनीय है। शङ्ख, मस्तक तथा ललाट में वेदना हो तो हस्तस्वेद तथा उपनाह करे।

पैत्तिक तथा रक्तज प्रतिश्याय में आर्द्रक सिद्ध दुग्ध देकर दोष का पाचन करे। पश्चात् मधुर-शीत द्रव्यों से सिद्ध विरेचन, शिरोविरेचन आदि दे। अन्नपान के रूप में घृत, दुग्ध, यव, शालि, गोधूम, जाङ्गल रस, शीत, अम्ल, तिक्त शाक, तथा मुद्गादि के यूषों का सेवन कराए।

कफप्रधान प्रतिश्याय में गौरव, अरुचि आदि शान्त न हों तवतक लङ्घन कराए। कफ और वात का प्रकोप विशेष हो और रोगी तरुण हो तो लङ्घन, स्वेदन आदि से कफ का पाक और उत्क्लेश हो जाने पर वमन कराए। पश्चात् भी पाचन योग दें। शिशुओं और बालकों के प्रतिश्याय, कास, ज्वर, अरुचि, अरति, अङ्गसाद, श्वास आदि में वमन अति प्रशस्त है। इस दृष्टि से कंकुष्ठ (उसारे रेवन्द) वमन और विरेचन प्रायः दोनों करानेवाला होने से अधिक उपयोगी है। कफ का लेखन कर उत्क्लेश करने के लिए इस में टङ्कण या कण्टकारी लवण भी मिला देना चाहिये। कंकुष्ठ की मात्रा एक से दो वल्ल (एक वल्ल—तीन गुन्जा) है। वमन शिशुओं के लिए कितना उपयोगी है, इस विषय में काश्यपसंहिता का अधोलिखित पद्य अच्छा निदर्शक है:—

स्वयं छर्दयते यस्तु पीतं पीतं पयः शिशुः।
न तं कदाचिद् बाधन्ते व्याधयो दैवमानुषाः॥
(पृ० ११७)

नाम, जो शिशु स्वयं ही स्तन्य को पी-पी कर वमन कर दे, उसे कदापि दैव या मानुष रोग हो नहीं सकते।

कफप्रधान पीनस में उष्णजल का पान तथा स्नान में सेवन, कफघ्न अन्न; कुलत्थ, आढकी (अरहर) तथा मुद्ग का यूष; त्रिकटु और शाक में पटोल (परवल) तथा बैंगन का उपयोग करे।

सान्निपातिक प्रतिश्याय में तीनों दोषों के प्रतिश्याय का उपचार करे।

दुष्ट, जीर्ण अथवा **बार-बार होनेवाले प्रतिश्याय** में[1] **चित्रक हरीतकी, चित्रकादि घृत, लोहासव** आदि तीव्र पाचन औषधों का सेवन कराना चाहिए। इससे रस-धातु का परिपाक संपूर्ण होकर तथा मल और वात का अनुलोमन होकर लाभ होता है। इसमें कोई रूक्षोष्ण औषध न देना चाहिए। अन्यथा दोषों की स्तब्धता होकर रोग के लक्षणों तथा उपद्रवों में वृद्धि होती है।

इन कल्पों में चित्रक हरीतकी का व्यवहार विशेष होता है। **वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य** ने अपने **सिद्ध योग संग्रह** में लिखा है कि इस कल्प के प्रक्षेप-द्रव्यों में कट्फलचूर्ण ८ तोला मिलाने से अधिक लाभ होता है।

दुष्ट प्रतिश्याय तथा प्रतिश्याय से हुए नासा प्रति-नाह, नासाशोथ, नासार्बुद आदि में आजकल **षड्बिन्दु तैल** के नस्य का व्यवहार ही विशेष होता है। एरण्ड-तैल को उष्ण कर तरुण या जीर्ण प्रतिश्याय में तथा उसके उपद्रवों में दिन में यथावश्यक तीन-चार वार नस्य के रूप में लेने से बहुत गुण होता है।

दुष्ट प्रतिश्याय में हरीतकी १ भाग, शुण्ठी प्रकृति-भेद से आधा, चौथाई या अष्टमांश भाग मिला कर गुड़ में

१—इसे हकीमी में नज़ला कहते हैं।

ग्रहणीरोग-विमर्श

कविराज एस० एन० बोस, एल० ए० एम० एस०, भिषग्रत्न

(गत मई अंक से आगे)

अब हम ग्रहणीरोग के लक्षणों के सम्बन्ध में विचार करेंगे। सभी आयुर्वेदीय ग्रन्थकारों ने ग्रहणीरोग के कारणों में से मन्दाग्नि को प्रधान कारण माना है। पाश्चात्य दृष्टिकोण से अग्नि का अर्थ सभी प्रकार के पाचक स्रावों का सम्मिलित भाव यहाँ ग्रहणीय है। जिस प्रकार पचनक्रिया जठराग्नि से होती है--उसी प्रकार पचनानन्तर शोषणक्रिया धात्वग्नि से होती है। अतएव, आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से हमें अग्नि का अर्थ जठराग्नि तथा धात्वग्नि दोनों का सम्मिलित रूप समझना चाहिये। पाश्चात्य शास्त्र से हमें यह ज्ञात है कि केवल जठराग्नि द्वारा (Digestive Secretion and Enzymes) पचन क्रिया होने पर भी यदि शोषण क्रिया में (Absorption mechanism) बाधा उत्पन्न होती है तो शारीरिक पोषण क्रिया बराबर नही हो सकती; अतिसार आदि लक्षण प्रकट होते हैं और इनको भी हमें 'ग्रहणी' मानना पड़ता है। अतः 'ग्रहणी' के कारणों में जठराग्नि तथा धात्वग्नि, इन दोनों में से किसी एक की अथवा दोनों की विकृति मुख्य कारण है, एक की विकृति होने से दूसरे की विकृति स्वाभाविक है--प्राथमिक रूप से न रहने पर भी यह बाद में होती ही है। चरक संहिता और शार्ङ्गधर संहिता एवं माधव निदान में ग्रहणी रोग के लक्षण करीब-करीब समान ही हमें मिलते हैं। सुश्रुत-सहिता तथा अष्टांग हृदय में हमें कुछ मामूली-सा परिवर्त्तित रूप दिखाई पड़ता है। परन्तु उसमें कोई विशिष्टता हमें प्राप्त नहीं होती है। अतः पृथक् रूप से यह विचारणीय प्रतीत नहीं होता है। वातज तथा पित्तज ग्रहणी में अम्लाधिक्य के लक्षण (Symptoms of Hyper acidity) अधिक प्रकट हैं, परन्तु कफज ग्रहणी में उक्त प्रकार के लक्षण प्रकट न होकर "दुष्ट मधुर उद्गारः, आस्योपदेहमाधुर्यं" इत्यादि स्वादु रसाधिक्य के लक्षण अर्थात् अम्लरसाभाव के लक्षण ही प्रकट होते है। वातज ग्रहणी में मानसिक तथा नाड़ी संस्थान सम्बन्धित लक्षणों का प्राधान्य है, परन्तु कफज ग्रहणी में उक्त लक्षणों का अवसिर ही वर्णित है। ग्रहणी में 'अतिसार' लक्षण ही प्रधान है। चरक संहिता, शार्ङ्गधर संहिता तथा माधव निदान में ग्रहणी रोग के लक्षण अथवा उपसर्ग के रूप में शोथ का वर्णन हमें नहीं मिलता है, परन्तु सुश्रुत-संहिता तथा अष्टांग हृदय में हस्तपदादि में शोथ का वर्णन हमें प्राप्त है। उपर्युक्त प्रथम तीन संहिताओं में ग्रहणी रोग के लक्षण या उपसर्ग के रूप में ज्वर का वर्णन हमें प्राप्त नहीं है, परन्तु सुश्रुत संहिता तथा अष्टांग हृदय में हमें ग्रहणी रोग के लक्षण के रूप में ज्वर का वर्णन प्राप्त है। साधारणतः उपसर्गहीन ग्रहणी रोग में ज्वर हमें कम दिखाई पड़ता है, तथापि कभी-कभी ज्वर लक्षण युक्त ग्रहणी रोगी मिलता है। प्रवाहिकाजन्य ग्रहणी में रोग वृद्धि के समय (acute exacerbations) अथवा क्षयज ग्रहणी में ज्वरताप वृद्धि हमें साधारण रूप से ही मिलती है। लघुत्रयी में ग्रहणी रोग की दो अवस्थाएँ "संग्रह ग्रहणी" तथा "घटी यन्त्र" वर्णित है, जो हमें प्राथमिक ग्रन्थ वृहत्रयी में प्राप्त नहीं है। लघुत्रयी में यद्यपि "संग्रह ग्रहणी" तथा 'घटी यन्त्र' पृथक रोग के रूप में वर्णित हैं, फिर भी ग्रहणी रोग के अन्यान्य भेदों,जैसे वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज इत्यादि, के अनुरूप "संग्रह ग्रहणी" तथा "घटीयन्त्र" को पृथक रोग न मानकर ग्रहणी रोग की पृथक अवस्था ही माननी चाहिये।

इस सिलसिले में पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र में वर्णित ग्रहणी रोग के समान लक्षण युक्त अन्न परिपाक सम्बन्धी तथा अन्यान्य रोग-जीवाणुज व्याधियों के सम्बन्ध में चर्चा की जाय, जिससे आयुर्वेदीय विचार धारा से उन्हें श्रेणीवद्ध कराकर उनके सम्बन्ध में समन्वयात्मक विचार प्रस्तुत किया जाय और साथ ही साथ उन व्याधियों में शारीरिक विकृति के ऊपर ध्यान देकर चिकित्सा पद्धति का निर्णय किया जाय। पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र में वर्णित निम्न-लिखित व्याधियाँ आयुर्वेदोक्त ग्रहणी रोग के समान लक्षण-युक्त कही जा सकती हैं।

(१) Chronic diarrhoea (gastrogenous, post-prandial & nervous) (२) Chronic dysentery

(amoebic & bacillary). (३) Idiopathic Steatorrhoea or non-tropical sprue. (४) Tropical sprue. (५) Intestinal Carbohydrate dyspepsia. (६) Chronic enteritis. (७) Chronic catarrhal colitis. (८) Tuberculous colitis and Enteritis. (९) Ulcerative colitis. (१०) Coelia discease. (११) Giardia intestinalis-infection. अब हम एक-एक कर इन व्याधियों के सम्बन्ध में संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

(१) Chronic Diarrhoea (**जीर्ण अतिसार या ग्रहणी**)–

(क) Gastrogenous (आमाशयिक) आमाशयिक स्राव की न्यूनता या अभाव के कारण यह व्याधि उत्पन्न होती है। आमाशयिक स्राव की न्यूनता या अभाव से उसकी रोग-जीवाणु-नाशक-शक्ति का भी ह्रास होता है, जिससे अस्वाभाविक संख्या में रोग-जीवाणु अन्त्रों में पहुँच जाते और रोग उत्पन्न कर सकते हैं। आमाशयिक स्राव की न्यूनता या अभाव के कारण असम्यग् विभाजित खाद्यकण अन्त्रों में पहुँचकर अन्त्रों की उत्तेजना उत्पन्न करते हैं और रोग जीवाणुओं की उपस्थिति के कारण विकृति उत्पन्न होकर अतिसार हो जाता है।

(ख) Post-prandial Diarrhoea (भोजनान्त अतिसार)–शून्य आमाशय में खाद्य द्रव्य पहुँचने पर आमाशयिक—वृहदान्त्रिक प्रतिक्रिया उत्पन्न हो जाती है, जिससे प्रधानतः वृहदन्त्र को उत्तेजना मिलती है। किसी-किसी व्यक्ति में प्रथमतः स्वाभाविक मल-त्याग के पश्चात प्रातः भोजन के उपरान्त तरल मल-भेद होता देखा गया है। रोग की तीव्रावस्था में कभी-कभी दोपहर के भोजन के पश्चात् और अक्सर शाम के भोजन के पश्चात नरम अथवा तरल मलभेद हो सकता है।

(ग) Nervous Diarrhoea (मानसिक)—भीति-संचार अथवा विकट परिस्थिति के कारण कभी-कभी अचानक तरल मतभेद होता देखा गया है। एकबार यह शुरू हो जाने पर ऐसी परिस्थितियों में बारबार उसका पुनरावर्त्तन होता रहता है। ऐसी व्याधि में भोजन के पश्चात् कई बार तरल मलभेद हो सकता है, मानसिक परिस्थिति इसका उद्योक्ता बन जाती है। भोजनान्त अतिसार तथा मानसिक अतिसार प्रायः साथ ही साथ रहता है।

(२) Chronic Dysentery (**जीर्ण प्रवाहिका**)–

(क) Amoebic–इस व्याधि में ग्रीष्म प्रधान देश में रहने के बाद रोगी के मल में Endamoea Histolytica के Cysts मिलते हैं, चाहे रोगी को प्रत्यक्ष रूप में कभी प्रवाहिका हुई हो या नहीं। इस श्रेणी में रोग के प्रधान लक्षण पेट में बारबार दर्द, उण्डुक, तिर्यक् अथवा अधोगामी वृहदन्त्र क्षेत्र में मामूली दबाने पर काफी दर्द, जी मिचलाना, पेट में गुड़गुड़ाहट तथा कोष्ठबद्धता आदि हैं। कभी-कभी रोगी अजीर्ण, अग्निमान्द्य अथवा अतिसार की शिकायत करता है। हमारे देश में अधिकांश रुग्ण से सर्वप्रथम प्रवाहिका होने का ही इतिहास मिलता है और ऐसा सुनने में आता है कि उसकी चिकित्सा Emetine से की गयी।

(ख) Bacillary—इस व्याधि में एक श्रेणी के रोगी ऐसे होते हैं, जो प्राथमिक आक्रमण से आरोग्य लाभ नहीं कर सके और जिनको तरल मतभेद होता रहता है। मल में आँव, पूययुक्त आँव अथवा कभी-कभी रक्त मिश्रित आँव का निर्गम होता रहता है। दिन में ५-६ बार दस्त होते हैं और करीब करीब ६ महीने या इससे भी अधिक समय से पीड़ित है। दूसरी श्रेणी के रोगियों में रोग का इतिहास पूर्ववत् रहता है, परन्तु रोगी अधिकतर अस्वस्थ और सामयिक रोगवृद्धि के समय ज्वर-ताप-वृद्धि की शिकायत करता है। शारीरिक पुष्टि का अभाव, वजन कम हो जाना तथा शीर्णता अधिकतर परिलक्षित होती है। औपसर्गिक रक्ताल्पता तथा पैरों में शोथ आदि उत्पन्न हो जाता है। ऐसे क्षेत्रों में भेदाभेदपूर्वक रोग निर्णय के लिये मलभान्ड के ऊपरिभाग (Sigmoid colon) से संगृहीत पूयः युक्त आँव के कल्चर के द्वारा प्रवाहिका उत्पादक रोग जीवाणु (B. Dysenteriae) की उत्पत्ति से Chronic colitis अथवा वृहदन्त्र के जीर्ण प्रदाह से पृथक किया जाता है।

(३) Idiopathic Steatorrhoea—इस व्याधि में विकृति का मूल कारण क्षुद्रान्त्र की स्वाभाविक कर्माक्षमता ही है, जिसमें मध्यम तथा अन्तिमांश में दीर्घ दिनव्यापी न्यून क्रियाशक्ति ही प्रधान है। इसमें मल अधिक परिमाण में तथा फूला हुआ एवं पाण्डु-श्वेत वर्ण का होता है। इसमें बारबार मलभेद नहीं भी हो सकता है। अधिकांश क्षेत्रों में ऐसे रोगियों का गात्र-चर्म

'Pellagra' व्याधि ग्रस्त के गात्रचर्म के समान रक्तिमाभ, शोथयुक्त, कण्डु एवं दाह युक्त, विवर्ण तथा रूक्ष हो जाता है। अधिकांश क्षेत्रों में अस्थिवक्रता अल्पाधिक रूप में वर्तमान रहती हैं--शारीरिक पुष्टि तथा प्रगति रुक जाती है। अंगों में आक्षेप प्रायः दिखाई पड़ता है। विभिन्न प्रकार की रक्ताल्पता अथवा रक्त की स्वाभाविक अवस्था भी मिल सकती है। इस व्याधि में आमाशयिक स्राव का पूर्ण रूप से अभाव हमेशा नहीं मिलता है। रक्ताल्पता में विटामिन 'बी' के अधिक मात्रा में प्रयोग से लाभ होता है। रोगी ग्रीष्म प्रधान देश में निवास नहीं किया है, ऐसा ही इतिहास सुनने में आता है।

(४) **Tropical sprue**--इस व्याधि में विशेषतया आमाशयिक स्राव की हीनता तथा अन्त्रों की सम्यग् रूप से चर्वी, शर्करा तथा चूना जातीय एवं कुछ विटामिनों की शोषणाक्षमता, ज्वर हीनता, प्रातः कालीन अधिक मात्रा में पाण्डुवर्ण फेनयुक्त तैलाक्त मलभेद, जिह्वाक्षत, रक्ताल्पता तथा बल-मांसक्षय इत्यादि लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। रोगारम्भ धीरे-धीरे होता है, जिसमें (१) कर्मशैथिल्य, अग्निमान्द्य तथा आनाह, (२) द्रुतभार-लाघवत्व, (३) जिह्वाक्षत, (४) विशेषतः ऊषाकालीन अतिसार अथवा अवद्ध मलभेद इत्यादि प्राथमिक लक्षण रह सकते हैं। कई महीने के बाद Tropical sprue व्याधि के विशिष्ट मल, जो परिमाण में अधिक, पाण्डुवर्ण, अम्ल प्रतिक्रियायुक्त तथा फेनयुक्त होता है, नजर आने से व्याधि का प्रकृतस्वरूप का ज्ञान होता है। ऐसे रोगी साधारणतः दुर्बल व शीर्ण, मानसिक संयमशील, तीव्र-पाण्डु युक्त, गात्रचर्म शुष्क, झुर्रीदार तथा विवर्ण (विशेषतः कपाल तथा कपोल-प्रदेश में) देखे जाते हैं। जिह्वा साधारणतः अत्यन्त परिष्कार, कभी-कभी स्थानिक प्रदाह या क्षतयुक्त तथा संकुचित दिखाई पड़ती है। आनाह-युक्त अन्त्र ऊपर से दिखाई पड़ते हैं। रोगी भोजन में विशेषतः गरम तथा चरपरा खाद्य पदार्थ-ग्रहण में असमर्थता, ऊषाकालीन विशिष्ट प्रकार का मलभेद, आनाह और तज्जनित उदरस्फीति, जो विशेष रूप से सायंकाल में ही प्रकट होती है, इत्यादि की शिकायत करता है। पैरों में सूजन तथा ऐंठन रह सकती है।

(५) **Intestinal Carbohydrate Dyspepsia**--अन्त्रों में से श्वेतसार (Carbohydrate) जातीय पदार्थों के सम्यक् पचन के पहले ही वृहदन्त्र में चले जाने के कारण वहाँ अत्यधिक वायु की उत्पत्ति होती है, जिससे अन्त में पेट के भीतर अस्वस्ति मालूम पड़ती है। क्षुद्रान्त्र के अन्तिमांश में वायु की उत्पत्ति के कारण नाभिकुण्डल के चारों तरफ दर्द होने लगता है। डकारें आने से अथवा वायुनिःसरण होने पर आंशिक रूप में आराम मिल जाता है। भोजन के पश्चात् आमाशय में वृहदान्त्रिक उत्तेजना के कारण साधारणतः ज्यादा तकलीफ हो जाती है। रात को कभी-कभी अत्यधिक तकलीफ होकर अनिद्रा का कारण बन जाता है। अत्यधिक वायु की उत्पत्ति के कारण पेट में गुड़गुड़ आवाज होती रहती है। कभी-कभी यह आवाज इतनी जोरदार होती है कि रोगी के निद्रानाश के लिये पर्याप्त बन जाती है। अत्यधिक मात्रा में गन्धहीन वायुनिःसरण होता रहता है। तीव्र आक्रमण के क्षेत्र में अतिसार प्रत्यक्ष नजर आता है, जिसमें अम्लगंधयुक्त परन्तु दुर्गन्धरहित वायु का अधिक परिमाण में निःसरण होता है। अत्यन्त अम्लरसयुक्त मलभेद से गुदमार्ग में जलन पैदा हो सकती है। मल परीक्षा में अत्यधिक संख्या में श्वेतसारकण (Starch Granules) अपने कोष-परिवृत रूप से पाये जाते हैं।

(६) **Chronic Enteritis**-(**जीर्ण अन्त्र-प्रदाह**)-यह व्याधि नवीन आमाशयान्त्रिक प्रदाह के फलस्वरूप होती है। साधारणतः अपच्य भोजन से ही यह उत्पन्न होती है अथवा क्रमागत जुलाब अथवा लौह या संखिया-घटित दवाइयां अधिक दिन तक लेते रहने से भी यह उत्पन्न हो सकती है। आमाशयिक स्राव के अभाव के कारण उसकी रोग जीवाणु नाशक शक्तिलोप के हेतु अन्त्रों में रोग-जीवाणु काफी संख्या में पहुँचकर इस व्याधि को उत्पन्न कर सकते हैं। अन्त्र के जीर्ण प्रदाह में अतिसार ही प्रधान लक्षण रहता है।

(७) **Chronic Catarrhal colitis**-नियमित रूप से जुलाब लेते रहने के परिणाम स्वरूप ही यह व्याधि उत्पन्न होती है अथवा वाह्यतः या आभ्यन्तरतः रोग जीवाणुओं, चाहे वे विशिष्ट रोगोत्पादक हों जैसे कि Amoebic अथवा Bacillary Dysentery अथवा साधारण हों--जैसे कि Streptococcus या B. Coli के अन्त्र में प्रवेश के कारण भी यह बीमारी हो सकती है। पेट में एक अनिश्चित अस्वस्ति तथा वस्ति-प्रदेश के अपरांश में

भारीपन और कभी-कभी मामूली शूल इस व्याधि के साधारण लक्षण हैं। भोजन के पश्चात् वह अस्वस्ति बढ़ जाती हैं और मलनिःसरण के पश्चात् ही कुछ शान्ति मिलती है। अतिसार में आँव और कभी-कभी रक्त भी रह सकता है, परन्तु मल में अपाचित भोज्य पदार्थ की मात्रा क्षुद्रान्त्र के प्रदाह की समसामयिक उपस्थिति के बिना ज्यादा नहीं रहती है। वृहदान्त्रिक प्रदाह में जब तरल मल के साथ, वह भी जुलाव की दवा के बिना आँव की उपसस्थिति दिखाई पड़ती है, तब इस आँव को रोग निर्णय में सहायक कहा जा सकता है। दूसरी तरफ मल के साथ पूयकोष तथा लाल रक्तकणिकाओं की उपस्थिति Ulcerative Colitis अथवा Carcinoma के ऊपर ध्यान आकृष्ट करती है।

(८) **Ulcerative Colitis (वृहदन्त्र में क्षतयुक्त प्रदाह)**—यह व्याधि वृहदन्त्र के आंशिक अथवा सार्वांगिक तीव्र प्रदाह के कारण उत्पन्न होती है, जिस में गुदमार्ग से आँव, रक्त तथा पूयः स्राव के साथ ज्वर, रक्ताल्पता, अत्यन्त दुर्बलता, जलीयांश का क्षय तथा बल-मांसक्षय जसे सार्वांगिक विकार उत्पन्न हो सकते हैं। साधारणतः तीस साल से कम उम्र के युवकों में इस व्याधि का प्रकोप ज्यादा नजर आता है। विशेषतः भावप्रवण, लज्जाशील, अतिविवेकी तरुणों पर यह व्याधि अपना प्रभाव डालती है और ऐसे आदमियों में दीर्घदिनव्यापी विकृत मानसिक परिस्थिति के साथ इस व्याधिका सम्बन्ध रहता है। आमाशयिक क्षत के समान इस व्याधि में भी दारुण मानस क्षोभोत्पादक आघात के कारण प्राथमिक आक्रमण का सूत्रपात हो सकता है, जिसमें कभी-कभी रोगशान्ति, कभी-कभी पुनराक्रमण, इस क्रम से दीर्घ दिन तक रोग भोग हो सकता है। आवेगमयता अथवा दुश्चिन्ता के कारण रोगवृद्धि प्रायः दिखाई पड़ती है। किसी-किसी क्षेत्र में निर्णित Bacillary Dysentery के आक्रमण के बाद यह व्याधि जीर्ण अतिसार के रूप में भी दिखाई पड़ती है। अभी तक मल परीक्षा में Ulcerative Colitis के उत्पादक के रूप में भी कोई विशिष्ट जीवाणु का पृथक्करण सम्भव नहीं हुआ है। इस व्याधि में रोगाक्रमण के प्राथमिक रूप में तीव्र अतिसार तथा ज्वर दिखाई पड़ते हैं, जिसे हम तरुण आक्रमण कह सकते हैं। परन्तु अधिकांश क्षेत्र में यह धीरे-धीरे प्रकट होती है, जिसमें प्राथमिक लक्षण के रूप में द्रव मलभेद के साथ अथवा स्वाभाविक मल के साथ आँव तथा रक्त का निर्गम नजर आता है। तरुण आक्रमण में, पता लगाने से, पहले के कुछ महीनों से या कभी-कभी वर्षों से सामयिक रूपेण अल्पाधिक मात्रा में आँव तथा रक्त निर्गम का इतिहास मिल सकता है। इस व्याधि में अर्द्धद्रव मल के साथ अथवा केवल आँव, रक्त तथा पूय का निःसरण हो सकता है। केवल मलत्याग के समय के अलावा तीव्रशूल नहीं होता है। वायु निःसरण अथवा मलत्याग के बाद ही शूल मिट जाता है। इस व्याधि के तरुणाक्रमण में अथवा रोगवृद्धि के समय साधारणतः अनियमित तापवृद्धि होती है। रोगी को क्षुधामान्द्य नहीं रहता, परन्तु अतिसार के कारण जीर्ण-शीर्ण हो जाता है। कभी-कभी रोग के अदारुण आक्रमण में रोगी को ऐसी कोई विशेष तकलीफ नहीं रहती है, जिससे वह लगातार आराम लेने के साथ चिकित्सा कराने को तैयार हो जाता है। मलमार्ग से रक्तनिःसरण के कारण रोगी की रक्ताल्पता अनायास हो जाती है, ऐसे क्षेत्रों में गुल्फसन्धि में अथवा उदर्याकिलान्तराल में रक्तस्थित आमिषजातीय पदार्थ की कमी के कारण शोथ उत्पन्न होना सहज है।

अत्यल्प क्षेत्र में Allergy (विशिष्ट पदार्थ की ग्रहणाक्षमता) के कारण वृहदान्त्रिक क्षतयुक्त प्रदाह के सब ही लक्षण प्रकट हो सकते हैं, परन्तु आँव की जाँच करने पर उसमें पर्याप्त मात्रा में Eosinophil Cells की उपस्थिति तथा पूयःकोष की अत्यल्पता अथवा अनुपस्थिति रोग निर्णय में सहायक होती है। खाद्यप्राणों (Vitamins) की कमी के कारण यह व्याधि तीव्र हो सकती है, परन्तु खाद्यप्राणों की कमी कदापि रोगोत्पादन का प्राथमिक कारण नहीं हो सकती है।

(९) **Tuberculous Enteritis & Colitis–क्षयज क्षुद्रान्त्रिक तथा वृहदान्त्रिक प्रदाह**—फुफ्फुसीय क्षयरोग में मृत्यु होने के पश्चात् ५० से ७५ प्रतिशत क्षेत्र में अन्त्रों में क्षत दिखाई पड़ते हैं और इसका कारण क्षयरोग जीवाणुयुक्त कफ को निगलना है जिससे औपसर्गिक रूप से अन्त्रों में रोगाक्रमण हो सकता है। कभी-कभी अन्त्रों में अत्यधिक क्षत रहते हुए भी २५ प्रतिशत क्षेत्रों में रोग के लक्षण प्रकट नहीं होते हैं और कभी-कभी फुफ्फुसीय क्षयरोग में अन्त्रों में क्षयज क्षत की अनुपस्थिति में भी अग्निमान्द्याजीर्ण के विभिन्न लक्षण प्रकट हो सकते हैं। शिशुओं में जीर्ण

ज्वरातिसार, ग्रानाह, लसीका-ग्रन्थियों के प्रदाह तथा वृद्धि, रक्ताल्पता तथा बलमांसक्षय देखने पर क्षयज ग्रान्त्रिक प्रदाह का सन्देह होना चाहिये। फुफ्फुसीय क्षयरोग में ग्रतिसार होने से विशेषतः ग्रगर पेट में दर्द तथा स्पर्शासहत्व वर्तमान रहे ग्रौर रक्तमिश्रित मल-निर्गम होता रहे तो क्षयज ग्रान्त्रिक प्रदाह का सन्देह होना चाहिये। फुफ्फुसीय क्षयरोग के परिणतावस्था में ग्रगर ग्रतिसार पेट में दर्द के विना हो तो वह ग्रतिसार ग्रामाशयिक स्राव के ग्रभाव के कारण ही होता होगा, ऐसा समझना चाहिए। क्षयज ग्रान्त्रिक प्रदाह में ग्रतिसार बाद में ग्राता है, जिसमें बृहदन्त्र के ग्राक्रान्त होने की सम्भावना सूचित होती है।

(१०) **Coeliac Disease**—यह व्याधि साधारणतः शिशुग्रों में ही होती है। इसमें ग्रधिकमात्रा में पाण्डुवर्ण, दुर्गन्धयुक्त मल भेद होता है, जिसमें काफी मात्रा में विभाजित चर्बी जातीय पदार्थ निकलता है ग्रौर शिशु की परिपुष्टि तथा वृद्धि रुक जाती है। साधारणतः इस व्याधि का प्रारम्भ नवम मास से लेकर दो वर्ष उम्र के ग्रन्त तक हो जाता है। शिशु क्षुधामान्द्य से पीड़ित रहता है, इसमें चंचलता तथा स्फूर्ति का ग्रभाव रहता है ग्रौर मामूली ग्रतिसार रह सकता है। शीघ्र ही इस रोग के विशिष्ट मल भेद होने लगता है, जिसकी ग्राकृति फुला हुग्रा पाण्डुवर्ण, ग्रत्यन्त दुर्गन्धयुक्त, कभी-कभी फेनयुक्त प्रतीत होती है। बारबार मलभेद नहीं भी हो सकता है। इसमें विभाजित चर्बीजातीय पदार्थ (Fatty acid Crystals) ग्रधिकमात्रा में रहता है, परन्तु ग्रविभाजित चर्बीजातीय पदार्थ (Fat globules) की मात्रा स्वाभाविक रहती है। इसी ग्रवसर पर धीरे-धीरे मांसक्षय बढ़ जाता है, जिसमें चेहरे पर विशेष परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता है। परन्तु नितम्ब देश में यह लक्षण सर्वाधिक प्रकट होता है। उदर ग्रानाह युक्त, स्फीत तथा ग्रागे बढ़ा हुग्रा-सा दिखाई पड़ता है। शिशु में निम्नलिखित मानसिक परिवर्तन परिलक्षणीय है। उम्र के ग्रनुपात से शिशु ग्रधिक बुद्धिमान तथा चालाक, चिड़चिड़ा स्वभावयुक्त तथा जिद्दी होता जाता है। रोगवृद्धि के समय शिशु को सम्हालना मुश्किल हो जाता है। रक्ताल्पता के साथ शारीरिक शीर्णता सुस्पष्ट हो जाती, ग्रत्यन्त ग्ररुचि शिशु के भोजन में काफी बाधा की सृष्टि करती है, जिससे शिशु को भोजन करना एक समस्या ही हो जाती है।

इस व्याधि में कफरोग वातवलासक, दन्तवेष्टों से रक्तस्राव ग्राक्षेप ग्रादि नानाविध रोग ग्रौपसर्गिक रूप से ग्रा सकते हैं। इस व्याधि में खाद्यसारों की शोषण प्रक्रिया में विघ्न-सृष्टि के सम्बन्ध में जो धारणा की जाती है, उसमें सत्यता प्रतीत होती है।

(११) **Giardia Intestinalis Infection** :—इस व्याधि में सामयिक ग्रतिसार के साथ ग्रत्यधिक मात्रा में स्वच्छ ग्राँव तथा पीतवर्णमलनिःसरण होता है। ग्रामाशयिक स्राव की न्यूनता ग्रथवा ग्रनुपस्थिति इन रोग-जीवाणुग्रों के संक्रमण में सहायक कारण माना जाता है। (क्रमशः)

(२८६ पृष्ठ का शेषांश)

ही कही हुई है, यह सभी जानते हैं। भारतीय ग्रायुर्वेद को नीचा दिखाने की इच्छा रखने वाले कुछ लोगों का यह तर्क है कि भारतीयों ने चीनियों से नाड़ी-परीक्षा सीखी होगी। निस्सन्देह चीन का वैद्यक ४-५ हजार वर्ष का पुराना है, किन्तु उसको व्यवस्थित स्वरूप ईसा के दो सौ उन्तीस वर्ष पहिले चीनी विद्वान् 'चंकी' द्वारा मिला है। प्राचीन भारत की सीमा चीन से लगी हुई थी ग्रौर चीनवासी भारत से बराबर शिक्षा ग्रहण किया करते थे। ईसा के दो सौ पचहत्तर वर्ष पहिले ग्रशोक ने चीन में बौद्ध-धर्मोपदेशक भेजे थे। बौद्ध भिक्षु जहाँ जाते, वहाँ धर्मोपदेश के साथ ही रोगी, ग्रपाहिज ग्रादि दुःखी जीवों की सेवा-सुश्रुषा कर सहानुभूति प्राप्त किया करते थे। ग्रतः कौन कह सकता है कि उक्त विद्वान् चंकी के समय तक वहाँ वालों को भारतीय विद्या का ज्ञान बौद्धों से नहीं मिल चुका होगा? चीन के लोग दसवीं शताब्दी तक भारत में ग्राया करते थे ग्रौर बरसों यहाँ रह कर यहाँ के धर्म ग्रौर ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा ग्रहण कर लौट जाया करते थे। इतिहास साक्षी है कि ह्वेनसांग, इत्सिंग ग्रादि सुप्रसिद्ध चीनी यात्री नालन्दा ग्रादि भारतीय विश्वविद्यालयों के ग्रंथ-भाण्डारों से सैकड़ों ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ स्वदेश ले गए थे। इन सब ग्रंथों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि भारतीयों को नाड़ी-परीक्षा का ज्ञान हजारों वर्ष पहले से है। इसे उन्होंने किसी बाहरी देश से नहीं लिया। हमारे योगशास्त्र के ग्रंथों में भी नाड़ी-ज्ञान सम्बन्धी बातें भरी हुई है ग्रौर तन्त्र शास्त्र में तो इसका खास उल्लेख है।

—:०:—

नाड़ी-विज्ञान

श्री जयदेव आयुर्वेदालंकार

भारतीय-विज्ञान की प्राचीनता और श्रेष्ठता को कम बताने की पाश्चात्य विद्वानों द्वारा विविध उपायों से अक्सर चेष्टाएँ की जाती हैं। प्रत्येक भारतीय-विज्ञान को वे अपेक्षाकृत नवीन बताते हैं और यह साबित करने का प्रयास करते हैं कि भारतीयों ने उस ज्ञान को किसी पश्चिमी देश से प्राप्त किया होगा। नाड़ी-परीक्षा विज्ञान के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार उनका कथन है कि भारतीयों ने यह ज्ञान सम्भवतः अरबों या यूनानियों से प्राप्त किया होगा। इस मन्तव्य की पुष्टि के लिए वे यह दलील पेश करते हैं कि चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट जैसी प्राचीन संहिताओं में नाड़ी-विज्ञान का विचार नहीं है। सबसे पहले शार्ङ्गधर में इसकी चर्चा हुई है, जो चौदहवीं शताब्दी का ग्रन्थ है। आश्चर्य तो यह है कि कुछ भारतीय डाक्टर भी इसी प्रकार कहने लगे हैं। किन्तु वे भूल जाते हैं कि चरक, सुश्रुत आदि ने अपने-अपने विषयों का ही उल्लेख किया है और जो विषय दूसरे विभाग के थे, उन्हें छोड़ दिया है। उदाहरणार्थ दाह-कर्म, क्षार-प्रयोग और नेत्र रोगों के विषय में उन्हों ने स्पष्ट लिख दिया है कि इसमें धन्वन्तरि सम्प्रदाय के चिकित्सकों का ही अधिकार है। इसके अलावा इन हजारों वर्षों में चरक-सुश्रुत का न जाने कितनी बार संस्कार किया गया और उनके कितने भाग इस प्रकार नष्ट हो गये। वैसे रसतन्त्र का भी इन संहिताओं में विस्तार पूर्वक वर्णन नहीं है तो इससे क्या यह माना जायगा कि यह पद्धति महादेव जी से आरम्भ होकर नागार्जुन तक अबाधित नहीं आई और आज इसका जो विस्तृत स्वरूप मिल रहा है, वह बाहरी है? रसतन्त्र का संग्रह शार्ङ्गधर के समय से ही चिकित्सा-ग्रन्थों में होना आरम्भ हुआ है। प्राचीन समय में चिकित्सा-शास्त्र के भिन्न-भिन्न अंगों के अलग ग्रन्थ थ। यह बात वाग्भट्ट के 'ते ग्निवेशादिकांस्तेनुं पृथक् तन्त्राणि तेनिरे। तेभ्योऽतिविप्रकीर्णेभ्यः,' वाक्य से स्पष्ट है कि लगभग एक हजार वर्ष से सब अंगों के संग्रह ग्रंथ लिखने की परम्परा चली। नाड़ी-विज्ञान का प्रचार पहले नेत्र-शास्त्रज्ञों और योग-शास्त्रविदों में विशेष रूप से था और उन्हीं के द्वारा पहले नाड़ी-परीक्षा कराई जाती थी। नाड़ी-परीक्षा का ज्ञान कहीं बाहर से नहीं लिया गया। यह शुद्ध भारतीय है।

अरब के मुसलमानों में छठी शताब्दी तक ज्ञान-विज्ञान के प्रति कोई प्रेम नहीं था। यदि ऐसा होता तो ६४० ई० में अलेकजेंड्रिया के संग्रहालय के चारलाख ग्रंथों को खलीफा उमर की आज्ञा से इस तर्क के आधार पर वे नहीं जलवा डालते कि जो बात कुरान में है, वह यदि दूसरे ग्रंथ में हो तो उसकी आवश्यकता ही क्या है और जो बात कुरान में नहीं है, उसे रखने की क्या जरूरत है। सन् ८०० ई० में खलीफा हारूंलरशीद के समय बगदाद में चरक, सुश्रुत, माधवनिदान आदि ग्रन्थों का अनुवाद अरबी भाषा में किया गया। इसके पूर्व ही फारस का बादशाह बहराम दो बार भेष बदल कर भारत आया था और उसने संस्कृत सीख कर यहाँ की विद्याओं का अपने देश के विद्यालयों में प्रचार कराया था। यद्यपि सन् ७११ ई० में अरब लोग सिंध में आए पर थोड़े ही दिन रह कर वे चले गये थे। भारतीयों से मुसलमानों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध सन् १२०६ ईस्वी के बाद, मुहम्मद गोरी के हमले के समय से हुआ। इसके पहले भारतीय अरबों से कुछ सीख नहीं सकते थे क्योंकि मुसलमानों का ध्यान तो अधिकांश में लूट मार की ओर ही था। फिर वे कब विद्या सिखाते?

अरब के चिकित्साविद् वात-पित्त-कफ के अतिरिक्त रक्त को भी चौथा दोष मानते हैं। भारतीय चिकित्सक तीन अंगुलियों से नाड़ी-परीक्षा कहते हैं और वे चार अंगुलियों से। हमारे यहाँ रक्त को 'दोष' के बदले 'दूष्य' माना गया है। वह स्वतन्त्र नहीं है और यही मत सकारण है। इस भेद को अगर न भी मानें तो भी जो शार्ङ्गधर चौदहवीं शताब्दी का कहा जाता है, वह यथार्थ में ग्यारहवीं शताब्दी का था। शार्ङ्गधर राजा अनङ्गभीम के समय हुआ था। अनंगभीम ने सन् १०९४ ई० में जगन्नाथ जी का मन्दिर बनवाया था। इसका लिखित विवरण पुरी के मन्दिर में मौजूद है।

इससे मुसलमानों से नाड़ी-परीक्षा ज्ञान प्राप्त करने की बात कट जाती है। यदि कहा जाए कि भारतीयों ने यूनानियों से यह विद्या सीखी तो न उनके इतिहास में इसकी पुष्टि के लिए कोई प्रमाण है और न हमारे ही इतिहास में। यह सत्य है कि ज्योतिष का कुछ अंश भारतीयों ने बाहर से लिया पर उसे भी उसी नाम से प्रसिद्ध किया। यदि नाड़ी-परीक्षा का ज्ञान भी हम बाहर से लेते तो अवश्य इसे स्वीकार करते।

यूनानी अपने को आर्य वंशोद्भूत बतलाते हैं। फिर यही क्यों न समझा जाय कि आर्यों की जो शाखा यूनान में जा बसी थी, वह अपने साथ भारतीय विद्याओं को भी लेती गई। 'शार्ङ्गधर' में नाड़ी की गति की तुलना सर्प, जलौका, मेंढ़क, हंस आदि की चाल से की गई है। इसी तरह प्राचीन यूनानी भी नाड़ी की गति चूहे, चींटी और बकरे की गति से मिलाते थे। भारतीयों की तरह वे भी तीन अंगुलियों से नाड़ी परीक्षा करते थे। हमारी त्रिदोष-पद्धति के समान वहाँ भी दोष-पद्धति प्रचलित थी।

ईसा के ४०० वर्ष पूर्व यूनान में हिप्पोक्रेटिस नामक विद्वान् हुए थे। वह विद्योपार्जन के लिए भारत आये थे। इसके बाद ईसा के २२६ वर्ष पहले सिकन्दर भारत के कुछ प्रवीण वैद्यों को अपने साथ लेता गया था। उसने यूनानी भाषा में उनसे वैद्यक ग्रंथ लिखवाये थे। ईसा की पहली सदी में आर्चिगल्स ने नाड़ी-परीक्षा पर पुस्तक लिखी थी, पर वह नष्ट हो गई। दूसरी सदी में नाड़ी-परीक्षा पर डा० गेलन ने पुस्तकें लिखीं, किन्तु भारतीय तो उससे भी बहुत पहले से इस विषय को जानते थे। यद्यपि समय के प्रकोप से बहुत से भारतीय ग्रंथ नष्ट हो गये हैं, तथापि टीका-ग्रंथों से पता चलता है कि पहले यहाँ नाड़ी-परीक्षा सम्बन्धी बहुत से ग्रंथ प्रचलित थे। नागार्जुन का 'अष्टविध परीक्षा' ग्रंथ अब भी कहीं-कहीं मिलता है। शोधकों का कथन है, कि नागार्जुन पहली अथवा दूसरी शताब्दी में हुआ था। 'भेडतन्त्र' के रचयिता आचार्य भेड भी चरक के समकालीन थे। चरक का समय सुश्रुत से पहले है। सुश्रुत महाभारत के समय मौजूद थे। अतएव चरक का समय पांच हजार वर्ष से भी अधिक प्राचीन मालूम पड़ता है। आचार्य भेड ने अपने तन्त्र में लिखा है :—

'रोगाक्रान्त शरीरस्य स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत्।
नाड़ीं जिह्वां मलं मूत्रं त्वचं दन्त नख स्वरात्।।"

'नाड़ी-ज्ञान तरंगिणी' में भारद्वाज संहिता के निम्नलिखित पांच श्लोक उद्धृत किये गए हैं। महर्षि भारद्वाज त्रेतायुग में भगवान रामचन्द्र के समय मौजूद थे।

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः संपरीक्ष्येताथ रोगिणम्।
रोगांश्च साध्यान्निश्चित्य ततो भैषज्यमाचरेत्।।
दर्शनान्नेत्र जिह्वादेः स्पर्शनान्नाडिकादितः।
प्रश्नाहूतादि वचनैः रोगाणां कारणादिभिः।।"

नाड़ी-ज्ञान के प्रधान 'वैद्यभूषण' नामक ग्रंथ में ऋषि काल के पश्चात् जो ऋषि प्रणीत ग्रंथ थे, उनका उल्लेख यों मिलता है :—

पराशरादिमुनिभिः प्रणीताच्छास्त्रसागरात्।
अष्टलक्ष्यमितानेतानालोड्य च मुहुर्मुहुः।।
तेषां सारं समुद्धृत्य षड्शास्त्राणि प्रचक्रिरे।
पराशरो योगशास्त्रमातितो जलमेव च।।
नयनं क्षीर पाणिस्तु भेलकर्णो मतो वयम्।
अग्नि विट् नाड़शास्त्रं च शास्त्र दक्षानुभैषजम्।।"
एकैक शास्त्र मैते हि ऋषयश्चक्रिरे मुदा।।"

उपर्युक्त श्लोक में 'अग्नि विट्' के नाड़ी-शास्त्र का उल्लेख है। परन्तु; आजकल इसका कहीं पता नहीं है। कणाद ऋषि प्रणीत 'नाड़ी-विज्ञान' नामक ग्रंथ छप गया है। यदि यह कणाद सुविख्यात न्यायशास्त्रकर्त्ता कणाद ही हों तो इसकी प्राचीनता ही सिद्ध होगी। रावण कृत ९६ श्लोकों की 'नाड़ी परीक्षा' नामक पुस्तक भी प्रसिद्ध है। यदि यह लंकाधीश रावण ही हों तो भारतीयों के नाड़ी-ज्ञान का समय भारद्वाज-संहिता के समान ही त्रेतायुग में पहुँच जाता है। रावण कृत नाड़ी-परीक्षा में आचार्य नंदीकृत नाड़ी शास्त्र का उल्लेख है।

कलकत्ते से प्रकाशित 'प्रयोग चिन्तामणि' ग्रंथ में मार्कण्डेय, वशिष्ठ और गौतम ऋषि के नाड़ी-परीक्षा सम्बन्धी मत दिए हुए हैं। मार्कण्डेय कृत नाड़ी-परीक्षा की स्वतन्त्र पुस्तक इस समय भी जर्मनी के एक पुस्तकालय में मौजूद है। बृहद्धारीत और माण्डव्य ऋषि के नाड़ी-परीक्षा सम्बन्धी मतों का उल्लेख अनेक स्थलों पर मिलता है। कलकत्ते की 'रायल एशियाटिक सोसाइटी' के संग्रहालय में आत्रेय कृत 'नाड़ी-परीक्षा" की पुस्तक भी मौजूद है। चरक ऋषि कृत संहिता आत्रेय ऋषि की

(शेषांश २८२ पृष्ठ पर)

वर्षाऋतु और हमारा स्वास्थ्य

श्री गौरीशंकर गुप्त

श्रावण-भाद्रपद के दो महीने वर्षाऋतु की श्रेणी में आते हैं। बसन्त ऋतु को छोड़कर, वर्षा अन्य ऋतुओं की अपेक्षा बड़ी प्रिय और सुहावनी प्रतीत होती है; किन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से वर्षाऋतु में सतर्कता की विशेष आवश्यकता है। पानी की झड़ी लग जाने के कारण मार्ग में कीचड़ और गन्दगी का बोलबाला हो जाता है। घर छोड़कर बाहर जाने-आने में कठिनाई होती है। हम विचरण और विहार की सुविधा से वंचित हो जाते हैं। यद्यपि शहरों के मार्ग स्वच्छ रहते हैं; तथापि कार्यवश देहातों में जानेवाले उस स्थिति से परिचित होंगे। ऐसी स्थिति में स्वभावतः घर में ही बैठे रहने की इच्छा होती है, जिससे टहलने वा घूमने-फिरने का व्यायाम नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त पाचन की दृष्टि से भी बरसाती आबहवा प्रतिकूल ही रहती है और यही कारण है कि अन्य ऋतुओं की अपेक्षा स्वास्थ्य-रक्षा के लिए, वर्षाऋतु में, व्यायाम की विशेष आवश्यकता होती है। कम-से-कम बारह 'सूर्य-नमस्कार' करना भी उपयोगी है। व्यायाम की मात्रा क्रमशः बढ़ानी चाहिये।

वर्षाऋतु के रोग

वर्षा ऋतु में स्वास्थ्य के सम्बन्ध में अन्य कई विचारणीय एवं ध्यान देने योग्य बातें हैं। वर्षा में आकाश मेघाच्छादित रहने के कारण, सूर्य-दर्शन नहीं होते, लू नहीं चलती और समझा जाता है कि गर्मी चली गई; किन्तु वस्तुतः वास्तविक उष्णता वर्षा ऋतु में ही होती है। इन दिनों वायु में आर्द्रता की बहुलता होती है और वायु की गति परिवर्तित होती रहती है। इस गति-अवरोध के कारण आर्द्र एवं स्थिर वायु से ऊमस उत्पन्न होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि ताप बहुत है, पर ताप अधिक नहीं रहता। पंखे की हवा इसलिए सुखकर प्रतीत होती है, कि वायु में गति उत्पन्न हो जाती है। वर्षाऋतु का यही धोखा है। लोग सोचते हैं कि गर्मी बहुत है, पसीना नहीं निकलता, पर पसीने के प्रवाह से उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का चिपचिपापन-सा रहता है। इस गर्मी से बचने की कामना से लोग कपड़े उतार फेंकते हैं और आर्द्रता तथा स्थिरता के आवरण में छिपी शीत को आक्रमण करने का अच्छा अवसर मिल जाता है। वर्षाऋतु में न्यूमोनिया और डबल न्यूमोनिया होने का एकमात्र यही कारण है।

वर्षा ऋतु में वायु की आर्द्रता एवं स्थिरता का प्रभाव पाचन-शक्ति पर भी पड़ता है। भोजन का पाचन ठीक न होने के कारण शारीरिक शक्ति कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त कीचड़, पानी तथा सतत वर्षा से, दौड़-धूप करने वालों की क्रिया में बाधा उपस्थित हो जाती है और यही निष्क्रियता शक्ति-क्षय का कारण बन जाती है। नष्ट हुई शक्ति के कारण तथा सुन्दर आर्द्र-उष्ण वायु में जीव-जीवाणुओं की वृद्धि होती है। शरीर में, त्वचा पर, कण्ठ तथा नासिका में शान्त पड़े हुए जीवाणु सक्रिय हो उठते हैं। परिणाम यह होता है कि फोड़े-फुन्सी, दाद, न्यूमोनिया, जुकाम आदि की अत्यधिक वृद्धि हो जाती है।

अत्यन्त गरिष्ठ भोजन करने का परिणाम हैजा भी होता है। जुकाम और सिर-दर्द की शिकायत भी हो जाती है। जुकाम की उपेक्षा से न्यूमोनिया हो जाता है; अतः पूर्वावस्था में उष्ण जल का बफारा देना चाहिए। बफारे की सरल विधि यह है कि बर्तन में पानी उबाल कर, उस बर्तन की टोंटी से निकलने वाली गर्म भाप का उपयोग किया जाय। थोड़ी-थोड़ी एवं सतत भाप निकलने की व्यवस्था करके सिर पर कपड़ा ओढ़कर नाक और मुख पर भाप का बफारा लेना चाहिये। खौलते हुए जल में नीलगिरि के तेल की कुछ बूंदें टपकाकर उसका बफारा लेना भी अच्छा है। बच्चों अथवा अन्य किसी को जुकाम की शिकायत होने पर उनके पहनने और बिछाने के वस्त्रों और सिरहाने पर तथा गले के पास नीलगिरि तेल की ५-७ बूंदें छोड़ देनी चाहिये। जुकाम में तुलसी, दालचीनी, कालीमिर्च, सोंठ, बड़ी इलायची आदि की चाय भी बहुत उपयोगी होती है। सिर दर्द होने पर बादाम, लौंग तथा कपूर का लेप गर्म करके लगाना अच्छा है।

वर्षा ऋतु में उत्पन्न होनेवाली अपचन और खट्टी डकारों को मामूली न समझिये। इसका तनिक आभास मिलते ही भोजन से तुरन्त असहयोग कर दीजिये। जीभ पर लगाम लगाइये। केवल भोजन ही नहीं, फल, रस, चाय आदि सब बन्द कर दीजिये। मौसम्बी को चूसकर खाइये, सभी शिकायतें दूर हो जायंगी। वर्षाऋतु में एक समय खाने की आदत डाल सकें तो अति सुन्दर। पेट साफ रखिये और भर पेट कभी मत खाइये।

वर्षाऋतु में संक्रामक रोगों की भाँति अतिसार तथा आँव की शिकायतें भी देखी जाती हैं। शाक-भाजियों के संयोग से उदरस्थ होनेवाले जन्तुओं से अथवा अपचन होते हुए भी अधिक आहार ग्रहण करने से ही ऐसा होता है। इसमें खूनी आँव, पेट में मरोड़ और आँतों में जलन होने लगती है। अतः पथ्य-पालन करते हुए बड़ी सौंफ या उसका अर्क तथा बेल का मुरब्बा, इसबगोल की भूसी का सेवन लाभप्रद है। जल में 'क्लोरोजन' की ३-४ बूंदें डालकर सेवन करने से भी अतिसार में लाभ होता है।

बरसाती नमी वा सर्दी के कारण सम्पूर्ण शरीर अथवा अंग विशेष में दर्द होने लगता है। घर में खड़ाऊँ और बाहर बरसाती जूतों का उपयोग करने से ऐसा नहीं होता।

मच्छर और मक्खियाँ

वर्षाऋतु में मच्छरों का पार्श्व संगीत सर्वत्र सुना जाता है। इनके प्रहार से मलेरिया फैलता है; अतः इनकी उत्पत्ति के स्थान, गन्दी नालियां तथा पानी एकत्र होनेवाले स्थान स्वच्छ रखने चाहिये। कुण्ड, हौज अथवा पानी एकत्र होने वाले छिछले गढ़ों में मिट्टी का तैल या फिनाइल छिड़कना तथा स्थान-स्थान पर पानी न रुकने देना चाहिये। रात्रि में नीम की पत्तियों को जलाकर धूनी देने से भी मच्छर नहीं टिक पाते। घर की दीवारें पीले रंग से रंगी होने पर भी मच्छर भाग जाते हैं। सोते समय मच्छरदानी (Mosquito curtain) का उपयोग अच्छा है।

वर्षाऋतु में मच्छर ही नहीं, मक्खियाँ भी बहुत सताती हैं। छूत की बीमारियों की जननी और प्रसारिका के रूप में ये प्रख्यात हैं। अतः खान-पान के समय पंखे अथवा पलास के बड़े पत्रों द्वारा इनको उड़ाते रहना चाहिये। भोजन करते समय पास में जलता हुआ गोहरा वायु की दिशा में रख देने से भी ये भाग जाती हैं। इस गोहरे की अग्नि पर आहुति डाली जाय तो वायु शुद्ध हो जाती है। मकान की फर्श पक्की हो तो फिनाइल से नित्य या दूसरे-तीसरे दिन धोते रहना चाहिये तथा कृमि-नाशक डी० डी० टी० पाउडर का उपयोग करना चाहिये।

चातुर्मास्य का विधान

वर्षाऋतु में आकाश मेघाच्छादित रहने के कारण, सूर्य की प्रखर किरणों के अभाव में अथवा यदा-कदा घन-घोर वृष्टि होने से पृथिवी नम हो जाती है और इसका प्रभाव सभी जीवों पर पड़ता है। परिणामतः मन्दाग्नि हो जाती है। यही कारण है कि हिन्दू तथा जैन-धर्म में चातुर्मास्य का विधान है। इस चातुर्मास्य में अनेक व्रत तथा उपवास सम्मिलित हैं; किन्तु हम काल-प्रभाव से व्रत-उपवास की उपयोगिता भूल गये हैं। व्रत अथवा उपवास न होकर वे त्योहार बन गये हैं, फिर इनसे लाभ की आशा कैसे की जा सकती है?

वर्षाऋतु और जल-प्रयोग

बरसात में जल भी शीघ्र ही दूषित हो जाया करता है; अतः पीने के जल की शुद्धि की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। पानी उबाल और ठण्डा करके पीना चाहिये अथवा उसमें कुएं में डालने वाली लाल दवा (पोटैशियम परमेंगनेट) या 'क्लोरोजन' (जन्तु-नाशक औषध) अल्प परिणाम में मिला लेने से छुत की बीमारियाँ होने का भय नहीं रह जाता। वर्षाऋतु में नदियों के जल का व्यवहार करना भी मना है। लिखा है—

"मासद्वयं श्रावणादि सर्वा नद्यो रजस्वलाः।
तासु स्नानादिकंवर्ज्यं वर्जयित्वा सुरापगाम्॥"

श्रावण आदि महीनों में, अर्थात् वर्षाऋतु में नदियाँ ऋतुमती वा अपवित्र रहती हैं; अतः उनमें स्नानादि कार्य वर्जित हैं, किन्तु पुण्य-सलिला गंगा को छोड़कर। यद्यपि वर्षा में नदियों का जल विषाक्त होने के कारण व्यवहार में लाना मना है, पर अन्य ऋतुओं की अपेक्षा वर्षा में गंगा जल भी किंचित गुरु, वीर्यवर्द्धक तथा मंदाग्नि उत्पादक हो जाता है; अतः इस ऋतु में गंगाजल का प्रयोग करने के पूर्व उसे निर्मली वा फिटकिरी से स्वच्छ कर लेना उचित है। अन्य प्रकार के जल-प्रयोग से कुष्ठादि रक्त-विकार, चित्त-विभ्रम तथा मंदाग्नि प्रभृति व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं; किन्तु गंगोदक में इतने अधिक गुण विद्यमान हैं कि वर्षाऋतु के कारण जल दूषित होने पर भी चित्त-

विभ्रम के रोगी केवल गंगा में अवगाहन मात्र से रोग-मुक्त हो जाते हैं।

हिमालय की मणियों, धातुओं तथा दिव्य औषधियों के मिश्रण से, लम्बी धारा में प्रवाहित होने के कारण, गंगाजल विषनाशक, पुष्टिकर, गुणमय तथा आरोग्य-दायक हो जाता है। सारांश यह कि जल के सर्व गुण गंगाजल में पूर्णरूपेण विद्यमान हैं। बुद्धिजीवियों का वास्तविक अमृत गंगाजल ही है।

वर्षा के 'दिव्य जल' का सेवन करना भी उत्तम है, बशर्ते कि वह शुद्ध एवं निर्मल पात्र में ऊँचाई पर एकत्र किया गया हो। यही दिव्य जल है। एक स्वच्छ चदरे के चारों कोने चारों ओर बांधकर, उसके नीचे पात्र रख-कर संचित किया गया जल भी अत्यन्त उपयोगी होता है।

वर्षाऋतु में पथ्यापथ्य

बरसात में पानी में घुला हुआ सत्तू, दिन में सोना, पूर्व दिशा की वायु का सेवन, ओस, सील, नित्य मैथुन, धूप-सेवन, मक्खी, मच्छर आदि से बचना चाहिये। वर्षा में भींगना और गीले कपड़े पहनना तथा नंगे पैर चलना-फिरना भी हानिकारक है। दही और साग तो भूलकर भी नहीं खाना चाहिये। कहावत प्रसिद्ध है—"सावन साग न भादों दही।"

वर्षाऋतु में खान-पान में शुद्ध मधु (शहद) तथा नींबू का अधिक व्यवहार करना चाहिये। तैल-मालिश तथा उबटन इस ऋतु में विशेष लाभप्रद है। समयानुसार वस्त्र बदलते रहना चाहिये। सर्दी प्रतीत होने पर मोटा वस्त्र और गर्मी लगनेपर महीन वस्त्र धारण करें। अत्यधिक परिश्रम से बचे रहना और रात में कुछ ओढ़कर सोना चाहिये।

जिस दिन बादल घिरे हों, पानी बरस रहा हो, झड़ी लगी हो, सर्दी का जोर हो, हवा चल रही हो, उस दिन अत्यन्त खट्टे, नमकीन तथा हलवा आदि चिकने पदार्थ खाने चाहिये। ऐसा करने से वर्षा-काल की वायु शान्त होती है।

वर्षाऋतु और झूला

वर्षाऋतु और झूलने का अति सुन्दर संयोग है। यद्यपि आधुनिक सभ्य समाज में झूलना अत्यन्त निकृष्ट तथा हास्यास्पद समझा जाता है; किन्तु इसमें वैज्ञा-निकता छिपी है। इसी कारण हमारे पूर्वजों ने इस प्रथा की अखण्डता के लिए इसे देव-पूजा का एक अंग माना है। आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार वर्षाऋतु में झूला झूलने से अग्नि प्रदीप्त होती है, मानसिक प्रसन्नता, और बल-वीर्य की वृद्धि होती है, फेफड़े बलवान होते हैं, रक्त-शुद्धि होती है, नेत्र-ज्योति बढ़ती है, क्षुधा बढ़ती है, और शरीर में हलकापन आता है। गर्भवती स्त्रियों और अन्यन्त क्षीणकाय व्यक्तियों को कदापि न झूलना चाहिये।

हमारे प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू जी भी अपने अवकाश के क्षणों में झूले के आनन्द लूटने का लोभ संवरण नहीं कर पाते।

ऋतुचर्या और दिनचर्या

जीवन की अस्थिरता चिरन्तनकाल से मानव-मन को व्यथित करती आ रही है। मानव-जीवन का चरम लक्ष्य विशाल और जीवन की घड़ियाँ अनिश्चित है—अस्तु, स्वास्थ्य के सुन्दर एवं उपयोगी नियमों के निर्माण द्वारा जीवन की परिधि को यथासम्भव विस्तृत करने का साधु प्रयास, हमारे पूर्वज ऋषिमहर्षियों ने किया था। बस, यहीं से ऋतुचर्या और दिनचर्या का उद्भव होता है।

वैद्यकीय सदुक्ति-समुच्चय

ANTHOLOGY OF MEDICINE

डॉ० प्राणजीवन मेहता, एम० डी० एम० एस०

सचित्र आयुर्वेद-परिवार के सुपरिचित स्व० डॉ० धीरेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय का यह मन्तव्य पाठकों को सुविदित होगा कि, 'आयुर्वेद में रिसर्च--संशोधन करने के पूर्व, हमारे पास आयुर्वेद-विषयक जो निधियाँ हैं, उनकी सर्च--शोधन, खोज करनी होगी--'Before going in for research, we must search into the treasures left us in Ayurved.' स्वयं डॉ० बन्द्योपाध्याय इसी दृष्टि से प्राचीन आयुर्वेदीय तथा आयुर्वेद-बाह्य वाङ्मय का पूर्ण अवगाहन करते थे। उनकी कृतियों का अनुशीलन कर उनके द्वारा क्षुण्ण मार्ग पर चल कर कोई विद्वान् संशोधन-कार्य करें, यही विद्वज्जनों से हमारी नम्र प्रार्थना है। इस अङ्क से हम एक लेखमाला दे रहे हैं, जिसमें प्राचीन वाङ्मय से वैद्यकीय सदुक्तियों का संग्रह किया गया है। इसके संग्राहक भारतीय शासन द्वारा आयुर्वेदीय संशोधनार्थ जामनगर में स्थापित रिसर्च-इंस्टीटयूट के डायरेक्टर तथा पाठकों के सुविदित प्राच्य-प्रतीच्योभय शास्त्र पारंगत डॉ० प्राणजीवन मेहता एम० डी०, एम० एस० हैं। इसी से इस संग्रह का महत्त्व तथा उत्कृष्टता पाठक समझ सकते हैं--स० संपादक।

ऋग्वेद आरोग्यदाता देवता

RIGVED : THE HEALING GODS

रुद्र देवता : Rudra.

मा त्वा रुद्र चुक्रुधा मा नमोभिर्वा दुष्टुती वृषभ मा सहूती।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजोभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि॥

'हे रुद्र, हम आपको अपनी आराधनाओं द्वारा कुपित न करें; हे बलिष्ठ देव, न हम आपको अपनी निन्दाओं द्वारा और न सामुदायिक प्रार्थनाओं द्वारा कुपित करें।'

'आप हमारे वीरों को बल्य औषध देकर उद्दीप्त कीजिए। आप सर्व वैद्यों में श्रेष्ठ वैद्य हैं, ऐसी आपकी कीर्ति मैंने सुनी है।'

Let us not anger thee with worship, Rudra, ill-praise, strong God, or mingled invocation. Do thou with strengthening balms in-cite our heroes : I hear thee famed as best of all physicians.

आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्रजायेमहि रुद्र प्रजाभिः॥१॥

'हे मरुतों के पिता, हमें आपका प्रसाद प्राप्त हो; आप हमें सूर्य का प्रकाश देखने से वंचित न कीजिए।

'वीर हमारे सैन्य के अश्वों के प्रति कृपालु हों; हे रुद्र, हम प्रजाओं (संतानों) में पुनर्जन्म ग्रहण करें।'

Father of Maruts, let thy bliss approach us : exclude us not from looking on the sun-light.

Gracious to our fleet courser be the Hero : may we transplant us, Rudra, in our children.

कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम्।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे॥
या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शंतमा वृषणो या मयोभु।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि॥

ऋग्वेद म० २, अ० ४, सू० ३३

'हे रुद्र, जैसे कोई बालक अपने अभिनन्दन करते पिता को प्रणाम करता है वैसे ही समीप आते हुए आपके आगे मैं नत होता हूँ।'

'हे उदार दाता, हे वीरों के अधिपति, मैं आपकी प्रार्थना करता हूँ : आप हमें औषध दीजिए, मैं आपका स्तवन करता हूँ।'

'हे सामर्थ्यवाले मरुतो, आपके पास जो शुद्ध औषध हैं, जो उत्कृष्टतम और आरोग्य देनेवाली हैं उनकी,

जिनका हमारे पिता मनु ने वरण (पसंदगी, चुनाव) किया था; हे रुद्र, अपने योग और क्षेम के लिए उनकी कामना करता हूँ।

I bend to theeas thou approachest, Rudra, even as a boy before the sire who greets him.

I praise thee Bounteous Giver, Lord of Heroes; give medicines to us, thou art lauded.

Of your pure medicines, O potent Maruts, those that are wholesomest and health bestowing,

Those which our father Manu hath selected, I crave from Rudra for our gain and welfare.

इन्द्र : Indra.

स विद्वाँ अपगोहं कनीनामा-
विर्भवन्नुदतिष्ठत्परावृक्।
प्रति श्रोणः स्थाद्व्यनग्नचष्ट
सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार।
।।७:।२, १५

कन्याएँ जहाँ छुपी थीं उस स्थान को जानकर बहिष्कृत प्रादुर्भूत हुआ और उनके समक्ष जा खड़ा हुआ।

पंगु सीधी खड़ी हो गईं और अन्धों ने उन्हें निहारा। इन्द्र ने सोम के मद से यह सब किया।

Knowing the place wherein the maids were hiding, the outcast showed himself and stood before them.

The cripple stood erect, the blind beheld them. These things did Indra in the Soma's rapture.

इन्द्र सोमं पिब ऋतुना त्वा विशन्त्विन्दवः।
मत्सरासस्तदोकसः।। ऋग् ० मं० १, अ० ४, २५

हे इन्द्र, आप ऋतु के साथ (ऋत्वनुसार) सोमरस का पान कीजिए; (सोम के) मदकारी बिन्दु—आपमें गम्भीर प्रवेश करें और वहीं आश्रय कर रहें।

O Indra, drink the Soma juice with Ritu; let the cheering drops–

Sink deep within, which settle there.

अश्विनौ : Ashwin Twins.

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात्।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित्पतिमकृणुतं कनीनाम् ।।१०।।
१.११६

'हे नासत्यो, आपने 'वृद्ध च्यवन के शरीर से मानो वस्त्र के समान उसकी त्वचा को उतार दिया;

हे दस्रो, जब सब कोई उसे निराधार छोड़ गए थे तब आपने उसकी आयु को दीर्घ बनाया और उसे युवा कन्याओं का स्वामी बनाया।'

युवं च्यवानमश्विना जरन्तं
पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः।
युवो रथं दुहिता सूर्यस्य सह
श्रया नासत्या वृणीत ।।१३।।
१.११७

लेखक

हे अश्विनो, आपने अपनी अपूर्व शक्तियों द्वारा वृद्ध च्यवान को पुनः युवा बनाया।

हे नासत्यो, सूर्य की दुहिताने संपूर्ण श्री के साथ अपनी वहन के निमित्त आपके रथ को स्वीकार किया।

Ye with the aid of your great powers, O Ashwins, restored to youth the ancient man Chyavan.

The Daughter of the Sun with all her glory, O ye Nasatyas, chose your car to bear her.

युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः।
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्र विधते दंसना
भुवन् ।।७।। १, ११६

हे चमत्कारी सुदक्ष कार्यकर्त्ताओ, आपने काल-परि-

णाम वश जीर्ण-शीर्ण हुए रथ के सदृश वन्दन को यौवन-दान किया।

अद्भुत प्रकार से आपने उस विप्र को पृथ्वी से उठा-कर जीवन दिया; जो जन आपकी अभ्यर्थना करें उनके लिए यहाँ आपके अवदान (महत् कर्म) हों।

Doers of marvels, skilful workers, ye restored Vandan, like a car, worn out with length of days.

From earth ye brought the sage to life in wonderous mode; be your great deeds done here for him who honours you.

उपस्तुतिरौचथ्य मुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम्।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद्वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम॥ १, १५८, ४

—मेरी यह स्तुति उचथ्य के पुत्र की रक्षा करे: ये यमल जो पंखों द्वारा उड़ते हैं मुझे क्लान्त न करें।

दश गुणा संचित इन्धन मुझे दग्ध न कर डालें; ये इन्धन तुम्हारे लिए स्थापित किए जाने पर उस पृथ्वी को ही खा जाते हैं जिस पर ये खड़े किए जाते हैं।

May this my praise preserve Uchathya's offspring: let not these twin who fly with wings exhaust me.

Let not the wood ten times up-piled consume me, when fixed for you it bites the ground it stands on.

अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय॥२३॥ १, ११६

हे नासत्यो, आपकी सहायता चाहते तथा स्तुति करते साधु-प्रकृति कृष्ण-पुत्र विश्वक को, आपने अपनी शक्तियों से, किसी नष्ट (खो गए) पशु के समान पुनर्दर्शनार्थ उसका पुत्र विष्णापु प्रत्यर्पित किया।

To Visvak, Nasatyas, son of Krishna, the righteous man, who sought your aid and praised you,

Ye with your powers restored, like some lost creature, his son Vishnapu for his eyes to look on.

युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय।
घोषायै चित्पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम्॥७॥ १, ११७

हे वीरो, आपने आपकी स्तुति करनेवाले कृष्ण-सूनु विश्वक को उसका पुत्र विष्णापु ला दिया।

हे अश्विनो, आपने कालवश जीर्णकाय हुई, पितृ-गृह में रहती घोषा को पति दिया।

युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय।
प्रवाच्यं तद्वृषणा कृतं वा यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम्॥८॥ १, ११७

हे अश्विनो, आपने कण्व-गोत्रज तथा महान् प्रजा में उत्पन्न श्याव को रुशती दी।

हे सुशक्त (अश्विनो) आपका यह कर्म घोषणा करने योग्य है कि आपने नृषद के पुत्र को महिमा[1] प्रदान की।

Rushati, of the mighty people, Asvins, ye gave to Syava of the line of Kanva.

This deed of yours, ye strong Ones, should be published, that ye gave glory to the son of Nrishad.

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम्॥ १, ८९, ४

वायु हमारे प्रति उस कल्याणकारी औषध को वहन कर लाए, माता पृथिवी और पिता द्युलोक हमें उसे दे।

आनन्ददायी सोमरस को पीसनेवाले पत्थर हमें वह औषध दें। हे अश्विनो, आप, जिनकी कामना हमारी बुद्धि करती है, हमारे इस वचन को सुनो।

May the Wind waft to us that pleasant medicine, may Earth our Mother give it, and our Father Heaven,

And the joy-giving stones that press Soma's juice. Asvins may ye, for whom our spirits long, hear this.

१—निरुक्त में आए इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए दुर्गाचार्य ने लिखा है: नार्षदाय ऋषये बधिरीभूताय श्रवः श्रोत्रम् अध्यधत्तम् अधिकं दत्तवन्तौ स्थः—"अर्थात् बधिर हो गए नृषद के पुत्र को आपने श्रोत्र (श्रवणशक्ति) प्रदान की।" अश्विनों के लिए यही अर्थ उपयुक्त है। दुर्ग ने रुशती का अर्थ यह दिया है—"ज्वलितरूपां श्रियम्" ज्वलनार्थक रुश धातु से बने रुशती शब्द का अर्थ है दीप्ति-मती।

अनुवादक—वैद्य रणजितराय

शतं मेषान् वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा।
आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे ।।
।।१७।। १, ११७

सौ मेंढे मादा भेड़िया को खिला देने के कारण दुर्वृत्त पिता ने जिसे अन्ध बना दिया था—

उस ऋज्राश्व को, हे अश्विनो, आपने नेत्र दिये, संपूर्ण दृष्टि के लिए ज्योति प्रदान की।

He whom for furnishing a hundred wethers to the she-wolf, his wicked father, blinded

To him, Rijrasva, gave ye eyes, O Asvins, light to the blind ye sent for perfect vision.

याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः।
याभिर्वर्तिकां ग्रसितामभुञ्चतं ताभिरूषु ऊतिभिरश्विनागतम्
।।८।। १, ११२

हे शक्तिशाली (अश्विनो), अपनी जिन शक्तियों से प्रावृज की सहायता कर उस अन्धे को आपने देखता और लंगड़े को चलता कर दिया;

एवं, जिनके द्वारा निगल ली गयी बत्तख को आपने छुड़ाया, हे अश्विनो, अपनी उन सहायताओं के साथ यहाँ हमारे पास आओ।

अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन् पुरुभुजा पुरन्धिः।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ।।
१३।। १, ११६।।

हे अनेक निधियों के अधिपति नासत्यो, बुद्धिमती उस स्त्री ने महोत्सव के प्रसंग पर अपनी सहायता के लिए आपसे विनति की।

आपने उस दुर्बल की पत्नी के वचन को, मानो वह आदेश था, इस प्रकार सुना और हिरण्यहस्त-नामक पुत्र दिया।

In the great rite the wise dame called, Nasatyas, you, Lords of many treasures, to assist her.

Ye heard the weakling's wife, as 'twere an order, and gave to her a son Hiranyahasta.

हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम्।
त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तमुज्जीवस ऐरयतं सुदानू ।।
।।२४।। १, ११७

हे वीरो, अत्यन्त उदारतापूर्वक आपने उस क्षीण पुरुष की भार्या को पुत्र हिरण्यहस्त दिया।

अपरंच, हे दानशूर अश्विनो, आपने श्याव, जो कि तीन खण्डों में कट गया था, उसे पुनर्जीवित किया।

With liberal bounty to the weakling's consort ye, Heroes, gave a son Hiranyahasta;

And Syava, cut into three several pieces, ye brought to life again, O bounteous Asvins.

तद्वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम्।
दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ।।
।।१२।। १, ११६

हे वीरो, विद्युल्लता जैसे वृष्टि के आगमन की घोषणा करती है, वैसे मैं, अपने हित के लिए, आपके उन महत् कर्मों को प्रकाशित करता हूँ;

कि, अथर्वा के तनय दध्यच् ने घोड़े के सिर से आपको सोम के माधुर्य का परिचय कराया।

That mighty deed of yours, for gain, O Heroes, as thunder heraldeth the rain, I publish.

When, by the horse's head, Atharvan's offspring Dadhyach made known to you the Soma's sweetness.

आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्वं शिरः प्रत्यैरयतम्।
स वां मधु प्रवोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपि कक्ष्यं वाम् ।।२२।।
१, ११७

हे अश्विनो, आप घोड़े का सिर लाए और उसे अथर्वा के पुत्र दध्यच् को दिया।

सत्यभक्त उसने भी, हे अद्भुतकर्मा (अश्विनो), त्वाष्ट्र के गोप्य, आपके कटि-बन्धन के समान सोम को आपके लिए प्रकट कर दिया।

Ye brought the horse's head, Asvins, and gave it unto Dadhyach, the offspring of Atharvan.

True, he revealed to you, O Wonder-workers, sweet Soma, Twashtra's secret, as your girdle.

शतं मेषान् वृक्यं चक्षदानमृज्राश्वं तं पिताऽन्धं चकार।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वम् ।।
१, ११६, १६

मादा भेड़िये के लिए सौ मेढ़ों की बलि देने के कारण पिता ने ऋज्राश्व को (शाप देकर) अन्ध बना दिया था।

हे अद्‌भुतकर्मा वैद्य नासत्यो, आपन उसे चक्षु दिए, जिससे वह अक्षत दृष्टि-शक्ति से देख पाया।

His father robbed Rijrasva of his eyesight who for the she-wolf slew a hundred wethers.

Ye gave him eyes, Nasatyas, Wonder-workers, Physicians, that he saw with sight uninjured.

न मा गरन्नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत्स्वयं दास उरो अंसावपिग्ध ॥
५, १, १५८

सबसे बढ़कर मातृ-रूपिणी नदियाँ, जिनमें दासों ने मुझे दृढ़ बाँधकर फेंक दिया था, उन्होंने मुझे ग्रस्त न किया।

दास त्रैतन जब मेरा शिरश्छेद करने को उद्यत हुआ तो उसने अपनी ही छाती और कन्धों की क्षति कर दी।

The most maternal streams, wherein the Dasas cast me securely bound, have not devoured me.

When Traitana would cleave my head asunder, the Dasa wounded his own breast and shoulders.

दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥६॥ १, १५८

मानव-कुल के दसवें युग में ममत का पुत्र दीर्घतमस् पूर्ण आयु को प्राप्त हुआ।

जल, जो कि अपने लक्ष्य पर पहुँचने का प्रयास करते हैं, उनका वह ब्रह्मा है; उनका वह सारथि है।

Dirghtamas, the son of Mamata, hath come to length of days in the tenth age of human kind.

He is the Brahman of the waters as they strive to reach their end and aim; Their charioteer is he.

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम्।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥
१, ११६, १५

खेल के युद्ध में रात्रि के समय जबकि (उसका) पैर किसी जंगली पक्षी के पक्ष के समान कट गया था;

आपने विश्पला को तत्क्षण लोहमयी जङ्घा लगा दी, जिससे जभी संग्राम आरम्भ हो, वह उसमें संचार कर सके।

When in the time of night in Khel's battle, a leg was severed like a wild bird's pinion;

Straight ye gave Vispala a leg of iron that she might move what time the conflict opened.

मही वाभूतिरश्विना मयोभूरुत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः।
अथा युवामिदह्वयत्पुरन्धिरागच्छतं सीं वृषणाववोभिः ॥
॥१६॥ १, ११७

हे अश्विनो, आपकी सहायता महती और ऐश्वर्य की दात्री है। सब बुद्धियों के लक्ष्यभूत आपने अपङ्गों को अविकलाङ्ग बनाया।

पुरन्धि ने भी इसी कारण आपकी अभ्यर्थना की और आप, हे शक्तिमान (अश्विनो), अपनी सामग्रियों के साथ उसकी रक्षा को आए।

Great and weal-giving's your aid, O Asvins, ye object of all thought, made whole the cripple.

Purandhi also for this invoked you, and ye, O Mighty came to her with succours.

हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तम्।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीतमुन्निन्ययुः सर्वगणं स्वस्ति ॥
॥ ८॥ १, ११६

आपने शीत द्वारा अग्नि के प्रचण्ड ताप का निवारण किया; आप ही ने अति बृंहण अन्न-पान दिया;

हे अश्विनो, आपने घनान्धकार युक्त भूगर्भ में नीचे बन्द कर दिये गये अत्रि को उसके समस्त गण सहित कल्याण की प्राप्ति के लिए बाहर निकाला।

Ye warded off with cold the fire's fierce burning; food very rich in nourishment ye furnished.

Atri, cast downwards in the cavern, Aswins, ye brought, with all his people, forth to comfort.

प्र वां दंसास्यश्विनाववोचमस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः।
उत पश्यन्नश्नुवन्दीर्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ।२५।
१, ११६

हे अश्विनो, आपके अद्‌भुत कर्मों की मैंने घोषणा की है। इस घोषणा का एवं अनेक धेनुओं और वीरों का मैं स्वामी होऊं।

मैं अपनी चक्षुओं का उपयोग करता हुआ दीर्घायु में

इस प्रकार प्रवेश करूँ जैसे मैं अपने गृह में प्रवेश करता होऊं।

I have declared your wonderous deeds, O Asvins; may this be mine, and many kine and heroes.

May I, enjoying lengthened life, still seeing, enter old age as 'twere the house I livein.

अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम्।
युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् ।।२०।।
१, ११७

हे अद्भुतकर्मा (अश्विनो), आपने शयु की गत-क्षीरा, क्षीण तथा अपुत्रा गौ को क्षीर-पूर्ण कर दिया।

आप ही अपनी शक्तियों से पुरुमित्र की सुता को विमद के पास उसकी पत्नी बनाने के लिए लाए।

Ye wonder-workers, filled with milk for Sayu, the milkless cow, emaciated, barren;

And by your powers, the child of Purumitra ye brought to Vimada to be his consort.

वात–Vata (Wind)

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः ।।२।।

—दो पृथक् वायु इस ओर बहकर आ रहे हैं, सिन्धु से और दूरवर्ती देश से।

इनमें एक तुझमें दक्षता (सामर्थ्य) उत्पन्न करे, और दूसरा रोग को बहा ले जाए।

Two several winds are blowing here, from Sindhu, aud from a distant land.

May one breathe energy to thee, the other blow disease away.

त्रयन्तामिह देवास्त्रायतां मरुतां गणः।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ।।५।।
ऋग्० म० १०, अ० ११, १३७

देव यहाँ इसका परित्राण करें; मरुतों का गण इसका परित्राण करे :

समस्त भाव-रूप पदार्थ उसका परित्राण करें, जिससे यह रोग-मुक्त हो जाए।

Here let the Gods deliver him, the marut's band deliver him.

All things that be deliver him that he be freed from his disease.

अग्नि—Agni (Fire)

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ।।१।।

हमारी प्रार्थना स्वीकार कर, राक्षसों का हन्ता अग्नि, तेरे गर्भाशय में गर्भ में स्थित, एवं जिसका नाम भी पाप-रूप है ऐसे, रोग को पराहत करे।

May Agni, yielding to our prayer, the Rakshas-slayer, drive away,

The malady of evil-name that hath beset thy labouring womb.

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ।।२।।

(हे स्त्रि,) अग्नि प्रार्थना के साथ ही, मांस-भक्षक, एवं पाप-नामा उस रोग रूप कृमि को नष्ट कर दे, जो तेरे गर्भाशय और गर्भ में प्रविष्ट हो कर रहा हुआ है।

Agni, concurring in the prayer, drive off the eater of thy flesh,

The malady of evil name that hath attacked thy babe and womb.

यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम्।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ।।३।।
ऋग्० मं० १०, अ० १२, १६२

जो पतित होते हुए (गर्भाशय में निषिक्त होते हुए) गर्भ को नष्ट करने को उद्यत है, जो स्थिर हुए को अथवा स्पन्दन करते गर्भ को नष्ट करने लगा है;

एवं जो भ्रूण को प्रसवकाल में नष्ट करने को है उसे हम यहाँ से सुदूर भगा दें।

That which destroys the sinking germ, the settled, moving embryo,

That which will kill the babe at birth, even this, will we drive far away.

अप्–a (Waters)—

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ।।६।।

जलों में रोग-निवारक शक्ति हैं, जल रोग को दूर करनेवाला है। जल सबके लिए औषध-रूप हैं, वे तेरा उपचार करें।

The waters have their healing power, the waters drive disease away;

The waters have a balm for all; let them make medicine for thee.

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी।
अनामयित्नुभ्यां त्वा ताभ्यां त्वोपस्पृशामसि ॥७॥
ऋग्०, म० १०, अ० ११, १३७

जिह्वा जो कि वाणी की प्रवर्त्तिका है पहले प्रवृत्त होती है। पश्चात् अपने दश शाखाओंवाले हाथों से, रोगों के निर्मूलन करनेवाले इन दो उपकरणों के साथ हम तुझे मृदु स्पर्श करते हैं।

The tongue that leads the voice precedes. Then with our ten-fold-branching hands,

With these two chasers of diseases we stroke thee with a gentle touch.

आपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः।
सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥१८॥

मैं दैवी (दिव्य) जलों का आवाहन करता हूँ; जिनसे हमारे पशु अपनी तृषा शान्त करते हैं;

नदियों को आहुति-प्रदान हो।

I call the waters, Goddesses, wherein our cattle quench their thirst;

Oblation to the Streams be given.

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशंभुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥२०॥

सोम ने मुझे कहा : जलों के अन्तर्गत संपूर्ण औषध निहित हैं;

तथा अग्नि सबका कल्याणकारी है। जल सबके औषध-रूप हैं।

Within the Waters—Soma thus hath told me—dwell all balms that heal;

And Agni, he who blesseth all. the Waters hold all medicines.

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये।
देवा भवत वाजिनः ॥१९॥

जलों में अमृत निहित है; जलों में औषध निहित है; हे देवो, जलों की प्रशस्ति के लिए त्वरा करो।

Amrit is in Waters; in the Waters there is healing balm;

Be swift, ye Gods, to give them praise.

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे ३ मम।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥२१॥ ऋग्० म० १, अ० १, २३

हे जलो, मेरे शरीर के परित्राण के लिए आप औषध स्वरूप बनकर आओ;

जिससे मैं दीर्घकालपर्यन्त सूर्य को देख सकूं।

O Waters, teem with medicine to keep my body safe from harm;

So that I long may see the sun,

वैद्य—A Physician

कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना।
नानाधियो वसूयवः ॥ ९, ११२, ३

मैं स्तुति पाठक (चारण) हूँ, मेरे पिता वैद्य हैं, तथा माता सत्तू पीसने का कार्य करती है।

A bard am I, my dad's a leech, mammy lays corn upon the stones.

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव।
विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहाऽमीवचातनः ॥
१०।९७६

जिस प्रकार राज-परिषद् में राजाओं का समवाय होता है वैसे जिसके पास औषध संनिहित हैं,—

उस राक्षसों के निहन्ता और रोगों के विनाशकारी विप्र को वैद्य कहा जाता है।

He who hath store of herbs at hand like kings amid a crown of men.

Physician is that sage's name, fiend-slayer, chaser of diseases.

ओषधयः संवदन्ते सोमेन सह राज्ञा।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि ॥
१०।९७।२२

ओषधियाँ अपने राजा सोम के साथ संवाद करती कहती हैं :

हे राजन्, हम उसे मृत्यु से बचाती हैं, जिसका उपचार ब्राह्मण करता है।

With Soma as the sovereign Lord, the plants hold colloguy and say.

O King, we save from death the man whose cure a Brahman undertakes.

—क्रमशः (हिन्दीभाष्यकार—वैद्य रणजितराय)

—:०:—

मेरा क्षय रोग

वैद्य मोतीलाल कमल नयन पाराशर, आयुर्वेदरत्न

परिस्थिति-वश मुझे घर से दूर रहना पड़ा। मैं युवक था और मुझे आयुर्वेद का ज्ञान नहीं था। स्वास्थ्य नियमों को मैंने पढ़ा था, परन्तु नियम-पालन नहीं करता था। स्वास्थ्य-रक्षा में करना चाहता था, परन्तु असमर्थता-वश नहीं कर सका। शीतकाल में कड़ाके की ठंढ पड़ती और मैं द्रव्याभाववश बिना रजाई के ही सो जाता था। सवेरे जब उठता तो शरीर बिल्कुल अकड़ा-सा अनुभूत होता। छाती में वेदना और भारीपन का अनुभव भी होता था। इन सब पर प्रायः मैं ध्यान नहीं देता। शरीर में गरमी लाने के वास्ते कहीं से बीड़ी का टुकड़ा लाकर पीलेता। खूब खाँसी चलती, परन्तु बीड़ी नहीं छोड़ सका। कई दिनों तक पूरा भोजन नहीं मिलने के कारण और भूख मारी जाने तथा भूख निवारणार्थ दिन में किसी भी वक्त कच्चा दूध कई वक्त पीते रहने से अग्निमन्द हो गई। भाग्य से उस समय मैं अध्यापक हो गया था। फिर भी मेरे रहने का स्थान अच्छी जगह पर नहीं था। वायुमण्डल पर्याप्त गन्दा था। समीपवाले तालाब के जल में छात्रों के साथ दिन में ३-४ बार स्नान करता, अतएव सर्दी जकड़ गई। शीतकाल ने ही मुझे काफी दुर्बल कर दिया। नींद नहीं आती थी। चार बजे ही उठ पड़ता, क्योंकि करवट बदलते-बदलते कूल्हे आग हो उठते थे।

दूसरे खाँसी भी जान ले डालती थीं। जबतक १-१ करके लगभग आधा-तोला लौंग नहीं खा लेता, खाँसी चैन नहीं लेने देती थी। पूरे तीन मास खाँसी ने पीछा नहीं छोड़ा। खूब कड़क की चाय पी-पी कर पीछा छुड़ाया। पर चाय ने आदत पकड़ ली और भूख उड़ गई। दो-दो चार-चार दिन के लंघन से प्रतिश्याय होने लगा। मैं घबराया, परन्तु कर ही क्या सकता था। प्रथम तो गाँव में रहना, दूसरा योग्य चिकित्सक वा परामर्शदाता का अभाव। मैं आत्म-विश्वास खो बैठा। किसी ने दवा बताई और लाचार होकर तुलसी लौंग व कालीमिर्च का गुड़ में काढ़ा बनाकर पीता रहा। लगभग १ मास में कुछ चंगा हुआ, परन्तु मुझे मालूम हुआ चाय के कारण मर्ज बढ़ता गया है। शिरोवेदना और प्रतिश्याय जड़ से नहीं गए। कई अन्य इलाज भी किए, परन्तु सब एक दम असफल रहे। लाचार होकर बीड़ी और चाय छोड़ दी तथा प्रतिज्ञाकर ली कि फिर कभी नहीं पीऊँगा दूध प्रतिदिन सायं-प्रातः उबालकर ही पिऊँगा, ठण्डा नहीं।

मैंने सुना था और पढ़ा भी था, कि दुहा हुआ दूध ५ मिनट पश्चात् यदि लिया जाय तो उबाल लिया जाना आवश्यक है। वैसा ही करने लगा। कुछ बल आने पर डाक्टरों के पास गया तो मुझे क्षय बतलाया गया। मैं घबराया, क्योंकि वस्तुतः हालत वैसी ही खतरनाक हो चुकी थी। अर्थाभाव ने मुझे परेशान कर दिया। लेकिन मेरा अपना विश्वास आयुर्वेद पर था और मैंने अपने आप को डाक्टरों के फन्दों से बचा लिया।

मैं ने प्रातः-सायं "लवंगादि चूर्ण" दूध के साथ लेना शुरू किया। भोजनोपरान्त "हिंग्वष्टक चूर्ण" उष्णोदक के साथ लेता और दिन भर "लवंगादिवटी या "व्योषादि वटी" मुख में रख चूसा करता। सायं काल 'च्यवनप्राशावलेह' १॥ तोला पाव भर दूध के साथ लेता। यह क्रम तीन मास तक चलता रहा। खाँसी चली गई; दुर्बलता भी थोड़ी गई। केवल सप्ताह में एक बार सर्दी का होना नहीं गया। इसके अलावा शिरोवेदना के भी लक्षण कायम रहे।

अन्त में एक वैद्य मित्र ने शतपुटी अभ्रक को लहसुन की कुलियों और मधु के साथ लेने की सम्मति दी। दो मास तक यह क्रम चलता रहा और इससे काफी लाभ हुआ। इसके पश्चात् त्रिकुटा के साथ वही अभ्रक लिया और २ मास में आशातीत सफलता मिली। सायंकाल सितोपलादि चूर्ण मधु के साथ लेकर ऊपर से दूध पान करता। ईश्वर की कृपा से मेरा क्षय भाग गया। इसके अनन्तर एक मास तक असगन्ध चूर्ण दूध के साथ लेने से मेरा शरीर काफी तेजपूर्ण हो गया। सब कुछ ईश्वरेच्छा से ही रहा है, ऐसा समझ कर मन में ईश्वर-स्मरण करते रहने से कोई भी—

(शेषांश २६८ पृष्ठ पर)

आन्त्रिक क्षय रोग

डॉ० अमियनाथ मिश्र, एम० बी०

अति प्राचीन काल में तक्षक विद्वेषी प्रतिहिंसा परायण राजा जनमेजय ने अहिकुल का निधन करने के लिए एक विराट सर्पमारण यज्ञ का आयोजन कर यज्ञाग्नि प्रज्वलित करायी थी और उस ऋषिकण्ठोद्भूत मारण-मन्त्रोच्चारित हवि:पुष्ट लेलिहान यज्ञाग्नि शिखा की अदृश्य किन्तु अमोघ आकर्षण-शक्ति के प्रभाव से समग्र विश्व के सर्पकुलों ने सहस्रों की संख्या में आ-आकर उस अग्निगर्भ में आत्माहुति दी थी।

आज भी ऐसा लगता है, मानो किसी ने सारे देश में एक विराट मारणयज्ञ का व्यापक आयोजन कर रखा है और उक्त यक्ष्मा रूपी यज्ञाग्नि दावानल के समान चतुर्दिक् व्याप्त होकर मन्त्रमुग्ध सर्पकुल के सदृश मानवकुल को निर्मूल करने के लिए उद्यत हो गयी है। देश का जनसाधारण आज शंकित और सन्त्रस्त है। फिर भी, इस मारण यज्ञ की शान्ति के लिए अति क्षीण कण्ठ से मन्त्रोच्चारण आरम्भ हो गया है और ऐसी आशा है कि इसी शान्ति पाठ के पवित्र, निर्मल गंगोदक में वह दावाग्नि पूर्ण परिनिर्वाण लाभ करेगी।

शरीर के किसी भी अंश पर यक्ष्मा बीजाणुओं का आक्रमण हो सकता है; लेकिन फुफ्फुसों में यक्ष्मा-बीजाणु अपेक्षाकृत स्वस्थ, सबल और निर्विघ्न रहकर आराम से अपनी वंशवृद्धि कर सकते हैं। अतएव, फुफ्फुसों में ही वे बीजाणु अपना निवासस्थल बनाना अधिक पसन्द करते हैं। फुफ्फुसों के बाद शरीर के जिस अंश पर यक्ष्मा-जीवाणुओं का आक्रमण आसानी के साथ हो सकता है, वह स्थान है मनुष्य की पाक-प्रणाली या अन्त्र। यक्ष्मा के जीवाणु दो प्रकार से अन्त्र में आश्रय ग्रहण कर रोग की सृष्टि करते हैं। प्रथमतः प्रत्यक्षभाव से अर्थात् यक्ष्मा-बीजाणु-दूषित दूध पीने से यह रोग उत्पन्न होता है। लेकिन, भारत में गो-यक्ष्मा रोग नहीं होता; अतः यहां के मनुष्यों में दुग्धपान जनित यक्ष्मा-रोग नहीं दिखाई देता। द्वितीयतः परोक्षभाव से अर्थात् शरीर के अन्य किसी अंश में क्षयरोग रहने पर वहां से यक्ष्मा के जीवाणु रक्त संचालन और लसीका प्रवाह के मार्ग से अन्त्र में आकर आश्रय ग्रहण करते हैं और अधिकतर क्षेत्रों में इसी प्रकार आन्त्रिक क्षय रोग की उत्पत्ति होती है। फुफ्फुस का क्षयरोगी यदि अपना कफ निगल जाता है तो उक्त कफ में उपस्थित यक्ष्मा-बीजाणु अन्त्र में पहुँच कर आन्त्रिक क्षय रोग उत्पन्न कर देते हैं। इसी कारण उग्र फुफ्फुसीय यक्ष्मा रोग पीड़ित व्यक्ति प्रायः आन्त्रिक क्षय रोग से भी पीड़ित हुआ करते हैं।

मनुष्य की पाक-प्रणाली अति दीर्घ होती है और इस सुदीर्घ पथ के बीच अनेक विशिष्ट घुमावदार स्थलों पर यक्ष्मा-बीजाणु अपने वासगृह की रचना करते हैं। क्षुद्रान्त्र के शेष स्थान और क्षुद्रान्त्र एवं वृहदन्त्र के संयोग-स्थान पर प्रधानतः यक्ष्मा-जीवाणुओं का वास होता है। इन स्थानों के प्रति यक्ष्मा जीवाणुओं का विशेष रूप से प्रेम रहने का प्रधान कारण यह है कि इस सुदीर्घ पाक-प्रणाली के अन्तर्गत अनेक स्थानों पर लसीका-ग्रन्थियों का समावेश है और उक्त ग्रन्थियाँ यक्ष्मा-बीजाणुओं के लिए आदर्श वासस्थान है। क्षुद्रान्त्र के इस अंश में इन ग्रन्थियों का आधिक्य रहने के कारण यक्ष्मा के जीवाणु अन्त्र के इन भागों पर आसानी से आक्रमण करते हैं। इसका दूसरा कारण यह है कि भुक्त खाद्य द्रव्य पाकस्थली से अन्त्रद्वय के मध्य होकर जब गुजरता है तो इन स्थानों पर उसकी गति किंचित् मन्थर हो जाती है और भुक्त खाद्य-स्थित रोग-बीजाणु को इन स्थानों के अन्त्रगात्र से संलग्न रहने का सुअवसर मिल जाता है। इससे अन्त्र पर आक्रमण करने का उनको सुअवसर मिल जाता है।

यक्ष्मा के बीजाणु सर्वप्रथम लसीका ग्रन्थियों में प्रदाह की सृष्टि करते और धीरे-धीरे वहां एक गंभीर क्षत उत्पन्न कर देते हैं। इसके बाद आक्रान्त ग्रंथियों के चतुर्दिक् वह क्षत विस्तार-लाभ करता है अथवा यक्ष्मा के बीजाणु अन्त्र के अन्तर्गत में कोई क्षति पहुँचाये बिना निकटवर्ती ग्रन्थियों पर आक्रमण करते हैं और इसके परिणाम-स्वरूप सभी निकटवर्ती ग्रन्थियाँ आक्रान्त हो जाती हैं। इस

प्रकार एक के बाद दूसरा ग्रन्थि समूह आक्रान्त होता रहता है और इससे एक संगीन अवस्था की सृष्टि हो जाती है। इसको गण्डमाला जनित क्षयरोग या 'टेबेस मेसेनट्रिका' कहते हैं। कभी-कभी एक साथ आक्रान्त और परस्पर संयुक्त ग्रन्थियों के क्षत गम्भीर भाव से विस्तार लाभ कर सारे उदरगह्वर को दूषित कर देते हैं। इस सांघातिक अवस्था को 'ट्यूवरकुलास पेरिटोनाइटिस' कहते हैं।

बीच-बीच में यक्ष्मा-बीजाणु इन क्षत स्थानों से निकल कर रक्त संचालन के माध्यम से शरीर के अन्य किसी स्थान, यथा फुफ्फुस, अस्थि आदि में प्रविष्ट हो जाते एवं क्षय रोग उत्पन्न कर देते हैं। पुरातन उदरामय, शिशुक्षय आदि व्याधियों में अन्त्र के भीतरी स्तर में एक प्रदाह की उत्पत्ति होती है और यह अस्वस्थ अन्त्रगात्र सदैव यक्ष्मा-बीजाणुओं को आमन्त्रित करता रहता है। यक्ष्मा बीजाणुओं का वृहदन्त्र पर अधिकांश में आक्रमण नहीं होता। इसका कारण यह है कि वृहदन्त्र के अन्त्रगात्र में लसीका तन्तुओं का अस्तित्व बहुत कम दिखायी देता है।

आन्त्रिक क्षय रोग का निर्मूल निदान निर्द्धारित करना सहजसाध्य नहीं है। आधुनिक विज्ञान सम्मत भाव से सभी प्रकार की परीक्षा करने के बावजूद अनेक क्षेत्रों में इस रोग के प्रकृत स्वरूप का निर्णय करना तबतक असम्भव होता है, जबतक यह रोग काफी दूर तक अग्रसर नहीं हो जाता। अनेक क्षेत्रों में क्षत के काफी गम्भीर हो जाने पर भी रोग का कोई विशेष लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होता। कभी-कभी साधारण उदरामय या सामान्य ज्वर हो सकता है, पर इससे आन्त्रिक क्षय का लक्षण नहीं प्रकट होता। इसी कारण कुछ विशेषज्ञों का यह मत है कि फुफ्फुसीय क्षय रोग के प्रकट होने के बहुत पहले ही अन्त्र के किसी स्थान पर इस रोग के बीज अंकुरित हो जाते हैं। अल्प-वयस्क बालकों को यदि लम्बे अर्से से ज्वर, उदरामय, रक्ताल्पता, स्वास्थ्य का क्रमिक ह्रास, स्फूर्तिहीनता आदि की शिकायत रहती हो तो इसके पीछे इसी रोग का अदृश्य हाथ रहता है। फुफ्फुसीय यक्ष्मा के साथ-साथ यदि उदरामय एवं उदर में वेदना होवे तो ऐसा समझना चाहिये कि अन्त्र में भी यक्ष्मा रोग ने विस्तार लाभ किया है। लेकिन, इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिये कि फुफ्फुसीय रोग में पाकाशय के अम्ल रस की न्यूनता हो जाती है और इसी कारण अधिकांश क्षेत्रों में उदरामय होता है। यक्ष्मा जनित क्षत होने पर अन्त्रगात्र में प्रायः छिद्र नहीं होता, क्योंकि इस क्षत में एक प्रकार के प्रदाह-जनित रसाधिक्य से अन्त्र का एक अंश अपरांश के साथ सुदृढ़ भाव से संयुक्त हो जाता है। किन्तु क्षतों के सिकुड़ जाने से पाक-प्रणाली स्थान-स्थान पर संकीर्ण हो जाती है, फिर भी आक्रान्त व्यक्ति को इससे कोई असुविधा नहीं होती। इस रोग में सुष्ठु परिपाक-शक्ति के अभाव में युक्त खाद्य सदैव तरलावस्था में रहता है, अतएव अन्त्र में उसके गतिपथ में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती। इस प्रकार रोगी पूर्णतया अज्ञात भाव से अपने जीवन के शेष अध्याय में पहुँच जाता है। सामान्य उदरामय या दो-एक मामूली उपसर्गों के अलावा कोई विशेष शिकायत नहीं होने के कारण रोगी भी इस सम्बन्ध में विशेष जागरूक नहीं रह सकता और धीरे-धीरे उसके जीवन का अन्त हो जाता है। लेकिन, यदि किसी प्रकार प्रथमावस्था में ही रोग का निर्णय सम्भव हो तो आवश्यक चिकित्सा से रोग दूर किया जा सकता है।

---:०:---

शेषांश] मेरा क्षय रोग [पृष्ठ २९६ का

रोग या विघ्न हो, अवश्य छुटकारा मिल सकता है, ऐसा मेरा आत्म विश्वास है।

मैंने अपने स्वानुभव से जो नियम क्षयरोगियों के लिए निश्चित किए हैं, उन्हें भी यहाँ अंकित कर रहा हूँ। मैं आशा करता हूँ हमसे कोई भी क्षय-ग्रसित समझदार व्यक्ति अपने आपको इन नियमों का समुचित पालन कर, स्वास्थ्य लाभ कर सकता है।

प्रतिदिन नियमानुसार ५।। बजे बिस्तर त्याग देना, उठते ही शौचादि से निवृत्त होने से कम-से-कम मील-डेढ मील दूर शुद्ध वायुमें जाना, सूर्य-वायु और जल स्नान करना, तदुपरान्त कोई स्वास्थ्य प्रद वा रोग विनवारक औषध ग्रहण करना और ऊपर से मिश्री मिश्रित उबालकर ठण्डा किया गया दूध पीना तथा परमात्मा का भजन करना। शक्ति भर श्रम करना। साधारण—सादा भोजन करना। शुद्ध वायु व प्रकाशमान स्थान में निवास करना, ऋतु-अनुसार वस्त्र पहन कर शरीर की रक्षा करना। मल-मूत्रादि वेगों को नहीं रोकना, दिन में अधिक से अधिक केवल दो वक्त भोजन करना, प्यास लगने पर ही जल पीना। अंगों की समुचित स्वच्छता रखना, मादक वस्तुओं का त्याग करना, प्रसन्नात्मेन्द्रियमन से रहना। ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करना। अधिक उपवास नहीं करना और अधिक से अधिक सप्ताह में एक वक्त लंघन करना। अग्नि और रक्त-वृद्धि के उपचारों का अवलम्बन करना। अग्नि सम रखने और रक्त वृद्धि के लिए औटाए हुए पाव भर दूध में १ तोला गौ घृत, ६ माशे मधु, १।। तोला या तोला भर मिश्री और १७।१८ काली मिर्च के सूक्ष्म चूर्ण को मिला कर सायं-प्रातः पीना। इससे रक्ताभाव दूर हो जाता है। यदि उक्त पेय को किसी क्षयनाशक योगके साथ सेवन किया जाय तो सोने में सुगन्ध है। क्षय नाशक योग में सर्वसाधारण के लिए सस्ते और सुलभ योग सितोपलादि चूर्ण और लवंगादि चूर्ण श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड, कलकत्ता के सर्वश्रेष्ठ माने गए हैं। अतएव प्रत्येक आरोग्याभिलाषी को प्रतिवर्ष क्षय से बचने के लिए उक्त विधि से कोई चूर्ण अपनी प्रकृति के अनुसार अवश्य सेवन करना चाहिए। भोजन लगभग १–१।। घण्टे पश्चात् ही करना चाहिए।

गर्भवती स्त्रियों के लिये

श्री शीलभद्र साहित्यरत्न

अभिमन्यु ने चक्रव्यूह-भेदन की क्रिया गर्भावस्था में ही सीख ली थी। आजकल के अधिकांश मनोविज्ञान-वेत्ताओं का भी यही कहना है कि बचपन के संस्कारों में गर्भावस्था के संस्कारों का बालकों के चरित्र-निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसलिये बच्चे के भावी जीवन के विकास के लिये, उनकी सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए, माता के रहन-सहन, संस्कार, आहार-विहार पर उचित ध्यान देने की आवश्यकता है।

केवल बच्चे के विकास की दृष्टि से ही नहीं, माता के रूप, यौवन, स्वास्थ्य और मनोविज्ञान की दृष्टि से भी गर्भावस्था में माता के रहन-सहन, खान-पान और वस्त्र-भूषा पर उचित ध्यान दिया जाना आवश्यक है। सन्तानोत्पत्ति के बाद माँ के जीवन में एक नया परिवर्तन होता है। हम कह सकते हैं कि नारी के लिए सन्तानोत्पत्ति एक प्रकार का कायाकल्प है, उसके जीवन-मरण का प्रश्न है। इसलिए उक्त अवस्था में नारी जाति के सुख-स्वास्थ्य और सुविधाओं पर उचित ध्यान दिया जाना जरूरी है। इस समय की जरा-सी लापरवाही से कई भयंकर रोग और जीवन पर खतरा उपस्थित होने का भय बना रहता है। इसलिये गर्भावस्था के दिनों में काफी सतर्कता बरतने की आवश्यकता होती है।

दुर्भाग्य का विषय यह है कि हमारे स्कूल-कालेजों में बहुत-सी आवश्यक-अनावश्यक बातों की शिक्षा दी जाती है, पर उनमें मानव-जीवन के इस सब से अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न को आँखों से ओझल ही कर दिया जाता है। गर्भावस्था के प्रारम्भिक दिनों में स्त्री की अवस्था बड़ी ही विचित्र हो जाती है। कुछ अधिक संवेदनशील स्त्रियों के लिये, खासकर प्रथम सन्तानोत्पत्ति के समय, यह अवस्था जीवन-मरण के प्रश्न के रूप में उपस्थित होती है। उन्हें इन दिनों कोई भी खाद्य-पदार्थ अच्छा नहीं लगता। उन्हें प्रत्येक चीज की गंध से नफरत होने लगती है। कुछ भी मुँह में देते ही कै होने लगती है। किन्तु यह अवस्था अधिक दिनों तक नहीं रहती, प्रायः महीनों के बाद ही स्थिति में सुधार होने लगता है। इस कठिनाई पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद भी उनके जीवन में कई तरह की कठिनाइयाँ बनी ही रहती हैं। अनुभवी दम्पति के लिए तो प्रथम सन्तानोत्पत्ति और गर्भावस्था का समय बड़ा ही संकटदायी बन जाता है। अधिकांश लोग इस समय डाक्टरों के चक्कर में पड़कर स्वास्थ्य और संपत्ति, दोनों के लिये खतरा उत्पन्न कर लेते हैं।

अतः सबसे पहली बात तो यह है कि उन्हें इस बात की पहचान होनी चाहिये कि यह गर्भावस्था है, बीमारी नहीं है। इसके लिये सबसे सुन्दर पहचान यह है कि गर्भावस्था में स्त्री के कुचों के अग्रभाग की लालिमा कालिमा में परिणत हो जाती है। इसे देखकर सहज ही गर्भावस्था का अनुमान लगाया जा सकता है। इस पहचान के पश्चात् गर्भिणी के आहार-विहार पर, प्रसूतावस्था तक, ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। स्वच्छता और सफाई पर सबसे पहले ध्यान दिया जाना चाहिए। प्रतिदिन साधारण गर्म या ठंढे पानी से गर्भवती स्त्री को स्नान कराया जाना चाहिए। उसके पहनने के वस्त्र भी साफ-सुथरे एवं हल्के होने चाहिये।

जन्म से थोड़े समय पूर्व तक गर्भस्थ बच्चे की वृद्धि का साधन माता का भोजन ही होता है। इसलिए गर्भिणी के भोजन पर पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिए। गर्भिणी स्त्री के भोजन में कैलसियम (चूना) की पूरी मात्रा रहनी चाहिए। कैलसियम से ही बच्चे के दाँत और हड्डियाँ बनती हैं। यदि उसे माता के भोजन से कैलसियम नहीं मिलता है तो वह इसे माता की हड्डियों से खींचता है। उसकी इस प्रक्रिया का माता के स्वास्थ्य पर बड़ा ही बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे माता के दाँत, नाखून और हड्डियाँ तक कमजोर हो जाती हैं, उसके जोड़ों में दर्द होने लगता है। इस खतरे से बचने के लिये गर्भवती स्त्रियों को दूध अधिक पीना चाहिये। जो स्त्रियाँ मछली नहीं खाती हैं, वे कम-से-कम यदि मछलियों के तेल का भी व्यवहार करें तो अच्छा रहेगा।

कैलसियम के अतिरिक्त बच्चे को लोहे की अत्यधिक आवश्यकता होती है। गर्भावस्था में ही वह अपने यकृत में इसका संग्रह कर लेता है। पैदा होने पर वह अपने उसी भण्डार से काम चलाता है। इसके अतिरिक्त लोहा भी उसके रक्त में माता के भोजन द्वारा ही आता है। लोहा तत्व मुख्यतः हरी शाक-सब्जियों में होता है। इसलिये गर्भवती स्त्री के भोजन में हरी शाक- भाजियों की प्रमुखता होनी चाहिए। लोहे के अलावा विटामिन ए०, डी० और सी० भी हरी शाक-भाजियों में पाया जाता है। संतरा, अंगूर, मोसम्बी, सेव, जामुन, नासपाती आदि फलों का उपयोग गर्भिणी स्त्रियों को खुल-कर करना चाहिए। गेहूं, चावल, दाल इत्यादि हाथ के ही कूटे-पीसे होने चाहिए। दूध, दही और मठ्टे में विटामिन ए० और डी० मिलता है। इसलिये इनका खुल-कर प्रयोग किया जाना चाहिए। गर्भावस्था में जहाँ तक हो सके चाय से परहेज ही होना चाहिए। पानी का सेवन साधारण से कुछ अधिक करना चाहिए, ताकि मल शुद्ध हो सके और पेशाब भी साफ-साफ हो।

साधारणतः गर्भिणी को कब्जियत की शिकायत रहती है। विशेषकर प्रथम गर्भ की अवस्था में यह शिका-यत और अधिक बढ़ जाती है। इसलिये साधारणतः हल्के व्यायाम करना या थोड़ा-सा टहलना चाहिए और जुलाब इत्यादि नहीं ले कर खान-पान के द्वारा ही कोष्ठ-वद्धता को दूर करना चाहिए। स्मरण रहे कि इस अवस्था में अधिक व्यायाम नहीं करना चाहिए। प्रति दिन एक घंटे तक खुली हवा में घूमना-फिरना ही उनके लिये यथेष्ठ व्यायाम है।

गर्भिणी के कपड़े ऋतु के अनुसार उपयोगी होने चाहिए। सर्दी के दिनों में शरीरको गर्मी पहुँचानेवाले कपड़े होने चाहिए और गर्मी के दिनों में ठंढे कपड़े पहनने चाहिए। स्मरण रहे कि गर्भिणी के कपड़े साधारणतः ढीले होने चाहिए ताकि उसे चलने-फिरने में बाधा न हो।

भोजन, वस्त्र, व्यायाम आदि के पश्चात् इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिए कि गर्भिणी को पर्याप्त नींद आये, आराम मिले। ज्यों-ज्यों गर्भ बढ़ता है, गर्भिणी को अत्य-धिक विश्राम, और नींद की आवश्यकता महसूस होती है। अतः इस बात पर भी उचित ध्यान दिया जाना चाहिए। गर्भावस्था के समय स्त्री के स्तनों की ओर विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। प्रति-दिन उसे गर्म पानी एवं साबुन से धोया जाना चाहिए।

साधारणतः देहातों में देखा जाता है कि खाने-पीने के सम्बन्ध में इन दिनों स्त्रियों की प्रायः सभी इच्छाओं की यथासम्भव पूर्ति करने का प्रयत्न किया जाता है। खाने-पीने की इन सामान्य सुविधाओं के अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि इन दिनों परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार गर्भिणी के प्रति सहानुभूतिपूर्ण हो। परिवार में जहाँ तक हो सके, इन दिनों पारस्परिक वैर-विरोध और कलह नहीं होने चाहिए; नहीं तो गर्भवती स्त्री और गर्भस्थ शिशु दोनों के स्नायु-तंतुओं पर इसका बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है।

औसत स्त्री के मन में, खास कर प्रथम गर्भ के दिनों में, यह भावना जाग्रत होती है कि इसके बाद मेरा स्वास्थ्य जब शिथिल पड़ जायगा, जब मेरे यौवन की तूफानी सरिता में ज्वार के बदले भाटा आ जायगा, तब मेरे रूप-मुग्ध रस-पिपासु पुरुष का मन कहीं मुझसे विरक्त तो नहीं हो जायगा? इसलिये वे विद्युत-वेग से अपने पति की ओर आकर्षित होती है और उन्हें अपने मन-प्राण से अपनी अभीप्सित सीमा में आबद्ध कर लेना चाहती हैं। अतएव इन दिनों पति की ओर से काफी संयम, सहानुभूति एवं साहचर्य की भावना प्रकट होनी चाहिए। तभी स्त्री को मानसिक सुख-संतोष मिलता है। मानसिक साहचर्य-जन्य परितृप्ति अन्य अनेक अभावों को दूर कर सुख-संतोष प्रदान करती है।

बहुत-सी स्त्रियाँ गर्भावस्था के दिनों में चिड़चिड़े स्वभाव की भी हो जाती हैं। अतः इन दिनों इस ओर न ध्यान देकर उनके साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार की नितान्त आवश्यकता है।

वर्षा ऋतु में नीबू की उपयोगिता

श्री राधेश्याम वैद्य, आयुर्वेद शास्त्री

वर्षाऋतु में अजीर्ण, मन्दाग्नि, अरुचि, देह में भारीपन, वमन, पतले दस्त और ज्वर आदि उपद्रव अधिक होते है। उनकी शान्ति के लिये प्रकृति उन रोगों की उत्पत्ति से पूर्व ही प्रबन्ध कर देती है। हमको चाहिये कि उन विकारों की शांति के लिये प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं का उपयोग करें।

उपर्युक्त ऋतुजनित विकारों की शांति के लिये उत्तम पके हुए नीबू के फलों का उपयोग बहुत लाभकारी है। रोगी-निरोग, दुर्बल-सबल सभी इसका उपयोग कर सकते हैं। और इससे सभी लोग लाभ उठा सकते हैं।

नींबू की जातियाँ––खट्टा, मीठा, जमीरी, बिजौरा आदि नींबू की कई जातियाँ हैं। उन सबके विषय में यहाँ न लिखकर केवल खट्टे नीबू के विषय में लिखा जा रहा है।

नींबू के गुण––पके हुए नींबू का रस, तीक्ष्ण, अम्ल, रोचक, अग्नि प्रदीपक और हल्का होता है तथा कृमि-रोग, उदर-विकार, शूल, बद्धकोष्ठ, वमन, अरुचि, पित्तविकार, ज्वर आदि रोगों को नष्ट करता है। चर्म-रोग और दूषित-जल जनित विकारों की शान्ति के लिये भी यह एक उत्तम उपाय है।

नींबू के प्रयोग––(१) नीबू के २॥ तोले या ५ तोले रस में अन्दाज के अनुसार थोड़ी-सी चीनी मिलाकर पीने से पित्त की शान्ति होकर वमन और जी मिचलाना बन्द हो जाता है।

(२) नीबू के रस में थोड़ा-सा नमक और काली मिर्च मिलाकर पीने से अजीर्ण का नाश होता है और भूख खूब लगती है।

(३) अदरख के छोटे-छोटे टुकड़े काटकर उन पर नमक बुरक कर और नींबू का रस निचोड़कर भोजन के साथ सेवन करने से कफ का नाश होता है और अजीर्ण दूर होकर अग्नि की वृद्धि होती है।

(४) नीबू के दो टुकड़े करके उस पर थोड़ा-सा हिंग्वाष्टक चूर्ण भर दें और आग पर गरम करके चूसें। इससे पेट का दर्द, वायु रुकना, छाती में जलन होना, खट्टी डकारें आना तथा पेट में कृमि पड़ जाना आदि रोग दूर हो जाते हैं।

(५) नीबू के रस को पानी में मिलाकर अनीमा देने से आँतें स्वच्छ, साफ और बलवान हो जाती हैं। बवासीर के रोगी को भी इसका प्रयोग लाभदायक है।

(६) शाक-सब्जी और दाल में नीबू का रस मिलाकर खाने से वे स्वादिष्ट लगते हैं और जल्दी हजम हो जाते हैं तथा कुछ अधिक खा लेने पर भी विकार नहीं करते।

(७) नींबू के पाँच तोले रस में थोड़ी सी अदरख, हरी मिर्च और प्याज के टुकड़े काट कर डाल दें और भोजन के साथ खाएँ। यह बहुत पाचक और अग्नि-वर्धक चटनी बन जाती है।

(८) मुँह के भीतर की खुजली होने, छाले पड़ने या मसूड़ों के फूलने पर नीबू का एक छटाँक रस आध पाव जल में मिलाकर कुल्ली करने से, खुजली, छाला और मसूड़ों का फूलना बहुत जल्द मिट जाता है।

(९) यदि कहीं तालाब, पोखर, नदी, कुएं आदि का मलिन जल पीने को मिले तो उसमें नीबू का रस निचोड़ कर पीने से उस मलिन जल से रोग उत्पन्न होने का कोई डर नहीं होता, क्योंकि नीबू का रस अपनी तीक्ष्णता के कारण सारे मैल और कृमियों को नष्ट कर देता है।

(१०) जिस स्थान में बहुत से आदमी एकत्र रहते हों और यदि उनमें कुछ या सभी को खुजली का रोग हो जाय तो ऐसी हालत में ताजा नीबुओं का रस चर्म-विकार, दाद, खुजली आदि की बहुत अच्छी दवा है। दाद-खाज पर दिन में कई बार नीबू के रस में हल्दी घिसकर लगाने से वे जड़ मूल से नष्ट हो जाते हैं।

नीबू का प्रयोग सब ऋतुओं में लाभदायक नहीं है किन्तु वर्षा ऋतु में यह मानो ईश्वरीय देन है। वर्षा ऋतु के अलावा और ऋतुओं में इसका सेवन खूब सोच समझकर करना चाहिये।

Comparative diagnosis of Tuberculosis according to Ayurveda and Modern Science,

Kaviraj Manindra Lal Das Gupta.

Before taking up the question of comparative diagnosis according to Ayurveda and Modern Science, I would explain the difference in aetiology. According to the Western Medical Science, the causative organism of Tuberculosis is microbacterium-tuberculosis, but the protagonist of this science accepts the theory that for full developement of the disease, specially Pulmonary Phthisis there must be three factors, viz, the seed, the soil and the environment and they compare the onset of the disease with the Parable of the sower from the Holy Bible. The seed, of course, is Bacillus Tuberculosis, the soil is the subject where the bacillus finds a suitable ground for its developement or growth and here they accept the view that in some people there is a particular diathesis for the developement of the disease, whilst in others it is totally absent. Lastly the environment or rather social, economical and hereditory factors help in the growth of the disease.

In Ayurveda the Rishis say—

वेगरोधात् क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात्

त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतु चतुष्टयात् ।

According to Ayurveda, the bacterium is superfluous nay this science does not give any importance to the part played by the causative bacteria. According to the protagonist of Ayurveda the four cardinal causes of 'Raja Yakhma' are :—

(*i*) Withholding of natural excretions such as urination, defaecation etc.

(*ii*) Wasting in any form of the vital tissues and in this connection they describe two forms of Kshaya.

(*a*) Anuloma or in the descending scale from Rasa to Sukra or

(*b*) Pratiloma i. e. in ascending scale from Sukra to Rasa.

The Ayurvedist gives much stress on the latter variety and assigns in most cases that consumption is mostly a sequelae of excessive sex indulgence in young people.

(*iii*) For taking up physical work incommensurate with the prowess of a particular individual, one may court in the advent of this fell disease. For example if one is engaged in a boxing duel with the opponent, who excells him in all respects, the inferior party may come in for Raja-yakshma after a duel with such an opponent.

(*iv*) For the last cause they assign that indiscriminate or inordinate and promiscuous eating may bring in the onset of the disease.

From the above we can differentiate between the methods of diagnosis in Eastern and Western Systems of medicine. For the latter the following examinations with positive results are absolutely necessary for definitely giving a verdict of tuberculosis in a patient

(1) Presence of Tubercle bacillus in a sample of sputum—the negative result is nonconfirmative.

(2) Sedimentation rate of blood— rate higher than 30 m. m. in 10 minutes is always confirmative.

(3) X-Ray examination or Skiagram of the chest giving positive shadows of infiltration in any part of the lung field is the surest proof of pulmonary tuberculosis. When the test is positive no other examination is necessary. For facilities of treatment either with antibiotics or by surgical means repeated and

periodical examination of the lungs is absolutely necessary.

Clinically the diagnostic signs of pulmonary tuberculosis according to the Western medical science are the following :—

On inspection—the patient is pale anacemic, chest shallow or flat, body emaciated, eyes pearly, respiration hurried, hairs lustreless and general look anxious.

On palpation—the affected chest will elicit hyper-resonance in early state and in second or third state the vocal fremitus will be diminished or lost.

On percussion—hyper resonance in early stage, resonance diminished in advanced stage and skodaic resonance over a cavity.

On auscultation—breath sound diminished, presence of tubular breathing and the following adventitious sounds-crepitations, fine or crackling with quiet breathing and if they persist and present in one area only they are of great importance. Expiration is usually prolonged. On the other hand there are cases in which the earliest sign is a harsh rude respiratory murmur. On deep breathing, it is frequently noted that the respiration is jerky or waxy, the so called Cog-wheeled rhythm where there is consolidation of any extent. The breath sounds are tubular and in large excavations loud and cavernous and have an amphoric resonance. The vocal resonance is usually increased in all stages of the process and bronchophony and pectoriloquy are met with in regions of consolidation and over cavities. Pleuritic friction sounds may be heard at any stage and sometimes occur very early.

Signs of Cavity :—

(1) When there is not much thickening of the pleura or consolidation of the surrounding lung tissue, purcussion sound may be full and clear, resembling normal note. Cracked pot-sound may be heard and noticable change also occurs in pneumothorax, when amphoric or metallic resonance is imparted to the voice and breath sound.

(2) On auscultation, there are various grades of modified breathing-blowing, tubular, cavernous or amphoric. There may be a sharp hissing sound as if air was passing from a narrow opening into a wide space. In large cavities both inspiration and expiration may be typically amphoric.

(3) *Post-Tussive Succusion*—It is the term applied to sucking noise resembling to that produced by an India rubber ball, that has been compressed and sprung open again, which is sometimes heard after a cough. It accurs over a cavity in lung and is caused by re-entry of air.

Now we pass on to the consideration of the Ayurvedic diagnostic view points. In the Madhab Nidan (the text-book on diagnosis in Ayurveda) we get the eleven signs of Raja-Yakshma in the following sloka :—

अंसपार्श्वाभितापश्च सन्तापः करपादयोः ।
स्वरः सर्वांगगश्चेति लक्षणो राजयक्ष्मणः ।।
स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं संकोचश्चांस पार्श्वयोः ।
ज्वरो दाहोऽतिसारश्च पित्ताद्रक्तस्य चागमः ।।
शिरसा परिपूर्णत्वम् भक्तच्छन्द एव च ।
कासः कण्ठस्य चोध्वंसो विलेपः कफकोपतः
एकादशभिरेतैर्वा षड्भिंर्वापि समन्वितम् ।
यह्याच्छोषर्दितं जन्तुमिच्छन् सुविमलं यशः ।।

Fever—A four hourly chart should be taken. It is an infallible symptom of the disease and is continuous after a few months, while cavity formation sets in, it is continuous and it assumes an intermittent type.

स्वरभेदः :—It occurs in some cases and specially where the disease starts from the larynx and in late stages of the disease.

शूलं—Pain in the chest specially over the affected part of the lung.

अंसपार्श्वयोः संकोचः—Cp. Winged scapulae according to the western science. Deformity of the chest is a prominent symptom.

दाहः—Burning sensation over the extremities, nay of the whole body is another prominent symptom.

अतिसारः :—Diarrhoea—It is a late symptom and sometimes a terminal symptom.

पित्ताद्रक्तस्यचागमः:—Due to over activity of पित्त spitting of blood (Hemoptysis) occurs. I is a common symptom and in late slages sometimes ends fatally.

Compare in this connection the following sloka from 'Charaka'.

पिच्छिलं बहुलं विश्रं हरितं श्वेत पीतकम्
कासमानो रसं यक्ष्मी निष्ठीवति कफानुगम् ।

Compare also according to the Westerners, the Hippocratic saying, "From the spitting of blood, there is spitting of pus".

It occurs in 60-80% of cases. Early symptom in 10% of cases.

As a late Symptom, it is slight, apt to recur and rarely fatal.

Character of blood:—It is frothy, mixed with mucous, generally bright red in colour and where large amount is expectorated it is dark.

From the above we see that though aetiologically there is a gulf of difference between the Pulmonary Tuberculosis of the Westerners and the 'Raja-Yakshma' of Ayurveda, the eleven symptoms of Raja-Yakshma of Ayurveda are also accepted by the Westerners e. g.

श्वास—Dyspnoea.

श्रंगमर्द—Pain all over the body, specially on the chest.

कफ—Expectoration of Sputum which is a late symptom.

तालुशोष—Dryness over the palate.

उल्टी, शोध—Vomitting and dyopepsia.

मत्तता—Toximic symptoms when the whole system is infected as in Miliary Tuberculosis.

पीनस—Ozena.

निद्राधिक्य—Sleepiness.

From the above, it will be evident that to form a correct diagnosis of Raja Yakshma, knowledge of both the eastern and the western modern sciences is of great value, and a modren physician will do well together some knowledge of the eastern methods of diagnosis for Tubercular diseases, especially of the lungs, so also the Ayurvedist will be much benifited if he learns to read this skiagram of the chest and also the blood and sputun examination reports. The tragedy of mixung a case of Raj-Yakshma was a common discomfiture in olden days, but now it will be criminal on the part of a physician it be fails to diagnose a case of Raja yakshma either by Ayurvedic or by westren medical methods of diagnosis and there is no harm if be takes recourse to both the systems.

—:0:—

प्राचीन राजाओं में राजयक्ष्मा

लेखक—अत्रि

यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि सतयुग, त्रेता और द्वापर के राजाओं में से किसी न किसी को राजयक्ष्मा होने का उल्लेख हमको प्राचीन ग्रन्थों से मिल जाता है; परन्तु मौर्यकाल से लेकर आजतक किसी भी राजा को यह रोग होने का उल्लेख नहीं मिलता। इसके विपरीत मौर्यकाल से लेकर अबतक का इतिहास हमें पूर्णरूप में मिलता है। मुगल बादशाहों को बहुत विलासी कहा जाता है, परन्तु उनमें भी किसी को यह रोग हुआ हो, ऐसा इतिहास से पता नहीं चलता। मुगलकाल में या उससे पूर्व राजघराने की औरतों के लिये 'असूर्यंपश्या राजदाराः' शब्द का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने वाली स्त्रियों में भी क्षय का इतिहास नहीं मिलता।

इसके विपरीत इस पुण्यभूमि के प्राचीन राजाओं में राजयक्ष्मा होने का सम्पूर्ण उल्लेख मिलता है। सतयुग में नक्षत्रों का राजा चन्द्रमा को यक्ष्मा हुआ था।

इस राजा को यक्ष्मा किस प्रकार हुआ, इसका सुन्दर उपाख्यान अत्रिपुत्र ने चरक संहिता में दिया है। उसका सारांश इस प्रकार है कि 'प्रजापति की अट्ठाईस कन्याएँ थीं। इन कन्याओं का विवाह प्रजापति ने चन्द्रमा के साथ कर दिया था। चन्द्रमा ने इन सब कन्याओं के साथ एक समान वर्त्ताव नहीं किया। इनमें से रोहिणी नामक कन्या के साथ उनकी विशेष आसक्ति थी। इस बात की शिकायत कन्याओं ने अपने पिता ब्रह्मा से की। ब्रह्मा ने शाप देकर राजा चन्द्रमा में यक्ष्मारोग उत्पन्न कर दिया। इस रोग के होने से राजा चन्द्रमा दिन-प्रतिदिन सूखने लगे, और उनका चेहरा कान्तिहीन हो गया, भूख नष्ट हो गई, उत्साह कम हो गया। इस के बाद चन्द्रमा स्वयं प्रजापति के पास गये और उनको सब बातें कहीं, जिसको सुनकर प्रजापति प्रसन्न हुए और उन्हों ने अश्विनी कुमारो से चन्द्रमा की चिकित्सा करवाई; जिससे चन्द्रमा फिर दीप्तिमान् हो गए।

अत्रिपुत्र का यह उपाख्यान देने का यही अर्थ है कि अधिक स्त्री सेवन और शुक्रक्षय से यह रोग होता है। इसी से कहा है—

आहारस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः।
क्षयोह्यस्य बहून् रोगान् मरणं वा नियच्छति॥

शुक्रक्षय से क्षय कैसा होता है; यह भी सुन लीजिये—

"यदा पुरुषोऽतिहर्षात् प्रसक्तभावः स्त्रीष्वतिप्रसंगमारभते; तस्यातिमात्रप्रसंगात् रेतः क्षयमुपैति। क्षयमपि चोपगच्छतिरेतसि यदि मनःस्त्रीभ्योनैवास्य निवर्त्तते, अतिप्रवर्त्तत एव, तस्यचाति प्रणीतसङ्कल्पस्य मैथुनमापद्यमानस्य न च शुक्रं प्रवर्तते; अतिमात्रोपक्षीणरेतस्त्वात् अथास्य वायुर्व्यायच्छमानशरीरस्यैव धमनीरनुप्रविश्यशोणितवाहिनीस्ताभ्यः शोणितं प्रच्यावयति, अस्य पुनः तच्छुक्रक्षयात् शुक्रमार्गेण शोणितं प्रवर्तते वातानुसृतलिङ्गम्॥

इस प्रकार शुक्र क्षय से राजयक्ष्मा होता है। यह रोग सब से पहले नक्षत्रों का राजा चन्द्रमा को हुआ था, अतः इस रोग का नाम राजयक्ष्मा हुआ। कालिदास ने भी अपने कुमारसम्भ में चन्द्रमा को यक्ष्मा रोग होने का उल्लेख किया है; यथा—

दक्षस्य शापेन शशीक्षयीव प्लुष्टो हिमेनेव सरोज कोशः।
वहन्विरूपं वपुरुग्ररेतश्चयेन वह्निः किल निर्जगाम॥

अधिक स्त्री सेवन से राजयक्ष्मा जिस प्रकार चन्द्रमा को हुआ था, उसी प्रकार द्वापरयुग में अग्निवर्ण को भी अधिक विषयासक्ति के कारण यह रोग हुआ। इसका उल्लेख भी कालिदास ने किया है—

एवमिन्द्रियसुखानि निर्विशन्नन्यकार्यविमुखः स पार्थिवः।
आत्मलक्षण निवेदितानृतूनत्यवाह्यदनङ्गवाहितः॥
तं प्रमत्तमपि न प्रभावतः शेकुशक्रमितुमन्यपार्थिवाः।
आमयस्तु रतिराग संभवो दक्षशाप इव चन्द्रमक्षिणोत्॥
दृष्टदोषमपि तन्न सोऽत्यजत्संगवस्तु भिषजामनाश्रवः।
स्वादुभिस्तु विषयैर्हृतस्ततो दुःखमिन्द्रियगणो निवार्यते॥
तस्यपाण्डुवदनाल्पभूषणं सावलम्बगमनामृदुस्वना।

राजयक्ष्मापरिहानिरायया कामयानसमवस्थयऽतुलाम् ।।
व्योमपश्चिकलास्थितेन्दु वा पंकशेषमिव धर्मपल्लवम् ।
राज्ञि तत्कुलमभूक्षयातुरे वामनार्चिरिदीप भाजनम् ।।
वाढ़मेषदिवसेषु पार्थिवः कर्म साधयति पुत्रजन्मने ।
इत्यदर्शितरुजोऽस्य मन्त्रिणः शश्वदूचूरघशङ्किनी प्रजाः ।।
सत्वनेकवनितासखोऽपिसन्पावनीमनवलोक्यसंततिम् ।
वैद्ययत्न परिभाविनंगदं न प्रदीप इव वायुमत्यगात् ।।
तं गृहोपवन एव संगता पश्चिमक्रतु विदा पुरोधसा ।
रोगशान्तिमपदिश्य मंत्रिणः संभृते शिखिनी गूढ मादधुः ।।

इन श्लोकों में तीन बातों का स्पष्ट उल्लेख है : (१) अधिक स्त्री सेवन से राजयक्ष्मा हुआ ; (२) राजयक्ष्मा होने से उसका चेहरा पीला पड़ गया ; शरीर कृश होगया ; वह सहारा लेकर चलने लगा, स्वर क्षीण हो गया ; दिन-प्रति दिन सूखता गया । (३) वैद्यों से चिकित्सा करने पर भी रोग अच्छा नहीं हुआ और रोग प्रजा में न फैले, इसलिये शव को राजमहल के वगीचे में ही जलादिया गया ।

कालिदास का "वैद्ययत्न परिभाविनं गदं" यह शब्द देखने योग्य है ; वैद्यों के यत्न को भी निष्फल करनेवाला यह रोग है ।

त्रेता युग में अधिक स्त्री सेवन से विचित्र वीर्य को राजयक्ष्मा हुआ था । विचित्रवीर्य शान्तनु का पुत्र था, सत्यवती (मत्स्यगन्धा) की कोख से उत्पन्न हुआ था । इसको यह रोग युवावस्था में ही होगया था । इसकी भी चिकित्सा बड़े-बड़े वैद्यों ने की परन्तु रोग अच्छा नहीं हुआ, और अन्त में मृत्यु का कारण बना ।

विचित्रवीर्यस्तरुणो यक्ष्मयासमगृह्यत ।
सुभिपग्भिरुपक्रान्तः जगाम यमसादनम् । महाभा०
विचित्रवीर्यो विषयी विपत्ति क्षयेण यातः पुनरम्बिकायाम् ।
व्यासेन जातो धृतराष्ट्र एष लभेत राज्यं जनकः कथंते ।।

विचित्र वीर्य की चिकित्सा योग्य वैद्यों ने की थी, फिर भी सफलता नहीं मिली । उस समय अच्छे योग्य वैद्य थे, यह बात महाभारत के भीष्मपर्व से स्पष्ट है । भीष्म के युद्ध में शरशय्यापर गिर जाने पर कुशल और अच्छी तरह शिक्षित सब साधन-सामग्री से पूर्ण वैद्य आये थे । इसलिये उस समय योग्य वैद्यों की कमी नहीं थी । परन्तु यह रोग ही असाध्य रहा-जिससे राजा की मृत्यु हुई ।

द्वापर के पीछे कलियुग में यक्ष्मा से मरे किसी राजा का नाम हमें ज्ञात नहीं । इस विषय में इतिहास भी चुप ही दिखता है । विलासिता पहिले से कम है, ऐसी भी बात नहीं । विलासिता की सामग्री पहिले से अधिक है ; कम से कम सिनेमा तो नई वस्तु है ही । फिर राजाओं में इसकी मृत्यु क्यों कारण नहीं बनी, यह विचारणीय है ।

तीनों युग के दर्शन से एक बात स्पष्ट है कि अधिक स्त्री सेवन से यह रोग होता है ; इसी लिये अत्रिपुत्र ने शुक्र की रक्षा का अधिक महत्त्व बताया है । शुक्र-रक्षा ब्रह्मचर्य का महत्त्व ही इस संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग । जिसके नाम से यह रोग हुआ और होता है ।

—०—

सर्पदंश और उसका प्रारम्भिक उपचार

वैद्य रवीन्द्र शास्त्री

भारतवर्ष में प्रतिवर्ष हजारों आदमी साँप के काटने से मरते हैं और इन मरनेवालों में बहुत से ऐसे भी होते हैं, जिन्हें वास्तव में साँप ने नहीं काटा होता है या जो प्रारम्भिक उपचार से बचाये जा सकते हैं। साँप का नाम ही हमारे देश में बहुत खतरनाक माना जाता है और इसे देवता मान कर पूजा करने की प्रथा भी हमारे यहाँ मौजूद है। नागपञ्चमी और गूगा का मेला सर्पदेवता को प्रसन्न करने के ही त्योहार तो हैं। राजा परिक्षित के समय से ही साँप ने अपना विशेष महत्त्व बना रखा है और इस महत्त्व का परिचय भी मानवजाति को बराबर मिलता रहता है।

यद्यपि साँप के काटने की दुर्घटनाएँ अक्सर होती रहती हैं। किन्तु बरसात के दिनों में इनका ताँता ही बँध जाता जाता है। होता यह है कि बिलों में पानी घुस जाने से साँप के आराम में खलल पड़ जाती है और यह वायु भोजी जीव इधर-उधर छिपकर अपना जीवन बचाता रहता है। चूहों की तलाश में या उनके पीछे-पीछे यह घरों में भी आ जाता है। और किसी एकान्त स्थान में मलवे के पीछे या किसी कोने में छिप कर बैठ जाता है।

साँप क्यों काटता है ?

साधारणतः साँप उसी समय काटता है, जब किसी कारणवश उसे गुस्सा आ जाता है। अंधेरे में यदि साँप पर पैर रख दिया जाता है या कोने में छिपे हुए साँप पर कोई चीज गिरा दी जाती है तो मौका पाते ही वह काट लेता है। छेड़ा हुआ साँप तो बहुत ही खतरनाक होता है और दुश्मन की पीछा करने के लिए बड़ी तेजी से दौड़ता भी है। देवता, ऋषि-मुनि के शाप से साँप द्वारा काटे जाने का उदाहरण तो स्वयं राजा परिक्षित थे। कभी-कभी बदले की भावना से भी साँप काटते हैं और कभी-कभी स्वयं यमदेवता ही उसे काटने की प्रेरणा देते हैं।

जो भी हो, साँप का काटना मनुष्य के लिए बड़ा भारी खतरा है और इस खतरे से बचने का प्रारम्भिक ज्ञान प्रत्येक मनुष्य को होना वाँछनीय है।

झाड़-फूंक को एकदम निरर्थक न मानते हुए भी यह जरूर समझ लेना चाहिये कि साँप का जहर बहुत जल्दी अपना काम करता है। केवल झाड़-फूंक के भरोसे बैठे रहना रोगी को मौत के मुँह में डालना है, अतः आवश्यक यही है कि साँप के काटते ही आवश्यक उपचार आरम्भ कर दिया जाय।

सर्पदंश का उपचार

सभी साँप जहरीले नहीं होते, सभी साँपों का जहर भी घातक नहीं होता और घातक विष का भी इलाज हो सकता है। अतः साँप के काटने पर हताश होकर बैठने के बदले तत्काल उसका उपचार करने की जरूरत है। ऐसा भी होता है कि बिच्छू या चूहे ने काट लिया है और भ्रम हो गया कि साँप ने काटा है। यह भ्रम ही साँप के विष के लक्षण पैदा कर देता है। मानसिकस्थिति का मनुष्य पर कैसा विचित्र असर आता है, इसके उदाहरण हैजा और साँप के दंश में अक्सर देखते आते हैं। कमजोर दिलवाले स्त्री-पुरुष साधारण दस्त-कै को ही हैजा समझ कर हिम्मत छोड़देते हैं, और बड़ी जल्दी मौत के शिकार हो जाते हैं। इसी तरह विच्छू के काटने पर भी साँप के काटने का भ्रम होने पर रोगी के हाथ-पैर सूज जाते तथा वास्तव में उन पर जहर चढ़ जाता है। ऐसा भी हुआ है कि साँप ने काट खाया है और यह समझा गया है कि विच्छू ने काटा है या कोई काँटा चूभ गया है। तथा काटेजानेवाला व्यक्ति निर्भय होकर अपने काम में लग गया है, किन्तु थोड़ी देर बाद ही साँप नजर आ जाता है और तब साँप के काटने का भ्रम होने पर जहर चढ़ने के चिह्न तत्काल प्रकट होने लगते हैं। इस भय जनित विष से बचाने का मनोवैज्ञानिक उपाय यही है कि रोगी के दिमाग से यह भ्रम निकाल दिया जाय कि उसे साँप ने कटा है। साँप के काटे व्यक्ति को नीम के पत्ते खिलाने की पुरानी प्रथा में यह वैज्ञानिक तथ्य है कि यदि साँप ने नहीं काटा है या शरीर में साँप का विष नहीं चढ़ा है तो नीम के पत्तों की कड़वाहट

उसे मालूम होगी और यदि सांप का जहर शरीर में आ गया है तो नीम का कड़वापन उसे मालूम नहीं होगा।

सर्प के काटने पर यह आवश्यक नहीं है कि शरीर में जहर का प्रवेश हो जाय, क्योंकि ऐसा भी होता है कि काटनेवाला साँप जहरीला नहीं होता या काटने पर भी जहर का प्रवेश नहीं हो पाता। अतएव साँप के काटने पर एकदम ना उम्मीद कदापि नहीं होना चाहिए। सांप द्वारा काटे गये व्यक्ति को भी भी हिम्मत से काम लेना चाहिए। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एकाकी जाते हुए व्यक्ति को साँप डँस लेता है और वह व्यक्ति हिम्मत हार कर मौत की गोद में सोने की तैयारी कर लेता है।

सब से उत्तम उपाय तो यह है कि साँप के काटने पर उसके प्रतिषेधक इंजेक्शन लगवालिये जाएँ और इस कार्य में बहुत शीघ्रता की जाय। किन्तु यदि ऐसा कोई साधन उपलब्ध न हो तो स्वयं ही उचित उपचार करना चाहिए।

साँप काटने पर तत्काल उपचार अत्यावश्यक है। मोटा हिसाव यह है कि १०० गिनने में जितना समय लगता है, उतने ही समय के बाद जहर खून में मिलकर हृदय की तरफ जाने लगता है। अतः इस अल्प समय में ही प्रारम्भिक उपचार होने चाहिए। प्राथमिक उपचार यह है कि जिस जगह साँप ने काटा है, उससे दो इंच ऊपर बारीक रस्सी या कपड़े से इतना कस कर बाँधे कि खून का दौरा रुकजाय और जहर को आगे बढ़ने का मौका न मिले। कटे स्थान पर धधकता हुआ अंगार रख दें जिससे जहर वहीं जल जाय अथवा कटे स्थान में पोटास भर दें। काटे हुए स्थान पर उस्तरा या ब्लेड से थोड़ा चीरा लगा दें ताकि खून के साथ विष भी निकल जाय। साधारणतः साँप हाथ-पैर की अंगुली को ही ज्यादा काटता है। अतः देहातियों की तरह गंड़ासे या तेज कुल्हाड़े से अंगुली को ही काट दिया जाय तो खतरे की जरा भी गुंजाइश नहीं रह जाती

साँप का खून ही उसके जहर की बड़ी अमोघ औषध है, इसीलिये सर्पदंश का एक उत्तम उपचार यह बताया गया है कि जिस साँप ने काटा है उसी को पकड़ के काट लिया जाय ताकि उस का खून ही जहर को दूर करदे। किन्तु यह काम बहुत साहस का है।

मुर्गा भी सर्पदंश का बहुत अच्छा इलाज है। इसकी विधि यह है कि मुर्गे की गुदा को जरा कुचर के काटी हुई जगह पर चिपका दें। जब तक जहर रहता है तब तक मुर्गे की गुदा स्वतः ही चिपक जाती और जहर को खींचती रहती है। एक मुर्गे के बाद दूसरा मुर्गा काम में लेना चाहिए। इस तरह तब तक इस प्रयोग को करते रहना चाहिए जब तक मुर्गे की गुदा चिपकती रहे। मुंह से जहर चूसनेवाली क्रिया भी खतरे को दूर कर देती है। इस क्रिया को करनेवाले निम्नश्रेणी के लोग गांव में तो अवतक मिलते हैं। काटी हुई जगह को जरा छीलकर मुंह लगाके खून में मिले हुए जहर को चूसना और थूकते रहना कोई बड़ी हिम्मत का काम नहीं है—किंतु इसमें इतनी सावधानी जरूर रखनी चाहिए कि चूसनेवाले के मुँह में कोई जख्म न हो और चूसने के बाद मुंह को नीम के पानी या पोटाश से अच्छी तरह धो लें।

——०——

गर्भिणी के कतिपय रोगों का सरल उपचार

वैद्य बदरीनाथशर्मा शास्त्री

रोग विषय--१. ज्वर, २. तृष्णा, ३. विषमज्वर, ४. छर्दि, ५. अतिसार, ६. रक्तातिसार, ७. शिर:शूल, ८. कास, ९. योनिकण्डु-शोथ, १०. उष्णवात, ११. स्तन विद्रधि, १२. स्तनपीडा, १३. स्तनशोथ।

१--सर्वज्वरहर क्वाथ

द्रव्य--मुहलठी १ तोला, पत्रज १ तोला, पद्माख १ तोला, मिश्री २ तोला, चन्दनलाल १ तोला, अनन्तमूल १ तोला, शहद ६ माशा।

विधि--उक्त द्रव्य को यवकूट कर एकतोला पाव भर जल में दो घण्टा पूर्व भिगो दें। तदनन्तर मन्दाग्नि से पकावें। जल छटाँक भर शेष रहने पर छान लें और निवाये क्वाथ में मिश्री-शहद डालकर पिला दें।

द्रष्टव्य--प्रत्येक क्वाथ में मिश्री व शहद उक्त मान से डालें।

अन्य क्वाथ

द्रव्य--वनफ्सा ६ माशा, लालचन्दन २ तोला, कमल-गट्टा २ तोला, मुलहठी २ तोला, धनिया २ तोला, मुनक्का ६ नग, मिश्री २ तोला।

विधि--एक तोला यवकूट द्रव्य को पाव भर जल में पकावें, छटांक भर शेष जल रहने पर छान लें और मिश्री डालकर पिला दें। यह क्वाथ गरमी की ऋतु में ही दें।

गुण--ज्वर, कास, पार्श्वशूल में यह लाभ करता है।

पथ्य--हल्का भोजन, आवश्यकता होने पर बकरी का दूध दें।

अन्य योग

द्रव्य--गुलकन्द १ तो० से २ तोला तक। सौंफ का अर्क एक छटांक।

विधि--यह एक बार ही देवें। यह योग अजीर्ण से ज्वर होने पर देना चाहिए।

अन्य योग

द्रव्य--हरड़ मुरब्बा २ नग

अनुपान--निवाया मीठा दूध से दें। दूध पाव या आधा पाव लें।

अन्य योग

द्रव्य--एरण्ड तैल १ तोला, बूरा २ तोला, दूध आधा पाव।

विधि--तीनों को गिलास में मिलाकर पिला देवें।

पथ्य--चावल-मूँग की खिचड़ी।

२--तृषाहर जल

द्रव्य--पीपलत्वक् (छाल) ४ तोला के कोयले बनावें और सावधानी से जल में बुझाकर थोड़ा-थोड़ा पिलावें।

अन्य योग

द्रव्य--हरी गिलोय का स्वरस २ तोला, शहद १ तोला।

विधि--मिलाकर पिला देवें। यह ज्वर और प्यास में लाभ करता है।

अन्य योग

द्रव्य--कासनी बीज १ तोला, खूबकला १ तोला।

विधि--क्वाथ पूर्वोक्त रीति से बनाकर पिलावें।

अन्य (लाइम वाटर)

द्रव्य--बिना बुझा चूना १।। तोला, देशी खांड ६ तोला, जल १० तोला।

विधि--तीनों को खरल में डालकर खरल करें और गहरी नीली बोतल में भरकर काग लगा दें। पांच घण्टे बाद स्वच्छ जल को अन्य नीली बोतल में छान लेवें।

मात्रा--तीन बूंद से १५ बूंद तक ताजा जल मिला कर देवें।

पथ्य--दूध पाव भर, शहद १ तोला डालकर पिलावें।

३--विषमज्वर नाशक

द्रव्य--बेरकी पत्ती ७ नग, लाल मिर्च ४ नग।

विधि--जल में बारीक पीसकर चटनी-सी बना लेवें और दोनों हाथों की कनिष्टिका अंगुलियों के नाखूनों पर गाढ़ा-गाढ़ा लेप कर दें और पैरों के नाखूनों पर हुल-हुल के पत्तों का रस लगा दें। यह बारी से आने वाले ज्वर में उत्तम लाभप्रद योग है।

पथ्य—दूध मीठा मिला, ज्वर न आने पर लघु पथ्य दें।

अन्य योग

द्रव्य—नीलोफर ३ माशा, सौंफ ३ माशा, गावजुवाँ ३ माशा, छोटी इलायची ३ माशा।

विधि—यवकूट कर पाव भर जल में क्वाथ कर छटाँक भर शेष रहने पर एक बार में पिलादें।

अन्य योग

द्रव्य—कायफल १ तोला, हरड़ की छाल १ तोला।

विधि—कपड़छान चूर्णकर मधुसे दिन में तीन बार दें।

मात्रा—३ माशा। पथ्य—दूध मीठा मिला हुआ।

४—छर्दिनाशक

द्रव्य—गिले अरमनी १ माशा, शरबत विही ६ माशा, शर्बत नींबू ६ माशा।

विधि—तीनों को मिलाकर चीनी के पात्र में रख दें और दिन-रात्रि में थोड़ा-थोड़ा चटावें। यह छर्दि में अत्यन्त लाभदायक योग है।

अन्य योग

द्रव्य—अनारदाना ४ माशा, सूखापोदीना ४ माशा, कालीमिर्च ४ नग, सैन्धानमक १ माशा।

विधि—जल में पीसकर ३ बार चटावें।

अन्य योग

द्रव्य—धान की खील २ तोला, मुनक्का निर्वीज १३ नग, मिश्री देशी ४ तोला।

विधि—शिला पर पीसकर यथा रुचि चटावें।

गुण—यह वमन और दाह पर लाभदायक है।

अन्य योग

द्रव्य—जहरमोहरा खताई ३ माशा, वेरकी गुठली, ३ माशा, बड़ के गोल ३ माशा, धान की खील ३ माशा अनारदाना ३ माशा, इलायची छोटी ३ माशा, कमलगट्टा की गिरी ३ माशा, शर्वत नींबू ३ माशा, शर्वत अनार ३ माशा।

विधि—कपड़छान चूर्ण कर काचपात्र या चीनी पात्र में रख दें और आवश्यकता पर चटावें।

मात्रा—३ माशा।

द्रष्टव्य—यह योग उष्ण ऋतु में देनें से छर्दि और तृषा को तुरन्त बन्द कर देता है।

पथ्य—दूध, अंगूर और कमलानीबू का रस।

५—अतिसार

द्रव्य—गुलकन्द २ तोला, हरड़ मुरब्बा २ नग।

विधि—अतिसार प्रायः अजीर्ण से होता है अतः दोनों में से एक को आवश्यकता पर सौंफ के चार तोला अर्क से अथवा पाव या आधपाव सुखोष्ण दूध से दें।

अन्य योग

द्रव्य—सौंफ ४ माशा, गुलाव फूल ५ माशा, हरड़ की छाल १ माशा।

विधि—कपड़छान चूर्ण कर एक बार में शीतल जल से दें।

अन्य योग

द्रव्य—गगनसुन्दर रस १ रत्ती, कर्पूर रस आधा रत्ती।

विधि—दोनों को खरल करके शहद में चटा दें। यदि दस्त में आम या रक्त आता हो तो राल डेढ़ माशा और मिला दें।

विशेष—यदि दस्त में रक्त, आँव, अथवा शूल अधिक हो तो 'लवङ्गादि चूर्ण' ३ माशा शहद में चटा देने से अवश्य लाभ होता है।

पथ्य—दही, चावल-मूंग की खिचड़ी दें।

द्रव्य—रूमीमस्तगी ३ माशा, मरोड़फली ३ माशा, सूखी भांग ३ माशा, शहद २ तोला।

विधि—कपड़छान चूर्ण करके शहद में चटनी बनालें और आवश्यकतानुसार दिन में दो-तीन बार चटावें।

मात्रा—१॥ माशा से ३ माशा तक।

विशेष—यदि रक्त अधिक आता हो तो ईसबगोल की भूसी ६ माशा और मिलाकर देवें।

पथ्य—चावल-मूंग की खिचड़ी। ज्वर न होने पर केवल दही दे सकते हैं।

७—शिरः शूल

द्रव्य—वनफ्सा ३ माशा, केसर ३ रत्ती, बादाम की गिरी ३ नग।

विधि—महीन पीसकर सुखोष्णकर मस्तक पर लेप कर दें। यह लेप सूखने पर अपना गुण दिखलाता है।

अन्य योग

द्रव्य—अफीम १ रत्ती, केसर ४ रत्ती, कीकर की पत्ती ४ ... माशा, बादाम २ नग।

गुण—इसको पीसकर सुखोष्णकर लेप करने से भयंकर शिरः शूल को भी तत्काल निर्मूल कर देता है।

अन्य पौष्टिक हलुवा

द्रव्य—बादाम की गिरी ११ नग, धनिया ३ माशा, सौंफ ३ माशा, घृत २ तोला, मिश्री ४ तोला।

विधि—कपड़छान चूर्ण कर पात्र में घृत डाल कर इस चूर्ण को पकावें, फिर एक उबाल आने पर मिश्री मिलाकर खिलावें।

गुण—एक सप्ताह में शिरः शूल और अजीर्ण को शान्त कर देता है, निद्रा भी आने लगती है। यह योग पन्द्रह दिन सेवन करावें।

८—कासहर क्वाथ

द्रव्य—बनफ्सा ३ माशा, खतमी ३ माशा, गावजुवां ३ माशा, अडूसा ३ माशा, खुब्बाजी ३ माशा, मुलहठी ३ माशा, लहसोड़ा ६ नग, उन्नाब ५ नग, मिश्री १ तोला।

विधि—उक्त द्रव्यों को सायं काल पाव भर जल में भिगो दें। सुबह मन्दाग्नि से पकावें छटांक भर जल रह जावे तब मिश्री डालकर पिलावें।

९—योनिकण्डु-शोथ

द्रव्य—फिटकरी ३ माशा और जल १ सेर।

विधि—जल में ओटावें, आधासेर जल शेष रहने पर योनि-प्रक्षालन करावें।

अन्ययोग

द्रव्य—टंकण कच्चा १ माशा, कपूर १ माशा, अफीम १ माशा, गुलाब जल ३ तोला।

विधि—कपड़छानचूर्ण कर गुलाबजल में खरल कर इसमें मलमल का वस्त्र भिगोकर योनि में रखने मात्र से कण्डू तत्काल दूर हो जाती है। अनुभूत है।

योनिकण्डू पर मलहम

द्रव्य—बोरिक एसिड ३ माशा, मक्खन २ तोला, कपूर १।। माशा।

विधि—प्रथम घृत को नीम के औटाये हुए जल से बीस बार धोकर उक्त दवा को मिला लेवें और आवश्यकता होने पर लगावें। यह बहुत लाभदायक मलहम है।

१०—उष्णवात पर पिचकारी

द्रव्य—चन्दन का तैल १।। माशा, गिले अरमनी १।। माशा जल २ बोतल।

विधि—इन सब चीजों को खरल कर बोतलमें भर दें।

मात्रा—पांच-पांच तोला रात्रि-दिन में पिलावें। और पांच-पांच तोला योनि में पिचकारी लगावें।

पथ्य—दही-भात, शीतल और हल्का भोजन दें।

द्रष्टव्य—कुछ दिनों के बाद कभी-कभी चन्दन तैल के सेवन से जोड़ों में वेदना उत्पन्न हो जाती है।

पथ्य—दूध और गेहूँ की दलिया दें। नमक, मिर्चा और खटाई अपथ्य है।

११—स्तन विद्रधि

द्रव्य—पुनर्नवा (साठी) १ तोला, कनक (धतूरा) फल १ तोला, सोंठ १ तोला, सरसों १ तोला।

गुण-विधि—जल में पीसकर सुखोष्णकर लेप करने से स्तन विद्रधि बैठ जाती है।

१२—स्तन पीड़ा

द्रव्य—इन्द्रायण १ तोला, कच्ची हल्दी १ तोला, धतूरे का पत्र १ तोला।

विधि—जल में पीसकर गरम करने के बाद सुखोष्ण लेप लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

उक्त सभी प्रयोग कई बार के अनुभूत हैं। आशा हैं, इन देशी सरल प्रयोगों से भारतीय जनता लाभ उठाकर अपना अनुभव बढ़ायेगी।

---:o:---

पाठकों के विचार

दोषाणाम् क्षयवृद्धि विवेचनम्

सम्प्रति सचित्र-आयुर्वेद पत्रे फरवरीमासतः दोषाणां क्षयवृद्धि विषये यद् विवेचनं प्रचलितः तस्मिन् द्वौ पक्षौ। क्षीणाअपि दोषाः रोगकरा भवन्ति इति पूर्व पक्षः। उत्तर पक्षस्तु वृद्धा एव दोषा रोगकरा भवन्ति नहि क्षीणा दोषाः। अस्मिन् विषये युक्तिवाद पुरःसरं स्व-स्व विचारान् प्रसारयन् भिषजः तत्तु विदुषां सम्मतमेव। चरकोक्ता हि एषा सम्भाषा। सम्भाषायामेव गूढार्थ विषयाणां विनिश्चयो भवति।

इदमत्रावधेयम्—उत्तरपक्षावलम्बिभिः टीकाकाराणां मतं संगृह्य युक्तिवादेन यत् स्वाभिमतं प्रकटीकृतं तेन मूलपाठस्य हानिर्भवत्येव। यदि चेन्मूलपाठमवलम्ब्या ऽऽत्मानं टीकाकारं मन्यमाना विवेचनं विदध्युस्तदा तेऽपि स्वीकुर्युः यत् दोषाणां क्षयोवृद्धिश्च रोगोत्पादने हेतुः, नहि तावत् दोषवृद्धिरेव रोगोत्पादने हेतुरिति।

"रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता" इति वाग्भट्टोक्त्यनुसारेण क्षयं गताः वृद्धिंगताश्च दोषाः विषमगाः भवन्ति। विषमस्य भावो वैषम्यं दोषाणां वैषम्यमिति दोषवैषम्यमितिव्युत्पत्या क्षीयत्वेनापि वैषम्यं वृद्धत्वेनापि दोषाणां वैषम्यम् यद् वैषम्यं तद् रोगः। एतेन दोषाणां क्षयेणापि रुजाकरत्वाद्देहमनः पीडनात् रोगा भवन्ति तथैव वृद्धत्वेनापि रोगाः भवन्ति।

यदि नाम वृद्धि गता एव दोषाः रोगकराः भवन्ति तदा क्षीणानां दोषाणां वर्धने को हेतुः, तेषां अकिंचित् करत्वात्तेतूपेक्षणीया एव। सर्वायुर्वेदसारभूता द्विविधा एव चिकित्सा वृंहणीया क्षपणीया। यदि चेत् क्षीणानां दोषाणामरोगकर्तृत्वं तदा वृंहणीयायां चिकित्सायां व्यर्थापत्तिदोषः। तेनेदं तु निश्चितं मतमाचार्याणां क्षयंगता अपि दोषाः रोगकरा वृद्धिगताश्च रोगकरा इति।

अत्रोत्तरपक्षीयाणामेषा युक्तिः—यथा क्षीणवलाः रिपवः नैवाक्रमितुंसमर्थास्तथैव क्षीणाः दोषाः। असमीचीनेयं युक्तिः। यथा बलबन्तः वृद्धाः रिपवः आक्रम्य पीडयन्ति, तथैव क्षीणवलाः रिपवः अन्तर्दूषितात्मानो मैत्रीं सन्धाय हृदन्तं प्रविश्य, नहि तावत् पीडयन्ति, किन्तु घ्नन्त्येव। यथा पक्षाघाते कालान्तरेण क्षीयमाणो वायुपक्षस्य वधमेव करोति, तथा च वृद्धिगतोवायुरून्मादादीन् करोति।

अत्रचोत्तरपक्षीयडेंग्वेकरमहाभागस्य पूर्वपक्षीय—महाभागैः सह या संभाषा प्रचलिता अभवत्, सा शास्त्रानुकूला। ये च "वृद्धा एव दोषाः रोगोत्पादने समर्थाः न क्षीणाः" इति, एव कारेण स्वीय पाण्डित्यं प्रदर्शयन्ति ते शास्त्रार्थानभिज्ञाः। अत्र च श्रीमद्भागवतस्यामुं पद्यं स्मृतिपथमायाति यत्—"

"अकोविदःकोविदवादवादान्
वदस्यथो नातिविदां वरिष्ठः।
न सूरयो हि व्यवहारमेनं
तत्त्वावमर्शेन सहामनन्ति" ।। इति

सारसंहितानां लेखानां प्रकाशनेन पत्र-पत्रिकायां यत् सम्पादकानां च गौरवं हीयते।

एतादृशि गूढार्थ विषये शास्त्रार्थानभिज्ञानां मौनावलम्बनमेव वरम्। एतादृशि शास्त्रार्थवादविषये वैद्य विदुषां सदसि यदि विवेचनं भवेत्तदतीव समीचीनं स्यात्। लेख प्रकाशनेन एतादृशस्य विषयस्य निष्कर्षं ज्ञातुं नैव शक्यते। द्रव्यगुणविज्ञाने यथा पूर्वं सदसि विवेचनमभवत् पश्चात्तस्य पत्रपत्रिकासु प्रकाशनमभवत्। तथैव अस्मिन् विषये विवेचनपूर्वकं प्रकाशनं भवेत्। इत्यभ्यर्थ्य विद्वांसो वैद्याः निवेद्यन्ते मया यदस्मिन् विषये शास्त्रसंमत्या कयारीत्या क्षीणाः दोषाः कया रीत्या वृद्धाश्च दोषाः रोगोत्पादने समर्थाः भवेयुरिति समाधेयम्।

—महावीर प्रसाद मिश्र, बम्बई

आयुर्वेदभिषक् की उपाधि

'निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ' भारत की एक प्रमुख एवं ठोस आयुर्वेद-सेवी संस्था है। इसमें संस्कृत का अल्पज्ञान रखने वालों एवं संस्कृत का पूर्ण ज्ञान रखने वालों के लिए द्विविध परीक्षाएँ होती हैं और उन्हें क्रमशः 'वैद्याचार्य' एवं 'आयुर्वेदाचार्य' की उपाधि दी जाती है। वैद्याचार्य होने से पूर्व 'वैद्य विशारद' की एवं उससे पूर्व, 'आयुर्वेद भिषक्' की परीक्षाएँ देनी होती हैं। आयुर्वेद-

राजस्थानमें आयुर्वेद के डायरेक्टर की नियुक्ति
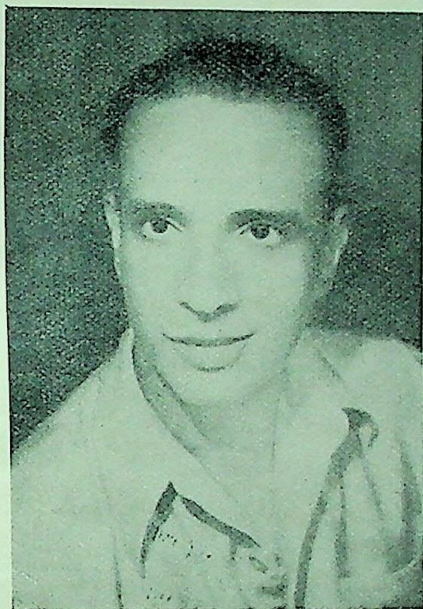
राजस्थान-राज्य के लिए यह परम गौरव की बात है कि राजस्थान के आयुर्वेद विभाग के डायरेक्टर के पदपर अब भूतपूर्व डिप्टी डायरेक्टर **कविराज पं० नित्यानन्दजी शर्मा** आयुर्वेद बृहस्पति नियुक्त हुए हैं। मैं इसके लिए राजस्थान सरकार को धन्यवाद देता हूँ तथा कविराजजी को बधाई! कविराज जी ने गत ८ जून १९५४ को डायरेक्टर का कार्यभार सम्भाल लिया है। राजस्थानी वैद्यों के लिए यह परम सौभाग्य की बात है कि कविराज पं० नित्यानन्दजी शर्मा जैसे सुयोग्य शासक और आयुर्वेद के उद्भट विद्वान उन्हें अधिकारी के रूप में मिले हैं। श्रीयुत कविराजजी की विद्वत्ता एवं कार्य-कुशलता से आयुर्वेद-जगत पूर्ण परिचित है। **सचित्र आयुर्वेद** पर तो आपकी कृपादृष्टि बराबर रहती ही है। हमें आशा है कि कविराजजी जैसे सुयोग्य शासकों द्वारा आयुर्वेद के लिए ऐसे रचनात्मक कार्य होंगे, जिनसे सरकारी कर्मचारियों के अन्दर आयुर्वेद के प्रति जो कुछ भ्रान्त धारणाएँ बनी हुई हैं, वे सब दूर होकर राजस्थान में आयुर्वेद की पताका पूर्ववत् लहराती रहेगी।

—स० सम्पादक

गत जून मास में सूर्यग्रहण के अवसर पर भारत की पुण्यभूमि कुरुक्षेत्र में लाखों स्नानार्थी एकत्र हुए थे। उक्त अवसर पर **श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० झांसी** की ओर से जनता को विशुद्ध आयुर्वेदीय दवाइयाँ सुविधानुसार उपलब्ध करने के उद्देश्य से कुरुक्षेत्र में एक सेल डीपो खोला गया था, उसी का यह एक दृश्य है।

भिषक् होने के पश्चात् विद्यार्थी को "आयुर्वेदभिषक्" का प्रमाण पत्र मिल जाता है और इसके बाद वह 'वैद्य-विशारद परीक्षा में शामिल हो सकता है। 'आयुर्वेद-भिषक्' परीक्षा में प्रतिवर्ष अधिकाधिक छात्र शामिल होते हैं। उनकी संख्या अन्य परिक्षार्थियों से हर वर्ष अत्यधिक होती है।

बहुत से बेकार युवकों को जब कोई रोजगार नहीं मिलता तो वे "आयुर्वेद भिषक्" का प्रमाण पत्र सरलता-पूर्वक प्राप्त करके देहातों में चिकित्सा-कार्य शुरू कर देते हैं। चिकित्सा के लिए प्रमाण पत्र तो उन्हें मिल ही जाता है, अतः बाद की परीक्षाओं को वे बेकार समझते हैं। इसका फल यह होता है कि वे अत्यन्त न्यून आयुर्वेद-ज्ञान प्राप्त करते हैं और वास्तविक आयुर्वेद-ग्रन्थों को वे देख नहीं पाते। उनका आयुर्वेद ज्ञान अधूरा रह जाता है और इसी कारण वे धड़ाधड़ इञ्जेक्शनों तथा एलो-पैथिक दवाओं का प्रयोग करते हैं। चिकित्सा का ज्ञान कम होने से वे सैकड़ों रोगियों को मौत के मुख में डाल देते और आयुर्वेद के "प्रमाण पत्र" के सहारे जनता का अपकार करते हैं। डाक्टरों के समक्ष एवं जनता के समक्ष, शुद्ध आयुर्वेद-ज्ञान से सर्वथा वंचित वे वैद्य, आयुर्वेद को बदनाम करते हैं। आत्म-ज्ञान से तपे हुए ऋषियों द्वारा प्रणीत, जनकल्याणकारी इस आयुर्वेद को वे नीचा दिखलाने में सहायक होते हैं। इस तरह आयुर्वेद के लिए वे कलंक सिद्ध होते हैं।

आयुर्वेद महासम्मेलन के कर्णधार शायद यह सोचते हैं कि बहुमत विजयी होता है; अतः वैद्यों की संख्या बढ़ाई जाए। लेकिन आयुर्वेद-ज्ञान से वंचित ऐसे वैद्य आयुर्वेद को जनता की नजरों में हेय बनाते हैं। अतः आयुर्वेद महा-सम्मेलन के कर्णधारों से मेरा विनम्र निवेदन है कि यदि वे वास्तव में आयुर्वेद को समुन्नत एवं राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति के रूप में देखना चाहते हैं तो वे इस "आयुर्वेद-भिषक्" परीक्षा को बन्द कर दें और इसके स्थान में 'वैद्य विशारद' परीक्षा के ही प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ इस तरह चार खण्ड कर दें। वैद्य विशारद परीक्षा के चारों खण्डों में उत्तीर्ण होने पर ही प्रमाण पत्र दिए जाएँ। इससे आयुर्वेद का एवं जनता का काफी भला होगा।

—वैद्य गजानन शर्मा, काँसली

सनातनधर्म आयुर्वेद महाविद्यालय

बीकानेर में श्री सनातनधर्म आयुर्वेद कालेज ने ग्रीष्मा-वकाश के बाद अपनी उन्नति के पूरे ९ वर्ष पार कर १० वें वर्ष के नवप्रभात में एक विशेष आयोजन के साथ पदार्पण किया है। कालेज के लिए एक सुविशाल भवन हैं जहाँ काफी बड़ी संख्या में विद्यार्थी अध्ययन कर सकते हैं। आयुर्वेद के लिए एक अच्छी सेवा करने वाला सिद्ध हो रहा है। यहां आयुर्वेदाचार्य तक प्रायोगिक ज्ञान के साथ अध्ययन कराया जाता है। आयुर्वेद-पद्धति के साथ ही साथ छात्रों को आधुनिक चिकित्सा-प्रणाली का ज्ञान कराने के लिए विशेष चिकित्सक नियुक्त हैं। इस कालेज की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि छात्रों की विशेष ज्ञान वृद्धि के लिए वर्ष में एक-दो बार बाहर से ख्याति-प्राप्त चिकित्सक बुलाये जाते हैं, जहां विद्यार्थी रोगी-परि-चर्य्या के साथ ही साथ अपनी ज्ञान-वृद्धि कर सकते हैं। हाल में नेत्र-रोग-चिकित्सा के लिए कैम्प लगा था, जिसमें बाहर से नेत्र-रोग-विशेषज्ञ आये थे। छात्रों के रहने के लिए छात्रावास का प्रबन्ध निःशुल्क है। इसके साथ ही साथ बिजली, नल आदि की आवश्यक सुविधाएँ निःशुल्क दी जाती हैं। योग्य छात्रों को छात्रवृत्ति भी दी जाती है।

—दीनानाथ शर्मा वैद्य, व्यवस्थापक

आयुर्वेद के विकास का उपाय

आयुर्वेद एवं एलोपैथी के समन्वय के प्रश्न पर इन दिनों आयुर्वेदज्ञों के आलोचनात्मक विचार बहुत सरगर्मी के साथ प्रकाशित हो रहे हैं। कुछ विद्वानों द्वारा आयु-र्वेद को ऐलोपैथी में मिलाने का जहां सुझाव उपस्थित होता है, वहीं कुछ अन्य विद्वानों द्वारा ऐलोपैथी को आयुर्वेद में सम्मिलित करने के हेतु आवाज उठायी जा रही है। यहाँ तक कि इन चिकित्सा पद्धतियों को बड़प्पन और लघुपन का विशेषण देकर विज्ञान का अपमान किया जा रहा है। विज्ञान कभी छोटा नहीं होता, चाहे वह आयुर्वेद हो या ऐलोपैथी। यदि ऐलोपैथी का प्रादुर्भाव आयुर्वेद से हुआ है तो क्या ऐलोपैथी आयुर्वेद के लिये गौरव की चीज नहीं है? कुछ भी हो, मात्र विदेशी चिकित्सा-प्रणाली होने के कारण उसकी उपेक्षा वर्जनीय है। किन्तु इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि आयुर्वेद की उपेक्षा की जाय। मेरे विचार से दोनों विज्ञानों का भारतवर्ष में विकास व

प्रसार होना चाहिए और दोनों के द्वारा जनता-जनार्दन के कल्याण की कामना होनी चाहिये। आयुर्वेद व ऐलोपैथी के विकास स्तर का निष्पक्ष सिंहावलोकन करने से ऐलोपैथी का स्तर उच्च दिखाई देता है। बहु परिश्रम, अनवरत अध्यवसाय और विभिन्न अन्वेषणों की देन से ऐलोपैथी को यह रूप मिला है। यदि आप आयुर्वेद के उपासक हैं—आयुर्वेद से संसार का कल्याण करना चाहते हैं, तो मनसा-बाचा-कर्मणा आयुर्वेद पर न्यौछावर हो जाइए और आयुर्वेद के विकास-अवरोधक कारणों का संगठित रूप से निराकरण कीजिये। मेरा अटल विश्वास है यदि सारे हिन्दुस्थान के आयुर्वेदज्ञ व आयुर्वेदप्रेमी एक शक्तिशाली सगंठित सूत्र में बंधकर आयुर्वेद विकास के हेतु जुट जाएं तो कुछ दिनों के पश्चात् हमें सहायता के लिए भारत सरकार का मुंह ताकने की आवश्यकता नहीं होगी। —**नर्मदा प्रसाद श्रीवास्तव**

हीरा-भस्म की निर्माण-विधि

मुझे हीरे की भस्म बनानी है। इस विषय में जिन सज्जनों को क्रियात्मक ज्ञान हों, वे कृपया निम्न बातों पर प्रकाश डालने की कृपा करें।—

(१) भस्म के लिये हीरे का चूरा लेना चाहिये या हीरा काटते समय उतरे हुए परत लेने चाहिये ?

(२) कम से कम कितनी मात्रा में हीरा चाहिये ? खरल कौन-सी बरती जाये ?

(३) शोधन और भस्म की विधि क्या है ? इसका रंग कैसा होगा ? पुट में आंच कितने अरणों की देनी है।

(४) विशेष अन्य जानकारी सावधानी जो अपेक्षित हो। इस सम्बन्ध में पूर्ण विवरण कृपया 'सचित्र आयुर्वेद' में छपवा दें या सीधा मुझे लिखें। मैं आभारी रहूँगा। —अत्रिदेव ; सुपरिण्टेण्डेण्ट, आयुर्वेद फार्मेसी, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी, बनारस।

——:o:——

बच्चों की रहस्यमयी बीमारी

कुछ दिन हुए उत्तर प्रदेश के शहरों और दिल्ली में एक रहस्यमयी बीमारी ने अनेकों बच्चों को कराल काल के मुख में ढकेल दिया। उत्तर प्रदेश के सरकारी हस्पताल और सर गंगाराम हस्पताल इस रोग की खोज कर रहे हैं। दिल्ली में मेडिकल ऐसोसियशन की बैठक इस पर विचार कर रही है। ऐलोपैथिक के इलाहाबाद के प्रमुख चिकित्सक डॉ० ए० मुखर्जी ने इस रोग को **घातक मलेरिया** कहा है। उन के हस्पताल में १४ बालक मरे हैं, खून टेस्ट में मलेरिया के कीटाणु दो में मिले हैं और दो में नहीं मिले। इलाहाबाद के सिविल सर्जन डॉ० मिश्रा के हस्पताल में ८ मरे। उन्होंने इसे **मस्तिष्क शोथ** कहा है। टाटा मेन हस्पताल जमदेशपुर के डॉ० जनरल के० एस० तथा कर्नल नजीब खाँ विचार विनिमय के अनन्तर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ग्लूकोज़ की न्यूनता रोग का प्रमुख कारण है। उत्तर प्रदेश मलेरिया विभाग के भूतपूर्व सहायक डायरेक्टर श्री डॉ० जी० घोष ने इसे **मस्तिष्क शोथ** कहा है। इसके लक्षण विशेष मलेरिया से मिलते हैं। उनका वक्तव्य है कि रक्त-परीक्षा के बिना डॉक्टर अन्धाधुन्ध मलेरिया विरोधी दवाईयों का प्रयोग कर रहे हैं, जिस कारण मृत्यु संख्या बढ़ रही है "यह रोग तीव्र ज्वर और उल्टी से प्रारम्भ होते हैं। थोड़ी देर में श्वास का आना जाना बन्द हो जाता है। शरीर का तापमान १०८ डिग्री तक पहुँच जाता है। शरीर का रंग नीला हो जाता है। प्रायः ८-१० घण्टे में और कुछ की २० घण्टे में मृत्यु हो गई है। प्रायः ५ से ११ वर्ष के बालकों पर आक्रमण हुआ है। आज से दो वर्ष पूर्व मेरी सुपुत्री आशा कुमारी ५ वर्षीय बालिका की लखनऊ, अपने ननिहाल में इन्हीं लक्षणों से रुग्णा हो कर मृत्यु हुई थी। एलोपैथी डॉक्टर इस रोग की चिकित्सा घातक मलेरिया, गर्दन तोड़ बुखार और मस्तिष्क शोथ की भाँति करते हैं। आयुर्वेद में इस रहस्यमय रोग को **सन्निपात** रोगों में लिया जाय और चिकित्सा तीव्र ज्वर को कम करने की पैत्तिक तथा कम्प, कपकपी और मूर्छा की वातिक की जाये। अखिल आयुर्वेद विद्यापीठ आयुर्वेद मण्डल, यू० पी० और देहली के प्रमुख आयुर्वेद विद्वानों से प्रार्थना है कि इस रोग का विवरण सरकारी हस्पतालों से प्राप्त कर खोजपूर्ण रोग निर्णय और चिकित्सा पर प्रकाश डालें। इस रोग के सम्बन्ध में शोध करने का उत्तरदायित्व स्वयं लें। सरकारी स्वास्थ्य विभाग को और आयुर्वेद के समस्त पत्रिकाओं को इस की सूचना दें, अपने इस महान् कर्त्तव्य का पालन करें, और आयुर्वेद का गौरव बढ़ायें। —**आत्रेय**

आयुर्वेद-जगत्

आयुर्वेद को प्रोत्साहन देने की मांग

हैदराबाद में गत मई मास के अन्त में अनुष्ठित सार्वदेशिक अष्टम आर्य महासम्मेलन के स्वास्थ्य सम्मेलन में अनेक प्रस्ताव स्वीकृत हुए तथा आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति को प्रोत्साहन देने का सरकार से अनुरोध किया गया। प्रस्तावों के पूर्ण विवरण निम्न प्रकार है :—

'हैदराबाद सरकार ने ५२ राजकीय औषधालय तथा इतने ही सहायक औषधालय और एक आतुरालय, एवं एक आयुर्वेदिक फार्मेसी खोलकर जनहित की ओर प्रशंसनीय कदम उठाया है। अतः यह सार्वदेशिक अष्टमार्य महासम्मेलनान्तर्गत स्वास्थ्य सम्मेलन हैदराबाद सरकार को हार्दिक धन्यवाद करता है।'

'हैदराबाद सरकार ने आयुर्वेदज्ञों को अपने संसर्गीय आतुरालय में विशूचिका (कॉलरा) तथा कुष्ठ रोगियों की सेवा का अवसर प्रदान किया है, अतः यह स्वास्थ्य सम्मेलन सरकार का आभार मानता है और सरकार से प्रार्थना करता है कि उनकी कठिनाइयों को समझते हुए विशेष सुविधाएँ प्रदान करें, जिससे वे जनता की विशेष सेवा कर सकें।'

'यह स्वास्थ्य सम्मेलन केन्द्रीय और हैदराबाद-राज्य सरकारों का ध्यान सरकारी आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम की अनुपयुक्तता की ओर आकर्षित करता है, जो आयुर्वेदानभिज्ञ डाक्टरों अथवा उन्हीं के नियुक्त किए गए वैद्यों द्वारा निर्मित किया गया है और जिसमें डाक्टरी इतनी प्रभूत अंश में विद्यमान है कि पाठ्यक्रम के स्नातक न सच्चे वैद्य बनते हैं और न डाक्टर ही और न तो आयुर्वेद के विद्वान् ही बनते हैं, न उसके प्रति श्रद्धा ही रखते हैं। अतः यह सम्मेलन अनुरोध करता है कि शीघ्रातिशीघ्र वैद्य समाज द्वारा ही चुने गए आयुर्वेदज्ञों द्वारा ऐसे पाठ्यक्रम का निर्माण कराए, जिसमें आयुर्वेदीय चिकित्सा शास्त्र और पद्धति का पूर्ण प्रतिनिधित्व हो; जिससे जनता को आयुर्वेद के नाम पर वास्तविक आयुर्वेदिक चिकित्सा प्राप्त हो।'

'प्रायः देखा जाता है कि आयुर्वेदीय बोर्ड में बहुमत एलोपैथिक डाक्टरों का होता है और जो वैद्य उनमें मनोनीत होते हैं, वे उनके भक्त होते हैं, उनसे आयुर्वेद-शास्त्र का भला नहीं होता। अतः यह स्वास्थ्य सम्मेलन केन्द्र और राज्य सरकारों से प्रार्थना करता है कि निर्वाचन के आधार पर निर्वाचित वैद्य ही बोर्ड के सदस्य और प्रधान (डायरेक्टर आफ इंडियन मेडिसीन) हों और उन्हीं के द्वारा आयुर्वेद के भविष्य का निर्माण हुआ करे।'

'स्वास्थ्य सम्मेलन को इस बात का दुःख है कि हैदराबाद राज्य में रजिस्ट्रेशन एक्ट समता पर आधारित नहीं है। देशी चिकित्सकों से २५ रुपये हाली सिक्का और डाक्टरों से इससे आधे से, कम लिया जाता है। यह एक्ट अनेक दोषों से पूर्ण भी है अतः सरकार से प्रार्थना है कि इस एक्ट का शीघ्र ही सुधार हो।'

'यह स्वास्थ्य सम्मेलन हैदराबाद सरकार से अनुरोध करता है कि रजिस्टर्ड वैद्यों को भी वह सम्पूर्ण अधिकार प्रदान करे जो इस राज्य में अन्य रजिस्टर्ड चिकित्सकों को प्राप्त है।'

यह सम्मेलन राज्य-सरकार से आग्रह करता है कि भारत के अग्रणी राज्य बम्बई की सरकार ने आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम के लिए जो प्रवेश-योग्यता स्वीकार की उसी को हैदराबाद राज्य भी स्वीकार करे और जनता तथा आयुर्वेद के कल्याण के लिए वही पाठ्यक्रम यहाँ भी चलाए, जिससे आयुर्वेद विद्यालयों के स्नातक आयुर्वेद के ऊँचे विद्वान् बन सकें। इस विषय में यह सम्मेलन सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता है कि इस समय आयुर्वेदिक कालेज में जो प्रवेश योग्यता रखी है, वह ऐसी नहीं कि विद्यार्थी आयुर्वेद का साधारण प्रारम्भिक ज्ञान भी प्राप्त कर सकें।

'यह स्वास्थ्य सम्मेलन अनुभव करता है कि भारत में नकली खाद्य पदार्थों की भरमार हो गई है जिस से साधारण जनता का स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। अतः केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों से यह सम्मेलन प्रार्थना करता है कि इन्हें अवैधानिक घोषित किया जाय और इनके निर्माण

कर्त्ताओं को तथा क्रय-विक्रय कर्त्ताओं को कठोर से कठोर दण्ड देने की व्यवस्था की जाय।'

'हैदराबाद राज्य में ९० प्रतिशत रोगियों की चिकित्सा आयुर्वेदिक पद्धति से होती है, अतः यह स्वास्थ्य सम्मेलन हैदराबाद सरकार से माँग करता है कि हैदराबाद राज्य में प्रति पाँच हजार जनता पर एक आयुर्वेदिक औषधालय की व्यवस्था अवश्य की जाय।'

डा० राधाकृष्णन द्वारा आयुर्वेद की प्रशंसा

उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् १२ अगस्त को आत्मविज्ञान भवन, रामनगर (ऋषिकेश) में आये। वेदपाठियों द्वारा प्रधान द्वार और सत्संग भवन में आपका स्वागत हुआ। इस अवसर पर उपराष्ट्रपति ने कहा कि 'इस आत्मविज्ञान भवन को देख कर बड़ा हर्ष हुआ। इस समय देश की माँग है कि देश को सत्य शिक्षा से शिक्षित किया जाय। आशा है कि यह संस्था वास्तव में आत्म-विज्ञान करा कर मनुष्यों तथा जगत् का कल्याण करेगी। आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना के सम्बन्ध में आपने कहा कि आयुर्वेद वर्तमान के विज्ञानों जैसा नहीं, वरंच यह तो आरोग्य-शास्त्र है। केवल शरीर की चिकित्सा नहीं, विद्या, बुद्धि, बल को भी आयुर्वेद बढ़ानेवाला है। इसीसे प्राचीन ऋषियों ने भारत के आयुर्वेद को जो महत्व दिया है, वह दूसरी पद्धतियों में नहीं मिल सकता है।'

रहस्यमय रोग का प्रसार

भारत के विभिन्न स्थानों में पिछले कुछ महीनों से एक रहस्यपूर्ण रोग फैला हुआ है। इस रोग के कारण अबतक शताधिक बालकों की मृत्यु हो चुकी है। सर्वप्रथम जमशेदपुर में करीब दो दर्जन बालकों को यह रहस्यपूर्ण रोग हुआ और प्रायः सभी बालक अल्पकाल में ही मृत्यु के शिकार हो गये। उत्तर प्रदेश के कई स्थानों में भी इस रोग का प्रकोप हुआ और अनेक बालकों की मृत्यु हो गयी। कलकत्ता में भी इस रोग के प्रकोप से अछूता नहीं रहा और इस रहस्यमय रोग से ग्रस्त करीब एक दर्जन बालकों को अस्पताल में दाखिल किया गया। उनमें से प्रायः सभी बालक मृत्यु के शिकार हुए। चिकित्सकों का कथन है कि कुछ वर्ष पूर्व इस प्रकार कोई रोग देखने में नहीं आया था। इस रोग का निदान करने में अबतक सफलता नहीं मिल सकी है। कुछ डाक्टरों ने इसको 'मस्तिष्क प्रदाह' बतलाया है और कुछ लोग इसे शिशुपक्षाघात कहते हैं। पर यह ठीक नहीं माना जा रहा है। इस रोग से ग्रस्त बालकों की दशा बड़ी दयनीय होती है। बालक किसी को पहचान नहीं पाता और उसके शरीर से स्पर्श-शक्ति का लोप हो जाता है। कलकत्ता के एक शिशु-चिकित्सा विशेषज्ञ ने बतलाया है कि इस रोग की उत्पत्ति के कारणों का पता लगाने की चेष्टाएँ हो रही हैं। उत्तर प्रदेश की सरकार ने इस रहस्यपूर्ण रोग की चिकित्सा के लिए व्यापक प्रबन्ध किया है, किन्तु निदान के अभाव में में चिकित्सा सफल नहीं हो रही है।

केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद की बैठक

दिल्ली में गत २० अगस्त को केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रिणी राजकुमारी अमृतकौर की अध्यक्षता में केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद की कार्यसमिति की पहली बैठक हुई। इसमें गैर-रजिस्टर्ड लोगों को चिकित्सा करने से रोकने के विधान के मसौदे पर और आयुर्वेदिक, यूनानी व होमियोपेथिक चिकित्सकों को अपने नुस्खों में विषाक्त (टाक्सिक) दवाएँ देने के अधिकार के विषय में विचार किया गया। आयुर्वेद में गवेषणा का काम तीव्र करने के लिए आवश्यक उपायों पर भी विचार-विनियम हुआ। निश्चय हुआ कि विधान के प्रारूप को राज्यों का मत जानने के लिए भेजा जाए।

आयुर्वेद गवेषणा के लिए राज्य सरकारों से जो सुझाव आए हैं, इनकी जाँच-पड़ताल का काम एक विशेष समिति करेगी और इस समिति से आयुर्वेदिक, यूनानी तथा होमियोपैथिक प्रणालियों के प्रमुख चिकित्सक भी संबद्ध रहेंगे। इन चिकित्सकों को औषधियों की कैसी जानकारी कराई जाती है और उनकी संस्थाओं में किस प्रकार का शिक्षण दिया जाता है, इसकी भी जाँच करने का निश्चय हुआ। यह जाँच विशेषज्ञों का एक दल करेगा और जाँच हो जाने के बाद इस प्रश्न पर फिर विचार किया जायगा कि वैद्यों, हकीमों व होमियोपैथों को विषाक्त दवाएँ अपने नुस्खों में मिलाने का अधिकार दिया जाना चाहिए या नहीं।

पुनर्वसु आयुर्वेद विद्यालय

बम्बई सरकार द्वारा स्वीकृत शुद्ध आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम की शिक्षा के लिए 'श्री आयुर्वेद प्रचार संस्था' द्वारा स्थापित पुनर्वसु आयुर्वेद विद्यालय का उद्घाटन समारोह

गत ५ जुलाई को आयुर्वेद-वृहस्पति वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा जी के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ। विद्यालय का उद्घाटन पूज्यपाद श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य के मंगल कर कमलों द्वारा हुआ। श्री आचार्य जी ने अपने भाषण में कहा कि सरकार द्वारा शुद्ध आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम को स्वीकृति मिलने से गत कई वर्षों से वैद्य-समाज में उत्पन्न एक बड़ी चिन्ता का निवारण हुआ है, किन्तु इसके साथ ही उसपर एक बड़ा भारी उत्तरदायित्व भी आ पड़ा है। इस पाठ्यक्रम से तैयार होनेवाले छात्र यदि हमारी इच्छा के अनुरूप नहीं हो सके तो हमें नीचा देखना होगा। आपने सभी वैद्यबन्धुओं से आग्रह किया कि वे पूर्ण प्रयत्नों के साथ आयुर्वेदोन्नति के लिए अग्रसर हों। वैद्यरत्न पं० शिव शर्माने 'शुद्ध आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम' के महत्व तथा उसकी पृष्ठभूमि को समझाया। आपने केन्द्रीय सरकार की आयुर्वेद विरोधी नीति की निन्दा की तथा बम्बई सरकार की नीति की प्रशंसा की।

संस्था के मन्त्री वैद्य श्रीराम शर्मा आयुर्वेदाचार्य ने संस्था की गतिविधियों पर प्रकाश डाला तथा विद्यालय के अध्यापक-समूह का परिचय दिया। विद्यालय का अवैतनिक अध्यक्षपद आयुर्वेद के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य श्री हरिदत्तजी शास्त्री (भूतपूर्व सभापति, नि० भा० आ० विद्यापीठ) अलंकृत करेंगे।

संस्था के सभापति वैद्य पं० रामगोपालजी शर्मा ने यूनिवर्सल हेल्थ इंस्टिट्यूट के सञ्चालकों का, जिन्हों ने विद्यालय के लिए स्थान की सुविधा की है, तथा सभी पधारे हुए सज्जनों का आभार प्रदर्शित किया।

सारंगढ में आयुर्वेदिक औषधालय

सारंगढ में उलखर जनपद आयुर्वेदिक औषधालय का उद्घाटन स्वास्थ्य विभाग के अध्यक्ष श्री हीरालाल जी पटेल द्वारा सम्पन्न हुआ।

औषधालय के लिये उलखर ग्राम निवासियों ने एक मकान जनपद को प्रदान किया है। इसके लिये अध्यक्ष ने जनपद की तरफ से जनता का हार्दिक अभिनन्दन किया। इस अवसर पर स्थानीय जनता काफी संख्या में उपस्थित थी। औषधालय के प्रधान चिकित्सक ने अपने भाषण में कहा कि आयुर्वेद से भारतवासियों की ही स्वास्थ्य रक्षा नहीं होती अपितु यह विज्ञान-शास्त्र अखिल विश्व के प्राणिमात्र की स्वास्थ्य-रक्षा का भण्डार है। विशेषतः ग्राम्य चिकित्सा की समस्या तो आयुर्वेद ही हल कर सकता है। उन्होंने बताया कि इस औषधालय की लोकप्रियताका एकमात्र कारण विशुद्ध आयुर्वेदोक्त विधि से तैयार **श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की औषधें ही हैं। गत कई वर्षों से श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा निर्मित दवाओं से यहां चिकित्सा की जा रही है।**

आयुर्वेदिक कालेज के छात्रों में असन्तोष

उदयपुर गवर्नमेण्ट आयुर्वेदिक कालेज में इस वर्ष भी आचार्य की कक्षाएँ चालू न होने से आयुर्वेदिक क्षेत्र में काफी असन्तोष व्यक्त किया जा रहा है। मालूम हुआ है कि राजस्थान आयुर्वेदिक विभाग के भूतपूर्व डाइरेक्टर ने उक्त कक्षाओं को बन्द करने का आदेश दिया था। गत वर्ष भी छात्रों की ओर से काफी असन्तोष व्यक्त किया गया और कक्षाएँ खुलवाने के हेतु मांग की गई थी। अधिकारियों तथा मंत्रियों से शिष्ट मण्डल भी मिला था, परन्तु आश्वासनों के अतिरिक्त उन्हें कुछ नहीं मिला। आशा थी कि इस वर्ष कक्षाएँ खुल जायँगी, परन्तु उनके चालू नहीं होने से छात्रों में भारी असन्तोष फैल रहा है। कक्षाएँ चालू करने में राज्य सरकार को कोई विशेष व्यय नहीं करना पड़ता है। डूंगरपुर, बांसवाड़ा, सादड़ी जैसे सुदूर क्षेत्रों के निवासी गरीब छात्रों के लिये जयपुर जाकर पढ़ना सर्वथा असम्भव-सा रहता है। अतः राजस्थान के स्वास्थ्य मंत्री तथा नवीन डाइरेक्टर से आशा है कि वे शीघ्र ही कक्षाएँ चालू करने की कार्यवाही कर असन्तोष को दूर करेंगे।

उत्तर प्रदेश-आयुर्वेद विभाग की सूचनाएँ

उत्तर प्रदेशीय राजकीय चिकित्सालयों में कार्य करने वाले कम्पाउन्डरों की एक अनआफ़ीशल बैठक लखनऊ में होनेवाली थी, लेकिन कुछ कारणों से वह स्थगित कर दी गई थी। फिर भी १८ जिलों से २८ सदस्य लखनऊ पहुँच गये थे। उप-संचालक, आयुर्वेद महोदय ने उनसे वार्तालाप किया और उनकी कठिनाईयों को सुना तथा उनको दूर करने का आश्वासन भी दिया तथा दूसरे दिन की बैठक में एक समिति की स्थापना की गयी जो आगामी बैठक होने तक के समय में कार्य संचालन करेगी। इस समिति के निम्नलिखित सदस्य तथा पदाधिकारी चुने गये।

प्रधान—श्री राम मूर्ति पाठक वैद्य इन्चार्ज, राजकीय आयुर्वदिक चिकित्सालय—माधोगंज, जिला हरदोई।

उपप्रधान—श्री जर्रार हुसेन, राजकीय आयुर्वैदिक चिकित्सालय, बिजनौर, जिला लखनऊ। **मंत्री एवं कोषाध्यक्ष**—श्री राजबली सिंह, राजकीय आयुर्वैदिक चिकित्सालय, सुरियावां, बनारस। **उप मंत्री**—श्री शिवदत्त, राजकीय आयुर्वैदिक चिकित्सालय, विलारावां, जिला खीरी। **आय-व्यय निरीक्षक**—श्री शारदा प्रसाद द्विवेदी, राजकीय आयुर्वैदिक चिकित्सालय, महरूवा, जिला फैजाबाद। इनके अतिरिक्त ८ सदस्य भी चुने गये।

पोशाक सम्बन्धी सूचना

उत्तर प्रदेशीय सरकार के आदेश के अनुसार यह निश्चय किया गया है कि केन्द्रीय सरकार के परिपत्र के द्वारा सरकारी कर्मचारियों के पोशाक धारण करने के सम्बन्ध में किये गये आदेशों को यह सरकार भी स्वीकार करती है। सरकार आशा करती है कि सभी कर्मचारी केन्द्रीय सरकार के पोशाक सम्बन्धी उक्त आदेश को अधिक से अधिक पालन करने का प्रयास करेंगे। सरकार यह भी आशा करती है कि इन पोशाकों की निर्माण में खादी का प्रयोग बहुतायत से किया जायगा।

(१) विशिष्ट समय पर शरत्काल में काली शेरवानी तथा सफेद चूड़ीदार पायजामा, काला कोट तथा काला अथवा सफेद पैण्ट। ग्रीष्म काल में सफेद शेरवानी तथा चूड़ीदार पायजामा। (२) कार्यालय में कोट तथा पैण्ट। यह किसी भी रंग के हो सकते हैं। बहुत चमकीले तथा भड़कीले कपड़ों का प्रयोग नहीं होना चाहिये। ग्रीष्मकाल में उपयुक्त बुशर्शट का भी प्रयोग किया जा सकता है। इन पोशाकों के निर्माण में सूती, रेशमी तथा ऊनी कपड़े का प्रयोग हो सकता है, किन्तु स्वदेशी तथा हाथ का कता और बुना श्रेयस्कर होगा।

वैद्यों हकीमों की सूची

उत्तर प्रदेशीय शासन द्वारा संचालित राजकीय चिकित्सालयों के वैद्यों एवं हकीमों की सूची (द्वितीय) जो उनके योग्यता प्रतिबन्ध को पार करने के लिए स्वीकृत हो गई है, निम्न प्रकार है :—

(१) श्री देवेन्द्र नाथ उपाध्याय, गोरखपुर। (२) श्री हरदेव प्रसाद शुक्ल, गोरखपुर। (३) श्री बाबू लाल मिश्र, गोरखपुर। (४) श्री वीरसेन, बुलन्दशहर। (५) श्री अनवर अली किदवई, लखनऊ। (६) श्री मोहम्मद इलियास, प्रतापगढ़। (७) श्री कुबेर नाथ, बलिया। (८) श्री विश्वनाथ शर्मा, बलिया। (९) श्री तारा चन्द पाठक, जौनपुर। (१०) श्री सूर्यदत्त पांडेय, जौनपुर। (११) श्री दिवाकर शुक्ल, जौनपुर। (१२) श्री चन्द्र मौलि मल्ल, जौनपुर। (१३) श्री अब्दुल्ला सलाम खाँ, फर्रुखाबाद। (१४) श्री कामता प्रसाद, बदायूं। (१५) श्री बाबूलाल, बिजनौर। (१६) श्री सुरेशानन्द नैथानी, बिजनौर। (१७) श्री दयाराम जोशी, बिजनौर।

नये औषधालय

चालू वित्तीयवर्ष १९५४–५५ में प्रान्तीय सरकार ने १० आयुर्वेदिक-यूनानी औषधालय खोलने का प्रबन्ध किया है। इस दस औषधालयों में से निम्न स्थानों पर औषधालयों को स्थापित करना अबतक स्वीकार किया गया है। १. गोनी गोड़वा, जिला हरदोई २. मलवार, जिला मिर्जापुर ३. जीवन्ती, जिला मैनपुरी ४. चान्दपुर, जिला शाहजहाँपुर ५. मिथौली, जिला देवरिया।

चिकित्सकों को सूचना

संचालक आयुर्वेद-उत्तर प्रदेश के कार्यालय से ज्ञात हुआ है कि राजकीय चिकित्सालयों के वैद्यों एवं हकीमों के, जिन्होंने कुम्भ मेला प्रयाग में कार्य किया था, मार्गव्य विलों पर सहायक संचालक आयुर्वेद इलाहाबाद के कार्यालय द्वारा उचित कार्यवाही को जा चुकी है। देरी का कारण ट्रेजरी तथा बैंक में देर से बिल पास होना व बैंक ड्राफ्ट बिलम्ब से बनना बतलाया गया है। अतः वैद्यों एवं हकीमों को सूचित किया जाता है कि यदि किसी व्यक्ति को मार्ग-व्यय आदि का धन अब भी प्राप्त न हुआ हो तो वह शीघ्र ही इसकी सूचना इस कार्यालय को भेजें तथा उसकी एक प्रतिलिपि श्रीमान् सहायक संचालक इलाहाबाद के पास भी सूचनार्थ प्रेषित करें। जो लोग रामनवमी के मेले में देवीपाटन तथा लकड़मुंडी पहले कभी ड्यूटी पर गये थे, उनके पुराने बिलों को भी शीघ्र ही पास करने का आदेश जिला स्वास्थ्याधिकारी गोण्डा को दे दिया गया है। **—द० अ० कुलकर्णी, उप-संचालक आयुर्वेद, उत्तर प्रदेश।**

स्वास्थ्य मंत्रिणी के भाषणोंका विरोध

मध्य भारत प्रान्तीय वैद्य मंडल की एक सभा में यह विचार व्यक्त किया गया कि भारत की स्वास्थ्य मंत्रिणी

राजकुमारी अमृतकौर द्वारा आयुर्वेद विषयक जो भाषण दिये गये हैं, उन्हें न तो आयुर्वेद जगत ही आदर की दृष्टि से देखता है, न भारत की बहुसंख्यक जनता ही, जो प्रतिदिन आयुर्वेदके द्वारा आरोग्य लाभ करती है। मण्डल राजकुमारी जी की इस अनधिकार चेष्टा के प्रति खेद प्रकट करते हुए सरकार से आशा करता है कि वह इस भारतीय चिकित्सा-पद्धति के प्रति अपना उदार रुख रखेंगी और छानवीन करेंगी कि क्या भारत का आरोग्य शास्त्र भारतीय जनता के अनुकूल तथा किसी भी चिकित्सा-पद्धति से ज्यादा लाभदायक है या नहीं।

आयुर्वेद के संरक्षण की मांग

गङ्गादशहरा के पुण्य पर्व पर पतित पावनी मन्दाकिनी के सुरम्य तट पर स्थित चन्द्रापुरी, गढ़वाल में पं० श्यामादत्त जी गैरोला, सरपञ्च के सभापतित्व में सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें सर्व सम्मति से निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुआ। 'यह सार्वजनिक सभा भारत की स्वास्थ्य मंत्रिणी राजकुमारी श्रीमती अमृतकौर के उन भाषणों का जोरदार विरोध करती है, जिनमें उन्होंने आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति को अवैज्ञानिक बताया है तथा मांग करती है कि आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति का पद प्राप्त हो। यह सभा सरकार से यह अनुरोध करती है कि आयुर्वेद-पद्धति के विकास और संरक्षण पर भी वह एलोपैथी के समान खर्च करे।

देहरादून की सभाओं में विरोध

देहरादून जिलान्तर्गत विसोई बहिलाड़ की ग्राम-सभा द्वारा आयोजित एक सार्वजनिक सभा में राजकुमारी श्रीमती अमृतकौर के उन भाषणों का पूर्णतया विरोध किया गया जिनमें उन्होंने आयुर्वेदीय चिकित्सा को अवैज्ञानिक कहा था। सभा द्वारा देश में आयुर्वेद चिकित्सा को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति का सम्मानित पद देने की मांग की गयी और कहा गया कि आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति के विकास और संरक्षण के लिए सरकार ऐलोपैथी (पाश्चात्य) जैसा ही व्यय करे। जौनसार बाबर (देहरादून) के छात्र संघ द्वारा आयोजित एक सार्वजनिक सभा में राजकुमारी अमृतकौर के उन भाषणों का जोरदार विरोध किया गया, जिनमें उन्होंने आयुर्वेद चिकित्सा को अवैज्ञानिक कहा था। सभा में आयुर्वेदिक चिकित्सा को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति का सम्मानित पद देने की मांग की गयी और सरकार से अनुरोध किया गया कि आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति के विकास और संरक्षण पर वह एलोपैथी जैसा व्यय करें।

वैद्य पं० रामनारायण शर्मा वैद्यशास्त्री का अभिनन्दन

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के मैनेजिंग डायरेक्टर वैद्य पण्डित रामनारायण शर्मा वैद्यशास्त्री जी का अभिनन्दन गत १५ जुलाई को कलकत्ते की 'संस्कृत भाषा प्रचारिणी सभा' के तत्वावधान में पण्डित हरिवक्षजी जोशी के सभापतित्व में किया गया। इस अवसर पर कलकत्ता के अनेक गण्यमान्य नागरिक, विद्वान, पत्रकार एवं कविराज उपस्थित थे। अनेक वक्ताओं ने आयुर्वेद के विकास के निमित्त श्री रामनारायणजी शर्मा द्वारा किये गये महान् प्रयत्नों की प्रशंसा करते हुए अभिनन्दन किया। 'सन्मार्ग' के सम्पादक पण्डित सूर्यनाथजी पाण्डेय ने अपने भाषण में कहा कि विदेशी शासन से तो हमें अपनी संस्कृति और धर्म की रक्षा के लिए संघर्ष करना ही पड़ा था, आज स्वाधीनता के पश्चात् भी हमें वही करना पड़ रहा है। वर्तमान सरकार के दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं हो रहा है। देव-भाषा के समान ही आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली की रक्षा एवं विकास के निमित्त प्रयत्न करने का परामर्श देते हुए पाण्डेयजी ने कहा कि प्राचीन शिक्षा पद्धति के प्रति प्रेम भाव उत्पन्न होने तथा उसकी उन्नति में ही आयुर्वेद का विकास निहित है।

सभापति पण्डित हरिवक्षजी जोशी ने शर्माजी का अभिनन्दन करते हुए कहा कि वस्तुतः हमें धनियों की पूजा न कर विद्वानों की करनी चाहिए। तभी हमारी संस्कृति का विकास हो सकता है। तदनन्तर संस्कृत भाषा प्रचारिणी सभा की ओर से पं० रामनारायण जी शर्मा को अभिनन्दन पत्र समर्पित किया गया। वैद्य पं० भगवानदत्त शर्मा ने अभिनन्दनपत्र का पाठ किया, जो आगे प्रकाशित किया जा रहा है।

।। श्रीः ।।

श्रीमतां वैद्यवराणाम्, आयुर्वेदसमुद्धारैकव्रतानां भारतविश्रुतयशसां
श्रीरामनारायणशर्मवैद्यशास्त्रिमहानुभावानाम्

शुभाभिनन्दनम्

सम्प्रेद्धप्रतिभाप्रभासितबृहद्गीर्वाणगीर्मन्दिरः
श्रद्धावान् निगमागमप्रणिहिते सद्धर्ममार्गे सदा।
आयुर्वेदमहाब्धिमन्थनपटुर्विज्ञानभानुर्महान्
मान्योऽसौ भिषजांवरो विजयते 'श्रीरामनारायणः' ।।१।।

साहित्यसंस्कृतसुसंस्कृतिसाधुसिद्ध-
सेवासमर्पितसमस्तसुवैभवस्य।
सच्छास्त्रशीलनससेधितसौभगस्य
सुस्वागतं सुकृतिनो भवतोऽभिदध्मः ।।२।।

भक्तार्त्तिनाशनपरे भवसिन्धुपोते
भूभारहारिणि भृशं भगवत्पदाब्जे।
दत्तक्षणस्य भवतो न्वभिनन्दनाय
शक्ता भवन्तु कथमस्तबला गिरो नः ।।३।।

धान्वन्तरागमसमृद्धिसमुत्सुकेन
सत्संग्रहेण भवता कृतपौरुषेण।
"श्रीवैद्यनाथभवनं" सकलौषधीनां
दिव्यास्पदं सुरुचिरं निरमायि लोके ।।४।।

यत्सेवया सुकृतया हतनैकरोगा
दीना जडा विविधतापभुजो मनुष्याः।
स्वास्थ्यं परं समधिगम्य सुपुष्टदेहा
विस्तारयन्ति भुवने भवदीयकीर्तिम् ।।५।।

विद्याप्रदानमहिमानमवेक्ष्य पुण्यं
वेदान्तशास्त्रनिगमस्मृतिरक्षणाय।
सम्मार्ष्टुमन्धतमसं भवता जनानां
संस्थापिता जगति संस्कृतपाठशालाः ।।६।।

यत्राधिगम्य विमलं श्रुतितत्त्वबोधं
विद्यार्थिनः प्रतिदिनं निपुणाः सहस्रम्।
साहित्यसागरसमुद्धृतभावरत्ना
विख्यापयन्ति सुयशो भवतो जगत्याम् ।।७।।

ग्रन्थान् नवान् निजगवेषणपुष्टभावान्
नन्वायुरागमपरान् बहुशः प्रकाश्य।
शास्त्रं विभासितमहो ! भवता वरेण्य !
किंवर्ण्यतेऽत्र भवतो महिमा मनोज्ञः ।।८।।

तीर्थायिता वसतयो भवतः सुपुण्या
ईड्यन्त इद्धतपसः किल यत्र विप्राः।
यान्त्यर्थिनश्च विमुखा नहि जातु येभ्यो
ब्रूमो वयं किमधिकां भवदीयसेवाम् ।।९।।

युक्तस्य सर्व विभवैर्भवतः सपर्यां
कां कुर्महे द्विजकुलाब्जसहस्ररश्मे !
पीयूषकल्पतरुपद्मकरोद्भवाय
रत्नाकराय किमुपायनमस्ति लोके ।।१०।।

तत् तावकीनकरपङ्कजयुग्म एतं
पद्यप्रकीर्णसुमनोऽञ्जलिमर्पयन्तः।
सम्प्रार्थयाम उरुविक्रमनन्दसूनुं
यत्ते दिशेत् स धनधामयशोऽभिवृद्धिम् ।।११।।

कलकत्ता
१५-७-५४

वयं स्मो भवद्गुणानुरक्ताः
संस्कृतभाषाप्रचारिण्याः सभायाः सभासदः

श्री पं० रामनारायण शर्मा वैद्यशास्त्री ने अभिनन्दन पत्र का उत्तर देते हुए कहा :—

पूज्य सभापति महोदयाः सभ्याश्च !

भवद्भिर्मयि प्रदर्शितसौहृदाय कोशात् गवेषयताऽपि मयैवंविधा उपयुक्ताः शब्दा नैव दृश्यन्ते यैर्भवतः प्रति स्वकृतज्ञयज्ञापनं कुर्याम्। न जाने, किं विज्ञाय, कांश्च गुणान् विलोक्य ममेदृशः प्रेमपरिप्लुतः सन्मानो विहितो यमनुभूय—महाकालिदासस्य शब्देषु "हृदयंसंस्पृष्टमुत्कण्ठ्या, कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनमिति"। क्वाहं साधारणो जनः क्व च भवद्विधा मानदा विद्वांसः ! अहन्त्वेवं वितर्क्य संतोषयामि यन्महान्तो लघ्वपि महत् कर्त्तुं क्षमाः ; उक्तं च केनचित् कविना—"

"अस्माऽपि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः।"

भवतु नाम।

साम्प्रतमात्मसम्बन्धे किंचिद् विवक्षुः। शैशवादेवाहं भारतीयसंस्कृतिपक्षपाती गीर्वाणवाणीप्रेमी च। अगाधं संस्कृतं–साहित्यम् संस्कृतवाङमयं चेति किं भारतीयाः किं वा वैदेशिकाः सव मुक्तकण्ठं प्रशंसतो नैव यान्ति तृप्तिम्। तेनाऽकृष्टेन मया प्राचीनरीत्या दीक्षया गुरुसकाशाद् बालसुलभचापलाद् बहुनाऽधीतं श्रुतं च, परं यत्किमपि दृष्टं तेन देवभाषायां मदीयं प्रेमोत्तरोत्तरं समैधत। अध्ययने अधिकचेष्टा कृता। तद्भाषानिवन्धायुर्वेदेऽपि मनोयोगोदत्तः। अधीयानेन मया चिन्तितं यद् भारतीयानामालस्यादनवधानाच्च संस्कृतभाषा केवलं पुस्तकेष्वेव दृश्यते, एतद्वक्तारः श्रोतारश्च विरलविरला एव। तेन हेतुना, तत्र निहिताऽलौकिकज्ञानराशिः प्रतिक्षणं विस्मृतगर्भमेव प्रयाति। यदा भाषाज्ञानमेव न स्यात् तर्हि तद्गुम्फितज्ञानेन वयं स्वकार्याणि सुखं कुर्वाणा धर्मार्थकाममोक्षाणामेकमपि कथं लभेमहि। एतद् ध्रुवं सत्यं, यत् पाश्चात्या विद्वांसो यदि संस्कृतग्रन्थानां गवेषणादिकं पठन-पाठनं च नाऽकारिष्यन् तदा वर्तमाने नूनमनेकेषामुपलब्धबहुमूल्यग्रन्थानां नामान्यपि नाश्रोष्यन्त, पुनस्तद्दर्शनस्य तु का कथा। फलतः संकल्पोऽयमन्मानसपटले यत् कथं संस्कृतभाषाया आयुर्वेदशास्त्रस्य च प्रचारो गेहे गेहे भवेत्। अस्मद्देशीया लोका आङ्गलभाषोपरि आङ्गल चिकित्सापद्धत्युपरि चकितचकिता भवन्ति ; परं भारतेऽस्माकमनन्तज्ञानविज्ञानरत्नराजिराजितशास्त्र-रत्नाकरे कस्यापि मर्त्यप्रार्थनीयस्याभावः।

वयसा मम संकल्पोऽपि बद्धमूलोऽभूत्। उद्योगेन न मनोरथैः कार्यं सिध्यतीति मूलमन्त्रमहर्निशं जपन्नोऽभीप्सितप्राप्त्यर्थमहमपि बद्धपरिकरोऽभूवम्। श्रान्ति शारीरिकसुखानि चाविगणय्य स्वनिश्चितलक्ष्ये दत्तदृष्टिरग्रेऽग्रे धावन् मार्गेण क्वापि व्यरमम्। द्राघीयसा कालेन स्वमनोरथस्य किंचित् साफल्यमलम्भि। पूर्वम् यत्स्वप्नवत् प्रत्यभात्-तदधुना मूर्त्तमिव समक्षं तिष्ठति। आयुर्वेदोद्धाराय कृते क्रियमाणे च प्रयत्ने मयाऽपि यथाशक्ति यत्र तत्रान्यैःसह मिलित्वा सक्रियभागो गृहीतः।

जानन्ति भवतो यदायुर्वेदशास्त्रं सुरभारत्यां रचितमस्ति। बिना संस्कृतज्ञानमायुर्वेदशास्त्रज्ञानं सम्यक् कदापि कथमपि न सम्भवति। आवश्यकमिदं यत्संस्कृतप्रचारोऽचिरेणैवास्माकं देशे भवेत्। अन्यच्च हिन्दी- भाषा राष्ट्रभाषा देशस्य शासकवर्गैः स्वीकृता विद्यते। पंचदशवर्षमध्ये सकलराजकीयकार्यालयेषु हिन्दी-भाषा व्यवहरिष्यत इति भारतीयसंविधाने अपि स्वीकृतं वर्तते। एवं सति हिन्दीभाषासमुन्नत्यर्थमपि तज्जनन्याः सर्वाङ्गीण—समुन्नतिरावश्यकी। तत्समृद्धिः सर्वदेष्यते। उभयतो दृष्टिकोणेन संस्कृतभाषाप्रचारो देशे नितरामिष्ट इति तत्र कस्यापि न कोऽपि विरोधोऽस्ति।

अन्यच्च धार्मिक दृष्ट्याऽपि देवभाषाप्रचार उपयुक्तः कुतोऽस्माकं सर्वधार्मिकग्रन्था वेदशास्त्रप्रभृतयोऽस्यामेववाण्यां विरचिताः सन्ति।

भ्रातरः, अधुनाऽर्थं एव योग्यतायाः प्रतिष्ठायाश्च मापदण्डः। सर्वे समारम्भास्तण्डुलप्रस्थमूलाः। संस्कृतभाषाविदामनेकेषां दशा शोचनीया। तत्राङ्गलभाषाविदो जना अधिकमायं कुर्वन्ति। तेषामावश्यकताऽधिका वर्तते। एवं दशाविपर्ययेऽपि ये संस्कृतानुरागिणस्ते धन्याः प्रशंस्याश्च, परं तेषां संख्याऽल्पिष्ठा। सम्प्रति वयं पश्यमो यत्संस्कृतभाषा जीविकार्थं नैव प्रशस्तेति मन्यमानाः पण्डिताः स्वबालकान् आङ्गलभाषां पठितुमुत्साहयन्ति। परं नायं मार्गः समीचीनः। सम्प्रति शासका अपि संस्कृताध्ययनायोच्चैरुद्घोषयन्ति। या यास्त्रुटयो विलोक्यन्ते संप्रति देवभाषा-पठन-पाठने तास्ताः कालेन सर्वा दूरीभूता भविष्यन्ति। तत्रोत्साहदैन्यस्यवौदासीनतया नास्ति पर्य्याप्तं कारणम्। भगवतः श्रीकृष्णस्य वचनमनुसृत्य "क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ, नैतत्त्वय्युपपद्यते, क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप"—अस्माभिरपि सदैवात्मोत्कर्षाय चेष्टितव्यम्।

मान्याः, भवतां बहुमूल्यसमयो नीतस्तदर्थं क्षन्तव्योऽयं जनः।

पुनरेकवारमेतन्मदीयाभिनन्दनार्थं भवद्भ्यो बहुशो धन्यवादा दीयन्ते।"

इसके बाद श्री यमुनाधर लाटा, कविराज सत्यनारायण प्रसाद शास्त्री, तथा अन्य कई विद्वानों ने भी शर्मा जी की आयुर्वेद-सेवाओं का सराहना की। अन्त में धन्यवाद के पश्चात् सभा समाप्त हुई।

राज्यपाल श्री मुंशी का अभिनन्दन

रानीखेत के वैद्यों द्वारा हिमालय आयुर्वेद सम्मेलन के मनोनीत संरक्षक श्री के० एम० मुंशी, राज्यपाल, उत्तर प्रदेश को गत ४ जून को अभिनन्दन-पत्र समर्पित किया गया। राज्यपाल ने अपने भाषण में कहा कि "आयुर्वेद की ओषधियों के विषय में अपनी बाल्यावस्था से ही मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है। जबसे अंग्रेजी राज्य आया, हमें अपनी विद्याओं के प्रति अविश्वास हो गया, विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रों में अपनी विद्याओं के प्रति तिरस्कार के भाव उत्पन्न हो गये। सन् १९३८ में बम्बई में श्री बी० जी० खेर और मैंने आयुर्वेद विद्यालय की स्थापना की। आचार्य यादव जी ने, जो मेरे घनिष्ठ मित्र हैं, इस दिशा में बहुत कार्य किया है। किन्तु इधर ३०–४० वर्षों में आयुर्वेद को जितना प्रगतिशील होना चाहिये था, उतना नहीं हुआ। यदि हम इसी ढंग पर चलें तो परम्परागत आयुर्वेद आजकल के जमाने में नहीं चल सकता। जहाँ शासन का धर्म है कि विद्याओं को प्रोत्साहन दे वहां आपका भी धर्म है कि उसकी उन्नति करें। वैद्य रजिस्ट्रेशन ऐक्ट में भी हमें विचार करना चाहिये कि इसमें क्या परिवर्तन करना है, जिससे वैद्यों को अच्छा स्थान मिले। आयुर्वेदाचार्यों को यूं ही प्रतिष्ठा नहीं मिलती। बारहवीं सदी के पश्चात् आयुर्वेद में अन्वेषण कार्य बन्द हो गया, तब शास्त्रों को कण्ठाग्र रख कर कार्य संचालन की प्रथा चलाई गई। हमें आयुर्वेद में अन्वेषण करना चाहिये। हिमालय प्रदेश में ऐसा वनौषधि उद्यान होना चाहिये जहाँ संग्रह तथा अन्वेषण कार्य हो। सम्मेलन ऐसा कार्य करे कि प्रत्येक चिकित्सक शास्त्रज्ञ हों, उसके कार्यों द्वारा आयुर्वेद का उपालम्भ न हो।"

महिलाओं के लिए आयुर्वेदीय चिकित्सा की मांग

वैद्यमण्डल, देहरादून के तत्वावधान में गत १२ तथा १३ जून को जनपद आयुर्वेद सम्मेलन श्री स्वामिनि आयुर्वेदाचार्य (ऋषिकेश) के सभापतित्व में हुआ। इस अवसर पर आयुर्वेद वृहस्पति पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल आयुर्वेद-पंचानन (प्रयाग), श्री दरबारीलाल वैद्य, चेयरमैन, इण्डियन मेडिसिन बोर्ड उत्तर-प्रदेश, पं० बाबूराम मिश्र आचार्य (हापुड), श्री पंडित अमरनाथ जी वैद्य शास्त्री (देहरादून) श्रीस्वामी सन्तोषानन्द जी एवं सामाजिक कार्यकर्त्री गोदावरी देवी फरिलया वैद्या के सारगर्भित भाषण हुए।

स्वागताध्यक्ष स्वामी सन्तोषानन्दजी वैद्य ने अपने संक्षिप्त भाषण म देहरादून के जन पद वैद्य सम्मेलन में दूर-दूर से पधारने वाले गण्यमान्य वैद्यों तथा नगर एवं जिला के सदस्यों का स्वागत किया। श्री बाबूराम आचार्य ने कहा कि हमें शुद्ध आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति का अनुसरण करना चाहिये। सरकार आयुर्वेद की ओर बहुत कम ध्यान दे रही है। हमारी माँग है कि हमारी शुद्ध आयुर्वेद चिकित्सा हो। आयुर्वेद बृहस्पति पं० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल आयुर्वेद पंचानन का आयुर्वेद विषय पर बहुत ही उत्तम भाषण हुआ।

सामाजिक कार्यकर्त्री श्री मती गोदावरी देवी फरलिया वैद्या ने अपने भाषण में कहा कि देश में ९९ प्रतिशत महिलाएँ अपनी चिकित्सा तथा स्वास्थ्य-रक्षा के लिये आयुर्वेदिक चिकित्सा का आश्रय लेती हैं, किन्तु खेद की बात है कि सरकार की ओर से उनकी आयुर्वेदिक चिकित्सा-सुविधा का कोई विशेष प्रबन्ध नहीं है। देश की ९९ प्रतिशत महिलाओं की आयुर्वेद के प्रति अगाध निष्ठा है और वे अपने रोग निवारण एवं स्वास्थ्य रक्षा के लिये आयुर्वेद का ही आश्रय लेती हैं। अतः यह सम्मेलन केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों से प्रार्थना करता है कि वे नगरों एवं ग्रामों में महिलाओं के लिये आयुर्वेदिक चिकित्सा का अधिक से अधिक प्रबन्ध करें।

झाँसी आयुर्वेद विश्वविद्यालय का परीक्षा फल

आयुर्वेद के निम्नांकित विद्वानों के निबन्धों (theses) की परीक्षा की गई और आयुर्वेद–बृहस्पति उपाधि (Doctor of science in Ayurveda) प्रदान किये जाने के लिये वे स्वीकार किये कये। १. कविराज कान्तिनारायण मिश्र, राजवैद्य, डिप्टी डायरेक्टर, आयुर्वेद विभाग, पेप्सू सरकार (प्रसूति तन्त्र) २. कविराज माधव प्रसाद शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, जोधपुर (त्रिदोष मीमांसा)।

३. कविराज नित्यानन्द शर्मा, वैद्य वाचस्पति, डायरेक्टर, आयुर्वेद विभाग, राजस्थान सरकार (राजयक्ष्मा) ४. कविराज भारतभूषण वर्मा, आयुर्वेदाचार्य, राजवैद्य, महाराजा फार्मेसी, जोधपुर (कौमार भृत्य।

निम्नलिखित व्यक्ति आयुर्वेदवाचस्पति (M. Sc. A) परीक्षोतीर्ण हुए हैं—प्रथमश्रेणी—१. कविराज अमरनाथ शास्त्री, पटियाला (शालाक्य) २. कविराज हरिवल्लभ सिलाकारी, सागर (मन्थर-ज्वर) ३. कविराज हरीन्द्र दत्त शर्मा, पटियाला (अपस्मार) ४. कविराज हरिवंश, पटियाला (गृहणी) ५. कविराज कीर्त्तिनारायण शर्मा, पटियाला (वात-व्याधि) ६. कविराज मोहम्मद सत्तार खाँ, खुरई जिला सागर (राजयक्ष्मा) ७. कविराज प्रभाकर मिश्र, आचार्य, हमीरपुर (शालाक्य) ८. कविराज रामगोपाल, पैप्सू (पंचकर्म) ९. कविराज वेणीमाधव शुक्ल, ग्वालियर (तक्र) १० कविराज विश्वेश्वरनाथ शर्मा, पटियाला (उदररोग)

द्वितीय श्रेणी—१. कविराज बलदेव सिंह मढ़िया, पटियाला (कामला) २. कविराज धर्मप्रकाश पटियाला (क्षय-विज्ञान') ३. कविराज हरिनन्दन मिश्र, अलीगढ़ (शालाक्य) ४. कविराज मामचन्द, पटियाला (स्वास्थ्य-रक्षा) ५. कविराज रामेश्वर प्रसाद मिश्र रायपुर, (कुष्ठ रोग) ६. कविराज सुरेशचन्द्र शास्त्री झाँसी (शालाक्य) ७. कविराज शिवप्रसाद शर्मा, 'कुलू कांगडा (शालाक्य) ८. कविराज शिवनारायण अलीगढ़ (शालाक्य) ९. कविराज विष्णुनारायण तिवारी, कानपुर (शुक्रक्षय-अस्वाभाविक)

तृतीय श्रेणी—१. कविराज आनन्द प्रकाश गौतम, पटियाला (यकृत्) २. कविराज गया प्रसाद सिंह, सुलतानपुर (शालाक्य) ३. कविराज खेम सिंह सोलंकी, आगरा (चिकित्सा-सिद्धान्त) ४. कविराज कृष्ण शर्मा, पटियाला (ज्वर) ५. कविराज रामस्वरूप सनेही, पेप्सू (राजयक्ष्मा) ६. कविराज शिवकुमार, हाथरस (रसादिक निर्णय) ७. कविराज सूरजमल जोशी, उज्जैन (विशूचिका) ८.कविराज विजय कुमार मथुरा (चिकित्सा)

बोर्ड ऑफ इण्डियन मेडीसिन उ० प्र० की अन्तिम (B.I. M. S.) परीक्षा में जो विद्यार्थी इस वर्ष उतीर्ण हुए, उनकी नामावली निम्नांकित हैं—

प्रथम श्रेणी—१. बासुदेव मिश्रा (रविकांत मिश्रा)

द्वितीय श्रेणी—२. कु० मन्दाकिनी केलकर ३. ऋषिकेश शुक्ल ४. श्याम सुन्दर अत्रे ५. रामचन्द्र सिंह चौहान ६. शिवदयाल वशिष्ट ७. शिवदत्त शर्मा ९. मोहनचन्द्र वर्मा १०. चन्द्रशेखर वामन माटे ११. शिव प्रसाद उपाध्याय १२. मनोरमा त्रिपाठी १३. रविदत्त कौशिक १४. भाव प्रकाश द्विवेदी १५. लक्ष्मीचन्द्र मिश्रा १६. शिवदत्त शर्मा योगेश्वर।

तृतीय श्रेणी—१७. ज्ञानचन्द्र जैन १८. विद्यावती चौहान १९. रामगोपाल शर्मा गोस्वामी २०. राजाराम चतुर्वेदी २१. उपेन्द्रनाथ ज्योतिषी २२. प्रकाश चन्द्र शर्मा, २३. विद्यावती हिंगवाशिया २४. दामोदर प्रसाद २५. सत्यनारायण बाजपेई २६. कालिका प्रसाद गौतम २७. रामकृष्ण द्विवेदी २९. वंसगोपाल शर्मा ३० प्रभुदयाल मिश्रा ३१. वैदेही सरण प्रधान . ३२. प्रेम वल्लभ पाठक ३३. केशव प्रसाद मिश्रा . ३४. वैद्यनाथ मिश्रा . ३५. सुरेन्द्र मोहन भारद्वाज . ३६. रामानन्द शर्मा . ३७. बसन्त कुमार बाजपेई . ३८. मूलचन्द मिश्रा.

—ल० ना० राजशाली, रजिस्ट्रार ।

आयुर्वेदिक कौन्सिल, पश्चिम बङ्गाल का चुनाव

जेनरल कौंसिल एण्ड स्टेट फैकल्टी, आयुर्वेदिक मेडीसिन, पश्चिम बंगाल का चुनाव नियमित रूप से सरगर्मी के साथ संपन्न हो गया, उसके परिणामों की घोषणा के अनुसार बड़ा-बाजार अंचल की श्री धन्वन्तरि परिषद के मनोनीत एकमात्र उम्मेदवार कविराज श्री नारायण शर्मा एम० ए० एस० एफ०, वैद्य शिरोमणि सर्वाधिक मतों से सर्वप्रथम विजयी घोषित किए-गए। नियमतः वृहतर कलकत्ता से केवल पांच ही व्यक्ति चुने जाते हैं और लगभग बारह सौ मतदाता हैं। इनमें से लगभग आठ सौ मतदाताओं ने अपने मत दिए। उन्नीस उम्मेदवार ड़ेख हुए थे, उनमें से निम्नलिखित पांच उम्मेदवार सफल हुए—(१) कविराज श्रीनारायण शर्मा ने चार सौ साठ वोट प्राप्त किए। (२) कविराज शिवरंजन सेन ने चार सौ पचास वोट प्राप्त किये। (३) कविराज रवीन्द्रनाथ चक्रवर्ती ने तीन सौ बावन वोट प्राप्त किए। (४) कविराज फणिभूषण राय ने तीन सौ पेंतालीस वोट प्राप्त किए। (५) कविराज रामावतार शर्मा ने तीन सौ पचीस वोट प्राप्त किए।

इस चुनाव में प्रथम बार एक हिन्दी-भाषा-भाषी

कविराज श्रीनारायण शर्मा को सर्वाधिक मत मिले हैं और इस सफलता से यह स्पष्ट है कि कविराज श्री श्रीनारायण शर्मा एम० ए० एस० एफ०, वैद्यशिरोमणि, एल०ए०एम० एस० भिषग्रत्न, आयुर्वेदाचार्य सर्वाधिक योग्य माने गये और उनकी सेवाओं को सर्वाधिक उपयोगी माना गया। कविराज श्री श्रीनारायण शर्मा शुरू से ही आयुर्वेद के प्रचार तथा प्रसार तथा सार्वजनिक सेवा करते आये हैं और उनके सदुद्योग से अनेक महत्कार्य आयुर्वेद जगत् के लिये उपयोगी हुए हैं। हम आशा करेंगे कि इस कौंसिल के सदस्य के रूप में कविराज श्री श्रीनारायण शर्मा अपने सहयोगियों के साथ इस राज्य में आयुर्वेद को एलोपैथी के समान मान्यता दिलाने में तथा अन्यान्य महत्कार्य करने में पूरी शक्ति लगा देंगे।

धार जिला आयुर्वेद मण्डल

गत १५ अगस्त को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता दिवस के सुअवसर पर धार जिला आयुर्वेद मंडल कार्यालय में, नगर के वैद्य मंडल की तथा केन्द्रिय स्वास्थ्य विभाग की मलेरिया प्रतिरोधक योजना के संबंध में जिलाध्यक्ष श्री श्रोत्रीय जी की अध्यक्षता में हुई।

वैद्य मंडल में प्रतिवर्षानुरूप इस वर्ष जिले भर में मलेरिया (विषम ज्वर) प्रतिरोधक उपाय निःशुल्क रूप से करने का निश्चय किया, तथा उसके रचनात्मक कार्य के लिये जिले के समस्त आयुर्वेद सेवा भावी कार्यकर्ता महानुभावों कि एक समिति कायम हुई। राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं, आयुर्वेद प्रेमियों का सहयोग भी इस कार्य के लिये मांगा गया। तहसील के कार्यकर्त्ताओं को इस आयोजन को सफल करने के लिये पृथग्-पृथग् कमेटी निर्धारित करने की सूचना दी गई।

बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय, पटना

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, पटना के तत्वावधान में चलनेवाले बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय में **गत जून मास** में कुल ४२१६ रोगियों की चिकित्सा की गयी। इनमें ७४५ नये और ३४७४ पुराने रोगी थे। नये रोगियों की संख्या रोगानुसार निम्न प्रकार है—ज्वर ५०, मलेरिया ७, मन्थरज्वर ११, हब्बाडब्बा ३, उदर-रोग ११४, आमातिसार ३३, कास ४१, श्वास ८, प्रतिश्याय ३६, अंशुघात १, स्त्रीरोग ६, बवासीर १, प्रमेह ११, वातव्याधि २६, कुष्ठ ६, श्वेतकुष्ठ ४६, कृमि ३, अंडवात ४, श्लीपद ५, कोशवृद्धि २, हैजा १, चेचक १, व्रण ८४, विसर्प ५, रक्तपित्त १, शीतपित्त ४, गन्डमाला ४, गुल्म १, शोथ ४, शिरःशूल ६, नेत्ररोग ६४, कर्णरोग १७, मुखरोग ३५, हिष्टीरिया १, जलोदर १ एवं विविध ७६।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, पटना के तत्वावधान में चलनेवाले बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय में **गत जुलाई मास** में कुल ४८९९ रोगियों की चिकित्सा की गयी। इनमें ६६७ नये और ४२३२ पुराने रोगी थे। नये रोगियों की संख्या रोगानुसार नीचे लिखे मुताबिक है:—ज्वर ३६, मलेरिया १५, मन्थज्वर ६, हब्बाडब्बा ६६, उदररोग १३६, आमातिसार ३८, कास ३३, श्वास ५, प्रतिश्याय ५८, स्त्रीरोग १३, अर्श ३, आमवात १, श्लीपद ५, हैजा ३, व्रण ९४, पाण्डु ३, शोथ ६, शिरोरोग ६, नेत्ररोग, ५६, कर्ण रोग ४१, मुख रोग ५१ एवं विविध ४६।

बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय, झाँसी

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० झांसी द्वारा संचालित धर्मार्थ औषधालय तथा स्वास्थ्य रक्षा केन्द्र द्वारा **गत जुलाई मास** में ६२१० रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई, जिसमें से ११४८ नये रोगियों की संख्या रही। विवरण नीचे लिखे अनुसार है—

ज्वर ८०, अतिसार ११०, कास १०७, श्वास ४०, प्रतिश्याय ११३, वातव्याधि ४६, दौर्बल्य ३०, शीतपित्त १०, टाइफाइड ८, आमातिसार १००, संग्रहणी ३, प्रमेह १८, विषम ज्वर (मलेरिया) ४२, मूत्रकृच्छ ३, रक्तविकार ५०, उपदंश ३, उदररोग, २८, अम्लपित्त ४, प्रसूतरोग १८, प्रदररोग ५८, गन्डमाला ३, अजीर्ण १०, मन्दाग्नि २० हिक्का २, राजयक्ष्मा ८, भ्रम २०, कृमि ३५, नेत्ररोग ३०, कर्णरोग २७, यकृतरोग ८, पिडिका ३०, दुष्टव्रण ५, श्लीपद ५, स्राव ३, बालशोष १०, मुखरोग १७, अर्धावभेद ११।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, झांसी द्वारा संचालित धर्मार्थ औषधालय तथा स्वास्थ्य रक्षा केन्द्र में **गत जून मास** में ४७३० रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई, जिसमें ८०१ रोगी नये आये। रोगियों का विवरण रोगानुसार इस प्रकार है :—

ज्वर ९०, कास ८५, वातव्याधि ५०, दौर्बल्य २०, आमवात ८, स्नानु दौर्बल्य ७, रक्तपित्त ५, मन्थर ज्वर ४, आमातिसार ३०, प्रमेह २६, मूत्रकृच्छ ५, उष्णवात ८, उपदंश ८, श्लैष्मिक-सन्निपात (न्यूमोनिया) २, संग्रहणी

५, अम्लपित ५, प्रसूति १०, प्रतिश्याय २७, अंशुघात १८, कष्टार्तव ४०, प्रदर ६०, गन्डमाला ३, अजीर्ण १२, मन्दाग्नि ५, हिक्का ३, यक्ष्मा (टी० बी०) ४, कृमि ३०, अन्डवृद्धि ३०, श्लीपद २, भ्रम १२, कर्णरोग १० यकृत-प्लीहा ३, श्वास १०, रक्त विकार १०, पिडिका ४०, कर्णरोग १०, कुष्ठ २, व्रण ८, विविध ६।

वैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय तथा स्वास्थ्य रक्षा केन्द्र झांसी द्वारा गत मई मास में ४६११ रोगियों की मुक्त चिकित्सा की गई, जिनमें से ८६८ नये रोगी आये। उपर्युक्त नये रोगियों की संख्या रोगानुसार नीचे लिखे अनुसार है—

ज्वर १३०, कास ६५, प्रतिश्याय १४, दीर्घकास ७, अतिसार ६०, आमातिसार २८, वातव्याधि ४८, अंशुघात २५, प्रदर ६०, रक्तपित्त ४०, ग्रहणी ४, कामला ८, रक्तविकार ४०, रक्ताल्पता ४, बालरोग १००, शिरोरोग १०, नत्ररोग ५० गलरोग १२, कर्णरोग ३, अण्डवृद्धि ७, उदररोग ३, सर्वांगशोथ २, मन्दाग्नि १२, उष्णवात १०, प्रमेह १०, विशूचिका १, शीतपित्त २, मुखरोग ५, हिस्टीरिया २, विविध ३।

वैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय, नागपुर

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड द्वारा संचालित नागपुर स्थित धर्मार्थ औषधालय में **गत जून मास** में कुल २८५५ रोगियों की चिकित्सा की गई, जिनमें ३६३ नये और २४९२ पुराने रोगी थे। नये रोगियों की संख्या रोगानुसार निम्न प्रकार रही—ज्वर ५३, जीर्णज्वर १२, मन्थर ज्वर ३, अतिसार ६, आमातिसार १०, संग्रहणी २, अर्श ४, अजीर्ण २२, मंदाग्नि ११, प्रतिश्याय ६, कास ३२, कृमिरोग ४, श्वास ५, अम्लपित्त ५, हृदयशूल ४, प्रमेह ६, मूत्रकृच्छ्र २, उदररोग ११, दाह १२, यकृत् ६, गुल्म ३, वात २५, आमवात ६, शिरोरोग ६, दन्तरोग ७, प्रदर ६, रजावरोध २, मुखपाक ६, नेत्ररोग ५, गंडमाला २, कर्णरोग ७, भ्रम ५, आघात २, पामा (रक्तविकार) २१, शूल ४, राजयक्ष्मा २, पार्श्वशूल ३, रक्तपित्त २, शीतपित्त २, अंडवृद्धि २, व्रण ७, सूतिका २।

उक्त औषधालय में **गत मई मास** में ३०८४ रोगियों की चिकित्सा की गई। उनमें ३५६ नये और २७२५ पुराने रोगी थे। नये रोगियों का विवरण निम्न प्रकार है:—ज्वर ६६, कृमिरोग ४, वात ३२, आघात ४, जीर्ण-ज्वर १३, श्वास ८, आमवात ५, पामा (रक्तविकार) ११, मन्थर ज्वर ३, अम्लपित्त १४, शिरोरोग ६, शीत-पित्त २, अतिसार १०, हृदयशूल ५, दन्तरोग ४, रक्तपित्त ३, आमातिसार ४, दौर्बल्य ७, प्रदर ६, स्वरभेद २, संग्रहणी २, प्रमेह १०, रजावरोध ४, व्रण ३, अर्श ४, मूत्रकृच्छ्र ५, मुखपाक ८, आनाह ६, अजीर्ण ८, उदररोग १०, नेत्र-रोग ३, अंडवृद्धि २, मंदाग्नि ६, उष्णता (दाह) १२, गंडमाला ४, गुदभ्रंश २, प्रतिश्याय ७, यकृत् २, कर्णरोग ३, कास ४१, गुल्म १, भ्रम ४।

आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रचारक संघ

अखिल भारतीय आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रचारक संघ की कार्यकारिणी की बैठक रसायनशाला, अमीनाबाद लखनऊ में आयुर्वेदाचार्य पं० विश्वम्भरनाथ जी मिश्र की अध्यक्षता में हुई, जिसमें निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुए:—कार्यकारिणी समिति में आवश्यक परिवर्तन किया गया। कार्यवाहक अध्यक्ष आयुर्वेदाचार्य पं० शिवराम जी द्विवेदी लखनऊ, उपाध्यक्ष आयुर्वेदाचार्य पं० ओंकार प्रसाद शर्मा देहली, उपमंत्री वैद्य शरतकुमार मिश्र सहारनपुर, वैद्य रोहिणी कान्त शास्त्री लखनऊ, वैद्य शंकर देव जी मैनपुरी, वैद्य सूर्यदत्त शुक्ल लखनऊ, आय-व्यय निरीक्षक पं० जयनारायण पांडे वैद्य लखनऊ चुने गये। सदस्य—पं० विश्वनाथ द्विवेदी लखनऊ, वैद्य धर्मदत्त शर्मा एम० एल० ए० बरेली, वैद्य गुरुदत्त जी देहली, वैद्य बोधराम शर्मा धामपुर, वैद्य सुन्दर लाल शुक्ल जबलपुर, वैद्य ख्याली रामजी द्विवेदी इन्दौर, आचार्य बी० डी० धुलेकर झांसी, और आचार्य डा० जे० डी० शर्मा देहली सदस्य निर्वाचित हुए। संघ के अन्तर्गत स्थापित अ० भा० धर्मार्थ औषधालय प्रबंधन समिति के सभापति पं० रामनारायण शर्मा वैद्य शास्त्री, अध्यक्ष—वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन कलकत्ता, मंत्री वैद्यराज पं० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र लखनऊ, अ० भा० स्वास्थ्य संरक्षक समिति के अध्यक्ष वैद्यराज श्री रामलाल जी जैन अलीगढ़, मंत्री आयुर्वेदाचार्य पं० दयाराम जी शास्त्री लखनऊ और अ० भा० आयुर्वेदीय भेषजान्वेषक समिति के अध्यक्ष आचार्य भी० वि० डिग्वेकर जबलपुर, मंत्री आचार्य लक्ष्मीकान्त शास्त्री लखनऊ, तथा अ० भा० आयुर्वेदिक सेवा समिति के अध्यक्ष वैद्यराज पं० विश्वेश्वर दयालु जी बरेली एवं मंत्री वैद्य हर प्रसाद सिंह राना लखनऊ चुने गये।

संघ ने उत्तर प्रदेशीय इण्डियन मेडिसिन वोर्ड का चुनाव लड़ने के हेतु ५ व्यक्तियों का एक पार्लामेन्ट्री वोर्ड स्थापित किया। संघ का वार्षिक अधिवेशन दिसम्बर मास में लखनऊ में करना निश्चित हुआ। उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा खुलने वाले स्टेट आयुर्वेदिक कालेज के प्रिंसिपल पद पर वैद्य को ही रखने की मांग की गई। चन्द्रशेखर आयुर्वेदिक ट्रस्ट सीतापुर से आयुर्वेद जगत का कोई हित होते न देख कर उससे संबंध विच्छेद कर लेना निश्चित हुआ। आयुर्वेद विज्ञान के प्रति अपमान जनक बातें करते हुये जनता में उसे अवैधानिक कहकर भ्रम और घृणा उत्पन्न कराने वाले इण्डियन मेडीकल कौंसिल के सदस्यों तथा स्वास्थ्य एवं चिकित्सा विभाग के बड़े-बड़े अधिकारियों पर अभियोग चलाने का निश्चय कर २१ व्यक्तियों की एक समिति बनाई गई।

स्व० पं० नन्दकिशोर शर्मा के लिए शोक

त्रिशिरः पुर्यायुर्वेद सभायाः विशेषाधि वेशनं गत २०-६-१९५४ दिने आदिवासरे सायं आयुर्वेद भूषण श्री पी० जी० गणपति शास्त्रि महोदयस्य आध्यक्ष्ये प्राचलत्।

इमौ प्रस्तावौ स्वीकृतौ सदस्यैः।

(१) सभाया इदं विशिष्टमधिवेशनं भिषगाचार्यस्य, राजस्थानीय आयुर्वेद गवेषणासंस्थायाः अध्यक्षस्य, अखिल भारतीयायुर्वेद विद्यापीठाध्यक्षस्य राज वैद्यस्य श्री नन्दकिशोर शर्मणः अकास्मिकं देहवियोगं अधिगम्यात्मनः अमन्दं विषादं प्रकटी करोतिः; श्री शर्म महोदयैः शुद्धायुर्वेद प्रचारार्थे कृता अनन्ताः सेवाः सदास्मरति; कुटिलेऽस्मिन्काले तेषां वियोगः आयुर्वेदिक लोकस्य महत्यै क्षतये इति चाशेते।

(२) सभाया इदं विशिष्टमधिवेशनं कलकत्तास्थ आर० जी० कर मेडिकल शालायां निदानाचार्य पद-वीमधिष्ठितस्य डॉ० डी० एन० बन्द्योपाध्याय महोदयस्याकालिकं देहवियोगं अधिगम्य आत्मनः विषादं प्रकटीकरोति। अलोपाथिक वैद्यकाधिकृतेनापि आयुर्वेद गवेषणामार्गे बन्द्योपाध्यायेन तादृशं साहाय्यं आचरितं, यदस्यः वियोगं आयुर्वेद लोकोऽभिमनुते स्वकीयां क्षतिमिति।

इमौप्रस्तावौ दुःखिनोः स्वर्गत शर्मबन्धोपाध्याय कुटुंबयोः निवेदितौ ॥

स्वर्गीय नन्दकिशोर जी को श्रद्धाञ्जलि

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के कार्यकर्त्ताओं और बुन्देल खण्ड वैद्य हकीम परिषद् झांसी की एक सम्मिलित सभा गत ५ जुलाई को स्वर्गीय राजवैद्य पं० नन्दकिशोर जी शास्त्री भिषगाचार्य, जयपुर के असामयिक निधन पर शोक प्रदर्शन के निमित्त हुई। उपस्थित सभी लोगों ने मौन खड़े होकर शोक प्रकट किया। तदनन्तर वैद्य पं० रामनारायणजी शर्मा ने उनके गुणों की चर्चा करते हुए कहा कि स्वर्गीय वैद्यराजजी ने अपने जीवनकाल में आयुर्वेद की निरन्तर सेवाएँ की है। आप अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ के सभापति, राजस्थान सरकार के आयुर्वेद विभाग के डाइरेक्टर तथा महाराजा आयुर्वेदिक कालेज जयपुर के प्रिन्सिपल थे। आप आयुर्वेद-शास्त्र के मर्मज्ञ उद्भट विद्वान् तथा जयपुर महानगरी के सुप्रसिद्ध पीयूषपाणि कुशल चिकित्सक थे। आप जैसे भारत प्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ के असामायिक निधन से आयुर्वेद-जगत् की जो महान् क्षति हुई है उससे समस्त वैद्य-समाज उत्पीड़ित हुआ है।

अन्त में यह सभा दिवंगत राजवैद्यजी के योग्य सुपुत्र श्री रामदयालजी से सहानुभूति प्रकट करती है तथा श्री परमात्मा से प्रार्थना करती है कि ये उनको तथा उनके शोक सन्तप्त परिवार को शान्ति प्रदान करे।

राजवैद्य पं० नन्दकिशोर जी के लिए शोक

बम्बई आयुर्वेद विद्यालय, भास्कर भवन फाणसवाड़ी में बम्बई उपनगर जिला वैद्य परिषद्, आयुर्वेद चिकित्सक मण्डल, आयुर्वेद हितैषिणी सभा, बम्बई आयुर्वेदिक सोसाइटी, आयुर्वेद संरक्षक मण्डल इन पांच संस्थाओं की तरफ से नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के सभापति, राजस्थान आयुर्वेद विभाग के डाइरेक्टर राजवैद्य पं० नन्द किशोर जी के असामयिक स्वर्गवास होने से एक सभा आयुर्वेद मार्तण्ड वैद्यराज श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य के सभापतित्व में हुई। सर्व प्रथम वैद्यराज कन्हैयालाल जी भेडा ने राजवैद्य जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनकी आयुर्वेद सेवाओं का उल्लेख किया और उनकी गुरुभक्ति की विशिष्टता बतलाते हुए स्वर्गीय आत्मा को शोकांजलि अर्पित की। वैद्य अमोलकचंद जी मिश्र, वैद्य पं० महावीर प्रसाद मिश्र आयुर्वेदाचार्य, वैद्य सीताराम जी, पं० लक्ष्मीकान्त जी भिषगाचार्य आदि वैद्यों के भाषण के बाद सभापति वैद्य यादव जी महाराज ने अपने भाषण में शोक प्रकट करते हुए कहा कि राजवैद्य जी के लिए सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि उनके अवशिष्ट कार्य की पूर्ति

सभी वैद्य मिलकर करने का यत्न करें। यह निःसंदेह है कि राजवैद्य जी ने राजस्थान में आयुर्वेद के गौरव को रखा। अब प्रवासी राजस्थानी वैद्यों का कर्तव्य है कि वे एक वृहत् सभा का आयोजन करके राजस्थान सरकार के सामने आयुर्वेद की रक्षा के लिए अपने सुझाव रखें, जिससे राजस्थान में आयुर्वेद का गौरव वैसा ही बना रहे। अन्त में एक शोक प्रस्ताव पास कर दिवंगत आत्मा की सन्मुक्ति के लिए तथा उनके इह कौटुम्बिक परिवार को शान्ति प्रदान करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई।

रामगढ़ में शोकसभा

श्रीहरनन्दराय रुइया आयुर्वेद कालेज, रामगढ़ के भवन में तहसील वैद्य सम्मेलन का विशेष अधिवेशन आयुर्वेद-मार्तण्ड, भिषग्रत्न, राजवैद्य श्री नन्दकिशोर जी भिषगाचार्य के दुःखद निधन पर शोक प्रकट करने के लिये वैद्य पं० श्रीहरिनारायणजी गोस्वामी के सभापतित्व में हुआ। श्रीयुत्त वैद्य पं० श्रीहनुमत्प्रसादजी शास्त्री ने राजवैद्य जी की गुणावली एवं उनके निधन से होने वाली आयुर्वेद-संसार की क्षति का वर्णन किया एवं निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। "यह अधिवेशन राजवैद्य श्रीनन्दकिशोरजी भिषगाचार्य के असामयिक स्वर्गवास से केवल राजस्थान की ही नहीं, अपितु समस्त भारतवर्ष के आयुर्वेद-जगत् की अपूरणीय क्षति अनुभव करता हुआ, भगवान श्रीधन्वन्तरि से दिवंगत-आत्मा के लिये शाश्वत शान्ति एवं उनके दुःखित परिवार को इस असह्य वज्रपात के सहन करने की क्षमता प्रदान करने की प्रार्थना करता है।"

पं० नन्दकिशोर शर्मा के लिए शोक

पं० नन्दाकिशोर जी भिषगाचार्य, सभापति अखिल भारतीय विद्यापीठ तथा डाइरेक्टर आयुर्वेद विभाग राजस्थान के असामयिक देहावसान पर श्री परशुरामपुरिया राजस्थान आयुर्वेद कॉलेज सीकर के औषधालय विभाग ३ दिन बन्द कर दिये गये थे। कॉलेज के प्राध्यापकों तथा विद्यार्थियों की ओर से महती शोक-सभा की गई। मासिक श्राद्ध के दिन उनके चित्र का अनावरण करके व्यथित हृदय से उपस्थित महानुभावों ने अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित की। शोक-प्रस्ताव में दिवङ्गत महापुरुष की उज्जवल आत्मा के प्रति शाश्वत शान्ति तथा दुःख संन्तप्त उनके परिवार व आयुर्वेद-जगत् को धैर्य धारण की शक्ति प्रदान करने के लिये भगवान् श्री धन्वन्तरि से प्रार्थना की गई।

डा० अनुग्रहनारायण सिंह का स्वागत

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के पटना कार्यालय में गत २५ अगस्त के सायंकाल बिहार के वित्त मंत्री तथा अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक कल्याण सम्मेलन, (टोरंटो) कनाडा में भारतीय प्रतिनिधिमण्डल के नेता डा० अनुग्रहनारायण सिंह का भव्य स्वागत किया गया। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के प्रबन्ध निर्देशक श्री रामदयाल जी जोशी ने डा० अनुग्रह नारायण सिंह का स्वागत करते हुए उनसे अपनी विदेश यात्रा के अनुभवों पर प्रकाश डालने का अनुरोध किया। डा० सिंह ने अपनी यात्रा की कई मनोरंजन एवं शिक्षाप्रद बातें बतलायीं। उन्होंने कहा कि समयनिष्ठता, सच्चरित्रता और ईमानदारी के कारण ही अमेरिका आज इतनी उन्नति पर पहुँच सका है।

स्वागत समारोह में बिहार के उपमंत्री श्री बीरचन्द पटेल, बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति एवं मंत्री श्री ब्रजशंकर वर्मा, भारत स्काउट एण्ड गाइड के प्रधान मंत्री नागेन्द्रपति त्रिपाठी, बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के प्रधान मंत्री श्री विद्यानारायण सिंह, बिहार आयुर्वेद-यूनानी सम्मेलन के उपसभापति कविराज सुखराम प्रसाद, बिहार वाणिज्य परिषद के प्रधान मंत्री श्री खेमचन्द चौधरी, श्री राजेन्द्र शर्मा तथा अन्य अनेक गण्यमान्य वकील, डाक्टर, वैद्य, पत्रकार एवं प्रमुख नागरिक उपस्थित थे।

बैद्यनाथ-प्रकाशन की वैद्योपयोगी पुस्तकें

आरोग्य-स्वच्छता और चिकित्सा पर श्रेष्ठ ग्रन्थ

भारत प्रसिद्ध "श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०" के मैनेजिंग डायरेक्टर वैद्यराज पण्डित रामनारायण शर्मा वैद्यशास्त्री ने ५-६ वर्षों में बड़ी मिहनत से इस ग्रन्थ को स्वयं लिखा है। ग्रन्थ का एक-एक वाक्य हजारों रुपयों का काम देता है। इसके ९ संस्करणों में ८३००० प्रतियाँ छपकर बिक चुकी हैं और १० वें संस्करण में १५ हजार प्रतियाँ फिर छापी गयी हैं। इसीसे इसकी लोकप्रियता और उपयोगिता स्पष्ट मालूम होती है। प्रचार की दृष्टि से मूल्य भी बहुत कम रखा गया है। मूल्य २), डाकखर्च ।।=)

बैद्यनाथ प्रकाशन
आरोग्यप्रकाश
वैद्यराज पं० रामनारायण शर्मा वैद्यशास्त्री

आयुर्वेद-सारसंग्रह
द्वितीय संस्करण
प्रकाशक

हिन्दी में ऐसी आयुर्वेदीय पुस्तकों की बड़ी कमी थी, जिनमें रोग-विचार के साथ चिकित्सा, औषध-निर्माण, अनुपान, पथ्यापथ्य आदि का विवरण समझा कर सरल भाषा में एकत्र दिया गया हो। इससे सर्व साधारण पाठकों के सामने बहुत दिक्कतें आती थीं। प्रस्तुत पुस्तक में आयुर्वेद-साहित्य की इसी कमी को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। "श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०" द्वारा बनाई जानेवाली प्रायः सभी दवाओं की निर्माण-विधि तथा उनके गुण-धर्म और प्रयोगविधि के साथ सभी वैद्योपयोगी बातों का वर्णन सरल हिन्दी भाषा में किया गया है। मूल्य—७) मात्र।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०; कलकत्ता, पटना, झाँसी, नागपुर।

पदार्थ-विज्ञान

ले० वैद्य रामरक्ष पाठक आयुर्वेदाचार्य
सीनियर फिजीशियन-आयुर्वेद रिसर्च विभाग-जामनगर

इस ग्रन्थ में प्रमाणों का तुलनात्मक विवेचन, स्वास्थ्य-संरक्षण तथा रोगप्रतीकारार्थ उपयोग में आनेवाले पदार्थों का विवेचन करते हुए आयुर्वेद के मूलभूत त्रिदोष-सिद्धान्त की जननी—प्रकृति और उससे उद्भूत तत्त्वों की छान-बीन की गयी है। साथ ही यह भी दर्शाया गया है कि पूर्वजन्मकृत पापों का परिणाम भोगने के लिए किस प्रकार सगुण-आत्मा भिन्न-भिन्न योनियों में प्रवेश कर अपने कर्मों का फल भोगती है। मूल्य—३।।)

यूनानी सिद्धयोग संग्रह

यूनानी चिकित्सा-पद्धति का महत्त्व सभी जानते हैं। इसके नुस्खे आयुर्वेदीय नुस्खों की भाँति ही लाभदायक और तुरन्त फायदा करने वाले तथा सस्ते होते हैं। आयुर्वेदीय चिकित्सक भी यूनानी दवा से लाभ उठावें, इसलिये एक अनुभवी चिकित्सक से यह ग्रन्थ सरल हिन्दी भाषा में लिखवाया गया है। चिकित्सकों तथा सर्वसाधारण दोनों के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। मूल्य—२।।)

उपचार-पद्धति

(पंचम संस्करण)

सर्वसाधारण गृहस्थ के सैकड़ों रुपये प्रतिवर्ष बच सकते हैं, यदि उन्हें उपचार और पथ्य का साधारण भी ज्ञान हो जाय। इसी लक्ष्य को सम्मुख रखकर इस पुस्तक का प्रकाशन हमने किया है। इसमें रोगियों की परिचर्या का विवेचन दिया गया है। मूल्य—।=)

प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०,
कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर

मानस-रोग विज्ञान

ले० डॉ० बालकृष्णजी अमरजी पाठक

आज के युग में जब कि काम, क्रोध आदि तथा मिरगी (अपस्मार), उन्माद, न्यूरेस्थीनिया, मानसिक अस्थिरता आदि मानसिक रोग मनुष्य जाति को बुरी तरह से त्रस्त कर रहे हैं, यह पुस्तक एक नवीन सन्देश देती है। अनुभवी लेखक की मँजी हुई लेखनी और तीक्ष्ण तर्कों ने प्रस्तुत पुस्तक के विषयों पर उपयुक्त सामग्री का सुन्दर और अधिकारपूर्ण रूप से सम्पादन किया है। हमारा विश्वास है कि वैद्य समाज, आयुर्वेद के शिक्षक और विद्यार्थी तथा साथ ही साथ सर्वसाधारण जनता के लिए भी यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी होगा। मूल्य—५।।)

आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान

ले० वैद्य रणजितराय
वाइस प्रिन्सिपल आयुर्वेदीय म० वि० सूरत

आधुनिक मूलतत्त्वों के साथ आयुर्वेदोक्त तत्त्वों का समन्वय करने के लिए किस दृष्टि से प्रयास होना चाहिए, इस विषय में यथास्थान विद्वान् लेखक ने अपना मत प्रकाशित किया है। आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान अन्य सभी आयुर्वेदीय विषयों का आधारभूत है। अतः उसका अध्यापन किस शैली से होना चाहिए, इस बात का विवेचन करते हुए विषय को नया ही रूप देने का सफल प्रयास किया गया है। मूल्य—६)

प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०
कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर

बैद्यनाथ-प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पाठ्योपयोगी अनुपम ग्रन्थरत्न

द्रव्यगुण विज्ञानम्

(पूर्वार्धः)

संशोधित-परिवर्द्धित तीसरा संस्करण

लेखक : आयुर्वेदमार्त्तण्ड आयुर्वेद वाचस्पति

वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य : बम्बई

आजकल सम्पूर्ण भारत में प्रचलित आयुर्वेद विद्यालयों में प्रायः विषय प्रधान पाठ्यक्रम ही चलाया जाता है। परन्तु इस पाठ्यक्रम के अनुसार सब विषयों पर पाठ्य पुस्तकें न बनने से अध्यापकों और विद्यार्थियों को पठन-पाठन में बड़ी कठिनाइयों का अनुभव हो रहा है, अतः विषयानुसार पाठ्यग्रन्थों का निर्माण होना आवश्यक है, उन पाठ्य विषयों में एक विषय द्रव्यगुण-विज्ञान भी है।

आयुर्वेदीय ग्रन्थों में सूत्र रूप में यत्र-तत्र बिखरे हुए द्रव्यगुण विषय को आयुर्वेद-तत्त्ववेत्ता पूज्यपाद आचार्य जी ने बड़े परिश्रम से द्रव्यों के **रस-गुण-वीर्य-विपाक** और **प्रभाव** आदि के विषय पर पृथक्-पृथक् पाँच अध्यायों में बहुत उत्तमता पूर्वक संकलित कर प्रस्तुत पुस्तक में ऐसा सुन्दर सरल संस्कृत तथा हिन्दी भाषा में विवेचन किया है, जो आयुर्वेद-विज्ञान की प्रगति के लिए बहुत उपकारक है। विशेष कर आयुर्वेद के अध्यापकों तथा छात्रों या छात्रोपयोगी पाठ्यग्रन्थ निर्माणकर्ताओं को—जिन्हें अबतक आयुर्वेदीय द्रव्यगुण-शास्त्र के विषय-प्रधान शिक्षण के पाठ्यक्रम में श्रेष्ठ ग्रन्थ के अभाव में कठिनाई उपस्थित होती थी, इस ग्रन्थरत्न के द्वारा आयुर्वेद-विज्ञान की मूल भित्ति द्रव्यगुण-शास्त्र का विस्तृत ज्ञान सरलता से प्राप्त कर सकेंगे। स्नातकोत्तर शिक्षण के लिए भी यह ग्रन्थ अत्युपयोगी है। डबल डिमाई १६ पेजी ४०० पृष्ठों का लागत मात्र मूल्य ४।।) है।

प्राप्ति-स्थान :

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर।

'आयुर्वेदीय क्रियाशारीर' और 'आयुर्वेदीय पदार्थविज्ञान' के सुविदित लेखक

वैद्य रणजितराय देसाई

आयुर्वेदालंकार, आयुर्वेदाचार्य

वाइस-प्रिंसिपल, आयुर्वेद महाविद्यालय, सूरत

की

शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली

अभिनवकृति

साथ

आयुर्वेदीय हितोपदेश

आयुर्वेद के रहस्यावबोधन के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है, यह सर्ववादि सम्मत है। प्रायः आयुर्वेदीय पाठचक्रमों में प्रारम्भिक परीक्षा में एक पाठ्य और परीक्षा विषय के रूप में संस्कृत का समावेश है भी। परन्तु बहुधा उसका अध्ययन-अध्यापन हितोपदेश, पञ्चतन्त्र प्रभृति आयुर्वेद-बाह्य ग्रन्थों द्वारा होता है। कई प्रविदित कारणों से यह पद्धति विद्यार्थी और अध्यापक दोनों के लिए अप्रीतिकर प्रतीत हुई है। अच्छा यह है कि आयुर्वेद की संहिताओं से ही आयुर्वेद के वचनों का संग्रह कर उन्हें ग्रन्थबद्ध किया जाए और ऐसे ग्रन्थों को संस्कृत विषय की पाठ्यपुस्तक नियत किया जाए। इसका एक सुफल यह भी होगा कि आयुर्वेद के वचनों और सिद्धान्तों में विद्यार्थी का अनायास प्रवेश हो जाएगा।

विद्यावयोवृद्ध महानुभावों का आशीर्वाद तथा मित्रों का प्रोत्साहन प्राप्त कर वैद्य रणजितरायजी **आयुर्वेदीय हितोपदेश** नाम से इसी पद्धति का एक ग्रन्थ रच रहे हैं। वैद्यजी की कृति **आयुर्वेदीय क्रियाशारीर** तथा **आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान** का जिन्हें परिचय है एवं जिन्होंने **सचित्र आयुर्वेद** में नियमित प्रकाशित होनेवाली आपकी लेखमालाएँ देखी हैं, वे जान सकते हैं कि ग्रन्थ इस दृष्टि से कितना उपयोगी होगा। ग्रन्थ में मूल वचनों का हिन्दी भाषान्तर, व्याख्या तथा नव्यमत से समन्वय भी दिया गया है, जो वैद्यजी की अपनी विशेषता है।

ग्रन्थ की छपाई जोरों से हो रही है। इस बात का ध्यान रखा गया है कि ग्रन्थ अगला सत्र आरम्भ होने के पूर्व ही हमारे मान्य पाठचक्रम-निर्माताओं, अध्यापकों तथा छात्रों के हाथों में पहुँच जाए। मूल्य लगभग २।।) या ३) होगा। अभी से आर्डर भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करा लीजिए।

सचित्र आयुर्वेद

दिसम्बर, १९५४

विश्व के लिए आयुर्वेद का संदेश

संसार परिवर्तनशील है। आज हम एक ऐसे युग से गुजर रहे हैं, जो महाजटिल है। वैज्ञानिक शैली तथा उपकरणों ने निरीक्षण तथा परीक्षणों का महाजाल खड़ा कर दिया है और लोग इसके चकाचौंध में पड़कर यह समझने लगते हैं कि हम सुरक्षित हैं——रोगभय-मुक्त हैं। लेकिन पुनरावर्तन का नियम मानव को पुनः भूतकाल की परिस्थिति में ही वापस ला देता है। समय की गति को देखते हुए हम यही सोचने को वाध्य होते हैं कि रोग एवं चिकित्सा के विषय में आयुर्वेदीय दृष्टिकोण ही अब पुनः मान्यता प्राप्त करने लगा है और स्वेच्छा या अनिच्छा से हम अपने को वहीं उपस्थित पा रहे हैं, जहां हमारे पूर्वज खड़े थे। अर्वाचीन वैज्ञानिक रहन-सहन तथा विचारधारा की न्यूनताएं धीरे धीरे प्रकट होने लगी हैं और पाश्चात्य जनता ने भी यह अनुभव करना आरम्भ कर दिया है कि वैज्ञानिक उन्नति से ही मानव जाति का कल्याण नहीं हो सकता। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नवचेतना आयी और प्राचीन आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र का पुनरुद्धार करने की आवश्यकता एवं उपयोगिता अनुभूत हुई। जनता और सरकार भी इसमें दिलचस्पी लेने लगी है और वह दिन दूर नहीं, जब आयुर्वेद को विश्व-चिकित्सा-पद्धति बनने का गौरव प्राप्त होगा।

— डॉ० प्राणजीवन एम० मेहता
एम. डी., एस. एस.

प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

'बैद्यनाथ अशोकारिष्ट' का चमत्कार

"मैं देहात का रहने वाला एक साधारण किसान हूँ। मेरी शादी हुए १४ वर्ष व्यतीत हो गये थे, परन्तु कोई संतान नहीं हुई थी। शुरू में मैंने कुछ ध्यान नहीं दिया। ३-४ साल इसी प्रकार बीत गये। बाद में मुझे संतान न होने से चिन्ता होने लगी। जिस किसी ने कहा, जहाँ-तहाँ छोटे-बड़े बैद्य-डाक्टरों के पास इलाज करवाता फिरा। किसी ने रक्त-गुल्म तो किसी ने अन्य ही कुछ रोग बताया और मैं पैसे खर्चता रहा। गरीबी की हालत में भी सैकड़ों रुपये बरबाद किये, परन्तु लाभ कुछ भी नहीं हुआ। सब ओर से निराशा-ही-निराशा प्राप्त हुई--मेरी चिन्ता दिन-दिन बढ़ती गई।

"अन्त में मैं यह सोचकर चुप बैठ रहा कि मेरी औरत बन्ध्या है। हम संतानहीनों का जीवन संसार में व्यर्थ ही है। यही मैं मन में करता रहता था। परन्तु ईश्वर की कृपा से आपके एजेन्ट गोरेगाँव वाले सखारामकान्त जी गजबे ने मेरी चिन्ताजनक स्थिति को देखकर **श्री बैद्यनाथ अशोकारिष्ट** पिलाने की सलाह दी। साथ ही पूर्ण विश्वास भी दिलाया कि आपकी मनोकामना जरूर ही पूरी होगी।

"मैंने पहले ६०-६० तोले वाली दो बोतल पिलाई, जिससे मासिकधर्म की गड़बड़ी ठीक हो गई। परन्तु मैं श्रद्धा तथा विश्वास के साथ पिलाता ही रहा। इस प्रकार बीच-बीच में दो-दो महीने छोड़कर बारह माह में ६०-६० तोले वाली अशोकारिष्ट की ७ (सात) बोतल पिलाई--ईश्वर की कृपा से नौ माह बाद एक पुत्री का जन्म हुआ। आज वह ३।। माह की है और सुन्दर-स्वस्थ है। हमारे लिये पुत्री पुत्र से भी बढ़कर है, जिसको पाकर हम दम्पति खूब प्रसन्न हैं तथा **श्री बैद्यनाथ कम्पनी** को धन्यवाद देते हैं कि ईश्वर करें वह खूब फलें फूलें, जिसकी कृपा से हम दुःखी निराशों को आशा मिली--संतानरूपी सुख मिला। अब मैं ३-४ अन्य महिलाओं को भी विश्वास के साथ सेवन करवा रहा हूँ--जो कि उनकी भी आशा पूर्ण होने से उनको तथा मेरे को भी प्रसन्नता हो रही है।"

आपका सदा कृपाकांक्षी सेवक
दसाराम जी रावत
मु०--मलपुरी, पो०--कुराड़ी,
जि०--भंडारा (मध्य प्रदेश)।

सचित्र आयुर्वेद के वार्षिक मूल्य में वृद्धि

भारतीय जनता और भारत की प्राचीन चिकित्सा-पद्धति आयुर्वेद की सेवा पूर्ण सफलता, सुयोग्यता और सचाई के साथ कर आयुर्वेद-जगत के सर्वाधिक प्रचारित एवं सर्वजन प्रशंसित मासिक पत्र **सचित्र आयुर्वेद** ने देशव्यापी ख्याति और प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है। **सचित्र आयुर्वेद** के प्रति आयुर्वेद-विशेषज्ञों और आधुनिक चिकित्सा-विशेषज्ञों की समान रूप से कृपा एवं सहानुभूति रही है एवं उनके महत्त्वपूर्ण निबंधों से **सचित्र आयुर्वेद** का प्रत्येक अंक परिपूर्ण रहा करता है। **सचित्र आयुर्वेद** का वृहदाकार विशेषांक प्रतिवर्ष नव-वर्षोपलक्ष में प्रकाशित होता है। इसके **राजयक्ष्मा-विशेषांक** की सराहना भारत एवं विदेशों के विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से की है।

आयुर्वेद की सेवा में **सचित्र आयुर्वेद** जब कि इतना महान आत्मत्याग, परिश्रम, अथक प्रयास और अपार अर्थ-व्यय कर रहा है, आयुर्वेद के समर्थकों, सेवकों, चिकित्सकों तथा सर्वसाधारण भारतीय जनता का भी इसको पर्याप्त सहयोग प्राप्त होना वाञ्छनीय है। आयुर्वेद की सेवाओं में अधिकाधिक उत्साह और बल के साथ संलग्न रहने में अपने को समर्थ बनाने के उद्देश्य से हमने **सचित्र आयुर्वेद के वार्षिक मूल्य में सामान्य वृद्धि की है। सचित्र आयुर्वेद का वार्षिक मूल्य अब ५) (पांच रुपये) कर दिया गया है।** इसकी एक **साधारण प्रति का मूल्य भी आठ आने** हो गया है। लेकिन, इस सामान्य मूल्य-वृद्धि के बदले पाठकों को हम अधिकाधिक उपयोगी और महत्त्वपूर्ण पाठ्य-सामग्री देते रहने की आशा रखते हैं। हमें विश्वास है कि आयुर्वेद-प्रेमीजन अधिकाधिक संख्या में **सचित्र आयुर्वेद** के ग्राहक बनकर हमें उत्साहित करेंगे।

पुराने ग्राहकों को सूचना

सचित्र आयुर्वेद के जिन ग्राहकों का वार्षिक चन्दा इस अंक के प्राप्त होने के साथ-साथ समाप्त हो गया हो, उनसे निवेदन है कि वे **अविलम्ब वार्षिक चन्दा ५) (पांच रुपये) मनिआर्डर से भेज दें।।** यदि उनका चन्दा ३० दिसम्बर, '५४ तक कार्यालय में नहीं पहुँचेगा तो उनको जनवरी का अंक ५।≈) (पाँच रुपये छः आने) की वी० पी० द्वारा भेजा जायगा। ग्राहकों से अनुरोध है कि वी० पी० के व्यर्थ खर्च से बचने के लिए उक्त तिथि तक मनीआर्डर द्वारा वार्षिक चन्दा अवश्य भेज दें।

नये ग्राहकों के लिए विशेष सुविधा

सचित्र आयुर्वेद के नये ग्राहकों को 'राजयक्ष्मा विशेषांक' की एक प्रति निःशुल्क दी जायगी। हमारे पास इस विशेषांक की प्रतियाँ बहुत ही कम बच रही हैं। अतएव शीघ्र ग्राहक बनकर विशेषांक की प्रतियाँ निःशुल्क प्राप्त कर लें।

—व्यवस्थापक

'सचित्र आयुर्वेद' का सर्वजन समादृत विशेषांक

'राजयक्ष्मा अंक'

पर सहयोगियों और विद्वानों की शुभ-सम्मतियाँ

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संग्रह

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा प्रकाशित 'सचित्र आयुर्वेद' मासिक पत्र का **राजयक्ष्मा विशेषांक** बहुत ही सुन्दर पठनीय एवं संग्रहणीय है। इसमें यक्ष्मा रोग के कारण, निदान, चिकित्सा, पथ्यापथ्य और रोगनिरोध विषयक अनेक चित्रमय लेख भरे पड़े हैं। यह अंक वैद्यों, विद्यार्थियों और साधारण पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी और संग्रहणीय है।

--आरोग्य मित्र, बम्बई

आयुर्वेद की सराहनीय सेवा

हमारे सहयोगी **'सचित्र आयुर्वेद'** ने राजयक्ष्मा विशेषांक प्रकाशित किया है। यह उसका अभिनन्दनीय प्रयास है। इस में उत्तम कोटि की प्रचुर पाठ्यसामग्री है। इसमें कई लेख तो ऐसे हैं कि दिल खोल कर शाबाशी देने की इच्छा होती है। इस अंक के द्वारा **'सचित्र आयुर्वेद'** पत्रिका ने आयुर्वेद की सराहनीय सेवा की है। ऐसा सुन्दर और श्रेष्ठ विशेषांक निकालने के लिए हम **श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०** का अभिनन्दन करते हैं।

--आरोग्य सिंधु

अतीव प्रशंसनीय विशेषांक :

'सचित्र आयुर्वेदस्य' राजयक्ष्मा विशेषांकः अतीव प्रशंसनीयः आयुर्वेदस्य छात्राणां जिज्ञासुविदुषां च उपकारकः। अयं विशेषांकः संस्कृतमयोयद्यभविष्यत् सकल भारतीय वैद्यानामपि परमोपकारकोऽभविष्यत्। परन्तु इदानीं हिन्दी विदामवैद्यलोकानामपि उपकारक इति महान् लाभ एव। राजयक्ष्माङ्के प्रकाशितः 'राजयक्ष्म प्रसारस्य मूलकारणं तत्प्रतिरोधश्चेति' निबन्धः अतीव रमणीयः। आयुर्वेद समुद्धरण पुण्यव्रततत्पराणां तत्र भवतां आयुर्वेदसमुद्धरणोद्यमाः सर्वेपि पुष्कलफला भूयासुरिति समाशासे। **--वा० बा० नटराजशास्त्री** आयुर्वेदाचार्य, वैद्यविशारद, वैद्यवाचस्पति तिरुचिरापल्ली।

अत्यन्त उपयोगी विशेषांक

यूं तो **"सचित्र आयुर्वेद"** आयुर्वेद विज्ञान का एक उच्च कोटि का मासिक पत्र है, परन्तु इसका यह **राजयक्ष्मा विशेषांक** बहुत ही उपयोगी अंक है। ढाई सौ पृष्ठ के इस विशेषांक में राजयक्ष्मा से सम्बन्धित भिन्न-भिन्न विषयों पर प्रकाण्ड विद्वानों के उत्तमोत्तम लेख हैं। प्रत्येक लेख के साथ पर्याप्त चित्र हैं। लेख ऐसे हैं जो न केवल वैद्यों और डाक्टरों के लिये उपयोगी हैं, बल्कि जन साधारण के ज्ञानवर्धन के लिए भी अनेक लेख हैं, जिन्हें पढ़कर इस रोग से बचा जा सकता है और यदि रोग हो जाय तो उसका उत्तमोत्तम उपाय किया जा सकता है। इस प्रकार यह अंक चिकित्सकों के लिये तो बहुत उपयोगी है ही, साथ ही जन साधारण के लिये भी संग्रहणीय है। हम सम्पादक महोदय को इस सुन्दर अंक के लिये बधाई देते हैं और प्रकाशकों को भी धन्यबाद देते हैं, जिन्होंने इसकी छपाई आदि पर खुले दिल से व्यय किया है। कागज उत्तम लगाया है और चित्रों की छपाई भी बढ़िया हुई है। इस २५० पृष्ठ के अंक का मूल्य भी २) बहुत कम है फिर ४) देकर वार्षिक ग्राहक बननेवालों के लिये तो यह मुफ्त के बराबर है। आशा है इस अंक का खूब प्रचार होगा।

--होमियोपैथिक सन्देश

आयुर्वेद की महान सेवा

राजयक्ष्मा अंक का मैंने आद्योपान्त अवलोकन किया। इस अंक के तीन भाग में यक्ष्मा का इतिहास, वैज्ञानिक विवेचना, निदान, चिकित्सा, पथ्यापथ्य, प्रसार, प्रतिरोध सब ही के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है। यह अंक जितना वैद्यसमुदाय के लिये उपयोगी है उतना ही जनसाधारण लिये भी उपयोगी है। इस अंक को **श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०** ने प्रकाशित कर आयुर्वेद-जगत महान कल्याण किया है। **--वैद्य हीरालाल जैन,** मन्त्री श्री अवन्तिका वैद्य मण्डल, उज्जैन।

वैद्यनाथ प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थरत्न

आयुर्वेदीय व्याधि-विज्ञान (पूर्वार्ध)

लेखक—आयुर्वेदमार्तण्ड वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य

सहयोगियों की शुभ सम्मतियाँ

पूज्य आचार्य श्रीयादवजी महाराज ने आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थों का संशोधन कर आयुर्वेद-जगत का महान् उपकार किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ संस्कृत के अवतरणों के साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी में लिखा गया है। अभी अनेक विशिष्ट रोगों के वर्णन के साथ उत्तरार्ध भाग प्रकाशित होकर जनता के सामने आने ही वाला है। इस पुस्तक में आयुर्वेदीयदृष्टि से रोग-ज्ञान के लिए अत्यन्त उपयोगी जो विषय हैं, उनका 'मधुसंचय' पद्धति से समावेश किया गया है। इसलिए उन विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय सिद्ध होगा, जो विषय-प्रधान अभ्यासक्रमके अनुसार अध्ययन करते हैं और संस्कृत-साहित्य का अत्यल्प ज्ञान रखते हैं। आज की दुनिया में सब जगह विषयक्रमानुसार अध्ययन चलता है। प्राथमिक, माध्यमिक या विश्वविद्यालय की उच्च शिक्षा ग्रहण किये हुए जो विद्यार्थी आयुर्वेद पढ़ने आते हैं, उनकी विषयक्रमानुसार ही पढ़ने की आदत है। संहिता-ग्रन्थों में आया हुआ क्रम और उसमें निहित गूढ़ सम्पूर्ण तत्-तत् विषयक-ज्ञान यत्र-तत्र विखरा पड़ा है। इसलिए उस क्रम और ज्ञान को इकट्ठा करने में विद्यार्थी और अध्यापक दोनों को अत्यन्त कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इस विडम्बना को दूर करने के लिये इस तरह के संग्रह और अनुवाद के द्वारा जो सत्प्रयत्न किया गया है, उसके लिए ग्रन्थ-कार भूरि-भूरि धन्यवाद के योग्य एवं अनुकरणीय हैं। प्राचीनकाल से लेकर आज तक आयुर्वेद वाङ्मय में जो सुधार और उत्कर्ष हुआ है, तत्सम्बन्धी परिज्ञान ऐसी ही पुस्तकों से मिल सकता है। फिर भी विविध संहिता-ग्रन्थों के विचारों में और वस्तुओं में परस्पर कितना साम्य और वैषम्य है—वह ऐसे ही ग्रन्थों से जाना जा सकता है। इस पुस्तक के अध्ययन से यह अनायास जाना जायगा कि आयुर्वेदाभ्यास के लिए कितने परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है और यह भी जाना जा सकता है कि सोंठ को एकत्र रखने मात्र से पंसारी नहीं बना जा सकता। ऐसी पुस्तक लिखने के लिए सचमुच आचार्य श्री यादव जी का आयुर्वेद-जगत ऋणी हैं। श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० ने इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को प्रकाशित कर आयुर्वेद- जगत का महान हित साधन किया हैं, एतदर्थ हम उसे भी हार्दिक साधुवाद देते हैं।

—भिषग्भारती, सूरत

* * * * *

आयुर्वेद में 'व्याधि-विज्ञान' महत्त्वपूर्ण विषय है। आर्षसंहिताओं तथा प्रकीर्ण ग्रन्थ रत्नों में तत्सम्बन्धी प्रचुर साहित्य हैं। श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा प्रकाशित 'आयुर्वेदीय व्याधि विज्ञान (पूर्वार्द्ध) का वैद्यराज श्री यादवजी त्रिकम जी आचार्य ने हिन्दी भाषा में प्रणयन कर आयुर्वेद का गौरव बढ़ाया है। शुद्ध आयुर्वेद जिज्ञासु वैद्यों, विद्यार्थियों तथा डाक्टरों का मार्ग दर्शन कराने में यह पुस्तिका समर्थ है। इस पुस्तक का अध्ययन करने से विद्यार्थियों तथा विद्यानुरागी विद्वान वैद्यों को नवीन विचार-शक्ति प्राप्त होगी। इसके लिए आचार्य जी समग्र वैद्यसमाज के अभिनन्दन के पात्र हैं।

—वैद्य कल्पतरु

* * * * *

पूज्य वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य द्वारा लिखित आयुर्वेदीय व्याधि विज्ञान (पूर्वार्ध) रोग परीक्षा करने के उपायों पर विस्तृत रूप से आयुर्वेदीय मतानुसार प्रकाश डालता है। यह पुस्तक पांच अध्यायों में विभक्त है। संस्कृत वाक्यों का अनुवाद और विवरण सुबोध हिन्दी में देकर पुस्तक को अत्यन्त उपयोगी बना दिया गया है। यह संग्रह अत्यन्त सुन्दर हुआ है। इसके लेखन में आचार्य जी को कितना परिश्रम करना पड़ा है, यह पुस्तक को देखने से ही स्पष्ट हो जाता है। ऐसे सुन्दर ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० धन्यवाद का पात्र हैं।

—आरोग्य मन्दिर

वैद्यनाथ-प्रकाशन की वैद्योपयोगी पुस्तकें

आरोग्य-स्वच्छता और चिकित्सा पर श्रेष्ठ ग्रन्थ

भारत प्रसिद्ध "श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०" के मैनेजिंग डायरेक्टर वैद्यराज पण्डित रामनारायण शर्मा वैद्यशास्त्री ने ५-६ वर्षों में बड़ी मिहनत से इस ग्रन्थ को स्वयं लिखा है। ग्रन्थ का एक-एक वाक्य हजारों रुपयों का काम देता है। इसके ९ संस्करणों में ८३००० प्रतियाँ छपकर बिक चुकी हैं और १० वें संस्करण में १५ हजार प्रतियाँ फिर छापी गयी हैं। इसीसे इसकी लोकप्रियता और उपयोगिता स्पष्ट मालूम होती है। प्रचार की दृष्टि से मूल्य भी बहुत कम रखा गया है। मूल्य २), डाकखर्च ।।=)

वैद्यनाथ प्रकाशन
आरोग्यप्रकाश
वैद्यराज पं० रामनारायण शर्मा वैद्यशास्त्री

आयुर्वेद-सारसंग्रह
द्वितीय संस्करण

हिन्दी में ऐसी आयुर्वेदीय पुस्तकों की बड़ी कमी थी, जिनमें रोग-विचार के साथ चिकित्सा, औषध-निर्माण, अनुपान, पथ्यापथ्य आदि का विवरण समझा कर सरल भाषा में एकत्र दिया गया हो। इससे सर्व साधारण पाठकों के सामने बहुत दिक्कतें आती थीं। प्रस्तुत पुस्तक में आयुर्वेद-साहित्य की इसी कमी को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। "श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०" द्वारा बनाई जानेवाली प्रायः सभी दवाओं की निर्माण-विधि तथा उनके गुण-धर्म और प्रयोगविधि के साथ सभी वैद्योपयोगी बातों का वर्णन सरल हिन्दी भाषा में किया गया है। मूल्य—७) मात्र।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, कलकत्ता, पटना, झाँसी, नागपुर

पदार्थ-विज्ञान

ले० वैद्य रामरक्ष पाठक, आयुर्वेदाचार्य
सीनियर फिजीशियन-आयुर्वेद रिसर्च विभाग-जामनगर

इस ग्रन्थ में प्रमाणों का तुलनात्मक विवेचन, स्वास्थ्य-संरक्षण तथा रोगप्रतीकारार्थ उपयोग में आनेवाले पदार्थों का विवेचन करते हुए आयुर्वेद के मूलभूत त्रिदोष-सिद्धान्त की जननी—प्रकृति और उससे उद्भूत तत्त्वों की छान-बीन की गयी है। साथ ही यह भी दर्शाया गया है कि पूर्वजन्मकृत पापों क परिणाम भोगने के लिए किस प्रकार सगुण-आत्मा भिन्न-भिन्न योनियों में प्रवेश कर अपने कर्मों का फल भोगती है। मूल्य—३।।)

यूनानी सिद्धयोग संग्रह

यूनानी चिकित्सा-पद्धति का महत्त्व सभी जानते हैं। इसके नुस्खे आयुर्वेदीय नुस्खों की भाँति ही लाभदायक और तुरन्त फायदा करने वाले तथा सस्ते होते हैं। आयुर्वेदीय चिकित्सक भी यूनानी दवा से लाभ उठावें, इसलिये एक अनुभवी चिकित्सक से यह ग्रन्थ सरल हिन्दी भाषा म लिखवाया गया है। चिकित्सकों तथा सर्वसाधारण दोनों के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। मूल्य—२।।)

उपचार-पद्धति

(पंचम संस्करण)

सर्वसाधारण गृहस्थ के सैकड़ों रुपये प्रतिवर्ष बच सकते हैं, यदि उन्हें उपचार और पथ्य का साधारण भी ज्ञान हो जाय। इसी लक्ष्य को सम्मुख रखकर इस पुस्तक का प्रकाशन हमने किया है। इसमें रोगियों की परिचर्या का विवेचन दिया गया है। मूल्य—।=)

प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०,
कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर

मानस-रोग विज्ञान

ले० डॉ० बालकृष्णजी अमरजी पाठक

आज के युग में जब कि काम, क्रोध आदि तथा मिरगी (अपस्मार), उन्माद, न्यूरेस्थीनिया, मानसिक अस्थिरता आदि मानसिक रोग मनुष्य जाति को बुरी तरह से त्रस्त कर रहे हैं, यह पुस्तक एक नवीन सन्देश देती है। अनुभवी लेखक की मँजी हुई लेखनी और तीक्ष्ण तर्कों ने प्रस्तुत पुस्तक के विषयों पर उपयुक्त सामग्री का सुन्दर और अधिकारपूर्ण रूप से सम्पादन किया है। हमारा विश्वास है कि वैद्य समाज, आयुर्वेद के शिक्षक और विद्यार्थी तथा साथ ही साथ सर्वसाधारण जनता के लिए भी यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी होगा। मूल्य—५।।)

आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान

ले० वैद्य रणजितराय
वाइस प्रिन्सिपल आयुर्वेदीय म० वि० सूरत

आधुनिक मूलतत्त्वों के साथ आयुर्वेदोक्त तत्त्वों का समन्वय करने के लिए किस दृष्टि से प्रयास होना चाहिए, इस विषय में यथास्थान विद्वान् लेखक ने अपना मत प्रकाशित किया है। आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान अन्य सभी आयुर्वेदीय विषयों का आधारभूत है। अतः उसका अध्यापन किस शैली से होना चाहिए, इस बात का विवेचन करते हुए विषय को नया ही रूप देने का सफल प्रयास किया गया है। मूल्य—६)

प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०
कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर

बैद्यनाथ प्रकाशन

आयुर्वेदीय-साहित्य का अमूल्य ग्रन्थ जो अभी प्रकाशित हुआ है

आयुर्वेदीय व्याधि-विज्ञान

(पूर्वार्ध)

लेखक--**आयुर्वेद-मार्त्तण्ड वैद्य श्री यादवजी त्रिकमजी, आचार्य--बम्बई,**

किसी भी रोग की चिकित्सा के पूर्व रोगों के निदान का ज्ञान होना परमावश्यक है। रोग के सम्यक् निर्णय के बिना रोगी की चिकित्सा सफल नहीं हो सकती।

इसीलिए व्याधि विज्ञान (निदान-रोग विनिश्चय) आयुर्वेद के प्रधान विषयों में सम्मिलित एक उपयोगी विषय है। इस ग्रन्थ में व्याधि-विज्ञान के साधनों का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। व्याधियाँ कितने प्रकार की होती हैं; निज, स्वाभाविक और आगन्तुक व्याधियों में क्या भेद है, स्वतन्त्र और परतन्त्र व्याधियों के स्वरूप क्या हैं; प्रभाव, बल, अधिष्ठान, निमित्त और समुत्थान भेद से १० प्रकार के रोगानीक कैसे हो जाते हैं; रोगों का आश्रय क्या है, आदि अनेक ज्ञातव्य बातें इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक अध्याय में वर्णित हैं। यह पूर्वार्ध खण्ड पांच अध्यायों में विभाजित है, जिन्हें अध्ययन कर लेने के बाद निदान सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य-सिद्धान्त हस्तामलकवत् प्रतिभात हो जाते हैं। आयुर्वेदीय प्रेमी विद्वान और विद्यार्थी, दोनों के लिए यह ग्रन्थ विशेष उपयोगी है।

इस ग्रन्थ के लेखक के सम्बन्ध में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। डिमाई साइज के ११२ पृष्ठ की सुन्दर छपी हुई सजिल्द पुस्तक का मूल्य मात्र २।।)

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

कलकत्ता : पटना : झांसी : नागपुर।

विषय-सूची

वार्षिक मूल्य ४) **राजयक्ष्मा-विशेषांक २)** **साधारण अंक एक प्रति ।=)**

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के कानपुर स्थित बिक्री-केन्द्र पाण्डे आयुर्वेदिक स्टोर में अनुष्ठित धन्वन्तरि-जयन्ती का एक दृश्य
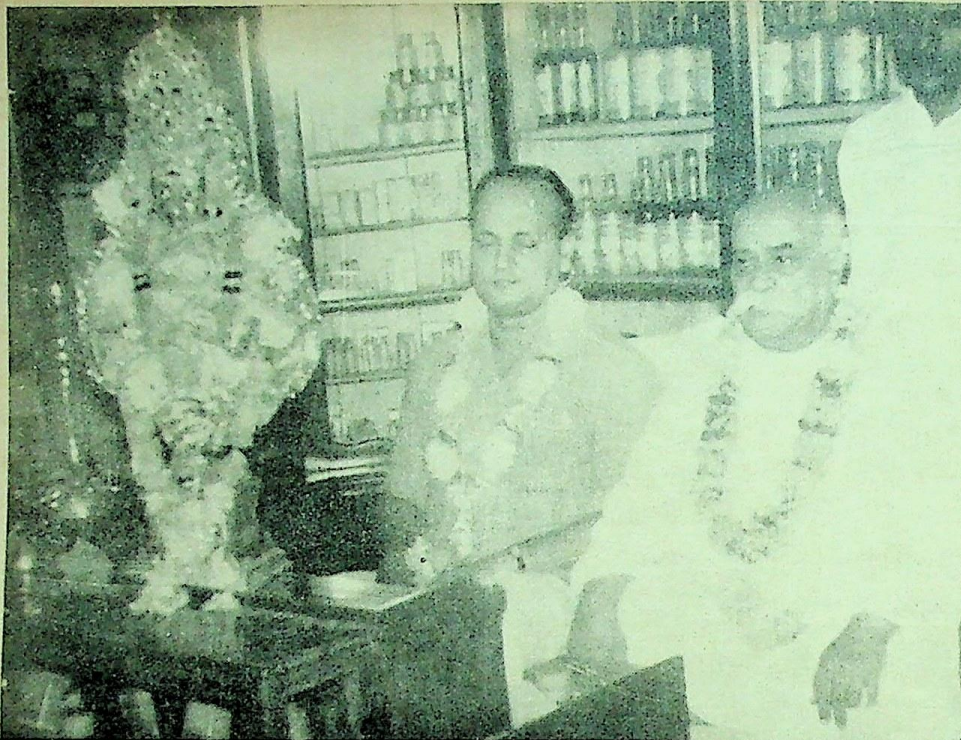
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के कानपुर बिक्री-केन्द्र पाण्डे आयुर्वेदिक स्टोर में धन्वन्तरि-पूजन ।

'बैद्यनाथ' के कानपुर बिक्री-केन्द्र पाण्डे आयुर्वेदिक स्टोर में धन्वन्तरि-जयन्ती के अवसर पर गृहीत समूह चित्र ।

।। श्री धन्वन्तरये नमः ।।
आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन-समादृत और सर्वाधिक बिक्री होनेवाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख मासिक पत्र

सचित्र आयुर्वेद

आयुःकामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ।।

वर्ष ७	कलकत्ता, दिसम्बर, १९५४	अंक ६

आयुर्वेद-गौरवम्

भो ? भो ? भारतभारतीपरिचये बद्धादराः पण्डिताः ।
हे लोकेशकुमारकाः परहिते लग्नाः सभेयास्तथा ।।
वित्तोपार्जनचातुरीसुविलसत्स्वान्ताः सुवैश्या मुदा ।
सत्सेवाभृतिकारिणः सुवचनास्तूर्याः शृणुध्वं गिरम् ।।१।।
युष्माकं यदि नैजसंस्कृतिपथे श्रद्धा तथार्थव्यये ।
राष्ट्रस्यैव हितं भवेदिति शुभा बुद्धिस्तदा गीयताम् ।।
श्रीधन्वन्तरि - सुश्रुत - प्रभृतिभिर्ध्यातोऽनुभूतो महा—
नायुर्वेदतरुः सगौरवमयं लोके समुज्जृम्भताम् ।।२।।

पं० श्रीगोपालचन्द्रमिश्रः,
एम० ए०, वेद-धर्मशास्त्र-मीमांसा-दर्शनाचार्यः

भगवान धन्वन्तरि के प्रति

वैद्य श्री दयाराम पाठक

फिर एक बार, फिर एक बार, पीयूषपाणि ! फिर एक बार ।
माँ के अञ्चल को हरा-भरा करने आओ फिर एक बार ।।
अवनी पुकारती एक बार, अम्बर पुकारता एक बार ।
जिस रत्नाकर से तुम निकले कहता धन्वन्तरि ! एक बार ।।

भारत पर पुण्य-चरण रख दो सन्तान पुनः वन्दना करे ।
मानव की श्रद्धा जीती है श्रद्धा लेकर अर्चना करे ।।
लेकर अमृत का कलश विभो ! निज कर्मभूमि पर उतर पड़ो ।
देने प्रसूति को प्राण प्रभो ! निज जन्मभूमि पर उतर पड़ो ।।

भगवान ! तुम्हारे सिवा कौन इन चाकचिक्य के जालों को–
कर सकता 'पाठक' छिन्न भिन्न ? भारत के नर-कंकालों को–
दे सकता जीवनदान कौन ? पश्चिम के रंगे दलालों को–
ला सकता पथ पर कौन राष्ट्र की अस्तीनों के व्यालों को ?

जब पश्चिम नग्न घमता था, जग को आचार सिखाते थे ।।
विज्ञान न था जब दुनियाँ में हम पुष्पक-यान उड़ाते थे ।
पैथियां न थीं जब पश्चिम की हम जग का रोग हटाते थे ।
जब नहीं केमिस्ट्री थी जग में मकरध्वज नित्य बनाते थे ।।

हम पाणिशास्त्र के पहले ही वक्षों में प्राण बताते थे ।
अपनी गवेषणा के बल पर हम जगत्-गुरू कहलाते थे ।।
घनघोर पतन की घड़ियों में लेकर 'त्रिदोष' हम खड़े रहे ।
रस, वीर्य, विपाक, प्रभाव, धातु-सिद्धान्त, लिये हम अड़े रहे ।।

अपने मौलिक आदर्शों पर नित डटे रहे-हम डिगे नहीं ।
नित संघर्षों में पलते हैं हम कुरुक्षेत्र से भगे नहीं ।।
हम गौरव और गुमान लिये चलते अतीत का गान लिये ।
प्रत्येक चरण उठ रहे आज भारत का नव निर्माण लिये ।।

हम नंगे हैं, हम भूखे हैं पर आज किसी के दास नहीं ।
हम भीख माँग कर बढ़े कभी कह सकता है इतिहास नहीं ।।
सिद्धान्त हमारे हैं अकाट्य विस्तार उन्हीं का फिर होगा ।
इस विश्व-वाटिका में 'पाठक' गुञ्जार उन्हीं का फिर होगा ।।

सञ्चार उन्हीं का फिर होगा उपचार उन्हीं का फिर होगा ।
दिन दूर नहीं जब अनुयायी संसार उन्हीं का फिर होगा ।।
गुण ग्राहकता है विशेषता, धन्वन्तरि के सन्तानों की ।
'वसुधा है एक कुटुम्ब' उक्ति है भारत के दीवानों की ।।

अपनी 'मृगेन्द्रता' पर रह कर जो ग्राह्य उसे अपनायेंगे ।
जल-थल-अम्बर में 'जय भारत' 'जय आयुर्वेद' गुंजायंगे ।।
अविनाशी को, घट-घट बासी को कौन मिटाने वाला है ?
प्राची के मुख की अरुण ज्योति को कौन बुझाने वाला है ?

जो अमर राष्ट्र का सम्बल है श्रद्धेय पूर्वजों की निधि है ।
जीवन प्रासाद बनाने और सजाने की जिसमें विधि है ।।
जीवन का तत्वज्ञान वही भारत को प्रभु का दान वही ।
इन गिरे दिनों में भी स्वराष्ट्र के लिये बना वरदान वही ।।

उस वरदानी को आज विश्व में कौन पचानेवाला है ?
नीले अम्बर में आज उसी का ध्वज फहरानेवाला है ।।
है स्वतन्त्रता का अर्थ यही थल पर अधिकार हमारा है ।
जल पर अधिकार हमारा है नभ पर अधिकार हमारा है ।।

माँ का विश्वास तुम्हीं पर है भारत को स्वर्ग बनाओगे ।
युग का विश्वास तुम्हीं पर है जीवन सागर लहराओगे ।।
कर्त्तव्य तुम्हारा मूलमन्त्र, भगवान तुम्हारा सम्बल है ।
अधिकार तुम्हारा छीन सके जग में इतना किसमें बल है ?

विज्ञापन-नियन्त्रण-कानून

रोग विशेष और अवस्था विशेष की औषधों के प्रचार के नाम पर सामाजिक भ्रष्टाचार को प्रश्रय देनेवाले जो विज्ञापन निकलते हैं, उनको बन्द करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने Drugs and Magic Remedies—Objectionable Advertisement-Act नामक एक कानून का प्रणयन किया है। इन कानून की धारा ३ की उपधारा ४ में इसके प्रयोगक्षेत्र का वर्णन करते हुए बताया गया है कि 'इस कानून के अनुसार प्रणीत नियमों में अन्य जिन रोगों के नामों का उल्लेख रहेगा, उन पर भी यह कानून लागू होगा।' केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय द्वारा प्रस्तावित नियमों का एक मसविदा भी प्रकाशित किया गया है। कानून की धारा ३ में उल्लिखित 'अन्यान्य रोगों' के नामों की तालिका इस प्रस्तावित नियमावली में दी गयी है। इस तालिका में ८० रोगों के नाम हैं, जिनमें पायोरिया, वात, इन्फ्लुएँजा आदि भी शामिल हैं। यह नियमावली यदि लागू हुई तो इस श्रेणी के रोगों के लिए किसी प्रकार का विज्ञापन प्रकाशित करने पर प्रतिबन्ध लग जायगा।

सामाजिक भ्रष्टाचार को प्रश्रय देने के उद्देश्य से प्रचारित विज्ञापनों पर प्रतिबन्ध लगाने की सरकारी कार्यवाही का समर्थन सभी लोग हार्दिक भाव से करेंगे। हम भी ऐसे विज्ञापनों पर रोक लगाने का समर्थन करते हैं। वस्तुतः इस कानून के उद्देश्यों से यही प्रकट होता है कि सामाजिक भ्रष्टाचार फैलानेवाले विज्ञापनों को रोकने के लिए ही यह कानून बना है और उपधारा ४ में उल्लिखित 'अन्यान्य रोगों' का तात्पर्य उन रोगों से हैं, जिनके विज्ञापनों के प्रचार से सामाजिक भ्रष्टाचार को प्रश्रय मिल सकता अथवा जनसाधारण को विभ्रान्त किया जा सकता है। किन्तु, प्रस्तावित नियमावली में रोगों की तालिका जिस ढंग से रचित हुई है, उससे स्पष्ट मालूम होता है कि केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय के उत्साही कर्मचारियों ने कानून के मूल उद्देश्य का अतिक्रमण कर उसके प्रयोग-क्षेत्र को इस प्रकार प्रसारित करना चाहा है, जिससे उक्त कानून द्वारा प्रदत्त क्षमता का दुरुपयोग ही होगा। ऐसी अनेक सुपरिचित और सुप्रमाणित-ओषधियों के विज्ञापन प्रकाशित होते हैं, जिनका उपयोग जनता द्वारा चिकित्सकों के परामर्श के बिना ही किया जाता है। साथ ही उनका आकस्मिक प्रयोजन तो होता ही है, जनता के नित्य प्रयोजन में भी वे आती हैं। आकस्मिक क्षत, अग्निदाह, स्वास्थ्यहीनता, सर्दी-जुकाम, सामान्य ज्वर आदि में जनता स्वयं औषध खरीदकर उपयोग करती और लाभ उठाती है। मनुष्य शरीर के ८० प्रकार के रोगों की जो तालिका प्रस्तुत हुई है, उसके परिणामस्वरूप प्रायः सभी औषधों के विज्ञापन इस कानून के दायरे में पड़ेंगे। अनिष्टकर, रुचिवहिर्भूत, प्रतारणामूलक और असामाजिक विज्ञापनों को बन्द करने की आवश्यकता निश्चित रूप से है, लेकिन इसके नाम पर अन्यान्य बहुसंख्यक औषधों का विज्ञापन बन्द कर देने से जनसाधारण तथा चिकित्सा-जगत का भीषण अनिष्ट होगा। सुप्रमाणित औषधों के विज्ञापनों से चिकित्सकवर्ग भी लाभ उठाता है; खासकर च्यवनप्राश, अशोकारिष्ट, सुवर्णवसन्तमालती, मकरध्वज आदि अनेक आयुर्वेदीय ओषधियाँ उक्त तालिका में निर्दिष्ट अनेक रोगों में विशेष लाभदायक सिद्ध हो चुकी हैं। अतएव, यह आवश्यक है कि इस प्रकार की सुपरीक्षित आयुर्वेदीय एवं अन्य देशी औषधों के प्रचार में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं करने दी जाय।

इस सिलसिले में यह भी विशेष उल्लेखनीय है कि वर्तमानकाल में भेषज-उद्योग भारत के प्रधानतम उद्योगों में है। आयुर्वेदीय, यूनानी, एलोपैथिक, होमियोपैथिक, प्रभृति विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों के अनुसार स्वदेश में अनेक प्रकार की औषधें प्रस्तुत होती हैं। इनमें अनेक औषधें सुपरिचित और सुप्रमाणित हैं तथा उनके निर्माण और विक्रय के कार्य में लाखों व्यक्ति नियुक्त हैं। ऐसी दशा में यदि विज्ञापन-नियन्त्रण की प्रस्तावित तालिका के प्रयोग से इन औषधों के प्रचार में बाधा उपस्थित होगी तो देश के एक प्रधान उद्योग को आघात पहुँचेगा और देश में बेकारी बढ़ेगी। भारत जैसे दरिद्र देश में, जहाँ चिकित्सक और चिकित्सा-व्यवस्था पर्याप्त नहीं है, औषधों के प्रचार के लिए सुविधा देने की नितान्त आवश्यकता है। अतएव, हम केन्द्रीय सरकार का ध्यान आकृष्ट करते हैं कि आलोच्य विज्ञापन नियन्त्रण कानून को वहीं तक सीमाबद्ध रखा जाना

चाहिये, जिस उद्देश्य से उसका प्रणयन हुआ है एवं उसी श्रेणी के विज्ञापनों के प्रचार को रोकने की ओर ध्यान दिया जाय। स्वास्थ्य मंत्रालय के कर्मचारी नियम - प्रणयन के नाम पर उक्त कानून के उद्देश्यों का अतिक्रमण नहीं करें, इस ओर भी विशेष रूप से ध्यान देने का हम केन्द्रीय शासन से अनुरोध करते हैं।

यादवाभिनन्दन-ग्रन्थ का प्रकाशन

आयुर्वेद के व्यापक क्षेत्र में आयुर्वेद-मार्तण्ड वैद्य श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य सर्वत्र पूज्य और श्रद्धास्पद हैं। आयुर्वेदीय अध्यापन, औषध-निर्माण, चिकित्सा, प्राचीन संहिता ग्रन्थों और मध्यकालीन रस ग्रन्थों का सम्पादन और प्रकाशन, अभिनव ग्रन्थ-रचना, सभा-सम्मेलनों का संचालन, शास्त्र-चर्चा परिषद् की स्थापना, ग्रन्थ-संशोधन तथा सम्पन्न व्यक्तियों में आयुर्वेद की प्रति विश्वास और भक्ति उत्पन्न कर आचार्य जी ने आयुर्वेद की सेवा में अत्यन्त महत्वपूर्ण अंश ग्रहण किया है। सम्पूर्ण आयुर्वेद-जगत आचार्य यादव जी की अनेकविध सेवाओं से उपकृत हैं। आचार्यजी की इन सेवाओं के लिए कृतज्ञ भारतीय वैद्यसमाज उन के सम्मान में शीघ्र एक अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पित करने जा रहा है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा किया जा रहा है। यह ग्रन्थ भी आयुर्वेद जगत में एक महान् क्रान्ति लाने वाला सिद्ध होगा। इसमें ऐसे लेखों-निबन्धों का संग्रह किया जा रहा है, जो आयुर्वेदीय-साहित्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभावित होगा। आचार्य यादव जी के सम्मान में ऐसे महत्वपूर्ण अभिनन्दन-ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए साधुबाद देते हुए आयुर्वेद के विद्वानों से हम अनुरोध करते हैं कि इस इस ग्रन्थ को सर्वाङ्गपूर्ण बनाने के लिए वे पूर्ण सहयोग प्रदान करें और पंचकर्म, जलौकावचरण, क्षारकर्म आदि प्राचीन लुप्तप्राय: चिकित्सा-विषयों पर अपने महत्वपूर्ण लेख भेजकर ग्रन्थ की उपयोगिता में वृद्धि करें।

टिप्पणियाँ

उत्तर प्रदेश वैद्य-सम्मेलन का चुनाव

उत्तर प्रदेश वैद्य सम्मेलन के सभापति का चुनाव शीघ्र होने जा रहा है। चुनाव सम्बन्धी सारी प्राथमिक प्रक्रियाएँ सम्पन्न हो चकी " जो उचित ही है। लेकिन उत्तर प्रदेश का वैद्य समाज आज छिन्न-भिन्न अवस्था में है; वहाँ विभिन्न दल और गुट कायम हैं तथा वैद्यों में उपयुक्त संगठन नहीं है। इस अवस्था की सृष्टि का प्रधान कारण उत्तर प्रदेश वैद्य सम्मेलन का पिछला चुनाव ही है। चुनाव के दौरान में उत्तर प्रदेश के वैद्यों में जो फूट पड़ी, उसके परिणामस्वरूप वैद्य-संगठन टूट गया। अबतक यही स्थिति कायम है। ऐसी अवस्था में यदि पुनः चुनाव हो तो उत्तर प्रदेश के वैद्य समाज का कोई हित होने की हमें आशा नहीं दिखाई देती। उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्य श्री मदन गोपाल जी वैद्य की इस अपील का हम हार्दिक समर्थन करते हैं कि 'इस बार यदि सभापति का निर्विरोध निर्वाचन किया जाय और चुनाव-संघर्ष से बचा जाय तो उत्तर प्रदेश के वैद्य-समाज का ही नहीं, अपितु आयुर्वेद का भी इससे महान हित-साधन होगा। ऐसा होने पर वैद्यों की आपसी फूट और दलबन्दी लुप्त हो जायगी और वैद्य-समाज संगठित होकर आयुर्वेद के विकाश में अपनी शक्ति लगाने में समर्थ होगा।' अतएव उत्तर प्रदेश के प्रत्येक वैद्य और खासकर वैद्यसमाज के कर्णधारों का यह कर्त्तव्य है कि इसवार सर्वसम्मति से सभापति का चुनाव करें और मतदान की प्रक्रिया से सर्वथा बचने का प्रयत्न करें। सभापति पद के लिए प्रस्तावित कुल नामों में से किसी एक को सर्वसम्मति से चुन लेना चाहिए और ऐसा होने के बाद अन्य उम्मेदवारों को अपना नाम वापस ले लेने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिये। ऐसा होने पर वैद्य संगठन सुदृढ़ होगा और वैद्यसमाज अपने को देशकाल के अनुरूप सिद्ध करता हुआ अपनी समस्याओं का सरलतापूर्वक समाधान करने में सक्षम होगा। हम आशा करते हैं कि उत्तर प्रदेश का वैद्य समाज राग-द्वेष से दूर रह कर आपस में एकमत होने तथा सर्वसम्मति से चुनाव सम्पन्न कर आयुर्वेद का महान् हित करने का अवश्य ही प्रयत्न करेगा।

आयुर्वेद-सेवी को 'पद्मविभूषण' पदक

हमें यह जानकर अतीव प्रसन्नता हुई है कि राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने काशी के सुविख्यात वैद्य श्री सत्यनारायण जी शास्त्री को 'पद्मविभूषण' (द्वितीय श्रेणी) पदक प्रदान कर सम्मानित किया है। स्वाधीन भारत राष्ट्र में विशिष्ट व्यक्तियों को उनकी योग्यता के अनुसार पदकादि देकर सम्मानित करने का कार्य यही सर्वप्रथम

आरम्भ हुआ है। इस सम्मानजनक पदक-प्रदान के समय एक आयुर्वेद सेवी के भी सम्मानित किये जाने से भारत के सभी आयुर्वेद-सेवियों को स्वभावतः हार्दिक प्रसन्नता और गर्व का अनुभव होगा।

आयुर्वेद पर अवैज्ञानिकता का आरोप

देशी ओषधियों द्वारा ही देशवासियों को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाना सम्भव है, यह बात हम सदा ही कहते आये हैं। जो लोग हमारी अत्यन्त प्राचीन चिकित्सा पद्धति को अवैज्ञानिक और अपूर्ण कहते हैं, वे या तो स्वयं अज्ञानी हैं अथवा स्वार्थान्ध हैं। जो आर्ष आयुर्वेदिक ग्रन्थ आज भी उपलब्ध हैं, उनको ध्यानपूर्वक पढ़ने से किसी भी पक्षपातशून्य व्यक्ति को तुरन्त पता चल जायगा कि आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति कितनी पूर्ण और वैज्ञानिक है। यह अन्य आधुनिक चिकित्सा-पद्धतियों से कई बातों में बढ़ी-चढ़ी है, यह तो दोनों चिकित्सा-पद्धतियों के पंडितों को तुरन्त ही स्वीकार करना पड़ेगा। हम तो यह भी कहेंगे कि हमारे साधारण ग्राम में कितने ही रोगियों की जो चिकित्सा आसपास होनेवाली जड़ी-बूटियों द्वारा की जाती है, वह यद्यपि बहुधा अशिक्षित जनों द्वारा ही होती है, तो भी उसका चमत्कार प्रत्यक्ष देखने में आता है और उन जानकारों के पास उन ओषधियों के लिये भीड़ लगी रहती है। यदि इस प्रकार की जड़ी-बूटियोंवाली चिकित्सा पर देश के सभी भागों के वैद्य परिश्रम करके ज्ञान प्राप्त करें, तो निस्सन्देह वे अपने चिकित्सा-ज्ञान और औषध-भंडार में बहुमूल्य वृद्धि कर सकेंगे और कई रोगों में अपनी चिकित्सा-चातुरी से सभी को आश्चर्यचकित कर सकेंगे। जो जिस देश में जन्मा है, उसे उसी देश में पैदा होनेवाली ओषधियाँ हितकारिणी होती हैं। इस विचार से हमारे देशवासियों को स्वदेश में पैदा होनेवाली ओषधियों से ही अपने रोग निवारण का उपाय करना उचित एवं लाभजनक है। बहुकाल की परतन्त्रता से हमारी आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति को जो भीषण क्षति पहुँची है, उसकी पूर्ति के लिये स्वराज्य में सुअवसर प्राप्त हुआ है। इसका सदुपयोग करना सभी भारतवासियों का प्रधान कर्तव्य है। जो भाई राज्यों में उच्च सरकारी पदों पर हैं, वे चाहें तो अपनी प्राचीन चिकित्सा-पद्धति के लिये बहुत अधिक काम कर सकते हैं और उन्हें अवश्य करना चाहिये। विदेशी अंग्रेजी शासन में हमारी पद्धति को सब से अधिक धक्का लगा है। आज भी उन विदेशियों के मार्ग पर चलकर हम विदेशी डाक्टरी पद्धति और उसकी विदेशी ओषधियों के ही दास बने रहें, यह सचमुच ही बड़ी शोचनीय बात होगी। हमारी पद्धति को इसलिये अपूर्ण कहा जाता है कि शल्य-चिकित्सा इसमें नहीं है। परन्तु यदि वास्तव में देखा जाय तो शल्य-चिकित्सा की विधि और उसमें प्रयुक्त होनेवाले यन्त्रादि का इतना विस्तृत विवरण आयुर्वेद शास्त्र में है, जितना आधुनिक पद्धति में भी नहीं मिलता। कालक्रम से हमारी वह पद्धति लुप्त हो गयी है, यह तो हम स्वीकार करते हैं; किन्तु यदि राजाश्रय प्राप्त हो, तो उसे अब भी पुनर्जीवित करना असम्भव नहीं है। अतएव, यह आवश्यक और और वांछनीय है कि आयुर्वेद को अवैज्ञानिक कहने के बदले इसके अपूर्ण अंग की पूर्ति करने का प्रयत्न किया जाय और सरकार इस कार्य में अधिकाधिक सहयोग देकर आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति बनाने का प्रयास करे।

डा० केसरवानी की शानदार विजय

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने डा० धर्मानन्द केसरवानी के मामले में जो फैसला दिया है, उससे सभी आयुर्वेद-सेवकों को हार्दिक प्रसन्नता होगी। डा० केसरवानी ने गुरुकुल में आयुर्वेद और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान पढ़कर आयुर्वेदालंकार की उपाधि प्राप्त की थी। तत्पश्चात् बम्बई, देहरादून आदि स्थानों में चिकित्सा-व्यवसाय करने के बाद सरकार से वृत्ति पाकर उच्च शिक्षालाभ करने के लिये आप इटली गये और रोम विश्वविद्यालय से एम० डी० की डिग्री प्राप्त की। फिर जर्मनी जाकर आपने नये सिरे से चिकित्सा-विज्ञान का अध्ययन किया और बर्लिन विश्वविद्यालय ने आपको एम० डी० की उपाधि देकर सम्मानित किया। मस्तिष्क रोग, क्षय रोग तथा कैन्सर रोग के विशेषज्ञ होकर आप एक प्रमुख जर्मन नगर के प्रधान चिकित्साधिकारी नियुक्त हुए। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद आप स्वदेश लौटे और उत्तर प्रदेश सरकार ने आप को भुवाली सेनेटोरियम का प्रधानाधिकारी नियुक्त किया। किन्तु उत्तर प्रदेश मेडिकल कौन्सिल को यह सह्य नहीं हुआ कि आयुर्वेद का एक स्नातक एम० डी० की उपाधि से विभूषित होकर डाक्टरों की श्रेणी में आदर पाये। अतः मेडिकल कौंसिल ने रोम विश्वविद्यालय को लिखा कि उसने डा० केसरवानी को एम० डी० उपाधि देकर भूल की है। रोम विश्वविद्यालय ने भी बिना कोई पूछताछ किये

उनकी एम० डी० डिग्री वापस ले ली। इसके बाद मेडिकल कौंसिल ने उनको कौंसिल की सदस्यता से पृथक करने का उपक्रम किया। डा० केसरवानी ने इसके विरुद्ध इलाहाबाद हाईकोर्ट में अपील की और हाईकोर्ट ने डा० केसरवानी के पक्ष में फैसला दिया तथा मामले का पूरा खर्च उनको दिलवाया। साथ ही मेडिकल कौंसिल को बुरी तरह फटकारा एवं उसके कार्यों की तीव्र निन्दा की। मेडिकल कौंसिल ने हाईकोर्ट के निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की, लेकिन वहां भी उसे मुँह की खानी पड़ी। सुप्रीम कोर्टने भी डा० केसरवानी के ही पक्ष में फैसला दिया। इस विजय के लिये हम डा० केसरवानी को हार्दिक बधाई देते हैं और आशा रखते हैं कि वे अपने ज्ञान और अनुभवों से आयुर्वेद के झण्डे को हमेशा सर्वोच्च रखते हुए अग्रसर होते रहेंगे।

राजस्थान आयुर्वेद विभाग का संचालन

राजस्थान में आयुर्वेदिक विभाग का स्वतंत्र अस्तित्व निर्माण कर सरकार ने बड़ा सराहनीय कदम उठाया था। आज जहाँ देश के सभी प्रान्त में आयुर्वेदिक विभाग के मुख्य संचालक प्रायः डाक्टर होते हैं, जो भारतीय चिकित्सा विज्ञान का क. ख. ग. भी नहीं जानते, निःसन्देह ही राज्य सरकार का यह प्रयत्न सराहनीय था। अभी कुछ दिनों से देश में आयुर्वेद का भी प्रश्न टकराने लग गया है। कुछ विचार-धाराओं से लोग आयुर्वेद को अपूर्ण मान कर उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं और सर्वाधिकारी होने के कारण उसे उन्नति का अवसर नहीं देते हैं। पर इस युक्ति स आयुर्वेद विरोधियों की स्थिति सुदृढ़ नहीं होती कि एक तरफ कुटीर-उद्योग, श्रमदान, कृषि आदि को प्रोत्साहित किया जाय और दूसरी ओर सस्ती भारतीय चिकित्सा प्रणाली को प्रोत्साहित न किया जाये। देश की बनौषधियाँ, खनिज आदि जब कि बेकार में ही पड़ सड़ते रहत हैं, इसके लिये आवश्यक है कि आयुर्वेद विभाग की बागडोर आयुर्वेद के विज्ञान तथा अनुसन्धान-प्रिय लोगों के अधीन आये, जिससे आयुर्वेद को उन्नति के पथ पर अग्रसर होने का पूर्ण अवसर मिले और देश के उक्त साधनों का प्रयोग करते हुए जनता को रोग मुक्त करने का प्रयास किया जाये। राजस्थान सरकार का यह प्रयास आयुर्वेद विभाग के स्वतन्त्र निर्माण करने से अनुकरणीय है, किन्तु दुःख की बात है कि राजस्थान भी, अब पड़ोसी राज्यों का रवैया अख्तियार करने लगा है। राजस्थान के आयुर्वेद विभाग के संचालक के पद पर पूर्व में अनुभवी तथा योग्य व्यक्ति आये। उनके अनुभवों से आयुर्वेद को लाभ पहुँचता, पर उन्हें उचित सेवा करने का पूरा अवसर नहीं मिला। वहाँ अब भी स्वास्थ्य विभाग के प्रमुख सचिव डाइरेक्टर के पद पर पदासीन हैं। यद्यपि यह निश्चित प्रतीत होता है कि वे स्थाई तौर पर इस पद पर कार्य करना नहीं चाहते, अतः अब समस्या आती ह कि इस पद पर कौन आयेगा। ऐसे व्यक्ति को इस पर पद पर नियुक्त करना चाहिए जो आयुर्वेद के विकाश कार्य में अपनी योग्यता का परिचय दे सकता हो तथा आयुर्वेद का विद्वान् और कुशल व्यवस्थापक भी हो। हमें आशा है कि राजस्थान सरकार शीघ्र ही किसी आयुर्वेदज्ञ को आयुर्वेद विभाग का कार्य-भार सौंपेगी।

विश्वविद्यालय की स्थापना में बाधा

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन तथा आयुर्वेद विद्यापीठ द्वारा पिछली अर्ध शताब्दी से आयुर्वेद विश्वविद्यालय स्थापित करने का विफल प्रयास किया जा रहा है। इसके लिये अनेक बार तैयारियाँ की गयी, लेकिन ऐन मौके पर सारी योजना विफल होती गयी। इन विफलताओं का प्रधान कारण आपसी वैमनस्य और वैद्य समाज में उत्साह का अभाव ही रहा है। नासिक, प्रयाग, दिल्ली, गाजियाबाद में विश्वविद्यालय स्थापित करने की चेष्टाएँ क्रमशः होती रही, लेकिन सारी सुविधाएँ उपस्थित होने पर भी वैद्य समाज के आपसी कलह एवं उनमें उत्साह के अभाव के कारण वे चेष्टाएँ विफल होती गयीं। हाल में बाबा काली कमलीवाला क्षेत्र और आयुर्वेद सेवा समिति के सहयोग से ऋषिकेश में विश्वविद्यालय की स्थापना का उद्योग हुआ था। विश्वविद्यालय भवन का शिलान्यास करने के लिए राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद वहाँ पहुंच गये थे। लेकिन ऐन मौके पर कई प्रकार की आपत्तियां उठने और बाधाएँ उपस्थित होने के कारण शिलान्यास का काम रुक गया। आयुर्वेद विद्यापीठ के मन्त्री आयुर्वेद-मार्तण्ड रायबहादुर श्रीदत्त जी शर्मा का एक वक्तव्य हम इसी अंक में प्रकाशित कर रहे हैं, जिसमें उन्हों ने विश्वविद्यालय की स्थापना से सम्बन्धित वास्तविक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए वैद्य समाज से कुछ प्रश्न पूछा हैं और विश्वविद्यालय कोष के लिये अर्थ संग्रह करने की सलाह दी है। हम चाहते हैं कि वैद्य समाज का सक्रिय और हार्दिक सहयोग शर्मा जी के कार्य में प्राप्त हो जिससे आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना का हमारा स्वप्न साकार हो सके।

सुवर्ण वसन्त मालती

वैद्य रणजितराय

बलं ब्रह्म

"**बलं ब्रह्म**—बल ही ब्रह्म है—विश्व की महत्तम शक्ति है"—ब्रह्म की शोध में लीन उपनिषद् का ऋषि पुकार उठा। "सौ-दो सौ विद्वान् बैठे हों और एक बलिष्ठ व्यक्ति पास से जाए तो सारी परिषद् काँप उठती है। पुरुष बलवान् हो तो ही अपनी सर्व कामनाएँ पूर्ण कर सकता है। पृथ्वी, आकाश और द्युलोक बल से ही टिके हैं। देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, कृमि, कीट, पतंग—संक्षेप में समग्र विश्व बल के आश्रम से ही विद्यमान है। किंबहुना, **बल ही ब्रह्म है ; बल की उपासना करो**।"

चिलम का दम खींचते आज के कतिपय बाबाओं को देखकर जो भारत की प्राचीन संस्कृति की कल्पना करते हों वे इस वचन से अपनी धारणा में बहुत कुछ सुधार कर सकते हैं। प्राचीन भारतीय इस शरीर और उसके सुख-दुःख को विसार कर जीवन की कल्पना नहीं करते थे, इस विषय का उत्तम प्रमाण यह वचन है। बल का ऊपर जो महत्त्व बताया है उसमें तिलमात्र संशय को अवकाश नहीं।

इस **बल की वृद्धि के मल कारण** बताते अत्रिपुत्र ने कहा है—

"बल की वृद्धि अधोलिखित बातों पर अवलम्बित है—जिस देश में और जिन हेमन्तादि कालों में उत्पन्न हुए पुरुष निसर्गतः बलवान् होते हैं उस देश तथा उन कालों में जन्म होना, पुंबीज तथा स्त्रीबीज में बलवत्ता के तत्त्व होना, आहार बलवर्धक होना, शरीर की पुष्टि यथावत् होना, ऋतु आदि कालों का समयोग, मन बलवान् और अन्य प्रकारों से गुणवान् होना, शरीर को सात्म्य हो ऐसे आहार-विहार आदि का सेवन, व्यायाम तथा अन्य परिश्रम, यौवन, आनन्दी स्वभाव और अन्त में बल की वृद्धि में हेतुभूत पूर्वजन्म के कर्मों का परिपाक।"

(देखिए च. शा. ६)

अन्यत्र इसी आचार्य ने बल के तीन विभाग किये हैं—**सहज** नाम शरीर और मन का जन्मजात बल; **कालज** तथा **युक्तिकृत** नाम अन्नपान, रसायन औषध आदि के सेवन से उपार्जित बल। ऊपर बल की वृद्धि के जो कारण दर्शाए हैं वे प्रायः जन्मजात तथा कालज—काल-विशेष में होनेवाली वृद्धि से संबद्ध—हैं। अपनी प्रकृति को अनुकूल (सात्म्य) हो ऐसे औषध और आहार के सेवन का यहाँ बलवर्धक उपचार के रूप में उल्लेख है। जनता के आरोग्य और बल की वृद्धि आयुर्वेद का मूल प्रयोजन है। आयुर्वेद में अनेक बलवर्धक औषधों का निरूपण किया गया है, जिनका उपयोग कर हम अपनी शरीर-संपत्ति में सुधार कर सकते हैं। ऐसे अप्रतिम औषधों म एक **सुवर्ण वसन्त मालती** है। शीतकाल स्वभाव से ही शरीर की पुष्टि, बल और वर्ण के लिए उपयुक्त होने से इस काल में ऐसे कल्पों का सेवन किया जाए तो हम संपूर्ण वर्ष के लिए स्वास्थ्य और शक्ति का संचय कर सकते हैं।

इस देश में अनेक जन शीतकाल में नियमित ऐसे बल-वर्धक औषधों का उपयोग करते हैं। इस प्रथा में यदि शास्त्र का आधार हो तो वे अधिक श्रद्धा से ऐसे औषधों का उपयोग कर सकते हैं, साथ ही अन्य भी लोक उनका सेवन करने को प्रेरित हो सकते हैं। इस निमित्त यहाँ सुवर्ण- वसन्तमालती के विषय में अल्प विवेचन करना उचित समझा है।

सुवर्णवसन्तमालती प्राचीन और प्रसिद्ध योग है। इतर पद्धतियों के चिकित्सकों को भी इसने आकृष्ट किया है और वे अपने लिए तथा अपने रोगियों में इसका सुबहु उपयोग करते हैं।

टायफांयड में सुवर्ण वसन्त मालती

ऐसे ही एक डॉक्टर बंबई के डॉ० के० मेहता एम० बी० बी० एस० का एक लेख 'टायफॉयड में सुवर्ण वसन्त-मालती' शीर्षक से 'मेडीकल डाइजेस्ट' के मई १६५१ के अङ्क में प्रकट हुआ था। लेख के आरम्भ में ही गुणग्राही और अपने आयुर्वेद के पोषक अनेक कार्यों के कारण आयुर्वेद की कृतज्ञता के पात्र यह डॉक्टर लिखते हैं—"स्वभावतः प्रश्न हो सकता है कि क्लोरोमायसिटीन-सदृश अति प्रभावी

और सिद्ध एंटीबायोटिक होते हुए भी टायफॉयड में सुवर्ण वसन्त मालती के उपयोग का स्थान ही कहाँ रह जाता है ?" यही महानुभाव इसका उत्तर देते आगे लिखते हैं :

"यह सत्य है कि क्लोरोमायसिटीन टायफॉयड की मर्यादा को निश्चित घटा देती है, परन्तु यह बहुत महार्घ होती है, समय पर सुलभ भी नहीं होती। अपरंच, इससे स्वस्थ हुए रोगियों की अच्छी बड़ी संख्या में रोग का पुनरावर्तन हुआ देखा जाता है। सुवर्ण वसन्त मालती में ये दोष नहीं हैं। एक बार ज्वर शान्त हो जाने पर वर्षों तक इसके पुनरावर्तन का कोई कारण रह नहीं जाता।

"मैं गत ६ वर्षों से टायफॉयड में वसन्त-मालती क व्यवहार कर रहा हूँ। मुझे इस बात से सन्तोष हुआ है, साथ ही प्रोत्साहन मिला है कि रोगियों में कोई विषलक्षण देखने में नहीं आए। इस के सिवा, रोग की मर्यादा को देखते हुए जिस दौर्बल्य की संभावना की जा सकती है, वह भी इन रोगियों में देखा नहीं जाता।

"ज्वर अधिक समय चलेगा, यह निदान होते ही मैं सुवर्ण वसन्तमालती प्रतिदिन दो से पाँच ग्रेन की अल्पमात्रा में मधुके साथ देना आरम्भ कर देता हूँ और रोगमुक्ति-पर्यन्त चालू रखता हूं। इस रोग में बल की रक्षा का स्थान अति महत्त्व का है और यह योग अन्ततक इस प्रयोजन की उत्तम सिद्धि करता है।"

इस विषय का दृष्टान्त देते डॉक्टर साहब ने इन पंक्तियों के नम्र लेखक को कहा था--"मेरे एक रोगी का ज्वर पूरे बावन दिनों में उतरा। तो भी वसन्तमालती के सेवन के कारण उसमें शारीरिक और मानसिक शक्ति इतनी सुरक्षित थी कि कोई तैंतीसवें दिन उसके कमरे में एक चोर घुस आने पर उसका सामना करने वह रोगी स्वयं पलंग से उतर आगे बढ़ गया।"

तरुण तथा जीर्ण रोगों में सुवर्णवसन्तमालती की उपयोगिता इससे स्पष्ट देखी जा सकती है। राजयक्ष्मा, जीर्ण तथा कृच्छ्रसाध्य ज्वर, रोगोत्तर अथवा उनके बिना दौर्बल्य, अग्नि की मन्दता आदि व्याधियों पर यह औषध चिरकाल से प्रचलित है। **सर्वरोगे वसन्तः**--वैद्यों में प्रसिद्ध सूत्र है। इस में डाले जानेवाले द्रव्यों और इस की निर्माण विधि से इसका मूल्याङ्कन सुगम हो सकता है; अतः नीचे इस का पाठ दिया जाता है।

सुवर्ण वसन्यमालती का पाठ तथा निर्माण-विधि

द्रव्य और निर्माण विधि--"सुवर्ण की भस्म अथवा पत्र (वर्क) १ तोला, अच्छे बसराई मोती की पिष्टी या भस्म २ तोला, शुद्ध हिंगुल किंवा रस सिन्दूर ३ तोला, कृष्ण मरीच का सूक्ष्म चूर्ण ४ तोला, शुद्ध खर्पर या यशद-भस्म ८ तोला।

"प्रथम शुद्ध हिंगुल अथवा रससिन्दूर को पीस कर सुवर्ण की भस्म ली हो तो सर्व द्रव्यों को एक साथ मिलाकर तीन घण्टा मर्दन करे। यदि सुवर्ण के पत्र लिए हों तो अन्य द्रव्य मिलाकर पीछे पत्र एक-एक करके मिलाते जाएँ और पत्र अच्छी तरह मिल जाएँ तब तक मर्दन करते रहें। पश्चात् उस में गाय के दूध से अथवा छाछ से निकाला हुआ दो तोला मक्खन मिलाकर एक दिन मर्दन करें। पीछे कागजी नींबू का वस्त्रपूत रस मर्दनोचित प्रमाण में (अधिक नहीं) प्रतिदिन डाल कर दिन भर मर्दन करें। एकवार डाला हुआ नींबू का रस सूखने पर ही नया रस डालना चाहिये। इस प्रकार जबतक मक्खन की चिकनाई नष्ट न हो जाए तब तक नींबू के रस में मर्दन करें। सामान्यतः मक्खन की चिकनाहट निकालने के लिए मध्यम प्रमाण के ९५ नींबुओं का रस आवश्यक होता है। पीछे १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। इस का नाम **वसन्तमालती** है।

मात्रा--१ से २ रत्ती, प्रातः-सायं, दिन में दोबार।

अनुपान--पिप्पली का चूर्ण २ रत्ती और मधु के साथ देकर ऊपर से गो-दुग्ध दें। अथवा सितोपलादि चूर्ण एक माशा और मधु के साथ मिलाकर दें।

उपयोग--इसका उपयोग अभ्रक भस्म १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १-२ रत्ती, हरिण या सांभर के शृङ्ग की भस्म २-४ रत्ती, गुडूचीसत्त्व १ माशा और सितोपलादि चूर्ण एक माशा के साथ मिलाकर दूध के अनुपान से किया जाता है। यह योग जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा, रोगान्तदौर्बल्य, श्वेत प्रदर, पाण्डुरोग, ग्रहणी रोग, अग्निमान्द्य, गण्डमाला, अन्त्रक्षय, फुफ्फुसधराशोथ, बालशोथ--इन रोगों में विशेष लाभ देता है। यह जठराग्नि और धात्वग्नि की परिपाक-क्रिया को सुधार कर उनकी विकृति से होनेवाले सर्व रोगों को दूर करता है और शरीर को बल, वर्ण तथा पुष्टि देता है।"

—वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य कृत **सिद्धयोग संग्रह** (वैद्यनाथ प्रकाशन) से।

इन द्रव्यों के अनुभवसिद्ध गुण डॉ० के० मेहता ने ही अपने उपर्युक्त लेख में अधोनिर्दिष्ट रीति से दिए हैं।

सुवर्ण के गुण-धर्म

"सुवर्ण के पत्रों (वर्क) अथवा भस्म का उपयोग किया जाता है। ये शुद्ध सौ टंच के सोने से बनाए जाते हैं। पत्र की मात्रा $\frac{१}{३०}$–$\frac{१}{१२}$ ग्रेन और भस्म की मात्रा $\frac{१}{३}$–$\frac{१}{६}$ ग्रेन है। सुवर्ण अत्यन्त प्रभावशाली, बल्य और शरीर के कोशों (सेलों) की उत्पत्ति को बढ़ानेवाला है। शक्ति, स्फूर्त्ति और कान्ति की वृद्धि करता है। बुद्धि, स्मृति और मेधा को बढ़ाता है। यह रसायन (आयु की वृद्धि करनेवाला तथा रोगों को समूल नष्ट करनेवाला), वृष्य नाम शुक्र की पुष्टि कर पुंसत्वशक्ति बढ़ानेवाला तथा दोषघ्न है। अन्त्रों की विकृति में यह दो प्रकार से कार्य करता है—जीवाणुओं का नाश कर, रोगों का प्रसार अटका कर तथा शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्गों को अपना-अपना कार्य करने का सामर्थ्य देकर।

"सुवर्ण आमाशय, त्वचा तथा वृक्कों को उद्दीपित कर प्रस्वेद तथा मूत्र की भी शुद्धि करता है।

"सुवर्ण राजयक्ष्मा का प्रधान औषध है। यह अभ्रक भस्म आदि अन्य प्रसिद्ध औषधों के साथ संयुक्त कर दिया जाता है। ज्वर, उन्माद, नाडीसंस्थान (नर्वस सिस्टम) के रोग, हिस्टीरिया, कफोन्माद (मेलनकोलिया), अपस्मार (मृगी) वातिक मन्दाग्नि (नर्वस डिस्पेप्सिया), श्वास, पुंसत्वनाश, वन्ध्यात्व, बार-बार होनेवाला गर्भस्राव-पात, गर्भाशय का जीर्ण पाक (सूजन), गण्डमाला, फिरङ्ग तथा पूयमेह में भी इसका उपयोग होता है। डॉ० वामन गणेश देसाई एम० बी० ऑनर्स (लंदन) ने लिखा है कि सुवर्ण कनेक्टिव टिश्यु की वृद्धि तथा कठिनता में, विशेषकर सुषुम्णाकाण्ड के पिछले भाग के काठिन्य में और श्वास, कोरिया आदि रोगों के उपद्रवरूप में होनेवाले आयाम (खेंच) में उपयोगी है। संक्षेप में, यह संक्रामक रोगों में उपयोगी है।

"संताप (ज्वरमान) अधिक हो, ऐसे ज्वरों में, विशेषतया राजयक्ष्मा में जब जीवाणुओं का नाश बड़ी संख्या में होने से संताप बढ़ जाए तब सुवर्ण का उपयोग हानिकारक होता है।

मुक्ता के गुण-धर्म

"मोती सच्चे लेने चाहिए, बनावटी नहीं। इनमें विशेषतया केल्शियम का कार्बोनेट अथवा ऑक्साइड होता है। इस की भस्म अथवा पिष्टि की मात्रा १ से ३ रत्ती (२-६ ग्रेन) है। यह अम्ल-प्रत्यनीक (अम्लविरोधी) तथा केल्शियम का कल्प होने से रक्त का स्कन्दन (जमानेवाला) है। यह अति उत्तम शामक (सेडेटिव) और शीत द्रव्य है। धातुओं की पुष्टि करता है तथा शुक्र की वृद्धि कर रति-सुख देता है। मुक्तापिष्टि अन्तर्दाह (छाती में जलन) तथा पित्तविकारों में उपयोगी है।

"मुक्ता भस्म कास, क्षय, श्वास, अम्लपित्त, रक्तष्ठीवन (खाँसी में रक्त पड़ना), तीक्ष्णाग्नि या भस्मक (हाईपर-एसिडिटी), हिक्का, जीर्ण मन्दज्वर तथा नेत्र और हस्त-पादतल-दाहयुक्त ज्वरों में, जो कि विशेषतया गर्भावस्था में देखे जाते हैं, उनमें गुणकारी है। यह बल्य, ओज की वृद्धि करनेवाला एवं अति उत्तम धातुवर्द्धक है। इन गुणों के कारण इस का उपयोग सर्वाङ्ग-दौर्बल्य (जेनरल डेबिलिटी), क्षय तथा श्वासपथ के व्यास (विस्तार, ब्रॉङ्कि-एक्टेसिस) से होनेवाले कास में होता है।

"मौक्तिक के सेवन से रक्त के स्कन्दन की क्रिया बढ़ती है। अतः इसका उपयोग रक्तस्रावी अर्श, नकसीर, आमाशय अथवा प्राणवह स्रोतों से रक्त की प्रवृत्ति तथा रक्तप्रदर में लाभदायक होता है। उष्णवात (मूत्र-दाह) में भी यह गुणकारी है। मस्तिष्क के लिए बलदायी होने से शिर की पुरानी वेदना, अपस्मार, शुक्रमेह तथा पुंसत्वनाश में इसका व्यवहार होता है। यह श्वेत प्रदर तथा अति मानसिक श्रम, अध्ययन आदि से होनेवाले निद्रानाश एवं ऐसी संग्रहणी, जिसमें क्षीणता तथा मुखपाक आदि लक्षण हों, उसमें उपयोगी है।

रससिन्दूर के गुण-धर्म

"इसकी रासायनिक संज्ञा 'रेड सल्फाइड ऑफ मर्क्युरी' है। यह बल्य रसायन, परोक्ष रीति से पित्तविरेचक, जीवाणुनाशक तथा लालास्रावजनक है। यह शरीर के अम्लों तथा द्रव द्रव्यों को साथ संयुक्त हो जाता है तथा त्वचा, श्लेष्मकला, फुफ्फुस तथा आमाशय में शोषित होकर ऑक्सी आल्ब्युमिनेट के रूप में रस-रक्त में प्रविष्ट होता है। अल्प प्रमाण में यह रक्त की—रक्तकणों की—वृद्धि करता है। अधिक मात्रा में लेने से यह रक्त के

प्रमाण का ह्रास करता है तथा उसकी जमने की शक्ति को मन्द करता है। इसकी मुख्य क्रिया प्राणवायु के मार्गोंपर होती है, जिससे कास-श्वास प्रधान संन्निपात (न्यूमोनिया), श्वास, कास तथा कफवातज्वर (इन्फ्लुएंजा) में कफ का शोधन सुगमता से होता है। इस का उपयोग शुष्क कास में कदापि न करना चाहिए। बार-बार होने वाले प्रतिश्याय, ज्वर के साथ जलपार्श्व (प्लुरिसी विद इफ्यूज़न) तथा राजयक्ष्मा की प्रथम और द्वितीय अवस्था में यह गुणकारी है। जीर्ण अग्निमान्द्य, अतिसार और प्रवाहिका में भी यह उपयोगी है।

श्वेत मरीच तथा यशदभस्म

"श्वेत मरीच कटु, तीक्ष्ण, शरीर में लाघव उत्पन्न करनेवाला, वातानुलोमन तथा विषमज्वरहर हैं।

"यशद भस्म रासायनिक दृष्टि से 'जिंक ऑक्साइड' है। इसकी दैनिक मात्रा १ से २ रत्ती (२ से ४ ग्रेन) है। मृदु, शामक, संकोचक तथा द्रव शोषक होने से इसका बाह्य उपयोग होता है। इस दृष्टि से त्वचा के रोग जैसे (अकौता), छाजन,) फोड़े, शय्याव्रण (बेड-सोर) तथा स्तन पर होनेवाले चीरों में उद्धूलन के लिए (छिड़कने को) इसका व्यवहार होता है। व्रण, अग्निदग्ध व्रण, रक्सा (शुष्क अकौता) हठीले त्वग्रोग इत्यादि में इसका मलहम के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। आँख के रोगों में भी इसका उपयोग होता है। ज्ञानवह स्रोतों के लिए बल्य, क्षोभहर, स्तम्भहर (एंटीस्पेज्मोडिक) और संकोचक होने के कारण इसका आभ्यन्तर उपयोग होता है। स्तम्भ-प्रधान रोग जैसे श्वास, कुत्ता-खाँसी, अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) आदि में भी यह दिया जाता है। इस की क्रिया मुख्यतया रसग्रन्थियों और रस-धातु (लिम्फॉयड टिश्यु) पर होती है। अतः रसग्रन्थियों के ज्वर-युक्त विकारों तथा जीर्ण क्षयकारी रोगों (यथा, गण्डमाला) में इसका विधान किया गया है। अन्तर्दाह, अन्तरवयवों के विशेषतः अन्त्रों के पैत्तिक शोथ तथा उदकमेह (बहुमूत्र) में भी यह गुणकारी है।

'अन्त्रों के रोगों में विशेषतया पैत्तिक शोथ (इन्फ्लेमेशन) के कारण होनेवाले रोग, जिनमें ज्वर के साथ वमन तथा उदर वेदना भी हो उन में यशद-भस्म का उपयोग होता है। इन रोगों में मुख में छाले पड़ जाते हैं तथा जिह्वा पर श्वेत-नसवारी रंग के धब्बे और अगला भाग तथा किनारी खूब लाल होती है। साथ में धातुओं का क्षय और स्वरसाद तथा इतना अधिक दौर्बल्य होता है कि रोगी अपना हाथ भी ऊँचा नहीं कर सकता। अतिस्वेद में भी यशद उत्तम है।

"सुवर्णवसन्तमालती ज्वर की मर्यादा को घटाती नहीं; ज्वरमान को भी विशेष न्यून करती नहीं; परन्तु बल को टिकाए रखती है। साथ ही रोगी की शक्ति को भी सुरक्षित रखती है। अथच, ज्वर में होनेवाले उपद्रवों की संख्या और बल को भी न्यून करती है। अवश्य ही, जीवाणुओं के कारण होनेवाले कोथ (सड़ांद) को दूर कर एवं अन्त्रों की सूजी हुई रस- ग्रन्थियों के शोथ को दूर कर ज्वर को भी धीमे-धीमे तो कम करती ही है।

"टायफॉयड के द्वितीय अथवा तृतीय सप्ताह में होनेवाले कास किंवा लोबर न्यूमोनिया को सुवर्णवसन्तमालती अटका नहीं सकती। उसका कारण शय्या में निरन्तर पड़े रहना होता है। तथापि वसन्तमालती के प्रयोग से हृदय की क्रिया सम्यक् होती है तथा रोगी को कभी हृदय-दौर्बल्य का भास नहीं होता। नाड़ी की गति यद्यपि मन्द होती है, पर उसका आयतन (वॉल्यूम) उत्तम होता है।

"रोग के प्रभाव से आमाशय तथा अन्त्रों के मांसमय आवरणों की दृढ़ता का ह्रास होने से जो पीडनाक्षमता (टेंडरनेस), सर्वत्र वेदना आदि उदर के लक्षण देखे जाते हैं, उनके घटने की आशा इससे रखी नहीं जा सकती। वेदना की शान्ति सुवर्णवसन्तमालती से न होने पर भी अतिसार के प्रतिषेध तथा रक्तस्राव को शान्त करने में यह निश्चित सहायक होती है। ये उपद्रव टायफॉयड में सविशेष अवधान-योग्य होते हैं। कई बार रोग के आरम्भ में पुष्कल मलप्रवृत्ति हो जाने पर केओपेक्टेट देने से अतिसार निवृत्त होता है और संख्या घटती है। तथापि साथ सुवर्णमालती भी देने से रोगी की शक्ति स्थिर रहती है तथा अतिसार शान्त होकर अन्ततः विबन्ध भी हो जाता है।

"उच्च संताप (ज्वरमान) के कारण होनेवाला शिरोरोग (शिरोवेदना), अनिद्रा, अरति (बेचैनी) और प्रलाप के उपद्रव भी सुवर्णवसन्तमालती से शान्त होते हैं।

"सुवर्णवसन्तमालती का व्यवहार पचास से अधिक रोगियों पर करके मैंने परिणाम उत्तम ही पाया है। इसका व्यवहार मैंने श्वास, जीर्ण मन्दज्वर, सर्वाङ्गदौर्बल्य (जेन-

रल डेबिलिटी) तथा जलपार्श्व (प्लुरिसी विद इफ्युज़न) में भी किया है और परिणाम अच्छा ही देखने को मिला है।

"इन पंक्तियों के लिखने का प्रयोजन यही दर्शाना है कि एक आयुर्वेदिक कल्प का उपयोग कर हम अपने रोगियों का कितना भला कर सकते हैं। उपचार करते हुए हमारी दृष्टि यह होनी चाहिए कि अन्य पद्धतियों में रोग की शान्ति के लिए कोई उत्तम उपचार हो तो उन्हें हमें अपना लेना चाहिए।"

सुवर्ण तथा उसकी वसन्तमालती आदि कल्पनाओं का उपयोग वैद्यों और साधारण जनता में पुराकाल से प्रसिद्ध है। प्रति वर्ष सहस्रों लोक शीत काल में इसका उपयोग कर शक्ति प्राप्त करते हैं। राजयक्ष्मा, दौर्बल्य, रोगान्त-दौर्बल्य, जीर्णज्वर आदि रोगों में इसका प्रभूत उपयोग होता है। ऊपर दिये उद्धरण से सूचित है कि अन्य पद्धतियों के चिकित्सक भी इस का व्यवहार कर अच्छा परिणाम प्राप्त कर सकते हैं। जो लोग नवीन विज्ञान की दृष्टि से सत्यासत्य का निर्णय करने की रुचि रखते हों उन्हें भी आयुर्वेद के इस उत्कृष्ट कल्प के विषय में इस उद्धरण से उचित मार्गदर्शन उपलब्ध हो सकता है।

एलोपैथी में सुवर्ण का उपयोग अंशतः क्षय में तथा विशेष प्रमाण में रूमेटॉयड आथ्राइटिस नामक संधिवात के उपचारार्थ कुछ काल से प्रवृत्त हुआ है। एलार्सिन कंपनी नामक आयुर्वेदिक कल्प बनानेवाली एक संस्था ने रूमोफन टेब्लेट नामक कल्प कुछ वर्षों से प्रचरित किया है। इसमें **सुवर्णभस्म, महायोगराज गुग्गुलु** तथा **महारास्नादि क्वाथ** की योजना होती है। बहुत से विद्वान् तथा ख्यातनाम डॉक्टरों ने इसका उपयोग कर प्रशंसात्मक निबन्ध तथा लेख लिखे हैं। महायोगराज गुग्गुलु तथा रास्नादिक्वाथ अनेक औषध विक्रेता बेचते ही हैं। इन के साथ सुवर्णवसन्त मालती का उपयोग किया जा सकता है।

पाश्चात्य पद्धति से बनाए सुवर्ण के कल्पों से कई बार उपद्रव (यथा, ल्युकोपीनीया) उत्पन्न होते हैं। आयुर्वेदिक पद्धति से बनाये योग में ये दोष देखे नहीं जाते। कारण, इसकी भस्म बनाने के पूर्व इसके दोषों के निवारणार्थ शोधन किया जाता है। आयुर्वेदीय शोधन-पद्धति की उपयोगिता दर्शाने के लिए वत्सनाभ का दृष्टान्त अलम् होगा। यथाप्राप्त वत्सनाभ हृदय के लिए तीव्र विष होता है, जब कि शोधित वत्सनाभ हृदय के लिए बल्य होता है और सैकड़ों योगों में छूट से उपयोग में आता है। अलबत्ता सुवर्ण के योगों के विषय में जैसा कि डॉ० मेहता ने कहा है यह ध्यान में रखना चाहिए कि क्षय में ज्वर सर्वथा उतर तान हो ऐसी स्थिति में इस के उपयोग से लाभ नहीं होता।

सुवर्ण, पारद और गन्धक की प्रसिद्ध कल्पना मकरध्वज है। इस पर प्रयोग कर भारत सरकार के भूतपूर्व डायरेक्टर जनरल ऑफ हेल्थ डॉ० चोपड़ा ने सिद्ध किया है कि सुवर्ण का बहुत बड़ा भाग मलद्वार से निकल जाता है। अत्यल्प प्रमाण में शरीर में गया हुआ सुवर्ण कैसे कार्य करता है, यह उलझन-भरा प्रश्न है। तथापि हम इस बात को ध्यान में रखें कि एक समूची चिकित्सा पद्धति (होमियोपैथी) ही इस सिद्धान्त पर खड़ी है कि औषध का प्रमाण जैसे-जैसे न्यून करते जाते हैं, वैसे-वैसे इस की शक्ति (पोटेन्सी) बढ़ती जाती है। इसके उदाहरण होमियोपैथी के अनुसार चिकित्सित रोगियों में हमें प्रतिदिन मिलते हैं और इससे उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर हमें मिल जाता है।

प्रति वर्ष सहस्रों व्यक्ति सुवर्ण वसन्तमालती जैसी निर्दोष कल्पना का उपयोग कर शक्ति अर्जित करते हैं, जो उन्हें समग्र वर्ष के लिए शारीरिक-मानसिक परिश्रम करने का सामर्थ्य अर्पित करती है। साथ ही आनेवाले रोग को अटकाने का साधन उपस्थित करती है। इस ऋतु में विभिन्न पाक तथा अवलेह का भी सेवन किया जाता है। अग्नि को प्रदीप्त करनेवाले द्रव्य इनमें न पड़े हों तो ये दुर्जर होने के कारण अग्नि को मन्द कर नयी विपदा खड़ी करते हैं। सुवर्णवसन्तमालती में यह दोष नहीं है। उलटे यह अग्नि को प्रदीप्त करती है।

इस लेख में आयुर्वेद के एक अमूल्य रत्न की उपयोगिता ही बतायी है। व्यायाम आदि शीतकाल में बल-वृद्धि के अन्य उपायों का इसमें निषेध नहीं किया है। दुर्बल व्यक्ति या जाति इन सब उपायों का अवलम्बन कर अपना दौर्बल्य दूर करें, यही अभ्यर्थना है!

ट्यूबरक्यूलस मेनिनजाइटिस

TUBERCULOUS MENINGITIS

कविराज सतीन्द्रनाथ बसु, एल० ए० एम० एस०, भिषग्रत्न

यहाँ पाश्चात्य शास्त्रोक्त नाम ही दिया गया है, क्योंकि अभी तक इस रोग के सम्बन्ध में निश्चयात्मक सर्वमान्य किसी आयुर्वेदीय नाम का पता नहीं है। कोई इसे "पाकल सन्निपात" कहते हैं, कोई "कण्ठकुब्ज सन्निपात" कहते हैं, कोई और कुछ नाम से पुकारते हैं। मैं अपनी कोई कल्पना यहाँ व्यक्त नहीं करना चाहता, बल्कि समन्वयात्मक दृष्टिकोण से इस व्याधि पर विचार करना चाहता हूँ। साथ ही विद्वद्वर्ग से प्रार्थना करता हूँ कि मेरी विचारधारा से मतैक्य या मतानैक्य प्रकट कर, एक सुसम्मत अन्तिम निर्णय पर पहुँचने की कोशिश करें, ताकि हमारे उत्तराधिकारियों का मार्ग-दर्शन हो सके। प्रत्येक नवीन व्याधि को आयुर्वेद में समाविष्ट करने का अधिकार, आयुर्वेदज्ञों का दीक्षा तथा शिक्षागत अधिकार है; परन्तु उस अधिकार का यथायोग्य प्रयोग हो, अपप्रयोग न हो तथा व्यर्थ के वितण्डावाद की सृष्टि न हो, इस का महान् उत्तरदायित्व भी हम पर है। इस ओर भी मैं सब विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। मुझे आशा है, इस प्रकार से हम सर्वमान्य आयुर्वेदीय नवीन ग्रन्थों का संकलन सरलता से कर सकेंगे।

संज्ञा :—यह व्याधि मस्तिष्क तथा सुषुम्नाधराकला में क्षय रोग के कीटाणुओं के आक्रमण के कारण जो प्रदाह उत्पन्न होता है, उसी के फलस्वरूप होती है। यह व्याधि क्षयरोग जीवाणुओं के एकाएक आक्रमण से नहीं होती; बल्कि शरीरस्थ किसी भी स्थान में —चाहे वह गुप्त रूप से हो—क्षयरोग वर्त्तमान रहने से ही होती है। वहाँ से ये जीवाणु रक्त संचालन के द्वारा मस्तिष्क-सुषुम्नाधराकला में पहुँच जाते हैं। खास तौर से श्वासनली अथवा अन्त्र-धराकला स्थित क्षयज ग्रन्थियाँ पक कर अथवा अस्थि-स्थित क्षयरोग जीवाणु रक्तस्रोत में सम्मिलित होकर वहाँ पहुँच जाते हैं। यह एक भयानक तथा घातक व्याधि है, जिसमें २—४ साल पहले तक भी, पाश्चात्य शास्त्र के अनुसार, मृत्यु-संख्या शत-प्रतिशत थी।

निदान :—पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र के अनुसार, तो यह व्याधि क्षयरोग के जीवाणुओं Tubercle Bacillus के आक्रमण से ही होती है, जिस में शरीर की किसी भी भाग से रोग जीवाणु मस्तिष्क सुषुम्नाधरा-कला में संक्रमित होकर प्रदाह उत्पन्न करते हैं। किसी भी प्रकार का तरुण ज्वर —जिससे कि शारीरिक रोग-प्रतिषेधिका शक्ति हीनबल हो जाती हो—इस व्याधि के उत्पन्न होने में अधिक सहायक होता है। चूँकि यह बीमारी २ से ३ साल के बच्चों को ज्यादा होती है; इसलिये रोमान्तिका—जो कि बच्चों की बीमारी कही जा सकती हैं—उपर्युक्त तरुण ज्वरों में प्रधान मानी जाती है। मस्तक में आघात लगने के कारण उस स्थान की सामयिक दुर्बलता इस व्याधि के उत्पन्न होने में सहायक होती है। सब ही उम्र में यह बीमारी हो सकती है, तो भी साल भर के भीतर वाले बच्चों को यह बीमारी बहुत कम होती है और २ से ३ साल की उम्र के भीतर सब से ज्यादा दिखाई पड़ती है। वयस्क बच्चों में तथा तरुणों में इस व्याधि का प्रकोप वयस्क व्यक्तियों से ज्यादा नजर आता है। स्त्री-पुरुष भेद से विशेष पार्थक्य नहीं है।

आयुर्वेदोक्त दृष्टि से राजयक्ष्मा-क्षत-क्षीण का जो निदान हमारे सामने वर्तमान है—जैसे कि "वेगरोधात् क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात्। त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतु चतुष्टयात् ॥"—उस से इस व्याधि में प्रत्यक्षरूपेण "क्षयात्" ही ज्यादा प्रयोजन है। बाकी तीनों का अप्रत्यक्ष सम्बन्ध अवश्य है, जिसे हम अप्रत्यक्ष अथवा विप्रकृष्ट निदान कह सकते हैं; क्योंकि वेगरोध से (वातमूत्रपूरीषाणां जृम्भाणां च सर्वेषाम् वेगरोधात्), साहस से (बलवद् विग्रहात्) तथा विषमाशन से (सुश्रुतोक्त द्वादशाशन प्रविचार व्यतिरेकेनोपयोगात्) जो शारीरिक रोग प्रति-षेधिका शक्ति का ह्रास होता है, वह धातुक्षय से (अनुलोम तथा विलोम) होनेवाला उक्त शक्ति-ह्रास का अपेक्षाकृत अधिक विप्रकृष्ट निदान मानना ही पड़ेगा। धातुक्षय को अपेक्षाकृत अधिक सन्निकृष्ट निदान मानना, अधिक उपयुक्त होगा। चूँकि आयुर्वेद, जीवाणुओं

के रोग कारणत्व को ज्यादा महत्त्व नहीं देता ; इसलिए Tuberculous Meningitis में सन्निकृष्ट निदान अनुलोम तथा विलोम क्षय को ही मानना पड़ेगा। परन्तु समन्वयात्मक दृष्टिकोण से आयुर्वेदोक्त हेतुचतुष्टय को विप्रकृष्ट निदान मान कर (उसमें भी क्षय को अपेक्षाकृत सन्निकृष्ट निदान मान कर), क्षय रोग के जीवाणु (Tubercle Bacillus) के आक्रमण को सन्निकृष्ट तथा प्रत्यक्ष निदान मानने से ही हमारे उद्देश्य की पूर्ति होती है ; क्योंकि अन्यान्य रोगों की भाँति क्षय रोग के जीवाणु भी शरीर की स्वाभाविक रोग प्रतिषेधिका शक्ति को हीन-बल बनाकर अपना प्रभाव-विस्तार नहीं कर सकते हैं।

यह रोग बहुत साधारण रूप में संक्रामक माना जाता है। ऐसा देखा गया है कि युद्ध के समय या शिविरों में अधिक दिनों तक रहने पर यह ज्यादा फैलता है—आज कल इस रोग का आक्रमण कुछ ज्यादा दिखाई पड़ रहा है। महात्मा गांधी मेमोरियल मेडिकल कॉलेज में कार्यकालीन वार्डों में अक्सर इस व्याधि से पीड़ित व्यक्ति देखने में आ रहे हैं, जिससे ऐसी शंका हो रही है कि शायद आज कल इस बीमारी का प्रकोप कुछ ज्यादा हो गया है ; परन्तु हो सकता है कि पहले इस व्याधि का निदान इतने विशिष्ट रूप में नहीं होता होगा। अब भी वस्तुतः केवल बड़े-बड़े शहरों के अलावा इस रोग का प्रकृत निदान कम ही होता है, तो भी मेरे २०-२२ साल के दीर्घ तथा विभिन्न प्रदेशों—यथा बंगाल, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, मध्य-भारत इत्यादि के अनुभवों से मेरा अनुमान यही है कि इस समय इस रोग का प्रकोप कुछ ज्यादा हो रहा है। जनता में विशेषतः मध्यवित्त श्रेणियों में यथेष्ठ तथा यथोपयुक्त भोजन का अभाव , आर्थिक तथा मानसिक स्वतन्त्रता का अभाव एवं पारिपार्श्विक रहन-सहन आदि वातावरण की वर्द्धमान विकृति के इस दिशा में आगे बढ़ने का प्रधान कारण माना जा सकता है। वास्तव में आज हमारे देश-वासियों में उस स्वाभाविक रोग-प्रतिषेधिका शक्ति का बहुत ही अभाव है, जिससे हम रोग-जीवाणुओं के आक्रमण से आसानी से बच सकें और यही कारण है कि हम दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक रूप से रोगों के शिकार बनते जा रहे हैं। क्षयरोग के जीवाणुओं का प्रभाव तो और भी बढ़ रहा है ; क्योंकि हमारा शरीर उनके पनपने का अति उत्तम स्थान बन गया है। ऐसी परिस्थिति में Tuberculous Meningitis की वृद्धि होना अत्यन्त स्वाभाविक है।

शारीरिक विकृति विज्ञान :—Tuberculous Meningitis में मस्तिष्कधराकला के आभ्यन्तर तथा मध्यमांश में (Arachnoid & Piamater) प्रदाह-जनित स्राव तथा पृथक्-पृथक् उत्सेध या ग्रन्थि की उत्पत्ति सर्व प्रधान है, जो कि विशिष्टरूप से वृन्त मध्यान्तर में (Interpeduncular space) तथा मस्तिष्क तल में (Base of the brain) दिखाई पड़ते हैं। इस व्याधि से मृत्यु के बाद अगर शिर के ऊपर की हड्डियाँ सावधानी से निकाली जायँ, तो मस्तिष्क- धराकला का बहिरावरण (Duramater) इतना तना हुआ मिलता है, जिस को अंगुली से मुश्किल से दबाया जा सकता है। उक्त बहिरावरण को द्विधा-विभक्त करने पर मस्तिष्कावर्तों को बहिरावरण के नीचे दबा हुआ और उसके कारण चपटा होते देखा जाता है, जिससे यह पता लगता है जैसे आभ्यन्तरीन चाप-वृद्धि के कारण मस्तिकावर्त ऊपर की ओर दबता चला गया है। वहाँ से मस्तिष्क-सुषुम्ना-द्रव नहीं निकलता है ; परन्तु अस्थिकोटर से मस्तिष्क को बाहर निकालने की कोशिश करने पर, मस्तिष्कावर्त फट जाते हैं और वह द्रव जोर से निकल जाता है। परिणाम-स्वरूप मस्तिष्क सिकुड़ जाता है। मस्तिष्क-तल में—विशेषतः वृत्तमध्यान्तर में एक प्रकार का हरी आभायुक्त-पीतवर्ण माँड़ के सदृश स्राव भरा हुआ दिखाई पड़ता हैं, जो कि पार्श्वस्थित मस्तिष्कांश को घेरते हुए पार्श्वपिण्डों तक फैलता हुआ दिखाई पड़ता है। कभी-कभी यह स्राव मस्तिष्क के उपरिभाग तक पहुँच जाता है। अधिक दिन तक रोगग्रस्त रहने के पश्चात् यह स्राव धूसरवर्ण का हो जाता तथा अधिक गाढ़ा बन जाता है, और मस्तिष्क के साथ कड़ा चिपका हुआ रहता है। प्रदाह जनित स्राव को अगर गहराई से देखा जाय तो इस में असंख्य छोटे-छोटे धूसरवर्ण के उत्सेध या ग्रन्थियाँ नजर आती हैं। सभी मस्तिष्क निलय (Ventricles) काफी प्रसारित हो जाते हैं, जिसमें उपर्युक्त हरी आभायुक्त माँड़ के परत के सदृश पदार्थ मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव में मिले हुए नजर आते हैं। उन मस्तिष्क निलय (Ventricles) की दीवारों पर छोटे-छोटे उत्सेध इतस्ततः विक्षिप्त सरीखे दिखाई पड़ते हैं। मस्तिष्क के किसी भी अंश में कभी-कभी क्षय-

रोग जीवाणु से आक्रान्त होने के निदर्शन स्वरूप उत्सेध पाये जाते हैं—कभी-कभी ये उत्सेध सूक्ष्म विन्दु से लेकर बच्चों के खेलने की गोली तक के आकार तक मिलते हैं। इसी प्रकार सुषुम्नाकाण्डकी कला में भी उत्सेध नजर आते हैं—जो कि सुषुम्ना के उपरांश में अथवा वहिरावरण (Duramater) के अभ्यन्तर में रहते हैं।

पूर्वरूप—यह व्याधि धीरे-धीरे अपना रूप प्रकट करती है। प्रारम्भ में कोई विशिष्ट लक्षण प्रकट न होकर मामूली-सी बीमारी के अस्पष्ट लक्षण प्रकट होते हैं। बच्चों में कोई भी खेल या तमाशा अच्छा न लगना, शिरमें दर्द होना, भूख न लगना, टट्टी साफ न होना, चुपचाप बैठे या पड़े रहना, चिड़चिड़ापन आना, रात को हर वक्त करवट बदलते रहना, बीच-बीच में रोते रहना, नींद में दाँत किड़-किड़ाना, कभी-कभी उल्टी होना, मामूली बुखार आ जाना इत्यादि पूर्वरूप प्रकट होते हैं। वयस्क व्यक्तियों में मानसिक परिवर्तन के साथ अवसाद, भ्रम, काम करने में अनिच्छा, चिड़चिड़ापन इत्यादि प्रधान रूप से प्रकट होते हैं। साधारणतः कोष्ठवद्धता ही दिखाई पड़ती है और निःश्वास में एक विशिष्ट प्रकार की गन्ध मालूम होती है। चेहरे पर मलिनता, बातचीत करने में अनिच्छा, सर्वदा शारीरिक अस्वस्थता का अनुभव इस रोग का पूर्वरूप है। ऐसी अवस्था कई दिनों से लेकर कई सप्ताह तक चल सकती है, जिसके बाद धीरे-धीरे से रोग का बढ़ना शुरू हो जाता है। जानु तथा गुल्फ सन्धि में घात-प्रतिक्रिया का अभाव तथा मूत्राघात इस रोग का प्राथमिक लक्षण है, जो सभी सन्देहजनक रोगियों में प्रथम परीक्षा-योग्य कहा जा सकता है। किसी भी रोगी के एकाएक बीमार पड़ने का इतिहास प्राप्त होते ही अच्छी तरह बुद्धिमानी से पूछताछ करने पर उपर्युक्त पूर्वरूप के कुछ न कुछ लक्षण अवश्य ही सुनने में आयँगे। रोग बढ़ने के साथ-साथ पहले रोगी का अवसाद तथा तन्द्राच्छन्न भाव बढ़ता जाता है, जो कि बाद में मूर्छा में परिणत हो जाता है, जिस से रोगी को सचेत कराना मुश्किल हो जाता है। शिर में काफी दर्द होता है, उल्टियाँ होती रहती हैं। बच्चे साधारणतः हाथ पैर सिकुड़कर करवट लेटे रहते हैं। किसी भी प्रकार की उत्तेजना उसे अच्छी नहीं लगती। रोगी प्रलाप करते रहते हैं। आँखें खोलकर शून्यदृष्टि से देखते रहते हैं; जैसे दूर की किसी चीज पर उसकी दृष्टि जमी हो। चक्षु विस्फारित दिखाई पड़ते हैं। गालों पर लाली तथा मुख-कोण पीछे की तरफ खिंचा हुआ दिखाई पड़ता है। बाद में क्रमशः हाथ-पैर लम्बे तथा सख्त हो जाते हैं। गर्दन सख्त हो जाना आमतौर पर दिखाई पड़ता है। शिर पीछे की तरफ खींच जाता है; परन्तु यह पूय-जीवाणु जनित मस्तिष्क-सुषुम्ना-प्रदाहज ज्वर में जितना अधिक तथा सुस्पष्ट होता है, उतना क्षयज इस व्याधि में नहीं होता। उदर प्राचीर पीछे की तरफ खिंच जाता है। कभी-कभी बच्चे खूब जोर से चिल्ला उठते हैं। रोग के पूर्ण प्रकोप के एक सप्ताह के पश्चात् आँखों में परिवर्त्तन होता है। ऊपर की पलक का नीचे की तरफ झुक जाना, टेढ़ा देखना, अक्षिगोलक का निरुद्देश्य घूमना आदि लक्षण प्रधान हैं, परन्तु सभी लक्षण सदा वर्तमान नहीं रहते। चक्षु-तारका पहले संकुचित, असमान रहती है; परन्तु बाद में प्रसारित हो जाती है।

बच्चों में इस रोग का किसी भी अवस्था में आक्षेप हो सकता है; परन्तु वयस्क रोगियों में कदाचित् ही होता है। बच्चों में यह आक्षेप रोगाक्रमण का प्रथम लक्षण भी हो सकता है; परन्तु बाद में बहुत ज्यादा होता है। कभी-कभी यह आक्षेप सार्वांगिक न होकर स्थानिक हो सकता है। हाथ पैर हिलाते समय कम्पन होता है—मांसपेशियों में ऐंठन भी होती रहती है। बच्चों में अचानक चिल्ला उठना या चिल्लाते रहना एक विशिष्ट लक्षण है। रोगी को चित्त लेटाकर पेट पर पैर समकोण से मोड़कर अगर जानुसन्धि से पैरों को लम्बा करने की कोशिश की जाय तो रोगी पैर लम्बा नहीं करने देता,—जिसे Kerring's sign. कहते हैं। अगर रोगी का एक पैर पकड़ कर मोड़ा जाय, तो दूसरा पैर भी वैसे ही मुड़ जाता है, अथवा रोगी का मस्तक अगर गर्दन पकड़ कर छाती पर झुकाया जाय, तो पैर भी जानु तथा जंघा-सन्धियों में आप ही आप मुड़ जाते हैं। कभी-कभी हाथ भी साथ ही साथ मुड़ जाते हैं—इसे Brudzinski's sign. कहते हैं—ये दोनों Tuberculous Meningitis में साधारणतः वर्तमान रहते हैं। कभी-कभी रोगी अर्द्धाङ्गिक पक्षाघात अथवा आंशिक पक्षाघात ग्रस्त हो जाते हैं।

इस व्याधि में साधारणतः ज्वर तेज नहीं रहता है—१-२ डिग्री ही ज्यादा रहता है। १००° डिग्री से ज्यादा बुखार इस बीमारी में कदाचित ही दिखाई पड़ता है।

नाड़ी की गतिहीनता इस व्याधि का विशिष्ट लक्षण है। पहले नाड़ी की गति तीव्र रहती है; परन्तु संज्ञानाश के साथ-साथ गति अतिमन्द हो जाती है। किन्तु मृत्यु के पूर्व हृदय की दुर्बलता के कारण नाड़ी की गति अतितीव्र होती है, श्वास की गति में वृद्धि तथा थोड़ी देर रुक कर तेज श्वाँस चलना, इस बीमारी में आमतौर पर दिखाई पड़ता है। कोष्टबद्धता एक विशिष्ट लक्षण माना जाता है।

अब हम आयुर्वेदोक्त रोगों में से इस बीमारी के साथ मिलते-जुलते लक्षणों की तुलना करें। हमारा पहला ध्यान 'पाकल सन्निपात' के ऊपर ही आकृष्ट होता है; क्योंकि रोग के लक्षणों की गम्भीरता को ध्यान में रखते हुए हमें यह प्रतीत होता है कि यह व्याधि घोर सन्निपातज ही हो सकती है—और पाकल सन्निपात में 'मन्यास्तम्भ' एक विशिष्ट लक्षण होने के कारण हमारा ध्यान इस ओर ही दौड़ता है। वृहत्रयी तथा लघुत्रयी के भीतर केवल भावप्रकाश में ही "पाकल सन्निपात" का वर्णन मिलता है। अन्य ग्रन्थों में सन्निपातज्वर के जो लक्षण वर्णित हैं, वे पुनरुक्ति कहे जा सकते हैं। उनमें मामूली अन्तर ही परिलक्षित होता है, जो साधारण सन्निपात के ही लक्षण हैं। भावप्रकाश में सन्निपातज्वर के २६ प्रकार के विभिन्न भेद हमें उपलब्ध हैं। इस ग्रन्थ में "पाकल सन्निपात" का वर्णन निम्न प्रकार है—

"मध्यम प्रवृद्ध हीनैस्तु वातपित्त कफैश्चयः।
तेन रोगास्त एवोक्ता यथा दोष वलाश्रयाः।।
मोह प्रलाप मूर्च्छाःस्युर्मन्यास्तम्भः शिरोग्रहः।
कासः श्वासोभ्रमोस्तन्द्रा संज्ञानाशोहृदिव्यथा।।
खेभ्योरक्त विसृजति सरक्तस्तब्ध नेत्रता।
तत्राप्येते विशेषास्युःमृत्युर्वाक् त्रिवासरात्।।
भिषग्भिः सन्निपातोऽयं कथितः पाकलाभिधः।।"

भावप्रकाश, मध्य खण्ड, १।४७१–४७३

उपर्युक्त लक्षणों में कास, इन्द्रियों से रक्त निःसरण तथा आँखों में लालीपन—यह तीन लक्षण साधारणतया Tuberculous Meningitis में नहीं दिखाई पड़ते, परन्तु कास तथा आँखों में लालीपन रह सकता है। अन्यान्य विशिष्ट लक्षण करीब-करीब सब ही पाश्चात्य चिकित्सा ग्रन्थों में वर्णित है। इन्द्रियों से रक्त निःसरण Cerebro-spinal fever or Meningococcal meningitis में malignant type हो सकता है। Osler की Medicine पुस्तक में Haematuria अर्थात् मूत्रमार्ग से रक्तस्राव का वर्णन हमें मिलता है। Conjuctivities का भी उल्लेख है जिसे हम समन्वयात्मक दृष्टि से देख सकते हैं। सुतरां "पाकल सन्निपात" के साथ Tuberculous Meningitis का समन्वय अनुचित नहीं होगा। परन्तु Meningitis रोग का जीवाणु भेद से कई प्रकार के भेद हैं, जिन में उपर्युक्त लक्षणों में से अधिकांश मिलते हैं, केवल मस्तिष्क-सुषुम्ना द्रव की परीक्षा से ही इसका पार्थक्य निर्णय किया जा सकता है। ऐसी परिस्थिति में "पाकल सन्निपात" को Meningitis का साधारण तौर पर एकार्थ वाचक मान कर विभिन्न भेद का वात, पित्त, कफ से तारतम्य के अनुसार भेद-ज्ञान करना ही उचित होगा। चूंकि Tuberculous Meningitis में साधारणतः ज्वरताप की वृद्धि ज्यादा नहीं होती तथा अतिसार, मुखपाक, तीव्रदाह इत्यादि पित्तज लक्षणों का असम्यग् प्रकाश रहता है, जिससे हम इसे प्रवृद्ध पित्त न कह कर पित्तमध्य मान सकते हैं। इसी प्रकार वातज लक्षणों की विवृद्धि इस बीमारी में हमें नजर आती है, जिससे मेरे ख्याल से Tuberculous Meningitis को "प्रवृद्ध वात, मध्यपित्त तथा हीन कफज पाकल सन्निपात कहना" अथवा "क्षयज पाकल सन्निपात" की संज्ञा देना उचित होगा, जिससे हम Meningococcal Meningitis को साधारण पाकल सन्निपात मानकर Tuberculous Meningitis को "क्षयज" विशेषण जोड़ कर भेद ज्ञान करा सकें। यहाँ एक बाधा यह है कि अगर हम Tuberculous Meningitis को "प्रवृद्ध-वात-मध्यपित्त-हीनकफज" व्याधि मान लें, तो भावप्रकाशोक्त उक्त दोषज "संमोहक सन्निपात" के साथपार्थक्य निर्माण असंभव हो जाता है; इसलिए मेरे विचार से "क्षयज पाकल सन्निपात" (वातपितोल्वण) नामकरण अधिक ही श्रेयस्कर होगा। अन्यान्य प्रकार के "पाकल सन्निपात" जैसे Pneumococcal Meningitis, Pyogenic Meningitis, Chorio-Meningitis, Syphilitic Meningitis इत्यादि को यथाक्रम से "फुफ्फुसीय पाकल सन्निपात" "पूय जनित पाकल सन्निपात" "निर्विष पाकल सन्निपात" तथा "फिरंगज पाकल सन्निपात" कहना सहजबोधगम्य तथा सुन्दर होगा, ऐसा मेरा मत है।

भावप्रकाश में "क्रकच सन्निपात" के नाम से और एक सन्निपात का वर्णन हमें प्राप्त है। इसमें भी मन्या

स्तम्भ हो जाने से मृत्यु हो जाती है, ऐसा कहा गया है। इस व्याधि का वर्णन निम्न प्रकार है :—

यह व्याधि हीन पित्त होने के कारण Meningitis में, जहां प्रदाह प्रधान लक्षण है, समन्वय करना कुछ मुश्किल हो जाता है। "मन्यास्तम्भ हो जाने से मृत्यु हो जाती है"—इस उक्ति से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अन्तिम काल में अरिष्ट लक्षण के रूप से ही मन्यास्तम्भ हो जाता है; परन्तु Meningitis में मन्यास्तम्भ करीब-करीब प्राथमिक अवस्था से न भी हो, मध्यावस्था से अवश्य ही रहता है। सभी प्रकार के Meningitis घातक होते हैं, ऐसा कहना ठीक नहीं होगा। अवश्य Antibiotics के आविष्कार के पहले अधिकांश मृत्यु हो जाती थी; परन्तु अवश्य ही मृत्यु हो जाती है,—ऐसा नहीं कहा जा सकता। विशेषतः पाकल सन्निपात का वर्णन अधिकतर स्पष्ट है, जिसका Meningitis के साथ समन्वय करना सरल हो जाता है।

अभी अभी फरवरी मास की "आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका" में हैदराबाद राजकीय आयुर्वेदीय चिकित्सालय के प्रधान चिकित्सक कविराज पुरुषोत्तम देव मुलतानी ने मस्तिष्क सुषुम्ना ज्वर (Tuberculous Meningitis) के एक रोगी का वर्णन करते हुए इस व्याधि का योगरत्नाकरोक्त "कण्ठकुब्जज्वर" के साथ समन्वय किया तथा इस व्याधि को "पित्तोल्वण सन्निपात" कहा है। कण्ठकुब्ज ज्वर का प्रथम वर्णन हमें भावप्रकाश में ही मिलता है। योगरत्नाकरोक्त कण्ठकुब्ज ज्वर के वर्णन से भावप्रकाशोक्त वर्णन अधिक प्रामाणिक मानना चाहिए—ऐसा मेरा मत है। भावप्रकाशोक्त कण्ठकुब्जज्वर का वर्णन निम्न-प्रकार है :—

"कण्ठःशूकशतावरुद्धवदतिश्वासः प्रलापोऽरुचिर्दाहो-
देहरुजातृषाऽपि च हनुस्तम्भः शिरोऽर्त्तिस्तथा।
मोहो वेपथुना सहेति सकलं लिंगं त्रिदोषज्वरे
यत्रस्यात्सहि कुण्ठकुब्ज उदितः प्राच्यैश्चिकित्साबुधः॥"

भावप्रकाश, मध्यखण्ड, १।५०५ श्लोक

योगरत्नाकरोक्त कण्ठकुब्जज्वर का वर्णन निम्न प्रकार है :—

"शिरोऽर्त्ति कण्ठग्रह-दाह-मोह-कम्प-ज्वराः
रक्तसमीरणोऽर्त्ति हनुग्रहः तापविलापमूर्च्छा
स्यात्कण्ठकुब्ज : कष्टसाध्यः"। —योगरत्नाकर

भावप्रकाशोक्त कण्ठकुब्जज्वर में "कण्ठःशूकशतावरुद्ध वदतिश्वासः" मेरे खयाल से प्रधान लक्षण मानना चाहिए, जिसके कारण इस व्याधि का नाम "कण्ठकुब्ज-ज्वर" रखा गया था। योगरत्नाकर में इस प्रधान लक्षण का उल्लेख नहीं मिलता है, जिससे व्याधि के नाम की सार्थकता हमें नहीं प्राप्त होती है। विशेषतः योगरत्नाकर लघुत्रयी के समान प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं माना जा सकता। अधिकन्तु कविराज जी द्वारा उक्त "पित्तोल्वण सन्निपात" के साथ भी इसका समन्वय करना मुश्किल है क्योंकि योगरत्नाकरोक्त उपर्युक्त लक्षणों में से पित्तवृद्धि के लक्षण जैसे परिपुष्ट हैं, वैसे ही वातवृद्धि के लक्षण भी प्रकट हैं, इसलिये रोग की गम्भीरता को देखते हुए इस व्याधि का "वातपित्तोल्वण सन्निपात" निदान होना ही उचित प्रतीत होता है। विशेषतः इस व्याधि में "मन्यास्तम्भ" का उल्लेख तक नहीं है, बल्कि हनुस्तम्भ होता है, जिससे "कण्ठकुब्ज ज्वर" का किसी प्रकार से Meningitis के किसी प्रकार के भेद अथवा Tuberculous Meningitis के साथ समन्वय करना असम्भव हो जाता है; क्योंकि Meningitis का प्रधान लक्षण ही मन्यास्तम्भ है। अधिकंतु जब कि आयुर्वेद शास्त्र में सन्निपातज्वर में मन्यास्तम्भ का वर्णन हमें "पाकल" तथा "क्रकच" सन्निपात में मिलता है, तो हमें हनुग्रह या हनुस्तम्भ-युक्त कण्ठकुब्ज का जबरदस्ती Tuberculous Meningitis के साथ समन्वय करने का उद्देश्य क्या है? पाकल सन्निपात में Tuberculous Meningitis के अन्यान्य लक्षण, जिन्हें योगरत्नाकरोक्त कण्ठ कुब्ज सन्निपात के वर्णन में देखकर कविराज जी के हृदय में ऐसी भावना उत्पन्न हुई होगी, उसमें के सब ही लक्षण हमें मिलते हैं—अधिकन्तु संज्ञा का नाश तथा मन्यास्तम्भ—ये दोनों प्रधान लक्षण हमें मिल जाते हैं जो कण्ठकुब्जज्वर में नहीं मिलते—तो हमें कण्ठकुब्ज-ज्वर को Tuberculous Meningitis मानना बिलकुल उचित नहीं है—ऐसा ही मेरा मत है।

(सावशेष)

वैद्यकीय सदुक्ति-समुच्चय

Anthology of Medicine

डॉ० प्राणजीवन मेहता, एम० डी०, एम० एस०

प्रस्तुत लेख में डॉ० मेहता ने महाभारत से दो प्रसंग उद्धृत किए हैं। एक से भारत के प्राचीन अगदतन्त्र (विष-तन्त्र) का परिचय प्राप्त होता है और दूसरा शल्यतन्त्र की झांकी कराता हुआ युद्धभूमि में शासकों द्वारा शल्यहर्ताओं की नियुक्ति के प्रति संकेत करता है। महाभारत रूपी सागर में अभी तो ऐसे और भी अमूल्य रत्न प्राचीन आयुर्वेद तथा अन्य विद्याओं और कलाओं की उन्नति की सूचना देने वाले भरे पड़े हैं। प्राचीन वाङ्मय के अन्य ग्रन्थों में भी ऐसे प्रसंग प्रभूत हैं। सबका अवगाहन हमारे ऋषि-अर्चन का एक अङ्ग है। --सम्पादक

महाभारत Mahabharat

वैद्य कश्यप तथा सर्पराज तक्षक का संवाद

A dialogue between the Physician Kashyapa and the Serpent-King Takshak.

आदि पर्व अध्याय ४२

प्राप्ते च दिवसे तस्मिन् सप्तमे द्विजसत्तमः।
काश्यपोऽभ्यागमद्विद्वांस्तं राजानं चिकित्सितुम् ॥३३॥
श्रुतं हि तेन तदभूद्यथा तं राजसत्तमम्।
तक्षकः पन्नगश्रेष्ठो नेष्यते यमसादनम् ॥३४॥
तं दष्टं पन्नगेन्द्रेण करिष्येऽहमपज्वरम्।
तत्र मेऽर्थश्च धर्मश्च भवितेति विचिन्तयन् ॥३५॥
तं ददर्श स नागेन्द्रस्तक्षकः काश्यपं पथि।
गच्छन्तमेकमनसं द्विजो भूत्वा वयोऽतिगः ॥३६॥
तमब्रवीत् पन्नगेन्द्रः काश्यपं मुनिपुङ्गवम्।
क्व भवांस्त्वरितो याति किं च कार्यं चिकीर्षति ॥३७॥

काश्यप उवाच--

नृपं कुरुकुलोत्पन्नं परिक्षितमरिंदमम्।
तक्षकः पन्नगश्रेष्ठस्तेजसाऽद्य प्रधक्ष्यति ॥३८॥
तं दष्टं पन्नगेन्द्रेण तेनाऽग्निसमतेजसम्।
पाण्डवानां कुलकरं राजानममितौजसम् ॥
गच्छामि त्वरितं सौम्य सद्यः कर्तुमपज्वरम् ॥३९॥

तक्षक उवाच--

अहं स तक्षको ब्रह्मंस्तं धक्ष्यामि महीपतिम्।
निवर्तस्व न शक्तस्त्वं मया दष्टं चिकित्सितुम् ॥४०॥

काश्यप उवाच--

अहं तं नृपतिं गत्वा त्वया दष्टमपज्वरम्।
करिष्यामीति मे बुद्धिर्विद्याबलसमन्विता ॥४१॥

(इति द्वाचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः)

यदि दष्टं मयेह त्वं शक्तः किंचिच्चिकित्सितुम्।
ततो वृक्षं मया दष्टमिमं जीवय काश्यप ॥१॥
परं मन्त्र बलं यत्ते तद्दर्शय यतस्व च।
न्यग्रोधमेनं धक्ष्यामि पश्यतस्ते द्विजोत्तम ॥२॥

काश्यप उवाच--

दश नागेन्द्र वृक्षं त्वं यद्येतदभिमन्यसे।
अहमेनं त्वया दष्टं जीवयिष्ये भुजङ्गम ॥३॥

सौतिरुवाच--

एवमुक्त स नागेन्द्रः काश्यपेन महात्मना।
अदशद्वृक्षमभ्येत्य न्यग्रोधं पन्नगोत्तमः ॥४॥
स वृक्षस्तेन दष्टस्तु पन्नगेन महात्मना।
आशीविषविषोपेतः प्रजज्वाल समन्ततः ॥५॥
तं दग्ध्वा स नगं नागः काश्यपं पुनरब्रवीत्।
कुरु यत्नं द्विजश्रेष्ठ जीवयैनं वनस्पतिम् ॥६॥
भस्मीभूतं ततो वृक्षं पन्नगेन्द्रस्य तेजसा।
भस्म सर्वं समाहृत्य काश्यपो वाक्यमब्रवीत् ॥७॥
विद्याबलं पन्नगेन्द्र पश्य मेऽद्य वनस्पतौ।
अहं संजीवयाम्येनं पश्यतस्ते भुजङ्गम ॥८॥
ततः स भगवान् विद्वान् काश्यपो द्विजसत्तमः।
भस्मराशीकृतं वृक्षं विद्यया समजीवयत् ॥९॥
अंकुरं कृतवांस्तत्र ततः पर्णद्वयान्वितम्।
पलाशिनं शाखिनं च तथा विटपिनं पुनः ॥१०॥

तं दृष्ट्वा जीवितं वृक्षं काश्यपेन महात्मना ।
उवाच तक्षको ब्रह्मन्नेतदित्यद्भुतं त्वया ।।११।।
द्विजेन्द्र यद्विषं हत्वा मम वा मद्विधस्य वा ।
कं त्वमर्थमभिप्रेप्सुर्यासि तत्र तपोधन ।।१२।।
यत्तेऽभिलषितं प्राप्तुं फलं तस्मान्नृपोत्तमात् ।
अहमेव प्रदास्यामि तत्ते यद्यपि दुर्लभम् ।।१३।।

सप्तम दिवस आने पर द्विजश्रेष्ठ विद्वान् काश्यप उस राजा की चिकित्सा करने के लिये प्रस्थित हुआ ।

उसने सुना था कि सर्पराज तक्षक उस राजराज को यमलोक ले जायगा । (सर्प-दंश से राजा की मृत्यु होगी ।

वह इस विचार में था कि सर्पराज से दष्ट राजा को मैं नीरोग करूँगा । इससे मुझे अर्थ और धर्म लाभ होगा ।

नागराज तक्षक वयोवृद्ध विप्र का रूप धारण कर तन्मय हो मार्ग काटते हुए ब्राह्मण के पास जा पहुँचा ।

सर्पराज ने मुनिश्रेष्ठ काश्यप से पूछा––आप इतनी त्वरा से कहाँ जा रहे हैं और क्या करना चाहते हैं ?

काश्यप बोला––आज नागराज तक्षक अपने तेज से कुरुकुलोत्पन्न रिपुदमन परीक्षित को भस्म करनेवाला है ।

हे सौम्य, सर्पराज से दष्ट अग्नि के समान तेजस्वी, अमितौजा पाण्डवों के कुलतन्तु उस राजा को मैं तत्क्षण स्वस्थ करने के निमित्त सवेग जाता हूँ ।

तक्षक बोला––ब्राह्मण, मैं ही वह तक्षक हूँ और उस राजा को दग्ध करने चला हूँ । मुझसे दष्ट की चिकित्सा करने का सामर्थ्य आप में नहीं है । अतः आप लौट जाइए ।

काश्यप बोला––अपने विद्या-बल के आधार पर मैंने यह निश्चय किया है कि तुझसे दष्ट उस राजा को मैं रोग-मुक्त करूँगा ।

तक्षक बोला––काश्यप, यदि मुझ से दष्ट किसी वस्तु की चिकित्सा करने का तेरा दावा है तो मुझ से दष्ट इस वृक्ष को जीवित कर दिखा ।

द्विजराज, आप में जितना मन्त्रबल है, वह सब दिखाओ और सम्पूर्ण प्रयत्न करो । मैं आपके देखते इस बट वृक्ष को भस्म करता हूँ ।

काश्यप बोला––सर्पराज, तथास्तु ! तेरी ऐसी अहंमन्यता है तो तू इस वृक्ष को दंश कर । तुझ से दष्ट इसे मैं पुनर्जीवित करूँगा ।

सौति बोला––महात्मा काश्यप से इस प्रकार अभिहित सर्पश्रेष्ठ सर्पराज तक्षक ने वट वृक्ष के समीप पहुँच उस पर दंश किया ।

महाप्रभावशाली तक्षक से दष्ट वह वृक्ष घातक सर्प-विष से व्याप्त हुआ ऊपर से नीचे तक जल उठा ।

उस वृक्ष को भस्म कर सर्पराज ने पुनः काश्यप को कहा––द्विजराज, अब अपनी विद्या आजमाओ । इस वनस्पति को जीवन दो ।

सर्पराज के तेज से दग्ध हुए उस वृक्ष की संपूर्ण भस्म एकत्र कर काश्यप ने यह वाक्य कहा––

सर्पराज, इस वनस्पति पर मेरी विद्या का प्रभाव देखो । तुम्हारे देखते मैं इस वृक्ष को पुनर्जीवित करता हूँ ।

यह कह भगवान् विद्वान् द्विजश्रेष्ठ काश्यप ने भस्मराशीभूत उस वृक्ष को अपनी विद्या से पुनर्जीवित कर दिया ।

भस्मराशि पर दो पत्तों से युक्त अंकुर उत्पन्न किया और क्रमशः पत्र, शाखा और विस्तार युक्त वृक्ष के रूप में परिणत कर दिया ।

महात्मा काश्यप द्वारा जीवित किये गए उस वृक्ष को देख तक्षक ने कहा––ब्रह्मन्, यह तो आपने अति अद्भुत कर्म कर दिखाया ।

परन्तु, मेरे अथवा मुझ सदृश अन्य के विष का प्रत्युपाय कर हे तपोधन, आप अधिक से अधिक कितना धन प्राप्त करना चाहते हैं, यह कहिए ।

उस सम्राट से आप जो फल पाया चाहते हैं, वह भले दुर्लभ हो तो भी मैं आप को दे सकता हूँ ।

Mahabharat-Adiparva, Chapter 42

At the advent of the seventh day, the learned kashyapa, the highest among the Dwijas (twice-born), started to treat the king.

He had heard what had happened to the king, viz., Takshaka, the Lord of Serpents, was about to take away the king to yama (i. e. the king was to die of the snake-bite).

I must cure the bite inflicted by the Lord of Serpents. By doing so I shall attain wealth and merit !

But that prince of snakes, Takshaka, in the form of an old Brahmana, saw, Kashyapa approaching on his way, his heart set upon curing the king.

To Kashyapa, the best of seers, spoke the Lord of serpents, "Where is your honour

going so hastily and what is the purpose of your going ?"

Kashyapa said, "Takshaka, the Lord of serpents, is to bite the king Parikshita, born in the Kuru family, the destroyer of enemies. I am hastily going to cure the king, who possesses lustre like fire and who is the extender of Pandava family.

Takshaka replied, "O Brahmin, I am that Takshaka and I will bite the king. Please go back, as you will not be able to cure the bite inflicted by me."

Kashyapa said, "I am determined to go to the king and cure him of the bite. My talents are infused with the power of learning."

Takshak : "O Kashyapa, if at all you are able to treat and cure my bite, let this tree bitten by me be revived by you. Show your greatest hymnal power and try. O the best among the Dwijas, I bite this banyan tree in your presence."

Kashyapa : "O Lord of serpents, if you are so inclined you may bite the tree. I shall revive the tree bitten by you."

Having been thus addressed by the sage, Takshaka, the Lord of serpents, bit the banyan tree. The tree being bitten by the serpent, began to burn from all sides being impregnated with deadly poison. After biting the tree the serpant said to Kashyapa, "Try now, O best among the Brahmans, and revivethe tree."

"O Lord of serpents, behold now my power of learning on the tree. I revive this tree again, watch !"

Then Kashyapa, the learned and glorious, the best among the Dwijas, revived by his learning the tree that was reduced to ashes. Then he made a sprout spring up complete with two leaves and then the branches and fruits etc., also appearcd. On seeing the tree revived by the great Kashyapa, Takshak said, "Oh Brahman, there is really supernatural power in you. Oh ascetic, when you can undo the effect of the poison of mine or of other like me, (i. e., when you have such powers in you.), why do you go there and for what purpose ? I will give you all that you might be expecting from the king, however it may be difficult to obtain."

युद्ध-भूमि में भीष्म के उपचार के लिए यौद्धिक शल्यहर्त्ताओं को आमन्त्रण

Military surgeons called to heal the hero Bheeshma on the battle-field.

महाभारत भीष्म पर्व अध्याय १२०

संजय उवाच--

उपातिष्ठन्नथो वैद्याः शल्योद्धरण कोविदाः ।।५५।।
सर्वोपकरणैर्युक्ताः कुशलैः साधुशिक्षिताः ।
तान्दृष्ट्वा जाह्नवीपुत्रः प्रोवाच तनयं तव ।।५६।।
धनं दत्वा विसृज्यन्तां पूजयित्वा चिकित्सकाः ।
• एवं गते मयेदानीं वैद्यैः कार्यमिहास्ति किम् ।।५७।।
क्षत्र धर्मे प्रशस्तां हि प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम् ।
नैष धर्मो महीपालाः शरतल्पगतस्य मे ।।५८।।
एभिरेव शरैश्चाहं दग्धव्योऽस्मि नराधिपाः ।।
तत्श्रुत्वा वचनं तस्य पुत्रो दुर्योधनस्तव ।।५९।।
वैद्यान् विसर्जयामास पूजयित्वा यथार्हतः ।।

संजय बोला--तदनन्तर शल्यों (तीक्ष्ण शस्त्रों) के आहरण में निपुण सर्व उपकरणों से संपन्न तथा निष्णातों द्वारा सम्यक् शिक्षित वैद्य (सैनिक-शल्यहर्ता) आ उपस्थित हुए।

उन्हें देख जाह्नवीपुत्र (भीष्म) ने आपके पुत्र (दुर्योधन) को कहा--"इन वैद्यों की अर्चना कर तथा इन्हें धन देकर विदा कर दो। मुझे अब वैद्यों का कुछ प्रयोजन नहीं है। मैं क्षात्र धर्म का पालन करता हुआ इस प्रशस्त परम गति (युद्धभूमि में मृत्यु) को प्राप्त हुआ हूँ। अतः शर-शय्या पर पड़े मेरे लिए यह (चिकित्सा कराना) उचित नहीं है। राजाओं, इन वाणों के साथ ही मेरा दाहकर्म कीजिएगा।

ये शब्द सुन, आपके पुत्र दुर्योधन ने यथावत् अभ्यर्चना कर उन वैद्योंको विसर्जित कर दिया।

Mahabharat Bheeshma Parva. Chapter 12

There arrived Vaidyas (military surgeons) expert in the extraction of piercing arms, fully equipped with instruments, dexterous and well trained. On seeing them the son of the Ganges (i. e. Bhishma) said to your son

(शेषांश पृष्ठ ५६८ पर)

नामूलं लिख्यते किंचिन्नानपेक्षितमुच्यते

४३--छात्रोपयोगी निदान-चिकित्सा

अथवा

निदान-चिकित्सा हस्तामलक

वैद्य रणजितराय

रक्तप्रदर, रक्तयोनि तथा रक्तपित्त

प्रथम दो रोगों का लक्षण इस लेखमाला में दिया जा चुका है। रक्तपित्त स्वयं एक प्रसिद्ध रोग है। यों भी उसका विवरण लेखमाला के प्रारम्भिक प्रकरणों में आ चुका है। अब अवसर है कि तीनों में प्रभेद देखा जाए।

रक्तप्रदर के लक्षण में कालकृत विशेष स्पष्ट निर्दिष्ट है। उससे विदित होगा कि प्रतिमास आर्तव का काल उपस्थित होने पर अति प्रमाण में अथवा--और दीर्घकाल-पर्यन्त रक्तदर्शन को, किंवा मध्य में भी कभी परन्तु अल्प-प्रमाण और अल्पकालिक रक्तदर्शन को रक्तप्रदर कहा जाता है। इस प्रकार रक्तप्रदर के कालभेद से दो भेद होते हैं। १--प्रतिमास दृष्टिगोचर होनेवाला, २--मासिक आर्तव के दिनों के मध्यवर्तीकाल में दृष्टिगोचर होने वाला। प्रत्यक्ष में भी इसके दो भेद देखे जाते हैं। आधुनिकों ने प्रथम को **मेनोरेजिया** तथा द्वितीय को **मेट्रो-रेजिया** नाम दिया है।

रक्तयोनि में काल का ऐसा कुछ सम्बन्ध नहीं है। ऋतुकाल-भिन्न काल में भी दिन के दिन, कभी कई सप्ताह और कई मास पर्यन्त भी, यहाँ तक कि गर्भस्थिति होने पर भी, एवं बहुधा अति प्रमाण में प्रवृत्त रक्त को रक्तयोनि कहा गया है। रक्तयोनि में कारणभूत दोष-दूष्य रक्त और पित्त होते हैं। अन्य शब्दों में उष्ण-तीक्ष्णादि गुणों का अतियोग उसका निदान होता है। रक्तप्रदर में वायु की मुख्य कारणता कही गयी है। वायु के प्रकोप के कारण भी अन्य दोषों की वृद्धि होकर उसका (वायु का) आवरण हो सकता है। प्रकोप के उल्लिखित कारणों के प्रकरण में हमने दिखाया है कि कभी रक्तप्रदर का कारण यह भी हो सकता है कि रुग्णा अति संतर्पण करती हो। अति संतर्पण से रसधातु की वृद्धि होती है। उसके साथ ही उसका उपधातु होने से आर्तव भी सविशेष पुष्ट होता है और उसकी अति प्रमाण में प्रवृत्ति या रक्तप्रदर होता है। ऊपर कह आया हूँ कि अति संतर्पण का इतिहास (निदान) तथा लङ्घन से रोग के लक्षणों का शमन (उपशय) से इसकी परीक्षा की जा सकती है। साथ ही, **इस कारण से हुए रक्तप्रदर में दौर्बल्य उतना नहीं होता।** कारण, संतर्पण वश रसरक्तादि धातु विशेष प्रमाण में पुष्ट हुए होते हैं, अतः रक्तप्रदर के रूप में रक्त की अति प्रवृत्ति होने पर भी रस-रक्त का विशेष क्षय नहीं हो पाता, जिससे दौर्बल्य भी अधिक नहीं होता।

रक्तप्रदर में अन्य दोषों का भी अनुबन्ध होता है। इसके कारण क्षरित रक्त में भी तत्तत् दोष के लक्षण देखे जाते हैं। इस प्रकार दोष-भेद से भिन्न रक्त का स्वरूप-भेद इसी लेख में आगे देखेंगे।

शेष **रक्तपित्त और रक्तयोनि** में, मैं समझता हूँ, कोई भेद नहीं है। तन्त्रों में भी इनका कोई भेद दर्शाया नहीं है। अपत्यपथ के रक्तपित्त को ही रक्तयोनि या लोहितक्षरा योनि, यह विशेष नाम दिया है। नाम-वैशिष्ट्य का कारण यह है कि यह स्त्रियों में होता है, अतः रक्तपित्त के इतर भेदों के समान कायचिकित्सकों का विषय न होकर कौमारभृत्यों का विषय है। अतः इतर रक्तपित्तों से अपने क्षेत्र के रोग का पार्थक्य दिखाने के हेतु कौमार-भृत्य के आचार्यों के लिए उसका पृथक् नाम देना उचित है। इसके अतिरिक्त इसके प्रजाभाव आदि परिणामों तथा अन्य ज्ञातव्य बातों का वैशिष्य होने से भी इसे पृथक् परि-गणित किया गया है।

तथापि, रक्तपित्त को इन रोगों के प्रकरण में दृष्टिगत रखना चाहिए। कारण, कई बार ऋतुकाल उपस्थित होने पर रक्त की विशेष पुष्टि तो स्त्री शरीर में होती है, परन्तु अपत्यपथ से प्रवृत्ति का मार्ग किसी कारण खुला न होने से रक्त अपत्यपथ से प्रवृत्त नहीं होता। मार्ग खुला न होने का कारण गर्भशय्या की केशवाहिनियों का विदीर्ण न होना हो सकता है। परिणामतया, स्त्री शरीर में रक्त संचित हो प्रकुपित होता है। प्रकोप के कारण वह मुख, नासिका आदि मार्गों से प्रवृत्त होता है। ऋतु के काल पर ही प्रवृत्ति होती देखकर इस का निदान (विनिश्चय) किया जा सकता है। ऐसे कालों पर आर्तव प्रवर्त्तक औषध देकर इसका उपचार किया जाता है। प्रत्येक चिकित्सक का स्वानुभूत आर्तवप्रवर्तक होता ही है। अतः यहाँ विशेष उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। अंग्रेजी में इस विकार को **विकेरिअस मेन्स्ट्रुएशन** कहते हैं।

इस विकार का एक प्रकार होता है, जिस में ऋतुकाल में रोमकूपों से रक्त प्रवृत्ति होती है। इसे अंग्रेजी में **मेनिड्रोसिस** कहते हैं। यह भेद मैंने प्रत्यक्ष नहीं किया है। कभी यह रोग देखने में आए तो इसका भी उपचार ऋतुकाल उपस्थित होने के पूर्व से आर्तवप्रवर्तक औषध देकर किया जा सकता है।

अन्य कतिपय परिणामों को देखते हुए भी योनि (गर्भ-यन्त्र) में रक्त पित्त या रक्त प्रकोप स्मरणीय है। चरक ने रक्तयोनि का लक्षण देते हुए कहा है कि गर्भ-स्थिति होने पर भी उसमें रक्त प्रवृत्ति होती है। परिणाम टीकाकार बताता है कि रक्त स्रुति के कारण यह योनि अप्रजा (पुत्रहीन) होती है। रक्तयोनि का लक्षण इस लेखमाला में दे चुका हूँ। प्रजानाश-रूप परिणाम को दृष्टि में रख सुश्रुत ने पित्तला योनियों में एक पृथक् ही व्यापत्ति **पुत्रघ्नी** नाम से गिनी है। इसका लक्षण यह है--

स्थितं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्त संस्रवात् ।।

सु० उ० ३८।१३

--गर्भ स्थित हो और रक्त स्राव के कारण उसका प्रतिवार नाश होता रहे तो इसे पुत्रघ्नी योनि कहा जाता है।

पुत्रघ्नी योनि चरक ने भी दी है। परन्तु उसमें कारण वायु को कहा है तथा संप्राप्ति वायु के कारण गर्भ का शुष्क होकर नष्ट होना बताई है। तथाहि--

रौक्ष्याद् वायुर्यदा गर्भं जातं जातं विनाशयेत् ।
दुष्टशोणितजं नार्याः पुत्रघ्नी नाम सा मता ।।

च० चि० ३०।२८

--गर्भ जैसे उत्पन्न हो वैसे ही (निज कारणों से कुपित हुए) रूक्ष गुण के उत्कर्ष से वायु रक्त को दुष्ट कर प्रतिवार उसे (गर्भ को) नष्ट कर दे तो इस योनि व्यापत् को पुत्रघ्नी कहा जाता है।

जन्म शब्द यहाँ शुक्र-शोणित और जीव का संमूर्च्छन (संयोग) होने पर आविर्भूत हुए चैतन्य के अर्थ में भी लिया जा सकता है तथा प्रसव के अर्थ में भी उसका ग्रहण कर सकते हैं। दोनों अर्थ शास्त्र-शुद्ध तथा प्रत्यक्षानुमोदित हैं। प्रथम अर्थ में गर्भ प्रसव के पूर्व ही शुष्क और क्षीण होकर उसका स्राव या पात हो जाता है। द्वितीय प्रकार में क्षीणता के कारण उसकी प्रसवोत्तर तत्तत् रोग से मृत्यु होती है।

प्रथम भेद को अंग्रेजी में **'हेबीच्युअल एबॉर्शन'** कहते हैं। दूसरे प्रकार के लिए गुजराती भाषा में **'कोठे रतवा'** शब्द प्रसिद्ध है। इसका शब्दार्थ 'गर्भाशय में रक्त तथा वात का प्रकोप' है। इसमें बच्चे शोष (मेरेस्मस), कास-श्वास प्रधान संतत ज्वर (ब्रॉङ्कोन्यूमोनिया), अतिसार सहित वान्ति इनमें किसी रोग से पीड़ित हो अन्त में मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

चरक और सुश्रुत दोनों ने एक ही नाम से दो पृथक् विकृतियों का वर्णन किया है। दोनों प्रत्यक्षोपलब्ध हैं। विकृति वात के कारण है या पित्त के कारण, इस का निर्णय करना चिकित्सक का कर्तव्य है। चिकित्सा भी तदनुरूप भिन्न होती है। इस प्रसंग में प्रजानाश का एक और कारण स्मरण किया जा सकता है और वह है **शुक्रगत वात**। वात के रौक्ष्यगुण के कारण शुक्र क्षीण होने से हर्ष (रतिकी इच्छा) का नाश, क्लीवता (रति सुख के सामर्थ्य का नाश), सामर्थ्य न होने से स्त्री को सुख (सौमनस्य) न प्राप्त होने से गर्भ-धारण न होना[1], शुक्र का अतिशीघ्र पतन या चिरकाल से पतन किंवा शुक्र के क्षीण होने से ही उसकी स्थिति न होना (निष्फलता), या स्थिति होने पर भी उसका स्राव या पात, या गर्भस्थिर होते हुए भी बालक का प्रसवोत्तर न्यूनाधिक काल में मरण ये लक्षण होते हैं। **क्रियाशारीर** के शुक्र

---

१ सौमनस्यं गर्भधारणानाम्--चरक का वचन है।

तथा वात के प्रकरणों का अनुसन्धान करने से ये बातें विशद हो सकती हैं। वात प्रकृति पुरुष में जन्मतः शुक्र वाताभिभूत होने से उन में अन्य लक्षणों के साथ उपरिलिखित लक्षण तथा स्त्रियों की प्रीति न होना, अल्प प्रजा होना इत्यादि लक्षण पाए जाते हैं[१]। नवीन मत से शुक्र की क्षीणता का अर्थ पुंबीजों की यथोचित संख्या न होना, उन की पुष्टि सम्यक् न होना, उन में चपलता न्यून होना या चपलता होते हुए भी उन का सम्मुख दिशा में गति न कर वर्तुल गति करना, यह (अर्थ) लिया जा सकता है। आयुर्वेद मत से इसमें इतना और जोड़ दिया जाना चाहिए कि शुक्र की पुष्टि के लिये रस धातु का जो प्रमाण प्राप्त होता है, वह वात के आधिक्य, शुक्राग्नि का दौर्बल्य आदि शुक्रक्षयकारी शास्त्रोक्त कारणों से शुक्र को उतना पुष्ट नहीं कर पाता। शुक्र की पुष्टि यथावत् हो, इस दृष्टि से शरीरगत वात कहिए अथवा नयी परिभाषा में प्रकृति (नेचर या कुदरत) कहिए, रसधातु का अधिक प्रमाण में शुक्र के पोषणार्थ उपयोग करती है। परिणामतया, शुक्र की पुष्टि के लिए प्राप्त हुए रसधातु का शेषांश इतना अल्प रह जाता है कि उससे शुक्र के उपधातु या शुक्र के मलभूत ओज (वृषणों का अन्तःस्राव) की पुष्टि यथोचित नहीं हो पाती। इस कारण शरीर का अनुपचय, अनुत्साह, दैन्य, हर्षनाश (मानस सुख या रति की इच्छा का ह्रास) दौर्बल्य इत्यादि ओजःक्षय के लक्षण प्रादुर्भूत होते हैं[१]।

प्रयोगशाला में परीक्षा से विदित हुआ है कि प्रजारहित घरों में कोई ४० चालीस प्रतिशत में पुरुष का उक्त प्रकार से क्षीणशुक्र होना कारण होता है। प्राचीन वैद्य तो प्रजालोप में स्त्री और पुरुष दोनों को ही प्रायः समान ही औषधों का सेवन कराते थे।

पुत्रघ्नी योनि के प्रसंग में फिरङ्गिणी योनि, पूयस्रावी योनि (गॉनोरिया) आदि रोगों का भी स्मरण किया जा सकता है।

रक्त योनि के अतिरिक्त रक्तपित्त का पृथक् स्मरण एक अन्य परिणाम को लक्ष्य में रखकर भी करना उचित है। पित्त अति प्रकुपित हो तो एक परिणाम यह भी होता है कि उससे आर्तव दग्ध होकर उसका नाश होता है तथा स्त्री अनार्तवा होती है।

योनिगर्भाशयस्थं चेत्पित्तं संदूषयेदसृक्।
सारजस्का मता कार्श्यवैवर्ण्यजननी भृशम्॥

च० चि० ३०।१७

—योनि और गर्भाशय में स्थित पित्त यदि रक्त को अति दूषित (विनष्ट) कर दे तो यह **अरजस्का** योनिव्यापत् कहाती है। इस में अत्यधिक कार्श्य (शरीर की क्षीणता) तथा वैवर्ण्य (वर्णनाश या वर्णविकृति—वर्णभेद) होती है।

रक्तप्रदर, रक्तपित्त तथा रक्तयोनि में पार्थक्य सूचक इतने विवेचन के पश्चात् अब रक्तप्रदर-सम्बन्धी एक

१—कफ प्रकृति पुरुष में इसके विपरीत गर्भ की स्थिरता आदि लक्षण होते हैं। आयुर्वेद ने दोषों के जो गुण निर्धारित किए हैं उनकी व्यापकता का यह एक उत्तम उदाहरण है। कफ के गुणों में एक गुण **स्थिर** है। इसका अर्थ यह है कि कफ प्रकृति पुरुषों में या कफज विकृतियों में सर्वत्र स्थिरता पाई जाती है। चाल में स्थिरता, निश्चय में स्थिरता मैत्री में स्थिरता गर्भाशय में पहुँचे शुक्र में स्थिरता (पात या स्राव न होना), रोगों में भी स्थिरता (दीर्घकालानुबन्धिता) इत्यादि सर्वत्र स्थैर्य पाया जाता है। विशालता और गौरता कफ के अन्य गुण हैं। शरीर तथा मन विशाल होते हैं, शरीर गौर होता है। रोगों में भी ये लक्षण पाए जाते हैं। तद्यथा—कफज अश्मरी विशाल और गौर होती है। इसी प्रकार इतर गुणों का भी विचार सुधी वैद्यों को करना चाहिए। केवल ग्रन्थों के शब्दों का पिष्टपेषण पर्याप्त नहीं है।

१—मल का अर्थ इस प्रसंग में पुनः समझा दूं। धातुओं की पुष्टि के लिए जो रस धातु प्राप्त हो उससे धातुविशेष की पुष्टि हो चुकने के अनन्तर शेषांश से जिस की पुष्टि हो उसे मल कहते हैं। अपनी पुष्टि हो चुकने के पश्चात् उस धातु के लिए रस का शेष अंश अनुपयुक्त हो जाता है—उसके लिए वह निःसार होता है। उससे उत्पन्न होने के कारण ही मलों को मल कहते हैं। वे कचरे के समान अनुपयुक्त हैं, ऐसा नहीं समझना चाहिए। अब तो कचरे का भी खाद आदि बनाने में उपयोग होता है। वात, पित्त, कफ मल हैं। उत्पत्ति की दृष्टि से उन की मल संज्ञा है। शरीर का धारण (निर्माण) करने से तथा प्राकृत कर्मों के कारण इन्हें धातु नाम दिया गया है। दूषणात्मक स्वभाव के कारण ये दोष कहाते हैं।

ज्ञातव्य वस्तु का निरूपण करता हूँ। आचार्यों ने रक्तप्रदर का सामान्य कारण पित्त के कारण रक्त की दुष्टि अथवा रसवृद्धिवश उसके उपधातु आर्तव की वृद्धि बताया है। साथ ही यह भी कहा है कि इतर दोषों का भी इसमें अनुबन्ध होता है। मुख्य दोष-दूष्य का उपचार करते हुए अनुबद्ध दोष को भी लक्ष्य में रखना आवश्यक होने से उस की परीक्षा में उपयोगी लक्षण शास्त्रानुसार दिए जाते हैं। तथाहि--

दोषानुबद्ध रक्तप्रदर के लक्षण[1]

रूक्ष पदार्थों के अतियोग-प्रभृति कारणों से कुपित हुआ **वायु** पूर्वनिर्दिष्ट कारणों से कुपित हुए रक्त (आर्तव) का सहचारी हो रक्तप्रदर को उत्पन्न करता है तो उसमें रक्त फेनिल (फेनयुक्त, झागवाला), तनु (पतला), रूक्ष, श्याव या कृष्ण तथा अरुण, परुष (पैच्छिल्य रहित), किंशुक (पलाशपुष्प) के जल के सदृश स्वरूपवाला, शीघ्र स्रुत होने वाला, स्कन्दन-रहित (न जमनेवाला) तथा प्रवाह के समय वेदनायुक्त या वेदना रहित भी होता है। इसकी प्रवृत्ति के दिनों में कटि, वंक्षण, हृदय (छाती) पार्श्व, पृष्ठ तथा श्रोणि (कटि के नीचे का प्रदेश) में तीव्र वेदना होती है।

अम्ल, उष्ण, लवण, क्षार (आदि) के अतियोग से कुपित हुआ **पित्त** जब अनुबद्ध होता है तो रक्त प्रदर में अधोलिखित लक्षण विशेष होते हैं। प्रवृत्त हुआ रक्त नील, पीत, असित (श्वेत भिन्न, श्याव या कृष्ण), हरित,[2] अतिउष्ण, विस्र (दुर्गन्धियुक्त), स्कन्दन-रहित (न जमने वाला, कपड़ों पर से जिसके दाग शीघ्र निकल जाएँ ऐसा); पिपीलिकाओं तथा मक्षिकाओं को अप्रिय (ये प्राणी तिक्तता आदि के कारण जिस पर न बैठें ऐसा); जिसका स्राव अति प्रमाण में तथा बार-बार हो इस प्रकार का; एवं वेदनायुक्त होता है। इसके साथ दाह, राग (त्वचा, श्लेष्मकलाओं तथा योनि की रक्तता), तृष्णा, मोह (मूर्च्छा या तमोदर्शन), ज्वर और भ्रम होते हैं।

गुरु द्रव्यों का अतियोग इत्यादि कारणों से कुपित हुए **कफ** का अनुबन्ध यदि रक्तप्रदर में हो तो प्रवृत्त हुआ रक्त पिच्छिल (तन्तुमान्-जमने के कारण), पाण्डुवर्ण, गुरु, स्निग्ध, शीतल, घन (पतला तथा अति द्रव न हो ऐसा; जमने के कारण); अतएव देखने में मांसपेशी (मांस खण्डिका) के सदृश (ग्रन्थिभूत); अति-प्रमाण, चिरकाल स्रुत होनेवाला, गैरिक के जल के सदृश एवं मन्द वेदनायुक्त होता है। इस के साथ छर्दि, अरोचक (अरुचि), हृल्लास (लालास्राव), श्वास और कास ये विकार होते हैं।

स्त्री अत्यन्त रोगपीड़ित हो, उसका रक्तधातु अतिक्षीण हो गया हो, ऐसी स्थितिमें वह सर्व दोषोंके प्रकोपक कारणों का सेवन करे तो वायु अति प्रकुपित हो जाता है। कुपित हुआ यह वेगवान् वायु पित्त के प्रभाव से विशेष दुर्गन्धियुक्त, विदग्ध, पिच्छिल तथा पीतवर्ण कफ, वसा और मेद को रक्त के साथ मिश्रित कर अपत्यपथ से बाहर फेंकता है। परिणामतया जो स्राव होता है वह घृत और मज्जा के तुल्य किंवा काञ्जी के स्वरूपवाला तथा निरन्तर होता है। रुग्णा तृष्णा, दाह और ज्वर से पीड़ित, क्षीणरक्तवाली तथा दुर्बल होती है। अन्य दोषों के लक्षणों का भी इस में संनिपात होता है। यह असाध्य अतएव त्याज्य है। द्विदोष संसृष्ट रक्त-प्रदर में आरम्यक दोषों के लक्षण होते हैं।

दुर्गन्धयुक्त रक्त प्रवृत्ति

सुश्रुत ने अपत्यपथ से दुर्गन्धयुक्त रक्तप्रवृत्ति दो-तीन रोगों में शुक्र-शोणित शुद्धि शारीर (शारीरस्थान, द्वितीय अध्याय) में बतायी है। इसी प्रकरण में वातादिदुष्ट रक्त का भी उल्लेख उसने किया है। वह कहता है—

वातदूषित आर्तव वात के वर्ण (श्यावादि) तथा वेदना (तोद, भेदादि) वाला होता है; पित्तदूषित आर्तव पित्त के वर्ण (पीत-हरितादि) तथा वेदना (ओषचोषादि) वाला होता है, तथा कफ दूषित आर्तव कफ के वर्ण (गौर) तथा वेदना (गौरवादि) वाला होता है।

श्लेष्मा और वात के प्रकोप से ग्रन्थिभूत (जमी हुई पीसियों जैसा) आर्तव होता है।

कुणपगन्धि (शव-सदृश गन्धवाला) तथा अतिप्रमाण आर्तव रक्त के प्रकोप से होता है।

पूतिपूयसदृश (दुर्गन्धियुक्त पूय के समान स्वरूप का) आर्तव पित्त और श्लेष्मा से होता है।

१—देखिये च० चि० ३०।२१०–२२४; सु० सू० १४–२१

२—**डल्हन** ने कहा है कि रक्त यदि साम पित्त से दूषित हो तो उसका वर्ण श्याव (हरित-कृष्ण) होता है। वह यदि निराम पित्त दूषित हो तो पीतवर्ण होता है।

आर्तव का क्षय पित्त और वायु से होता है। इस की कुछ संप्राप्ति ऊपर बता आए हैं।

मूत्र और पुरीष के सदृश गन्धवाला आर्तव संनिपात (त्रिदोष का प्रकोप) से होता है। चरक के भी उल्लिखित वचन में दुर्गन्धयुक्त रक्त प्रवृत्ति का कारण त्रिदोष ही कहा है।

अपत्यपथ से दुर्गन्धयुक्त तथा अति प्रमाण में रक्त-प्रवृत्ति का कारण आधुनिकों ने घातक अर्बुद (फाईब्रोमा, कैन्सर) बताए हैं सो इन लक्षणोंवाला कुणपगन्धि आर्तव नवीनों का यह अर्बुद हो सकता है। आधुनिकोक्त अर्बुद कायचिकित्सा से असाध्य है। प्राचीनों ने भी इसकी गणना असाध्य में की है। दोनों रोगों में यह भी समान लक्षण है। विज्ञ वाचक विचार करें। आर्तव में मूत्र का गन्ध मूत्राशय में खुलनेवाली नाडी (नाडीव्रण) के कारण देखा जाता है। नाडी बहुधा प्रसव काल में संदंश (फॉरसेप्स) के प्रयोग से बनती है।

पुरीषगन्धि आर्तव का कारण पक्वाशय गामिनी नाडी हो सकती है। किंवा पक्वाशय में निर्दोष भाव से रहनेवाले बी० कोलाई नामक जीवाणुओं का संक्रमण अपत्यपथ में होने से होता है।

आर्तव के साथ पूय विशेषतया गॉनोरिया के जन्तुओं का संक्रमण होने से होता है। सुश्रुत ने योनिव्यापदों की चिकित्सा के प्रकरण में एक **पूय स्राविणी योनि** का निर्देश किया है। वह यही प्रतीत होती है।

शुक्रशोणित शुद्धि शारीर में निर्दिष्ट उपरिलिखित दुष्ट आर्तव के लिए आचार्य ने कहा है कि ऐसा आर्तव बीज-रहित (निष्फल, प्रजोत्पादन के सामर्थ्य से शून्य) होता है। इनमें कुण्यगन्धि, ग्रन्थिभूत, पूतिपूयसदृश, क्षीण तथा मूत्रपुरीषगन्धि आर्तव को उसने असाध्य तथा शेष को साध्य कहा है। यद्यपि चिकित्सा तो असाध्य दुष्टियों की भी आगे कही ही है।

पित्तावृत अपान

अपत्यपथ से रक्तप्रवृत्ति जिन रोगों में होती आचार्यों ने कही है, उन में चार का निर्देश अबतक हमने किया। अब अवसर है कि शेष विकार **पित्तावृत अपान** के लक्षणों का भी उल्लेख किया जाय।

अपाने पित्तसंयुक्ते दाहौष्ण्ये स्यादसृग्दरः ।।

सु. नि. १।३७

हरिद्रमूत्रवर्चस्त्वं तापश्च गुदमेढ्रयोः ।
लिङ्गं पित्तावृतेऽपाने रजसश्चातिवर्तनम् ।।

च. चि. २८।२३०

अर्थात् अपानवायु पित्तावृत (पित्ताभिभूत) हो तो रक्तप्रदर; योनि, गुदमार्ग और मूत्रमार्ग में दाह तथा उष्णता; मल तथा मूत्र का हारिद्रवर्ण (अतिपीत) होना ये चिह्न होते हैं।

लक्षण से स्पष्ट है कि इस विकार में रक्तप्रदर एक लक्षण है अर्थात् यहाँ वह परतन्त्र रोग (अप्रधान रोग) है। पित्त की व्याप्ति केवल गर्भयन्त्र में न होकर अपान के समस्त क्षेत्र में है तथा मुख्य रोग (पित्तकृत आवरण) स्त्रियों के अतिरिक्त पुरुषों में भी होता है। इन कारणों से इस रोग का रक्तयोनि, रक्तपित्त या रक्तप्रदर से पृथक् परिगणन आचार्यों ने किया है।

शेषांश]

वैद्यकीय सदुक्ति-समुच्चय

[५६३ पृष्ठ का

(i. e. Duryodhan), "Let these physicians be allowed to go after being worshipped and after being given money. Now I have no need for physicians. I have attained this enviable possession (viz. death on the battlefield) while in the observance of thc duties of warriors. So this is not befitting for me (to be treated), who am at the end of my life. I should be cremated together with these arrows, O kings. !"

On hearing these words, Duryodhan, your son, after paying respects to the deserving vaidyas, bade farewell to them.

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के समस्तीपुर स्थित बिक्री-केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती ।

विषम ज्वर

कविराज गौरीशंकर श्रीवास्तव

विषम ज्वरों के सम्बन्ध में इधर कुछ दिनों से बड़ा भ्रम फैला हुआ है। साधारण वैद्य ऐलोपैथी की चकाचौंध में वास्तविकता भूल जाते है और पाश्चात्य ओषधियों का आश्रय लेकर रोगी के प्राण संकट में डाल देते हैं। साधारण जनता भी विषम ज्वर को मलेरिया का पर्याय मानने लगी है।

ज्वर एक आदिम व्याधि है और उसकी विकृति जब नाना रूपों में मानव शरीर से व्यक्त होती है तो ऐसा लगता है कि यह एक अभिनव व्याधि है और इसका वर्णन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में मिलना सम्भव नहीं है। मलेरिया, टायफायड, इन्फ्लुएंजा आदि के विषय में ऐसा ही सर्व-साधारण का मत है। किन्तु यह रोग क्यों होते हैं और इनका शमन किस प्रकार करना चाहिए, इसका जितना सुन्दर विवेचन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में है, उतना अन्य किसी भी चिकित्सा-प्रणाली में नहीं है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि न तो हम उन तथ्यों को ग्रहण ही करना चाहते हैं और न उन ओषधियों पर विश्वास ही।

अभी हाल की ही बात है, मेरे एक मित्र झाँसी से आए थे। उनकी पुत्री टायफायड ज्वर से आक्रान्त हो गई और उसकी चिकित्सा पाश्चात्य ढंग से की गई। लगभग दो-ढाई सौ रुपये का औषध-व्यय आया; तब कहीं मुश्किल से जाकर २१ वें दिन ज्वर उतरा। बीमारी के दौरान में मैंने उन्हें तुलसी-काली मिर्च का योग बतलाया तो वे ठहाका मारकर हंस पड़े। आशय यह था कि क्लोरोमायसेटिन के सामने बिना पैसे वाली तुलसी और एक पैसे की काली मिर्च का मूल्य ही कितना-सा था। फिर वैज्ञानिक और अवैज्ञानिक होने का भूत भी सवार जो है। ऐसी अनेक बातें है। हम प्रस्तुत लेख में विषम ज्वर पर विचार करेंगे।

विद्वानों ने ज्वर के अनेक भेद-प्रभेद किए हैं, किन्तु व्यक्तिगत रूप से स्वतंत्र व्याधि के रूप में मैं ज्वर को दो प्रकार का ही मानता हूँ—

(१) **प्राकृत ज्वर**—जो ऋतु के अनुसार होते हैं, जैसे मलेरिया, इन्फ्लुएंजा आदि। इनमें वैकृत ज्वर भी शामिल है।

(२) **विषमज्वर**—इसके अन्तर्गत सन्तत, सतत, इकतरा, तिजारी, चौथिया आदि आते हैं। १२ दिन के पश्चात भी दोष शेष रहने पर जीर्ण ज्वर और विकृत अवस्था को सन्निपात कहते हैं।

सम्प्राप्ति

विषम ज्वर की सम्प्राप्ति दो प्रकार से होती है—

(क) स्वतंत्र व्याधि के रूप में।

(ख) ज्वर मुक्त होने पर भी जब शरीर में अल्प दोष शेष रह जाते हैं तो वे मिथ्या आहार-विहार के कारण रस, रक्तादि धातुओं में से किसी को भी दूषित करके विषम ज्वर को उत्पन्न कर देते हैं।

स्वतंत्र व्याधि के रूप में जो विषम ज्वर होता है, वह घातक है।

प्रभेद

विषम ज्वर के अनेक प्रभेद हैं; किन्तु मुख्य भेद निम्न हैं:—

(१) सन्तत ज्वर—यह ज्वर एक बार चढ़कर निश्चित अवधि के पश्चात उतरता है। यह अवधि वात, पित्त और कफ दोषों के भेद से सात, दस और बारह दिनों की होती है।

(२) सतत ज्वर—यह ज्वर एक अहोरात्रि में दो बार आता है।

(३) अन्येद्युष्क—यह ज्वर एक अहोरात्रि में एक ही बार आता है।

(४) तृतीयक—बीच में एक दिन को छोड़ कर जो ज्वर आता है वह तृतीयक ज्वर कहलाता है। यह ज्वर कफ-पित्त की उल्वणता में त्रिक से, वात-कफोल्वणता में पीठ से, वातपित्तोल्वणंता में सिर से प्रारम्भ होकर पश्चात् सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होता है।

(५) चातुर्थिक—बीच में दो दिन को छोड़कर जो ज्वर आता है, उसकी संज्ञा चातुर्थिक है।

कफोल्वण चातुर्थिक की पीड़ा जंघा-पिण्डलियों से, वातोल्वण की मस्तक से और पित्तोल्वण की शरीर के मध्यभाग से प्रारम्भ होकर तदनन्तर शेष शरीर में व्याप्त होती है।

(६) विपरीत विषम ज्वर—उक्त पाँचों प्रकार के ज्वरों के विपरीत जिसका समय हो—जैसे सतत विपर्यय वह ज्वर है जो एक दिन-रात में दो समय उतरकर शेष समय चढ़ा रहे। इसी प्रकार चातुर्थिक विपर्यय में ज्वर बीच वाले दो दिनों में आता है और प्रारम्भ तथा अन्त वाले दिनों में नहीं आता। यह ज्वर अस्थि तथा मज्जा में दोषों की स्थिति के कारण होता है।

(७) विषम ज्वर का एक भेद वह होता है जिसमें ऊपर के और नीचे के दो भागों में से आधा भाग शीतल और आधा गरम रहे। गरम भाग में पित्त का प्रकोप समझना चाहिये और शीतल में कफ का।

(८) प्रलेपक—(क) इसमें ज्वर का वेग मन्द रहता है। (ख) निरन्तर पसीने का स्राव होता है और (ग) शरीर में भारीपन और ठंड मालूम होती है। इस ज्वर में दोष सन्धियों तक पहुँच चुके होते हैं।

वैषम्य-विवेचन

विषम ज्वर में विषमता का कारण दोषों की भिन्न-भिन्न धातुओं में स्थिति है। जो दोष जितनी गहराई में पहुँचे हुए होते हैं, वे उतने ही विलम्ब के साथ अपना प्रत्यावर्त्तन करते हैं।

शरीर के बाहर ऊष्मा आने का एकमात्र स्थान आमाशय है; क्योंकि कोष्टाग्नि ही अपनी ऊष्मा को शरीर के बाहर फेंकने में समर्थ है, अन्य अवयव नहीं।

मिथ्याऽहार विहाराभ्यां दोषा आमाशयाश्रयाः।
वहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः॥
—माधव निदान।

अर्थात् अहितकर आहार-विहार करने से आमाशय में स्थित वात, पित्त, कफ—तीनों दोष कुपित होकर कोष्ठ की अग्नि की ऊष्मा को शरीर के बाहर निकालते हैं और रस को दूषित करके ज्वर को उत्पन्न करते हैं।

अतएव, ज्वर-उत्पत्ति का मूल स्रोत आमाशय ही है। वही ऊष्मा को शरीर के बाहर फेंकता है और विकृति को रसादि धातुओं तक पहुँचाता है।

धातुओं के सम्बन्ध में

रसोऽसृङ्मांसमेदोऽस्थि, मज्जाशुक्राणि धातवः।
जायन्तेऽन्योन्यतः सर्वे पाचितः पित्त तेजसा।
—शार्ङ्गधर संहिता

अर्थात् रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र यह सात धातुएं पित्त के तेज से पाचित किए गए क्रम से एक से एक उत्पन्न होती हैं।

(१) अतः दोष रस से शुक्र तक पहुँचते पहुँचते सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता जाता है; किन्तु ज्वर उत्पन्न करने के लिए उसे उसी क्रम से कोष्ट तक आकर ही अपनी ऊष्मा फेंकनी पड़ती है।

(२) एक अहोरात्रि में प्रत्येक दोष के कुपित होने का दो बार समय आता है—

वयो अहोरात्रि भुक्तानामन्तमध्यादिगाः क्रमात्
—वाग्भट्ट

इनका क्रम इस प्रकार समझिए—
दिन के अन्त में वायु; रात्रि के अन्त में वायु।
दिन के मध्य में पित्त; रात्रि के मध्य में पित्त।
दिन के आदि में कफ; रात्रि के आदि में कफ।

इस प्रकार प्रत्येक दोष का प्रकोप एक अहोरात्रि (२४ घण्टे) में दो बार होता है।

(३) (क) सन्तत ज्वर की विकृति रस तक ही सीमित रहती है।

(ख) सतत ज्वर में दोष रुधिरगत होता है। इस कारण एक अहोरात्रि में वह दो बार आता है, यानी एक-बार दोष के प्रकोप पर दिन में और उसी दोष के प्रकोप के समय रात में।

(ग) मांस में दोष स्थित होने पर अन्येद्युष्क ज्वर एक अहोरात्रि में एक ही बार आता है।

(घ) मेद में दोषों की स्थिति होने पर तृतीयक ज्वर एक दिन छोड़कर आता है।

(ङ) अस्थि और मज्जा में जब दोष प्रविष्ट हो जाते हैं तो चातुर्थिक ज्वर उत्पन्न होता है, जो दो दिन छोड़कर आता है।

इन ज्वरों में विषमता का कारण यह है कि जो दोष जिस धातु में स्थित होता है, उसे वापिस कोष्टगत रस तक पहुँचने में समय लगता है। अहोरात्रि में उसके प्रकोप

का जो समय निश्चित है, उसमें वह सूक्ष्म से स्थूल धातु की ओर आता है और तब आमाशय में पहुँचता है। उदाहरण के लिए चातुर्थिक ज्वर को लीजिए। यह दो दिन छोड़कर आने वाला ज्वर है। एक अहोरात्रि में दोष अस्थि से मेद और माँस तक पहुँचते है तथा दूसरे दिनरात में रुधिर और रस तक जाकर तीसरे दिन-रात के प्रकोप काल में ज्वर पैदा करते हैं।

इसी प्रकार अन्य ज्वरों का हाल जानना चाहिये।

सुश्रुत ने इसका विवेचन कफ के स्थानों से किया है। आमाशय, हृदय, कण्ठ, मस्तक और सन्धि यह कफ के स्थान हैं। मस्तिक में रहनेवाला दोष एक अहोरात्रि में मस्तक से कण्ठ तक, दूसरे में कण्ठ से हृदय तक और तीसरे में हृदय से आमाशय तक आकर ज्वर उत्पन्न करता है, जो चातुर्थिक कहलाता है।

कण्ठ में रहने वाला दोष एक दिनरात में कण्ठ से हृदय तक और दूसरे दिनरात में हृदय से आमाशय तक आकर ज्वर उत्पन्न करता है जो तृतीयक ज्वर कहलाता है।

इसी प्रकार अन्य ज्वरों के सम्बन्ध में जानना चाहिये।

वेग शान्त होने पर ज्वर उतर गया मालूम पड़ता है, परन्तु वह जाता नहीं; अपितु धातुओं में गुप्त रीति से स्थित हो जाता है।

(४) जिस मनुष्य को वात-कफ समान होकर प्रित्त क्षीण होता है उसे विशेष करके रात में ज्वर आता है। जिसके वात-पित्त समान हों और कफ क्षीण हो उसे दिन में ज्वर आता है।

चिकित्सा निर्देश

विषम ज्वर की चिकित्सा में निम्न ज्ञातव्य बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है :—

(१) सभी विषमज्वर सन्निपात (तीनों दोषों की विकृति) से होते हैं। इसलिए जो भी दोष उल्वण हो उसकी चिकित्सा पहले करें।

(२) वमन और विरेचन से शोधन करें।

(४) उष्णोदक और स्निग्ध अन्न खाने को दीजिए।

(५) प्रलेपक ज्वर में सब क्रियाएं कफनाशक करें।

(६) जब ज्वर रस-गत होता है, तब रोगी को वमन और लंघन कराना हितकर है।

(७) जब ज्वर रुधिर में पहुँच जाए (रुधिर का थूकना, दाह, बेहोशी, प्रलाप, वमन, तृषा) तब जलादि से सेचन, संशमन, लेप और रक्त मोक्षण कराएं।

(८) माँसगत ज्वर होने पर (पिण्डलियों में हड़-कूटन, तृषा, मलमूत्र का अधिक उतरना, शरीर में गर्मी, दाह, हाथ-पाँव का इधर-उधर फेंकना, ग्लानि आदि) तीक्ष्ण ओषधियों से विरेचन कराइए।

(९) मेदगत ज्वर में (अधिक पसीना आना, अधिक तृषा, मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, शरीर में दुर्गन्ध, शक्ति का ह्रास, अरुचि आदि) इसमें मेदनाशक चिकित्सा करनी चाहिए।

(१०) अस्थिगत ज्वर में (अस्थियों में भेदने की-सी पीड़ा, कण्ठ में दाह, पेट का बोलना, श्वास, दस्त, वमन, अंगों का इधर-उधर फेंकना आदि) वातनाशक चिकित्सा उपादेय है। अभ्यंग और मर्दन भी हितकर है।

(११) मज्जागत ज्वर में हिचकी खाँसी, शीत, वमन, भीतरी दाह, महाश्वास, मर्म स्थानों में छेदने की-सी पीड़ा आदि लक्षण होते हैं। यह असाध्य है।

(१२) वीर्य्यगत ज्वर में वीर्य्य शरीर से बहने लगता है। इसमें आदमी बचता नहीं है।

(१३) सतत, इकतरा, तिजारी, चौथिया आदि में कम्प के साथ ज्वर आता है।

औषध चिकित्सा

(१) **सामान्य ज्वर में** निम्न क्वाथों में से कोई एक देना चाहिए :—

(क) पटोल, नागरमोथा, पाढ़, कुटकी।

(ख) नीम, पटोल पत्र, त्रिफला (आमला, हर्र, बहेड़ा) दाख, नागरमोथा, इन्द्रयव।

(ग) चिरायता, गिलोय, लाल चन्दन, सोंठ।

(घ) गिलोय, आमला, नागरमोथा।

(२) तुलसी के पत्तों का स्वरस; काली मिर्च का चूर्ण १ रत्ती, संजीवनी बटिका १ गोली मधु मिलाकर।

सन्तत ज्वर में—

(१) भस्मेश्वर रस—(वत्सनाभ विष २ भाग, वराटिका भस्म ५ भाग, काली मिर्चें ५ नग, सोंठ ५ भाग, अदरख के रस में खरल करके रख छोड़िए, मात्रा २ से ३ रत्ती, मधु के साथ।

(शेषांश ५८२ पृष्ठ पर)

निरुत्थ धातुभस्म

कविराज अश्विनीकुमार चौधरी, काव्यतीर्थ, रसायनाचार्य

धातु—'शरीर धारणात धातव उच्यन्ते' अर्थात जो इस पंचभौतिक शरीर को धारण या पोषण करता है, उसे ही धातु के नाम से अभिहित करते हैं। इसके लिए हम वायु, पित्त, कफ को भी धातु कह सकते हैं और रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र प्रभृति सप्तधातुओं को भी धातु-संज्ञा देते हैं। उक्त धातु अविकृत अवस्था में रहने पर शरीर की रक्षा करते हैं।

तन्त्रशास्त्र में हमलोग उस खनिज मौलिक पदार्थ को धातु कहते हैं, जो घातसह होता तथा पीटने पर चपटा हो जाता है। इस लेख में उसी धातु का प्रतिपादन किया गया है, जो घातसह एवं मौलिक पदार्थ है। किसी उद्भिद् को आग में जलाकर भस्म बना देने के बाद जिस प्रकार शत चेष्टाओं के बावजद उस भष्म को पुनः उद्भिद् में परिणत नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार धातु को नाना द्रव्यों के साथ मर्दन और अग्निदग्ध करने के बाद जब यह भष्म पदार्थ मूलधातु के रूप में परिणत नहीं किया जा सकता, तब हम कहते हैं कि यह निरुत्थ भस्म बन गयी है। यही भष्म वस्तुतः मानव रोगों को दूर करने में सक्षम होती है। इस प्रकार निरुत्थ धातु भस्म द्वारा ओषधि प्रस्तुत कर व्यवहार करने से निश्चय ही औषध की पूर्ण कार्यकारी क्षमता प्राप्त होती है।

वृक्ष या लतागुल्म को जलाने पर वह शुभ्रवर्ण के भष्म में रूपान्तरित होता है और इस भस्म को पानी में घोला जा सकता है, किन्तु कितनी चेष्टा करने पर भी उसको मूलवृक्ष के रूप में कोई रूपान्तरित नहीं कर सकता, फिर भी इस वृक्ष का उत्पत्ति-कारण तारतम्यभेद से पंचभौतिक पदार्थ ही इस भष्म के मस्य में भी दृष्टिगोचर होता है। ठीक इसी प्रकार स्वर्णादि धातुओं को इस तरह अन्य द्रव्यों के सहयोग से मर्दन कर अग्नि की सहायता से दग्ध करना होगा, जिससे यह पुटित पदार्थ शत चेष्टाओं के बावजूद पुनः मूल धातु में परिणत नहीं हो सके। यही इस धातु की प्रकृत निरुत्थ भस्म होगी। यह असीम शक्ति सम्पन्न भस्म है। यह रोगी के रोग को दूर करने में इंजेक्शन या विषादि घटित औषधियों के समान शीघ्र कार्यकारी होती है।

शायद कुछ वैज्ञानिक ऐसा कहना चाहेंगे कि यह निरुत्थ भस्म वस्तुतः आकाश कुसुम के समान असत्य है, क्योंकि परमाणु का ध्वंस नहीं होता है। परमाणु नित्य पदार्थ है। इसको जिस तरह भी भस्म में परिणत किया जाय, यह भस्म पुनः मूल धातु के रूप में अवश्य ही परिणत होगी।' मेरे ख्याल से उन वैज्ञानिकों का यह विचार पाश्चात्य मतानुयायी है। प्राच्य मत से एकमात्र ब्रह्म ही नित्य वस्तु है, वही मूल प्रकृति है। जागतिक निखिल पदार्थ ही इस ब्रह्म से उत्पन्न है, इसी कारण पंचतन्मात्र, पंच महाभूत, दश इन्द्रिय, मनः बुद्धि अहंकार और आत्मा इस पराप्रकृति का विशेष विशेष अंश, एकमात्र महाप्रलय में निर्गुण ब्रह्म में वह ध्वंस होता है अथवा किसी किसी के मतानुसार लय हो जाता है बीज रूप में। फिर हम किस प्रकार स्वीकार करें कि खनिज या धातु का ध्वंस नहीं होता।

इस नित्य-अनित्य के बारे में विचार न कर हम अन्य रूप से इस पर विचार करें। धातु-परमाणुओं का ध्वंस न होकर अन्य पदार्थों के मिश्रण से ऐसी एक अवस्था में वे परिणत होते है कि इस अवस्था में मानव के रस-रक्त-लसीका के साथ आसानी से मिलकर रुग्न मानव के रोग को दूर कर देते हैं; स्वस्थ शरीर को सुदृढ़ बनाते हैं, जिससे अकाल बार्द्धक्य आदि का आक्रमण नहीं हो पाता।

धातुओं का निरुत्थ भस्म बनाना इसी कारण आवश्यक है। धातु की उत्तम भस्म नहीं होने पर, मुख से पाकाशय तक विस्तृत नली में यह गृहीत नहीं होती और मल के साथ बाहर निकल जाती है। जल, मधु, चीनी, गुड़, घृत, तैल जिस प्रकार योगवाही गुणयुक्त द्रव्य हैं अर्थात वनौषधि के गुण को जिस आसानी से ग्रहण कर मानव शरीरस्थ रस रक्तादि में मिश्रित हो जाते हैं, उसी प्रकार बहुसंस्कारों द्वारा संस्कृत, शोधित, मूर्छित पारद या भष्म पारद एवं अति सूक्ष्म रूप में भस्मीभूत धातुएं अतिशीघ्र मानव शरीर के रस रक्तादि में मिश्रित होकर विकृत वायु, पित्त, कफ को स्वस्थ बनाती है। खनिज पदार्थों में से एकमात्र धातु का ही निरुत्थ भस्म बनाने की रसशास्त्राचार्यों ने सलाह दी है; रस, उपरस, उपधातु, रत्न, उपरत्न का नहीं। इनका अच्छी तरह शोधन, मूर्छन, मारण या भस्मीकरण आदि संस्कार करने के बाद ही औषधार्थ उपयोग करने का निर्देश दिया है। अनेक प्रकार के संस्कारों द्वारा संस्कृत उक्त पदार्थ जिह्वास्थ रस, जल अथवा मधु की सहायता से शरीरस्थ रस रक्तादि धातुओं के साथ शीघ्र मिश्रित होकर कार्यकारी गुणों का प्रदर्शन करते हैं। मकरध्वज, चन्द्रोदय, रस सिन्दूर, मल्ल सिन्दूर, ताम्र सिन्दूर, रौप्य सिन्दूर, स्वर्ण सिन्दूर, रसपर्पटी, कज्जली आदि सर्वजनविदित हैं। इनका प्रधान उपादान है विशुद्ध पारद की मूर्छित अवस्था में उत्पन्न यौगिक। रोग को दूर करने में यह भस्म की अपेक्षा नहीं करता, साथ ही अतिशीघ्र चमत्कारपूर्ण फल प्रदान करता है।

विभिन्न विज्ञानों का संक्षिप्त परिचय

श्री गौरीशंकर गुप्त

आयुर्वेद-शास्त्र के ज्ञान के लिये ज्ञाता को बहुज्ञ होना आवश्यक है। उदाहरणार्थ--निदान, चिकित्सा, परिचर्या, तथा औषध-प्रयोग--इन चार विषयों में ही कितनी शाखाएँ हैं, जिनके ज्ञान के बिना आयुर्वेद में पाण्डित्य तो दूर की बात है, प्रवेश भी असम्भव-सा है। सर्वशास्त्र-ज्ञानसम्पन्न होकर इस शास्त्र का अध्ययन तो इस काल में शक्य नहीं; किन्तु इस विज्ञान से सम्बन्धित मुख्य-मुख्य विज्ञानों का साधारण ज्ञान और परिचय होना तो वैद्यों के लिये नितान्त आवश्यक है और उक्त विषयों का परिचय प्राप्त कर लेना सम्भव भी है। अर्वाचीन प्रणाली से शिक्षा प्राप्त वैद्यगण उपयुक्त विषयों से परिचित होते हैं; किन्तु प्राचीन प्रणाली के अनुसार शिक्षा प्राप्त वैद्य-बन्धु, आयुर्वेद से सम्बन्धित इतर विज्ञानों की ओर से उदासीन ही रहते हैं। इस प्रकार की उदासीनता के कारण आज आयुर्वेद की कैसी गति हो रही है, इसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है।

इस निबन्ध में पदार्थ, रसायन, ज्योतिष, भूगर्भ, जीव, वनस्पति, प्राणी और शरीर-विज्ञान जैसे उपयोगी आठ विषयों के सिद्धान्तों और उनका संक्षिप्त परिचय दिया गया है। आयुर्वेद विज्ञान के सर्वांगीण अध्ययन के लिए इनसे परिचित होना आवश्यक है, क्योंकि ये आयुर्वेद के ही अंग है।

पदार्थ-विज्ञान

जिस विद्या के द्वारा भौतिक पदार्थों के गुण-धर्म, स्वरूप, उत्पत्ति, क्रिया तथा उनके प्रभावों का ज्ञान हो, उसे पदार्थ-विज्ञान कहते हैं।

पदार्थ और शक्ति

जगत में जितने पदार्थ हैं, उनका परिचय हमें इन्द्रियों से होता है। अधिकांश पदार्थ नेत्र-गोचर हैं; तथापि कर्णेन्द्रिय के सहारे श्रवण करके भी कुछेक वस्तुओं का हम ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। आवाज सुनकर ही हम समझ जाते हैं कि यह उसकी आवाज आ रही है। इसके अतिरिक्त नाक, जिह्वा तथा स्पर्शेन्द्रिय के द्वारा भी हम अनेक वस्तुओं का परिचय प्राप्त कर लेते हैं। पुष्प का गन्ध से, शर्करा का स्वाद से तथा अदृश्य वायु का स्पर्श से ही हमें परिचय प्राप्त होता है। पदार्थ के साथ ही शक्ति सम्बन्धित है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं हो सकता। सभी इन्द्रिय-गोचर वस्तु पदार्थ नहीं कहे जा सकते। हम अन्धकार से पूर्ण स्थान में यदि दीप प्रज्वलित कर दें तो वहाँ प्रकाश उत्पन्न हो जाता है और वहाँ की सभी वस्तुएं प्रत्यक्ष दीखने लगती हैं। तो क्या यह प्रकाश भी पदार्थ है? नहीं, हम इसे शक्ति के नाम से पुकारेंगे। इसी भाँति हमें सूर्य की किरणों के स्पर्श से उष्णता का अनुभव होता है; लेकिन यह भी पदार्थ नहीं है, इसे भी हम शक्ति ही कहेंगे। उपर्युक्त उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि इन्द्रिय-गोचर वस्तु पदार्थ है या शक्ति है। जल, वृक्ष, पर्वत इत्यादि पदार्थ हैं। पदार्थ पर किसी प्रकार के प्रभाव के कारण हमें जिसका ज्ञान हो, वह शक्ति है। शब्द, ताप, प्रकाश, चुम्बक तथा विद्युत इत्यादि शक्ति है। पदार्थ और शक्ति अविभाज्य हैं। हाँ, पदार्थों में गुरुत्व होता है और शक्ति गुरुत्व-रहित होती है--यह दोनों में एक विशेष भेद है। अतः यह सिद्ध है कि जो इन्द्रिय-गोचर हो और साथ-साथ उसमें गुरुत्व भी हो, वही पदार्थ है; इसके विपरीत शक्ति कहलायेगी।

पदार्थ की तीन अवस्थाएँ

(१) घनरूप स्वर्ण, काष्ठ, हिम इत्यादि घन-रूप पदार्थ हैं। (२) द्रवरूप जल, स्नेह तथा पारदादि द्रव-रूप पदार्थ हैं। (३) वाष्प-रूप वायु तथा वाष्प इत्यादि वाष्पीय पदार्थ हैं। द्रव और वाष्प--दोनों तरल संज्ञक पदार्थ कहलाते हैं।

रसायन-विज्ञान

जिस विद्या के द्वारा यह ज्ञान हो कि पदार्थों में कौन-कौन से तत्त्व होते हैं और उनके परमाणुओं में परिवर्तन होने पर पदार्थों के रूप, रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव और शक्ति इत्यादि का रूपान्तर होकर कौन से नवीन पदार्थ की उत्पत्ति हो जाती है, उसे रसायन-विज्ञान कहते

हैं। एक पदार्थ में यदि दूसरा पदार्थ मिला दिया जाता है तो फिर दोनों को पृथक-पृथक करना कठिन हो जाता है। इस प्रकार के मिश्रण को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक—उस प्रकार के पदार्थ हैं, जिन्हें परस्पर मिश्रित कर देने पर दोनों के गुण-धर्मों में किञ्चिन्मात्र भी परिवर्तन नहीं होता और दूसरे वे पदार्थ हैं, जिन्हें परस्पर मिश्रित कर देने पर एक नये पदार्थ का रूप ग्रहण कर लेते हैं और जिनके गुण-धर्म और स्वरूप का भी परिवर्तन हो जाता है। प्रथम प्रकार के मिश्रण को 'साधारण मिश्रण' और द्वितीय प्रकार के मिश्रण को 'रासायनिक मिश्रण' कह सकते हैं।

साधारण मिश्रण

सिकता और लोह-चूर्ण दो भिन्न पदार्थ हैं। इन्हें परस्पर मिश्रित करने पर 'साधारण मिश्रण' संज्ञक पदार्थ कहलाएँगे; क्योंकि इन्हें अल्पायास से ही पुनः पृथक कर पूर्व रूप में लाया जा सकता है। इस मिश्रण में सिकता और लोह-चूर्ण के गुण-धर्म में किसी भाँति का परिवर्तन नहीं हो सकता है। सिकता में मिले लोह-चूर्ण को चुम्बकीय शक्ति के द्वारा पृथक कर दोनों वस्तुओं को प्रकृत अवस्था में लाया जा सकता है। इसी भाँति गन्धक और लोह-चूर्ण के मिश्रण को भी चुम्बकीय शक्ति से विभाजित किया जा सकता है।

रासायनिक मिश्रण

यदि उपर्युक्त गन्धक में लोह-चूर्ण मिश्रित कर अग्नि का ताप दिया जाय तो गन्धक और लोह-चूर्ण का रासायनिक संयोग हो जायगा। इस संयोग के पश्चात् गन्धक और लोह-चूर्ण का अपना गुण-धर्म न रहकर एक नवीन पदार्थ की उत्पत्ति हो जायगी, अर्थात् दोनों मिलकर एक नवीन पदार्थ के रूप में बदल जायँगे। अब परीक्षा करने पर इनमें स्वतंत्र रूप से प्रकृत गन्धक या लोह-चूर्ण के गुण-धर्म का अस्तित्व नहीं मिल सकता। अब पुनः साधारण मिश्रण को पृथक करने की चुम्बकीय विधि को काम में लाया जाय तो लोह-चूर्ण चुम्बकीय शक्ति से पृथक न हो सकेगा; अतः गन्धक और लोह-चूर्ण के मिश्रण से जो पदार्थ बना, वह साधारण मिश्रण न होकर रासायनिक मिश्रण कहलाएगा। ऐसे मिश्रण से दोनों को पुनः प्रकृत रूप में प्राप्त करना दुष्कर कार्य होगा।

ज्योतिष-विज्ञान

ज्योतिष कहते हैं नक्षत्र को। नक्षत्र, ग्रह और आकाश इत्यादि से सम्बन्धित विद्या को ज्योतिष-विज्ञान कहते हैं। इसके गणित और फलित दो भाग है।

रात्रि के समय जब आकाश निर्मल रहता है. उस समय नीले रंग का कल्पित तम्बू की भाँति दृष्टिगोचर होता है। इसे आकाशमण्डल कहते हैं। इसमें दीप की भाँति अनेक वस्तुएँ ज्योतिमान् होती रहती हैं। इन्हें 'तारागण' के नाम से हमलोग पुकारते हैं। देखने से ऐसा मालूम पड़ता है कि ये तारे आकाश में जड़े हुए हैं; परन्तु ऐसी बात नहीं है, क्योंकि यह आकाश ही कोई स्थिर वस्तु नहीं है। यह शून्य स्थान है,। हमलोगों का जहाँ वास है, वहाँ कुछ दूर तक तो वायु है; परन्तु बहुत दूर आगे जाकर वह वायु भी समाप्त हो जाती है। उसके ऊपर कई लाख मील तक केवल शून्य-ही-शून्य है। उस शून्य स्थान का नीला रंग भी उसका अपना प्राकृतिक रंग नहीं है। यह रंग प्रकाश के प्रभाव से उत्पन्न हुआ होता है। इस भाँति जब आकाश बिना अस्तित्व का स्थान मात्र है, तब वहाँ 'तारागण' किस प्रकार टिक कर रह सकते हैं। वस्तुतः ये 'तारागण' एक दूसरे से बहुत दूर स्थित हैं। हमलोगों के पास से ये बहुत ही दूर स्थित हैं; अतः सभी तारे एक ही सतह पर दृष्टिगत होते हैं। इन तारों को ध्यानपूर्वक यदि देखा जाय तो इनमें से कुछ तो सदा एक ही भाँति चमकते हुए दृष्टिगोचर होंगे और कुछ चकमक करते मालूम होंगे। जिनकी ज्योति स्थिर दृष्टिगत होती है, उन्हें 'ग्रह' नाम से पुकारा जाता है और शेष तारे कहलाते हैं।

आकाश में एक श्वेत पथ आकाशमण्डल के इस ओर से उस ओर तक प्रसारित मालूम होता है। भलीभाँति ध्यान से देखने पर मालूम होता है कि इसके मध्य अनेक तारे विद्यमान हैं। ये तारे ऊँचाई में एक-दूसरे के ऊपर स्थित हैं, अतः वहाँ एक दर्शनीय प्रभा विद्यमान् रहा करती है। इसे 'आकाशगंगा' कहते हैं।

यदि अणुवीक्षण यन्त्र के सहारे आकाश का निरीक्षण किया जाय तो थोड़े-थोड़े स्थान पर छोटे-छोटे बादल के टुकड़े की भाँति छिटके हुए एक पदार्थ मालूम पड़ेंगे। ये बादल नहीं हैं, ये भी तारों के समूह हैं। इन्हें 'नीहारिका' कहते हैं।

जिस भाँति पृथिवी पर किसी ग्राम या नगर के परिचय के निमित्त भिन्न-भिन्न नामकरण किये गये हैं, उसी प्रकार ज्योतिर्विदों ने आकाश में 'तारागण' के परिचय के लिए आकाशमण्डल को भिन्न-भिन्न भागों में बाँटा है, जिनमें प्रत्येक भाग को राशि कहते हैं। इन भागों में स्थित कुछ बड़े तारों को लेकर उनकी आकृति के अनुसार किसी स्वतंत्र जन्तु की कल्पना की गई है और उस भाग को उक्त जन्तु के नाम से पुकारा जाता है। इन राशियों के नाम हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन। प्रत्येक राशि में सूर्य एक मास तक रहता है; इसलिए बारह मास का वर्ष होता है। चन्द्रमा का भ्रमण-पथ इन्हीं राशियों के अन्तर्गत है; किन्तु इसका भ्रमण-काल सत्ताइस दिनों का है। इस कारण राशिमण्डल को सत्ताइस भागों में विभक्त किया गया है। इनमें प्रत्येक को 'नक्षत्र' कहते हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं:—अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वा भाद्रपद, उत्तरा भाद्रपद और रेवती।

राशिचक्र के बाहर के आकाश को भी कई भागों में विभक्त किया गया है। आकाश-स्थित बड़े-बड़े तारों को लेकर ये भाग किए गए हैं और इन्हें 'नक्षत्रमण्डल' कहते हैं।

ज्योतिर्विज्ञान के मुख्य विषय

ज्योतिष-विज्ञान के विषय का क्षेत्र विस्तृत है। इस लघु निबन्ध में तद्विषयक सभी सूत्र-सिद्धान्त और परिचय का समावेश अशक्य है; अतः यहाँ पर वर्ण्य-विषयक तालिका का ही उल्लेख किया जाता है—

नक्षत्रों का परिचय, नक्षत्रों के नाम, राशिमण्डल के नाम, ध्रुवतारा, सप्तर्षि मण्डल, लघु सप्तर्षि मण्डल, काशोपी, स्वाती, प्रजापति, राजहंस, सिंहादि राशियाँ, ओरायन, व्याध, सरमा, मेषादि राशियाँ, सूर्य, उसका आयतन और पृथिवी की दूरी, सूर्य का आवरण, सूर्य का परिभ्रमण, ग्रह और उनके आपेक्षिक स्थान, बुध, शुक्र, पृथिवी, मंगल, ग्रहपुंज, बृहस्पति, शनि, वारुणी, वरुण, प्लूटो, सौर, वत्सर और ऋतुपरिवर्तन, सूर्योदय और सूर्यास्त, चन्द्रमा और उसकी कलाएँ, चन्द्रवत्सर, नक्षत्रों के बीच में चन्द्रभ्रमण, हिन्दू वत्सर, यवन वत्सर, ग्रह, धूमकेतु और उल्का।

भूगर्भ-विज्ञान

जिस विद्या के द्वारा पृथिवी के ऊर्ध्व और अधः भाग का ज्ञान प्राप्त हो और उसका निर्माण किन-किन तत्त्वों से हुआ है तथा उसके वर्तमान स्वरूप का क्या कारण है इत्यादि बातें जिससे जानी जा सकें, उसे 'भूगर्भ-विज्ञान' कहते हैं।

पृथिवी

जिस पृथिवी पर हम लोगों का वास है, उस पर अनेक नदियाँ, पर्वतों की श्रेणी तथा समुद्र हैं। इसका बहुत-सा अंश सुरम्य वन से घिरा हुआ है। मनुष्यों के प्रयास से स्थान-स्थान पर ग्राम और नगर बसे हुए हैं। अनादि-काल से पृथिवी की यही दशा रही है और भविष्य में भी इसी प्रकार की दशा रहेगी, यह बात नहीं है। पृथिवी तथा अन्य ग्रहों की उत्पत्ति सूर्य से हुई, ऐसा खगोल और भूगर्भ-विज्ञान के ज्ञाताओं का मत है। अनुमानतः दो करोड़ वर्ष पूर्व एक बहुत ही बड़ा नक्षत्र सूर्य के निकट चला गया। उसके आकर्षण से सूर्य का कुछ वाष्पीय अंश पृथक हो गया। पर यह नक्षत्र इतनी शीघ्रता से दूर चला गया कि सूर्य का टूटा हुआ वह अंश उसके निकट तक पहुँच न सका; बल्कि सूर्य के चारों ओर ही घूमने लगा। जैसा कि ऊपर कहा गया है, यह अंश भी वाष्पीय रूप में ही था; अतः घूमते-घूमते यह गोलाकार हो गया। इस ढंग के बहुत से अंश सूर्य से पृथक होते गये, जो समय-समय पर ग्रहों के रूप में आ गये। यह पृथिवी भी उन्हीं ग्रहों में से एक है।

सूर्य से अलग होने के बाद बहुत दिनों तक पृथिवी वाष्पीय रूप में घूमती रही और धीरे-धीरे शीतल होती गई। वाष्पीय पदार्थ शीतल होने पर द्रव-रूप में बदल जाते हैं; अतः यह पृथिवी भी द्रव-रूप में बदल गई, परन्तु द्रव-रूप होने के पहले ही सूर्य के आकर्षण के कारण इसका कुछ अंश इससे अलग होकर इसकी परिक्रमा करने लगा। यही चन्द्रमा हुआ।

द्रव-रूप धारण करने के पश्चात् भी पृथिवी शीतल होती गई और कालान्तर में यह घन-ठोस होती गई। तप्त वस्तु शीतल होने पर संकुचित होती है; अतः

पृथिवी का जो अंश पहले शीतल हुआ, वह संकुचि होकर कहीं-कहीं ऊँचा-नीचा हो गया। ऊँचे अंश पर्वत के रूप में हो गये। पृथिवी में जो वाष्प विद्यमान् था, उससे वायुमण्डल का निर्माण हुआ। इनमें उज्जन और अम्लजन भी थे, जिनके संयोग से जल-वाष्प की रचना हुई। समय के प्रभाव से जल-वाष्प घनीभूत हो गए और पृथिवी के उन हिस्सों को जल से पूर्ण कर दिया, जो पृथिवी के संकुचित होते समय गड्ढ़े के रूप में हो गये थे। इस प्रकार समुद्र की रचना हुई।

पृथिवी के अनेक स्थानों पर परीक्षा करने के पश्चात् विद्वानों ने यह निश्चय किया है कि पृथिवी का ऊपरी भाग शिला-निर्मित है। विभिन्न प्रकार की जो मिट्टी देखने में आती है, वह शिला का ही रूपान्तर है। पृथिवी का भीतरी अंश अब भी अत्यन्त उष्ण है। अनुमान किया जाता है कि शीतल हुए भाग की गहराई किसी स्थान पर चालीस मील से अधिक नहीं है। यह पृथिवी का पहला आवरण है, जिसे भूपटल कहा जाता है।

विशेष

भूगर्भ-शास्त्र एक स्वतंत्र विषय है। इसका क्षेत्र भी ज्योतिष शास्त्र की भाँति बहुत विस्तृत है। इस निबन्ध में उन सभी विषयों का वर्णन सम्भव नहीं है; अतः भूगर्भ विज्ञान के साधारण ज्ञान के निमित्त जानने योग्य विषयों की तालिका नीचे दी जाती है। पाठक इस तालिका का अवलोकन कर समझेंगे कि सचमुच यह विज्ञान कितना बड़ा और महत्त्वपूर्ण है। विशेष जानकारी के लिए भूगर्भ-शास्त्र संबंधी स्वतंत्र ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये। इसके निम्नलिखित वर्ण्य विषय हैं:—

शिला और उनके भेद, आग्नेय शिलाएँ, जल निर्मित शिलाएँ, तहदार शिलाएँ, पातालिक शिलाएँ, पृथिवी की भीतरी अवस्था, गुरुमण्डल, केन्द्र-मण्डल, ज्वालामुखी पर्वत और भूकम्प, ज्वालामुखी पर्वतों की उत्पत्ति, ज्वालामुखी पर्वतों के भेद, ज्वालामुखी पर्वतों का संसार में विस्तार, भूकम्प, भूकम्प की उत्पत्ति, भूकम्प से लाभ, कोयला और खनिज तेल, कोयले की उत्पत्ति, पेट्रोल, खनिज तेल की उत्पत्ति, मिट्टी और उसका वनस्पतियों पर प्रभाव, चट्टानों को मिट्टी के रूप में परिवर्तित करने के प्राकृतिक साधन, विभिन्न प्रकार की टूटी हुई चट्टानों के सम्मिश्रण के साधन, मिट्टी और उसके भेद, कादी मिट्टी, बलुआ मिट्टी, चिकनी मिट्टी, चूना मिट्टी, खादी मिट्टी, मिट्टी तथा वनस्पतियों का पारस्परिक सम्बन्ध।

जीव-विज्ञान

जगत में जितने भी पदार्थ हैं, उन्हें दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। एक सजीव और दूसरा निर्जीव। जिनमें जीव है, वे सजीव और जिनमें प्राण नहीं है, वे निर्जीव की श्रेणी में आयंगे। मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग तथा वृक्ष इत्यादि की सजीव श्रेणी में गणना होगी और पत्थर, लोह, मिट्टी तथा जल इत्यादि की गणना निर्जीव श्रेणी में की जायेगी।

विज्ञान का एक वह अंश, जिसमें हम सजीव पदार्थों के गुण-धर्म, नियम, उत्पत्ति और जाति का ज्ञान प्राप्त, करना चाहते हैं, 'जीव-विज्ञान' कहलाता है। जीव-विज्ञान दो श्रेणियों में विभक्त है। जीव-विज्ञान का वह भाग, जो वनस्पतियों से सम्बन्धित है, वनस्पति विज्ञान कहलाता है और इसके अतिरिक्त जिस भाग का प्राणियों से सम्बन्ध है, प्राणी-विज्ञान कहा जाता है।

जीव-विज्ञान के पारिभाषिक अर्थ पर ऊहापोह करने पर सर्वप्रथम यह प्रश्न उठता है कि हम किसे सजीव और किसे निर्जीव कहें? सजीव और निर्जीव की व्याख्या या परिभाषा करना सरल नहीं; बल्कि यह एक उलझी हुई समस्या है, जिसकी स्वच्छ परिभाषा करने में आधुनिक वैज्ञानिक असमर्थ से हैं। वे सजीव और निर्जीव के गुण-धर्मों का मनन-अध्ययन करके ही तुष्टि लाभ करते हैं। फिर भी पदार्थों के कुछ स्पष्ट गुण-धर्म या लक्षण हैं, जिन्हें जान लेने से दोनों के भेद स्पष्ट हो जाते हैं।

सजीव के कुछ लक्षण

(१) वृद्धि : शर्कराकण को यदि शर्करा के ही घोल में लटका दिया जाय तो वह कण धीरे-धीरे बढ़ जाता है; परन्तु उस बढ़े हुए कण को यदि पुनः लवण-घोल में लटका दिया जाय तो उसकी वृद्धि रुक जाती है। इससे यह ज्ञात होता है कि शर्कराकण, जो वस्तुतः एक निर्जीव पदार्थ है, अपने सजातीय पदार्थ के साथ ही विकसित हो सकता है। यह लक्षण निर्जीव पदार्थों में पाया जाता है। सजीव पदार्थों में इस प्रकार के लक्षण नहीं मिलते। निम्न-से-निम्न जीव भी अपने निकट की वस्तुओं से लाभान्वित होते देखे जाते हैं। जीव भोज्य पदार्थों को ग्रहण करते हैं और ग्रहण किए हुए भोज्य पदार्थों से उनके शरीर

के भीतर रासायनिक क्रिया के कारण उन वस्तुओं की उत्पत्ति होती है, जिनसे उनके सर्वांग शरीर का पोषण होता है और उनकी वृद्धि होती है।

(२) सार्वकालिक परिवर्तन : सजीव पदार्थों में सर्वदा श्वासोच्छ्वास की क्रिया होती रहती है तथा वे आहार ग्रहण करते हैं। यदि उक्त क्रियाएँ सर्वदा न होती रहें तो उनका जीवित रहना सर्वथा असम्भव है। श्वास-वायु तथा भक्ष्य पदार्थ जब शरीर के भीतर जाते हैं तब वहाँ रासायनिक क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। फिर वे विश्लेषित् होने के पश्चात् साधारण पदार्थों में बदल जाते हैं। इन्हीं पदार्थों से जीव के शरीर का पोषण तथा विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। इस क्रिया के साथ-ही-साथ शरीर में दूषित पदार्थों का भी निर्माण होता है। आहार के वे अंश, जिन्हें जीव प्राण-तत्त्वों में परिवर्तित नहीं कर सकते, उनके शरीर से मल-मूत्र, स्वेद इत्यादि के साथ बाहर निकलते जाते हैं। यह निर्माण और नष्ट होने की क्रियाएँ जीव के शरीर में सर्वदा हुआ करती हैं। निर्माण-क्रिया शैशवावस्था से तरुणावस्था तक तीव्र हुआ करती है, जिस कारण उस काल में वे अधिक वृद्धि प्राप्त करते रहते हैं और उनमें शक्ति का संचय भी विशेष हुआ करता है। वृद्धावस्था में नष्ट होने की क्रिया विशेष होने लगती है और निर्माण की न्यून, जिस कारण जीव क्षीण और शक्ति-हीन होता जाता है।

(३) सहनशीलता : जीवों में एक ऐसी शक्ति है, जिससे वे अपने को परिस्थिति के अनुकूल बना लेते हैं। इसी गुण के कारण जीव अपने अस्तित्व को स्थिर रखते हैं। जब उनमें अपने को परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तित करने की शक्ति नहीं रहती, तब उनका विनाश हो जाता है। पहले इस पृथिवी पर अफ्रीका के जिराफ से भी कई गुना बड़ा और हाथी को अपने चंगुल में लेकर उड़ जाने वाले चमगादड़ जैसे महाबली जानवरों का वास था; लेकिन वे अपने आपको परिस्थितियों के अनुकूल नहीं बना सके। इस कारण आज दिन उनके अस्तित्व का भी पता नहीं है।

(४) सन्तति-उत्पादन : जीवों का एक विशेष लक्षण यह है कि वे अपने अनुरूप ही दूसरे जीव को भी उत्पन्न कर सकते हैं। सभी जीवों से ऐसे लघु शिशु उत्पन्न होते रहते हैं, जिनका रूप, आकृति, शारीरिक गठन तथा स्वभाव इत्यादि अपने माता-पिता के अनुरूप ही होते हैं। ये शिशु या तो एक जीव से जन्म ग्रहण करते हैं अथवा दो जीव उनके उत्पादन में योग देते हैं। इन उत्पन्न हुए जीवों की रचना जन्म देने वाले जीव या जीवों के अंश से होती है। नवजात शिशुओं का स्वाभाविक कर्म अपने माता-पिता के सदृश ही होता है; लेकिन ये सब धर्म या लक्षण किसी निर्जीव पदार्थ में नहीं देखे जाते हैं।

(५) श्वास-क्रिया : सजीव पदार्थ वायु से अम्लजन ग्रहण करते हैं और कार्बन द्वाम्वजिद छोड़ते हैं। इसको श्वास-क्रिया कहते हैं। जब वायु फेफड़े में पहुँचती है तब रक्त विद्यमान हिमोग्लोबिन अम्लजन के कुछ अंश का शोषण कर लेता है और शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में ले जाता है। वहाँ पर दाह के कारण अम्लजन कार्बन इम्लाजिद में परिणत हो जाता है और पुनः कार्बन द्वम्ल-जिद रक्त के साथ-साथ फेफड़े में आता है और वहाँ से प्रश्वास के साथ बाहर चला आता है।

(६) गति : सजीव सर्वदा अपने आहार के निमित्त स्थान परिवर्तन करते हैं। वे अपनी सुविधा के अनुसार उचित स्थान की खोज में, जहाँ उन्हें जीवनोपयोगी प्रत्येक वस्तु सुभीते से मिल सके, घूमा करते हैं। यह सजीव पदार्थों का स्वाभाविक गुण है। इस कार्य के लिए उन्हें उपांग होते हैं।

(७) सचेतना : चेतना सजीव पदार्थों का विशेष लक्षण है, जिसके कारण सजीव पदार्थ सुगमतापूर्वक पहचाने जा सकते हैं। छोटे-से-छोटे जीव को भी यदि छूने की चेष्टा की जाय तो वह भाग चलेगा अथवा अपनी रक्षा के निमित्त आक्रमण कर बैठेगा। इसी गुण के कारण तिरस्कृत होने पर या कष्ट पाने पर जीव उत्तेजित हो उठता है और तिरस्कार करने वाले से प्रतिशोध लेने की चेष्टा करता है।

वनस्पतियों में भी छुईमुई अथवा नागफनी-पुष्प के केशर-गुच्छ स्पर्श मात्र से संकुचित हो जाते हैं। सायंकाल चकबर और पृश्निपर्णी के पत्र आपस में सट जाते हैं और प्रातःकाल सूर्योदय होते ही पृथक हो जाते हैं। इसी प्रकार सूर्यमुखी-पुष्प सूर्य की दिशा में ही खिला रहता है। कमल का पुष्प दिन में विकसित होता और रात्रि में बन्द हो जाता है और इसके विपरीत कुमुदिनी रात्रि में खिलती है और दिन में संकुचित हो जाती है। दुप-

हरिया के पुष्प (वंधूक) मध्याह्न में खिलते हैं और रज-निगन्धा का पुष्प रात्रि में सगन्ध और दिन में एकदम निर्गन्ध हो जाता है। उपर्युक्त प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि वनस्पतियों में भी चेतना शक्ति विद्यमान है ; अतः ये भी सजीव पदार्थ हैं।

(८) लय : क्षण-क्षण परिवर्तन भी सजीवता का लक्षण है। उत्पत्ति, क्रमशः विकास, वार्द्धक्य और अन्त में लय अर्थात् मृत्यु को प्राप्त होना इत्यादि लक्षण सजीव पदार्थों में ही पाये जाते हैं। निर्जीवों में इस प्रकार के लक्षण दृष्टिगत नहीं होते।

वनस्पति विज्ञान

जिस विद्या के द्वारा पेड़-पौधे के रूप, रंग, गुण, प्रभाव, उत्पत्ति, प्रणाली, जाति, उसके अंग-प्रत्यंगों का ज्ञान हो, उसे 'वनस्पति विज्ञान' कहते हैं।

जगत के पोषण के लिए प्रकृति ने असंख्य वनस्पतियाँ उत्पन्न कर दी हैं। हमारे दैनिक जीवन से इन वनस्पतियों का निकटतम सम्बन्ध चला आ रहा है। ये हमारे जीवन के मुख्य अंग है ; इनके विषय में ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक-सा हो जाता है।

जगत में वनस्पतियों की संख्या गणनातीत है। इसलिए उनका परिचय प्राप्त करने की सुविधा के लिए उन्हें कई श्रेणियों में विभक्त करना होगा। वनस्पति-शास्त्रियों ने जगत के वानस्पतिक प्राणी को दो भागों में विभक्त किया है। १—सपुष्प और २—निष्पुष्प। निष्पुष्प वनस्पतियाँ वे हैं, जिनमें पुष्प और फल नहीं होते। इनका विस्तार 'स्पोर' के द्वारा होता है। ये भी तीन श्रेणियों में विभक्त हैं। १—थैलोफाइट्स, २—ब्रायोफाइट्स और ३—टेरीडोफाइट्स।

(१) थैलोफाइट्स : वे वनस्पतियाँ हैं, जिनके मूल, काँड तथा पत्र पृथक-पृथक दृष्टिगोचर नहीं होते। ये कुछ कोषों के द्वारा निर्मित हैं। ये एक या बहुकोषीय हो सकते हैं। इनके तीन विभाग हैं। १—अल्गीं, २—फंगी और ३—बैक्टीरिया।

ये अलगीसेवाल जातिकी वनस्पतियाँ हैं। ये पर्ण-रहित होती हैं ; अतः ये अपना आहार स्वयम् निर्माण करती हैं। जल की सतह पर अथवा आर्द्र पृथिवी पर जो जमी हुई हरी काई दृष्टिगत होती है, वह अल्गी जाति की वनस्पति है।

फंगी वनस्पतियाँ पर्ण-रहित नहीं होती ; अतः इन्हें अपने आहार के लिए दूसरी वनस्पतियों पर निर्भर रहना पड़ता है। ये भी एक या बहुकोषीय होती हैं। वर्षा-ऋतु में गलित तृण तथा गोमय-राशि पर जो छत्राकार पदार्थ दृष्टिगत होता है, वह फंगी जाति की वनस्पति है। यह एक कोषीय होती है।

(२) ब्रायोफाइट्स : जिनके मूल का सर्वथा अभाव होता है, वे ब्रायोफाइट्स् श्रेणी की वनस्पति हैं। ये एक या बहुकोषीय होती है। 'पास' नाम की वनस्पति इसी जाति की है, जो पृथिवी से रिजवाड्स के द्वारा सम्बन्धित रहती है।

(३) टेरीडोफाइट्स जाति की वनस्पतियों में मूल, काँड तथा पत्र विद्यमान रहते हैं। 'फर्न' नाम की वनस्पति इसी श्रेणी की है।

सपुष्प वे वनस्पतियाँ हैं, जिनमें मूल, काँड और पत्र हों तथा जिनका विस्तार बीजों के द्वारा हो। ये दो श्रेणियों में विभक्त हैं। १—नग्न बीज और २—आवृत बीज। नग्न बीज जाति की वे वनस्पतियाँ हैं, जिनका बीज किसी आवरण में ढंका नहीं रहता। जैसे 'पाइन' जाति की वनस्पति।

आवृत बीज जाति की वे वनस्पतियाँ हैं, जिनके बीज या फल किसी प्रकार के आवरण से आच्छादित हों। इन्हें भी दो भागों में विभक्त किया गया है। १—एकदली और २—द्विदली। एक दली वनस्पतियों के बीजों में केवल एक ही दाल रहती है। धान, गेहूँ तथा जौ इत्यादि इसी वर्ग के हैं और द्विदली वनस्पतियों के बीजों में दो दाल होती है। चना, मूँग, मटर इसी श्रेणी की वनस्पतियाँ हैं।

प्राणी विज्ञान

इस मर्त्यलोक में कितने प्राणी या जीव-जन्तु हैं, इसकी कल्पना करना भी दुष्कर है। जल, थल और आकाश में इनकी कहाँ-कहाँ और कितनी स्थिति है, इस विषय पर विचारने से बुद्धि काम नहीं करती। कुछ तो ऐसे प्राणी हैं जो दृष्टिगोचर नहीं होते। उन्हें देखने के लिए अणुवीक्षण यन्त्र का उपयोग करना पड़ता है। शोधकों के प्रयत्न से प्रतिदिन नवीन से नवीनतम आविष्कार होते चले जा रहे हैं और फलस्वरूप नये-नये प्राणियों की स्थिति का ज्ञान होता चला जा रहा है। इस जगत में बहुत से ऐसे स्थान भी हैं, जहाँ मनुष्य का पहुँच सकना कठिन है,

वैसे स्थानों पर भी प्राणियों की स्थिति का पता चला है। फिर भी कोई यह नहीं कह सकता कि जगत् में इस प्रकार के प्राणी कितने हैं। केवल प्राणियों की गणना कर लेने से ही प्राणी विज्ञान के विषय का ज्ञान पूरा नहीं होता। प्रत्येक प्राणी समूह की देह का गठन, आहार, रहन-सहन, यौन-सम्बन्ध तथा संततियों का विस्तार किस प्रणाली और क्रम से होता है--यह ज्ञातव्य है। उपर्युक्त विषय ही मुख्यतः प्राणी विज्ञान के विषय है। ज्ञान-प्राप्ति की सुविधा के लिए प्राणी शास्त्र के पंडितों ने इस दृश्य-जगत् के प्राणियों को कई समूहों में विभक्त कर दिया है और तब उनके विषय में अपना शोध प्रारम्भ किया है। यह श्रेणी-विभाग उनके स्वभाव, प्रकृति, रहन-सहन तथा शारीरिक गठन को दृष्टि में रखकर किया गया है। जिन-जिन प्राणियों के उपर्युक्त लक्षण मिलते-जुलते हैं, उन्हें एक श्रेणी में रखा गया है। उदाहरण--स्वरूप मानव और गौ एक प्रकार के दृष्टिगत नहीं होते। उसी भाँति गौ और कबूतर इत्यादि पक्षियों में समता नहीं है। ये सर्वथा पृथक्-पृथक् वर्ग के प्राणी हैं; तथापि मानव और गौ का शारीरिक गठन और प्रसवोत्तर क्रिया-कलापों पर ध्यान देने से एक श्रेणी के प्राणी मालूम होते हैं। मानव और गौ में मेरुदण्ड, कटि कसेरुका तथा रीढ़ विद्यमान हैं। प्रसवोत्तर दोनों का विकास जननी के स्तन-पान के द्वारा ही प्रारम्भ होता है; अतः ये एक श्रेणी में रखे गये। उसी भाँति स्तनपायी प्राणियों के अतिरिक्त अंडज जाति के प्राणियों का भी एक पृथक श्रेणी-विभाग करना पड़ेगा। इस मर्त्यलोक के सभी प्राणी दस श्रेणियों में विभक्त कर दिए गए हैं। समान धर्म वाले सभी प्राणी एक श्रेणी में आ गए हैं:—

१--कोषीय प्राणी, २--छिद्राल ३--एकनल देही, ४--चिपट प्राणी, ५--गोलाकृत प्राणी, ६--कंटकत्वक्, ७--ग्रंथिल प्राणी, ८--एक धरातलीय प्राणी, ९--संधिपदी प्राणी और १०--मेरुदण्डी प्राणी।

मानव-शरीर-विज्ञान

यह जीव-विज्ञान का ही एक अंश है। मानव-शरीर की प्रणाली, गठन, कार्य, अंग और उपांगों की निर्माण विधि, शरीर का ढाँचा एवं शरीर-निर्माण में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न पदार्थों—हड्डी, मांस, रक्त इत्यादि का जिसमें जिसमें वर्णन हो, उसे 'मानव-शरीर विज्ञान' कहते हैं।

मानव-शरीर का ढाँचा अनेक हड्डियों के ठट्ठर से निर्मित है और उसके ऊपर मांस और मांस के ऊपर चमड़े से शरीर ढंका है। शरीर का सौन्दर्य मांस से ही है। यदि हड्डियों के ऊपर से मांस को अलग कर दिया जाय तो यह शरीर एक घिनौने रूप में दृष्टिगत होगा। शरीर की सभी हड्डियों को मिलाने से उसे अस्थिपंजर अर्थात् देह की ठट्ठर के नाम से पुकारा जाता है। इसे भली भाँति समझने के लिए शरीर-विज्ञान से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के चित्रों का ध्यानपूर्वक अवलोकन करना चाहिए।

विशेष : यह विषय भी इतना बड़ा है कि इससे सम्बन्धित प्रत्येक विषय का संक्षिप्त वर्णन करना इस लघु-निबन्ध में सम्भव नहीं है; अतः शरीर-विज्ञान को समझने के लिए उसके मुख्य-मुख्य वर्ण्य विषयों की तालिका यहाँ अंकित की जाती है। विशेष जानकारी के लिए उक्त विषय की स्वतंत्र पुस्तकों का अवलोकन करना चाहिए।

तालिका : अस्थिपंजर के विभिन्न भाग—खोपड़ी, ललाटास्थि, पसलियाँ, रीढ़, कूल्हे की अस्थि, कलाई, उर्वास्थि, चरण संध्यास्थि, अंगुलास्थि, फिबुला, अग्रबाहु-वाह्यास्थि, केहुनी की संधि, अंगडास्थि, स्कंदास्थि, रीढ़, वक्ष, उदरप्रान्त, बाहु, पदतलास्थि।

मनुष्य-शरीर के प्रत्यांग

आच्छादक तंतु, संयोजक तंतु, पेशीय तंतु, नाड़ी तंतु, रक्त, रक्तरस, लोहित कणिका, श्वेत कणिका, रक्तवाही नाड़ियाँ, धमनी, शिरा, केशिका, अस्थियाँ, मांस-पेशी, नाड़ी, चर्बी, चमड़ा, उपचर्म, रक्त परिभ्रमण प्रणाली, हृदय, रक्त परिभ्रमण, वामानिलय, श्वास प्रणाली, श्वास-नलिका, पाचन-प्रणाली, पाचन-क्रिया, मुख, लार, श्वास-प्रणाली तथा अन्न-प्रणाली, आमाशय, आमाशय-रस, अन्न, क्षुद्रान्त्र-रस, यकृत्, वृक्क, मूत्राशय, तिल्ली, मस्तिष्क और नाड़ियाँ, नाड़ी-तन्त्र, नाड़ी, मस्तिष्क, नेत्र, कर्ण, स्वाद और गन्ध।

शहद के महान गुण

वैद्य श्रीरामेश वेदी, आयुर्वेदालंकार

शहद खाने के कुछ ही देर बाद कुछ लोगों को तीव्र वेदना आरम्भ हो जाती है; जैसे कभी-कभी आमाशय शूल में होती है। ऐसे लोग इस विश्वास पर कूद पड़ते हैं कि शहद उनके अनुकूल नहीं है और इसका उपयोग उनके लिए हानिकर है। शहद जब पेट में पहुंचता है तो इसके गाढ़े खांड के घोल को हलका करने के लिए वेग से जल-आकर्षण क्रिया (Osmotic action) प्रारम्भ हो जाती है। इसका अभिप्राय यह है कि शहद पेट की दीवारों से आर्द्रता खींच रहा होता है। आमाशय की दीवारों से पानी खींचे जाने का कार्य इतनी तीव्रता से हो रहा होता है कि कई लोगों में यह वेदना उत्पन्न कर देता है। आमाशय को आवृत करनेवाली झिल्ली के दोनों ओर दो घोल होते हैं। एक शहद होता है जो शर्करा का सान्द्र घोल है और दूसरे शरीर के द्रव होते हैं, जिनमें शर्करा की कम सान्द्रता होती है। जल-शोषण की प्रक्रिया (Osmosis) में द्रव में कम से अधिक सान्द्र पार्श्व की ओर जाने की प्रवृत्ति होती है। इस नियम के अनुसार इस उदाहरण में आमाशय-गुहा की ओर आर्द्रता का प्रवाह होगा। यदि यह कार्य बहुत तेजी से हो रहा है और आमाशय इस कार्य के लिए बहुत नाजुक (Sensitive) है तो परिणामतः वेदना होने लग जायगी। हमारी इस विवेचना से स्पष्ट है कि शहद में कोई हानिकर पदार्थ नहीं है जो वेदना उत्पन्न करता है। जल-आकर्षण (Osmosis) के कार्य की तीव्रता को मन्द करने के लिए युक्ति-युक्त उपाय यह है कि शहद की सान्द्रता को पानी मिलाकर कम कर लिया जाय। ऐसे व्यक्ति शहद को पानी से हल्का करके खायें या भोजन के साथ खायें तो उन्हें वेदना की शिकायत नहीं होती।

क्या विशेष ऋतु में ही शहद खाना चाहिए ?

अक्सर सुनने में यह आता है कि गरमियों में शहद नहीं खाना चाहिए क्योंकि यह गरम होता है। हमें यह बात बिलकुल गलत मालूम होती है। चरक, सुश्रुत, धन्वन्तरि, नरहरि, भावमिश्र, कैयदेव, मदनपाल आदि आयुर्वेद के विद्वानों के अनुसार शहद का प्रभाव शीतल है। हृदय के पैत्तिक दोषों में चरक ने शीतल उपचारों के साथ शहद का प्रयोग किया है। रक्त-पित्त के दोषों को दूर करने के लिए बहुत से आयुर्वेदिक लेखकों ने शहद का अनेक स्थानों पर उपयोग किया है। इससे सिद्ध होता है कि यह गरम नहीं। प्रायः अनेक जाति में यह भोजन-सूची में सम्मिलित किया गया है। चरक और वाग्भट्ट ने साल की प्रत्येक ऋतु में उपयोग किये जानेवाले भोज्य द्रव्यों में इसे गिनाया है। शरीर की आवश्यकतानुसार यह रोज खाया जाना चाहिए।

गरम देश में गरमियों में गरम पदार्थों के साथ आग और धूप से पीड़ित गरम प्रकृतिवाले मनुष्य को आग पर गरम करके शहद खाना मना किया गया है।

बरसात में विशेष प्रयोग

वर्षा ऋतु में शहद के प्रयोग की विशेष रूप से सिफारिश की जाती है। इन दिनों खाने-पीने के पदार्थों के साथ शहद का विशेषतया प्रयोग करना चाहिए। चरक कहते हैं कि बरसात में शहद की मदिरा में या किसी दूसरे अरिष्ट में अथवा वर्षा जल में मधु मिलाकर थोड़ा-थोड़ा पिया जाना चाहिए।

शहद को गरम न करने में हेतु

(१) अनेक प्रकार की रस-गुण-वीर्य-विपाक विरुद्ध ओषधियों के पुष्प-रसों से इकट्ठा किया जाने के कारण (२) विषैले फूलों के रसों का संसर्ग होने के कारण, (३) विषैली मक्खियों द्वारा तय्यार किया जाने के कारण, और (४) ठण्डा होने के कारण शहद को गरम नहीं करना चाहिए। गरम होते ही शहद विष बन जाता है। इस प्रकार की कुछ अस्पष्ट बातें हमें आयुर्वेदिक ग्रन्थों में मिलती हैं। शहद को गरम नहीं करना चाहिए, यह सत्य है; परन्तु इसमें उपर्युक्त दिये गये हेतुओं में कोई सार प्रतीत नहीं होता। शहद की सुकुमारता ही इसे गरम करने से रोकती है, क्योंकि इसकी नाजुक और कोमल सुगन्ध तथा स्वाद और पेचीदी शर्कराएँ गरमी से शीघ्र ही खराब

हो जाती है। ऊपर दिये गये हेतुओं के कारण 'आग पर रख कर गरम किया हुआ शहद प्राणों को हरनेवाला होता है'—चरक, सुश्रुत के इस वाक्य को पढ़ कर हमें अचम्भा होता है, जब हम पहाड़ों में, जहाँ खाण्ड नहीं होती, लोगों को हलुआ आदि पक्व मिष्ठान्नों में सदा शहद का ही प्रयोग करते देखते हैं।

सामान्य रूप से यह ठीक प्रतीत होता है कि तेज आग पर गरम किया हुआ शहद निर्वीर्य हो जाता है और खानेवाले पर बुरा प्रभाव पैदा कर सकता है। हमारी सम्मति में भी शहद को सीधे तेज आग पर नहीं गरम करना चाहिए। आग पर से उतरे हुए गरम दूध या चाय में शहद मिलाकर पीने में कोई हानि नहीं देखी जाती।

शहद को पकाने का विधान

यद्यपि आग पर पकाया हुआ शहद विषैला और मारक कहा जाता है, परन्तु **अनन्तवात** नामक शिरोरोग में शहद डालकर बनाये पूड़ों को तलकर खाने से रोग की निवृत्ति हो जाती है। इसी तरह **दुर्नाम** में मूत्र के साथ, **मोटापे** में त्रिफला के साथ, **व्रण** को भरने के लिए दूध के साथ और **जख्मों** को साफ करने के लिए हल्दी के साथ पकाकर शहद खिलाया जाता है। इसे पकाते समय आठ भाग शहद में एक भाग पानी भी मिला देना चाहिए। पकते पकते जब खूब गाढ़ा चिपचिपा लेसदार हो जाय, कड़छी तथा कपड़े पर लेई के समान चिपकने लगे और पानी में डालते ही नीचे डूब जाय तब समझ लेना चाहिये कि शहद ठीक तरह पक गया है।

अनीमा के प्रयोगों (निरुहण बस्ति) में और उलटियां लाने के लिए गरम किया हुआ शहद दिया जा सकता है, क्योंकि यह न तो शरीर में ठहरता है और न ही इसका परिपाक होता है अपितु तत्काल ही शरीर से बाहर आ जाता है। मदनपाल ने आमरोग में गरम पानी में घोल कर शहद देने का विधान किया है।

शहद के विरोधी

उस दिन विद्यार्थियों को पढ़ाते समय हमारे एक देहाती कर्मचारी ने जब यह सुना—

'घी, तेल या चरबी किसी भी चिकनाई को शहद के साथ बराबर मिलाकर नहीं खाना चाहिए। शहद तथा घी को और शहद तथा पानी को सम परिमाण में मिला कर नहीं खाना चाहिए। मधु के साथ सम परिमाण में वर्षा जल मिलाकर नहीं पीना चाहिए। वर्षा जल के साथ शहद पीने के लिए सुश्रुत और धन्वन्तरि ने विशेष रूप से मना किया है। वर्षा जल ठण्डा हो तब भी उसमें शहद मिलाकर नहीं पीना चाहिए। मधु और कमल बीजों को मिलाकर नहीं सेवन करना चाहिए। शहद चाटकर गरम पानी नहीं पीना चाहिए। सभी सन्निपात ज्वर में शहद का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि यह शीतोपचारी होता है अर्थात् शहद का प्रयोग करने के बाद शीतोपचार किया जाता है और शीतोपचार का सन्निपात के साथ घोर विरोध है। शहद खाने के बाद हुक्का (धूम्रपान) नहीं पीना चाहिए। कुसुम्भ शाक, खांड से बनाई शराब और शहद का इकट्ठा सेवन विरुद्ध गुण होता है और वायु अत्यन्त कुपित करता है। शहद और घी मिलाकर खाने से मौत हो जाती है। शहद के साथ मूली और सूअर का मांस नहीं खाना चाहिए। शहद, मछली और दूध मिलाकर खाना कोढ़ पैदा कर देता है। वंशपत्री और पके हुए बड़हर को शहद के साथ सेवन नहीं करना चाहिए क्योंकि इकट्ठा खाने से मृत्यु की सम्भावना है अथवा बल, वर्ण, तेज तथा वीर्य नष्ट होता है, नपुंसकता आती है या कोई बड़ा रोग लग जाता है। रोहिणी और जातु शाक को शहद के साथ नहीं खाना चाहिए। पौष्कर और रोहणी के शाक तथा सरसों के तेल में भूने कबूतर के मांस को शहद के साथ नहीं खाना चाहिए। इकट्ठा खाने से गिल्लड़, मृगी, शङ्खक, रोहिणी रोग और खून पतला हो जाता है, रक्तवाहिनियां फूल जाती हैं और रोगी मर सकता है। गाँव में रहनेवाले गौ, बकरी आदि जानवरों के मांसों के साथ शहद नहीं खाना चाहिए। इसके साथ खाने से बहरापन, दृष्टि क्षीण होकर अन्धापन, अंगों का काँपना, किसी अंग का मारा जाना, इन्द्रियों का विषय-ग्रहण में असमर्थ होना, गूँगापन, नाक से बोलना और मौत तक हो सकती है। मकोय और शहद का इकट्ठा सेवन मृत्यु का कारण होता है।'

—तो उत्सुकतापूर्ण जिज्ञासा से उससे रहा न गया। एक आत्मीय की बीमारी में देहाती चिकित्सक के आदेश पर उसने लगातार दो मास तक मकोय के रस में मधु डाल कर पिलाया था। शहद की दूसरी विरोधी कही जानेवाली चीजों पर अविश्वास प्रकट करते हुए उसने कहा—शहद

और घी जैसे दुर्लभ अमृततुल्य पदार्थ भी कभी खाने से विष पैदा कर सकते हैं? उसने अपने को परीक्षा किये जाने के लिए प्रस्तुत किया। जब काम पर आता तो सब से पहले उसे समभाग में घी मिला शहद एक छटांक दिया जाने लगा। लगभग डेढ़ मास तक सेवन करने के बाद भी उसमें विष-लक्षण प्रकट होने तो दूर रहे उल्टे वह अपने को हृष्ट-पुष्ट और बलवान् अनुभव करने लगा।

अमेरिका और दूसरे अनेक देशों में शहद और मक्खन मिला कर रोटी-टोस्ट पर फैलाकर खाया जाता है। इन देशों में मक्खन मिला शहद प्रतिदिन कई हजार गैलन खर्च जाता है। इसी तरह दूसरे विरोधी कहे गये द्रव्यों में से कुछ के साथ हमने शहद का प्रयोग करते बहुधा देखा है। इसलिये आयुर्वेद के इन मनन्तव्यों की पुष्टि करने के लिए हमारे पास स्पष्टीकरण नहीं है।

एक और प्रश्न उठता है। ऊपर के प्रकरण में कहे गये मांसों के साथ शहद खाने से विषैला प्रभाव होता है तो क्या इस सूची में अपरिगणित मांसों के साथ मधु का सेवन कोई हानि नहीं करता? क्या यह सिद्धान्त व्यापक रूप से ग्राह्य नहीं कि किसी भी मांस के साथ शहद नहीं खाना चाहिए?

निषेध

एक ही बार में बहुत अधिक मात्रा में खाली पेट अकेला शहद खाने से अनेक मनुष्यों को पचता नहीं। ऐसे लोगों को शहद खाना बन्द नहीं करना चाहिए। उन्हें थोड़ी-थोड़ी मात्रा में अन्य द्रव्यों के साथ शहद लेने की आदत डालनी चाहिए।

चरक और सुश्रुत ने अत्यधिक मधु के सेवन से उत्पन्न आमदोष से बढ़कर अन्य कोई रोग अधिक कष्टदायक नहीं बताया, क्योंकि इस में चिकित्सा विरुद्ध की जाती है। अर्थात् आमदोष के नाश के लिए ऊष्ण चिकित्सा की जाती है, परन्तु मधु-जनित अजीर्ण में ऊष्ण चिकित्सा विपरीत पड़ती है। इस प्रकार विरुद्ध चिकित्सा होने से मधु-जनित अजीर्ण विष की तरह सद्योमारक बन जाता है।

ब्रह्मचारी को शहद खाने का निषेध करने में शतपथ ब्राह्मण में यह हेतु दिया गया है—"मधु रसों का अन्त है अर्थात् इससे बढ़कर कोई स्वादिष्ट पदार्थ नहीं, इसलिए ब्रह्मचारी इसे न खाये।" पुत्रों का व्रत करती हुई स्त्रियाँ न जाने क्यों शहद खाना छोड़ देती थीं।

शेषांश] **विषम ज्वर** [५७१ पृष्ठ का

(२) कलोंजी को अग्नि में भूनकर रख लीजिए। मात्रा आधा भर, गुड़ या शहद के साथ।

(३) स्वच्छन्द भैरव रस—१ गोली।

इकतरा में—

(१) स्फटिक भस्म १ रत्ती, गोदन्ती १ रत्ती, वराटिका भस्म १ रत्ती। १ खुराक तुलसी के स्वरस से।

(२) बैद्यनाथ प्राणदा।

(३) (१-ख) में वर्णित क्वाथ।

तिजारी-चौथिया में—

(१) खस, गिलोय, धनिया, लाल चन्दन, नागरमोथा, सोंठ इनका क्वाथ मिश्री और शहद के साथ।

(२) रविवार के दिन चिरचिटे की जड़ को सात लाल धागों में लपेटकर कमर में बाँधिए।

सन्तत विपर्यय आदि अन्य विषम ज्वरों की चिकित्सा सन्तत ज्वरों के समान ही करनी चाहिए।

साध्यासाध्य विवेचन

विषम ज्वर कष्टसाध्य और असाध्य कहे जाते हैं। नीचे लिखे लक्षण होने पर बहुत सावधानी और धैर्यपूर्वक चिकित्सा करनी चाहिए।

(१) सूजन वाले मनुष्य को उत्पन्न हुआ ज्वर और बहुत काल से आने वाला ज्वर कठिन ज्वर है।

(२) अन्तर्दाह, तृषा, मल-विबन्धता, खाँसी और श्वास की अधिकता ज्वर में होना गंभीरता के लक्षण हैं।

(३) ज्वर के पहले से ही या बीच में यदि कान की जड़ में शोथ उत्पन्न हो जाए तो कष्टसाध्य स्थिति समझनी चाहिए। ज्वर मोक्षोपरान्त कर्णमूलशोथ साध्य होता है।

(४) जिस ज्वर में अनेक रोगों के लक्षण परिलक्षित हों और रोगी असक्त होकर शय्या पर पड़ा रहे।

(५) जिस ज्वर में मूर्च्छा का बारंबार वेग हो।

(६) जिस ज्वर में हिचकी, श्वास और तृषा हो।

(७) जिस रोगी की कांति नष्ट हो गई हो और इन्द्रियों में स्वाभाविक ग्रहणशक्ति न रही हो।

(८) जब ज्वर शुक्रगत होकर निरन्तर वीर्य प्रवाह हो।

(९) जब ज्वर का वेग अत्यन्त उग्र हो।

नेत्ररोगों के कारण और चिकित्सा

श्री राधेश्याम वैद्य, आयुर्वेदशास्त्री

नेत्र--ज्योति की दुर्बलता के अनेक कारण हैं तथापि उनके मुख्य कारण यह हैं--आँखों से बहुत सूक्ष्म (बारीक) कार्य करना, अत्यन्त तेज प्रकाश जैसे सूर्य, तेज बिजली की रोशनी आदि की ओर देखना, रात्रि में और सन्ध्या समय में पढ़ना, नमक, क्षार, चरपरा और अम्ल (खट्टे) पदार्थों का अधिक मात्रा में सेवन करना; धूप, धूल और धूएँ में ज्यादा काम करना, मलमूत्रादि के वेगों को रोकना, अति मैथुन करना, अधिक सिनेमा देखना, शारीरिक दुर्बलता और पौष्टिक आहार की कमी। यही कारण आजकल नवयुवकों या जनसमुदाय की दृष्टि-शक्ति को दुर्बल बना रहे हैं। इसलिये इनसे बचना चाहिये।

चिकित्सा--नेत्र-ज्योति को बढ़ाने के लिये चश्मे का व्यवहार करना उत्तम मार्ग नहीं है। इससे नेत्रों को केवल सहायता ही मिलती है। यह आशा करना कि कुछ दिन चश्मे के व्यवहार से नेत्रों की ज्योति बढ़ जायगी, दुराशा मात्र है। इस बात को सब लोग देखते और जान रहे हैं कि जिन लोगों की देखने की शक्ति बहुत कमजोर है, वे यदि दस-बीस वर्ष भी चश्मा लगाते हैं तो भी उनकी दृष्टि-शक्ति नहीं बढ़ती, अपितु यदि उन्हें चश्मा समय पर न मिले अथवा खो जाय तो वे न लिख-पढ़ सकते हैं और न कुछ कार्य ही कर सकते हैं। इसलिये नेत्र-ज्योति बढ़ाने वाले उपायों में चश्मे का व्यवहार कोई लाभदायक सिद्ध नहीं हुआ। अब हम पाठकों को दो तीन प्रयोग बतलाना आवश्यक समझते हैं।

हमारे बताये हुए प्रयोगों से नवयुवकों को विशेष लाभ होगा। जिस प्रकार नेत्रों की जरा-सी भी खराबी होने पर आजकल नवयुवकों को चश्मे के व्यवहार करने की उत्कट अभिलाषा हो जाती है, उसी प्रकार विशेष उत्साह से यदि वे ४-६ मास लगातार हमारे इन शास्त्रीय प्रयोगों का प्रयोग करें तो उन्हें विशेष और स्थायी-लाभ होगा।

प्रयोग नं० १--प्रातःकाल सोकर उठते ही नित्य-प्रति बासी शीतल जल के छींटे देकर आँखों और मुँह को खूब धोना चाहिये, इससे नेत्रों की ज्योति बढ़ती और चेहरे की कान्ति बढ़ती है। चेहरे पर होने वाले मुहाँसे, झाईं, काले दाग, प्रभृति विकार नष्ट होकर चेहरा स्वस्थ व सुन्दर हो जाता है।

प्रयोग नं० २--बड़ी हरड़ का छिलका एक छटांक, बहेड़े का छिलका १ छटांक, आँवले सूखे गुठली निकाले हुए एक छटांक, इन तीनों चीजों को बाजार से उत्तम-उत्तम लाकर इन्हें जौकुट करके तीनों को मिला कर रख लेना चाहिये। इस जौकुट चूर्ण में से १।। तोला लेकर डेढ़ पाव (छः छटांक) जल में किसी काँच, चीनी या उत्तम मिट्टी के बर्तन में रात्रि को सोने से पूर्व भिगो देना चाहिये। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि वह बर्तन, जिसमें यह वस्तु भिगोई गई है, रात्रि को ग्रीष्म ऋतु (गर्मी) में चौड़ी खुली हुई जगह में ओस में रख दिया जाय। वर्षा अथवा शीत ऋतु (जाड़े के दिनों) में उसको खुली जगह में नहीं रखें, अपितु किसी अच्छे सुरक्षित स्थान में उसको रख दिया जाय और उस बर्तन के मुंह को किसी कागज या जालीदार कपड़े के टुकड़े से ढँक देना चाहिये जिससे उसमें कंकड़, धूल, मिट्टी अथवा किसी प्रकार का कोई कीट कृमि, पतंगा उसमें न पड़ सके। फिर प्रातः काल ही उस दवा को हाथ साफ करके खूब मलकर किसी बारीक और साफ कपड़े में छान लेना चाहिये। इस औषध के छने हुए जल से नित्यप्रति, आँखों को धोना चाहिये। जिनकी नेत्र ज्योति दुर्बल हो उन्हें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि उनको अजीर्ण, कब्ज (Constipation) की शिकायत नहीं हो क्योंकि कब्ज के बढ़ने से नेत्रों की दृष्टि दुर्बल पड़ती है। जिन्हें नेत्रों की दुर्बलता के साथ-साथ इसका भी रोग हो तो उनको चाहिये कि २।। तोले इस त्रिफला के मोटे चूर्ण को रात्रि में आध सेर जल में भिगो देवें। फिर प्रातःकाल उसी प्रकार मल छानकर उस जल में से आधा तोला पी जावें और बाकी शेष जल से आँखों को खूब धोवें।

(शेषांश ५८८ पृष्ठ पर)

गिलोय के चमत्कारी गुण

वैद्य श्री चन्द्रराज भण्डारी

आयुर्वेद की यह सुप्रसिद्ध वनस्पति भारतवर्ष में सर्वत्र पैदा होती है। इसे संस्कृत में अमृता या गुडुची, हिन्दी में गिलोय, मराठी में गुड़वेल और लैटिन में टिनोस्पोरा कार्डिफोलिया कहते हैं। जो गिलोय नीम के ऊपर चढ़ती है, वह नीम-गिलोय कहलाती है और ओषधि-प्रयोग में वही उत्तम मानी जाती है। उसके फूल बारीक, पीले रंग के झूमकों में लगते हैं। उसका तना अंगूठे के बराबर मोटा होता है। पकने पर वह धूसर रंग का हो जाता है।

आयुर्वेद के मत से गिलोय कसैली, कड़वी, उष्णवीर्य, रसायन, मल-रोधक, बलकारक, हृदय को हितकारी, आयुवर्द्धक तथा प्रमेह, ज्वर, दाह, तृषा, रक्त-दोष, वमन, वात, भ्रम, पाण्डुरोग, खूनी बवासीर, मेद, विसर्प, पित्त और कफ को दूर करती है। यह घी के साथ वात को, शक्कर के साथ पित्त को, शहद के साथ कफ को और सोंठ के साथ आमवात को दूर करती है।

गिलोय में शामक, ज्वरनाशक, पित्त-शामक, मूत्रल और शोधक गुण रहते हैं। इसका शामक गुण अत्यन्त आश्चर्यजनक है। इस शामक गुण के कारण वह प्रत्येक कुपित हुए दोषों (वात, पित्त और कफ) को समानता पर ला देती है। जिस दोष का प्रकोप होता है, उसे वह शान्त कर देती है और जिसकी कमी होती है, उसे प्रदीप्त कर देती है। इस प्रकार घटे-बढ़े दोषों को समान स्थिति में लाकर प्रवृत्ति को नीरोग बनाने का गुण किसी भी दूसरी वनस्पति में नहीं है। इसलिए उसका नाम अमृता रखा गया है। वह एक ही ऐसी वनस्पति है जो प्रत्येक प्रवृत्ति के मनुष्य को प्रत्येक रोग में दी जा सकती है।

ज्वर पर गिलोय का प्रभाव

ज्वर-नाशक गुण होने की वजह से यह हर प्रकार के ज्वरों में निःशंकता से दी जा सकती है। यद्यपि मलेरिया के कीटाणुओं को नष्ट करने की शक्ति उसमें बहुत कम है और इस रोग में वह कुनैन का मुकाबला नहीं कर सकती, फिर भी शरीर की दूसरी क्रियाओं को व्यवस्थित करने में वह बहुत सहायता पहुंचाती है, जिसके परिणाम स्वरूप मलेरिया ज्वर पर भी उसका असर दिखलाई देता है। कुनैन से शरीर में जो खराब प्रतिक्रियाएं होती हैं उनको भी वह रोकती है, इसलिए अगर कुनैन के साथ उसका भी उपयोग किया जाए तो मलेरिया ज्वर में विशेष फायदा हो सकता है।

जीर्ण ज्वर और टाइफाइड ज्वर (मोतीझरा) में जहां कि कुनैन इत्यादि ओषधियां कुछ भी काम नहीं आ सकतीं, वहां भी गिलोय आश्चर्यजनक फायदा करती है। उसमें पित्त को शान्त करने का गुण रहता है और जीर्ण-ज्वर तथा मोतीझरा में विशेष कर पित्त का ही प्रकोप रहता है। इसलिए ऐसे ज्वरों में वह बहुत अच्छा लाभ करती है। तेज ज्वर होने के पश्चात शरीर में जो हलका बुखार रह जाता है, उसके सेवन से वह दूर हो जाता है और रोगी में शक्ति का संचार बहुत शीघ्रता से होता है।

ऐसे बुखारों में तुलसी, बनफशा, गावजवां, खूबकला इत्यादि ज्वरनाशक ओषधियों के साथ गिलोय का काढा बनाकर देने से अथवा इसका घनसत्व निकालकर उसको त्रिफला के चूर्ण और शहद के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

मन्दाग्नि, आंत्रक्षय और अन्य उदररोग

यकृत अर्थात लीवर और तिल्ली की खराबी की वजह से शरीर में जलोदर, कामला, पीलिया, पाण्डु रोग इत्यादि जितने भी रोग खड़े होते हैं, उन सबको दूर करने के लिए गिलोय एक अत्यन्त चमत्कारिक दवा है। यहां तक कि आंत्र-क्षय के मामलों में भी उसके प्रयोग से बड़ा लाभ होता है। मन्दाग्नि की ऐसी पुरानी शिकायतों में भी, जिनको दूर करने में हजारों रुपयों की बहुमूल्य ओषधियाँ बेकार साबित हो चुकी थीं, गिलोय ने आश्चर्यजनक लाभ दिखलाए हैं। ऐसे रोगों के सम्बन्ध में गिलोय के प्रयोग अनेक बार अनुभव में आ चुके हैं और इस बात की सिफारिश की जा सकती है कि जो लोग पेट के रोग से ग्रसित हों, जिनकी तिल्ली और यकृत बिगड़ रहे हों, जिन्हें

भूख न लगती हो, अम्लपित्त हो, शरीर पीला या सफद पड़ गया हो, वजन कम हो गया हो और जो बड़ी-बड़ी ओषधियों से निराश हो गए हों, वे भी इस आश्चर्यजनक ओषधि का सेवन करके लाभ उठा सकते हैं। ऐसे रोगों में इसके प्रयोग की विधि इस प्रकार है—

नीम के ऊपर चढ़ी हुई ताजी परिपक्व गिलोय १॥ तोला, अजमोद २ माशे, छोटी पीपर २ दाने, नीम के पत्तों की सींक ७ इन सब चीजों को ठंडाई की तरह सिल पर पीसकर आधा पाव पानी में छान लें, ईंट का छोटा-सा टुकड़ा गरम करके उसमें बुझा दें और रोगी को पिला दें। इस प्रकार दिन में दो बार कम-से-कम एक मास तक पिलाने से काफी लाभ हो जाता है। आवश्यकतानुसार अधिक समय तक भी पिला सकते हैं।

रक्त-विकार

गिलोय में रक्त-विकार को नष्ट करके शरीर में शुद्ध रक्त प्रवाहित करने का गुण भी विद्यमान है। इसलिए खाज, खुजली, वातरक्त इत्यादि रोगों में उसको गगल के साथ देने से अच्छा लाभ होता है।

क्षय की व्याधि

क्षय-रोग पर भी इस ओषधि की बहुत अच्छी क्रिया होती है। दो-ढाई तोले ताजा गिलोय के ठंडे रस में छोटी पीपर का चूर्ण मिलाकर प्रातःकाल पीने से प्रारम्भिक क्षय के रोगी को ऐसा लाभ होता है जो शायद कॉडलीवर आयल जैसी गन्दी दवाइयों से नसीब नहीं हो सकता। इससे क्षय रोगी के ज्वर का वेग घटता है, उसकी पाचन-क्रिया सुधरती है, क्षुधा प्रदीप्त होती है, जठर बलवान होता है और रात्रि स्वेद-बन्द होता है।

मूत्र-रोग

अपने मूत्रल गुण के कारण सूजाक, प्रमेह, पेशाब की जलन इत्यादि मूत्ररोगों में भी यह वनस्पति अच्छा लाभ दिखाती है। अपने धातु-परिवर्त्तक गुण की वजह से सब प्रकार के प्रमेह और मधुमेह (डायबिटीज) में भी यह वनस्पति फायदा पहुंचाती है। अरण्डी के तेल के साथ उसका काढ़ा बनाकर देने से कष्टसाध्य समझे जानेवाले सन्धि-वात में भी अच्छा लाभ होता है।

विष के उपद्रव पर गिलोय

गिलोय के अन्दर विषनाशक गुण भी बतलाया जाता है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट इत्यादि प्रामाणिक ग्रन्थकारों ने उसको दूसरी ओषधियों के साथ सर्प-विष में लाभदायक बतलाया है। उसके कन्द को माशे-डेढ़ माशे की मात्रा में पानी में घोलकर पिलाने से बार-बार वमन होकर सर्प-विष निकल जाता है।

हिन्दुस्तान के कुछ भागों में इस वनस्पति का कन्द विष को दूर करने का निश्चित इलाज समझा जाता है। सर्प-विष में इसकी जड़ का रस या काढ़ा काटे हुए स्थान पर लगाया जाता है, आंखों में डाला जाता है और थोड़ी थोड़ी देर के अन्तर से पिलाया भी जाता है।

कीर्त्तिकर और बसु के मतानुसार गिलोय का घन सत्त्व जीर्ण रक्तातिसार या पुरानी पेचिश में बहुत लाभदायक है। अंतड़ियों की पीड़ा में, जब कि अन्न बिलकुल हजम न होता हो, यह औषध बड़ा चमत्कारिक लाभ दिखलाती है। अग्निमान्द्य और अपचन को वह बिलकुल दूर कर देती है। गठिया रोग के लक्षणों को दूर करने में भी यह बड़ी असरकारक है। इसका ताजा रस मूत्र-निस्सारक होता है। पुराने हिन्दू चिकित्सकों ने इसे सूजाक की बीमारी में भी मुफीद बतलाया है।

यूनानी मत

यूनानी ग्रन्थकारों के मतानुसार गिलोय पहले दर्जे में गरम और तर ह। जो गिलोय नीम के ऊपर चढ़ती है वह बहुत पुराने बुखार के लिए बहुत मुफीद है। तपेदिक या क्षय में भी वह बहुत लाभ पहुँचाती है। हर किस्म के ताप को यह दूर करती है। दिल, जिगर और मेदे की जलन को मिटाती है। खाँसी, पीलिया और बेहोशी में फायदा करती है। कफ को छाँटती है। वीर्य को पैदा करके गाढ़ा करती है। मिश्री के साथ लेने से पित्त की तेजी को दूर करती है और शहद के साथ लेने से कफ के कोप को मिटाती है। मधुप्रमेह में जब पेशाब के साथ शक्कर जाती है, तब ६ माशा गिलोय का चूर्ण ६ माशा मिश्री के साथ प्रातःकाल खाली पेट लेने से बड़ा लाभ होता है।

फेफड़े के क्षय में भी, अगर वह पहले दरजे में हो, तो इस औषध का धैर्यपूर्वक सेवन करने से अवश्य लाभ होता है। इसका सत्त्व शरीर की जीवनी-शक्ति और रोग-निवारक शक्ति को बढ़ाने की अद्भुत क्षमता रखता है। किसी भी रोग के पश्चात् होनेवाली कमजोरी में शीतोपलादि चूर्ण दो माशा, दो रत्ती प्रवालपिष्टी और एक माशा गिलोय सत्त्व को दिन में दो बार शहद के साथ चाटने से मनुष्य की जीवन-विनियम क्रिया को बड़ा बल मिलता है। ऐसे अनेक मामले देखने में आए हैं, जिनको सालभर में दो-चार बार बीमार पड़ने की आदत-सी हो गई थी, मगर इस ओषधि को नियमपूर्वक डेढ-दो मास तक सेवन करने के पश्चात् पांच-पांच दस-दस वर्षों तक उनके बीमार पड़ने की नौबत नहीं आई और उनकी साधारण तन्दुरुस्ती बहुत अच्छी रही। यह वनस्पति भारतवर्ष की दिव्य वनस्पतियों में से एक है और हमारा दृढ़ विश्वास है कि अगर निष्ठा के साथ इसके प्रयोग भिन्न-भिन्न रोगों पर किए जाएँ तो अत्यन्त आश्चर्यजनक परिणाम दृष्टिगोचर हो सकते हैं। (साप्ताहिक हिन्दुस्तान से)

आयुर्वेद और सर्जरी

वैद्य भैरवदत्त शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

(गतांक से आगे)

शस्त्र कर्म विधि (ऑपरेशन) सब उपकरणों से युक्त होकर वैद्य रोगी को पूर्व की ओर मुँह करके बिठा दे और यन्त्रित करके रोगी के सम्मुख अर्थात् पश्चिम की ओर मुँह करके मर्मादि का ध्यान रखता हुआ शीघ्र ही अनुलोम रूप से तीक्ष्ण शस्त्र का पूय दिखलाई देने तक एक ही बार में प्रयोग करके निकाल ले। बड़े पाक में भी दो-तीन अंगुल के बीच में ही फाड़े। यथा देश एवं यथा आशयादि, एषणी, अंगुली, नाल एवं वालादि से एषण करके जहाँ-जहाँ गति एवं उठाव देखे वहाँ-वहाँ पर ही बड़ा एवं निराश्रित व्रण करे, जिससे कि पूयादि दोष न ठहर सके। स्थानानुसार टेढ़ा अथवा सीधा छेदन करना चाहिये अन्यथा सिरास्नाय्वादि कट जाती हैं, वेदना अधिक होती है, व्रण विलम्ब से भरता है तथा कन्दाकृति मांस-प्रादुर्भाव हो जाता है।

शस्त्र प्रयुक्त करके रोगी को शीतल जल एवं वाणी से आश्वासन देकर अंगुली से व्रण को चारों ओर से दबा कर सारा पूय निकाल दे। पुनः (मुलैठी निम्बादि के) शोधन कषाय से व्रण को धोकर, रूई से पानी को सोख ले। गूगल, अगर, सरसों, लौंग, राल, बच एवं नीम के पत्तों को घी से भिगोकर धूप दे (ध्यान रहे कि ये सब छूत (इन्फैक्शन) नाशक हैं) तिल कल्क, घृत, मधु एवं दोषानुसार भेषज से लिप्त करके बत्ती को व्रण के भीतर दे (यह प्राचीन गॉज है) और इन्हीं से व्रण को ढक दे। इस बत्ती को **विकेशिका** कहते हैं। इसे भीतर भरने से लाभ-- सड़े हुए मांस वाले, उठाव वाले, नासूर वाले तथा पूय गर्भ वाले व्रण को भीतर स्थित विकेशिका शीघ्र ही शुद्ध कर देती है।

व्रण के ऊपर खूब मोटी कवलिका देकर युक्ति पूर्वक दाहिने या बायें पार्श्व में बाँध दे। व्रण को ढँकनेवाली गूलर आदि की छाल को कवलिका कहते हैं। व्रण के ऊपर या नीचे गाँठ न दे। बाँधने के लिये शुद्ध, सूक्ष्म एवं दृढ़ पट्टी, धूप दी हुई कवलिका और विकेशिका कोमल चिकनी और बिना सलवट की होनी चाहिये।

व्रण को बाँधने के लिये स्थानानुसार पट्टियों के १५ बन्धन विशेष बतलाये हैं। उनके नाम--कोश, स्वस्तिक, मुत्तोली, चीन, दाम, अनुवेलित, खट्वा, विबन्ध, स्थगिका, वितान, उत्संगी, गोफणा, यमक, मण्डल और पञ्चांगी हैं। इनमें से जो जहाँ उपयुक्त हो, उसे शिथिल, गाढ़ एवं सम्भेद से वहाँ पर बाँधे।

बन्धन का विशेष नियम--पैत्तिक एवं रक्तज व्रण को शरद् एवं ग्रीष्म में दिन में दो बार (प्रातः-सायं) बांधे। श्लेश्मिक एवं वातिक व्रण को हेमन्त एवं वसन्त में तीन-तीन दिन से बाँधे। दूसरे दिन व्रण को कभी नहीं खोलना चाहिये।

बन्धन की आवश्यकता--बांधे बिना दंश, मशक, तृण, काष्ठ, पत्थर, मिट्टी, ठंडी वायु, धूम इत्यादि से व्रण आहत हो जाता है तथा आलेप आदि सूख जाते हैं। बाँधने से, चूर्णित, मथित, भग्न, खिसका हुआ, लटकता हुआ तथा कटी हुई अस्थि स्नायु शिरा वाला शीघ्र जुड़ जाता है। व्रणी सुख से सोता, चलता एवं बैठता है और शय्या आसनादि पर सुखपूर्वक बैठे हुए का व्रण सुखपूर्वक भर जाता है एवं मक्खियों द्वारा कृमि नहीं रखे जा सकते।

बन्धन निषेध--बन्धन से उपर्युक्त लाभ होते हुए भी पित्त, रक्त, अभिघात, एवं विष से उत्पन्न तथा शोथ, जलन, पाक, लालिमा, तोद एवं पीड़ा से युक्त तथा क्षाराग्नि दग्ध और पक कर गले हुए मांसवाले व्रण को न बाँधे।

पट्टी बाँधकर व्रणित को व्रणितागार (वार्ड) में प्रविष्ट कर दे वह आगार 'निष्कपालानिरुपला कृमिवल्मीक वर्जिता' आदि गुणों वाली भूमि में वास्तु विद्या कुशल द्वारा बना हुआ होना चाहिये।

ऐसे आगार में अच्छी प्रकार बिछाये हुए कोमल एवं सुन्दर बिस्तरों पर पूर्व की ओर शिर करके पास में शस्त्र

रखता हुआ शयन करे। पास में अनुकूल एवं प्रिय बोलने वाले मित्र इच्छानुसार ठहरें।

दिन में न सोये--दिन में सोने से व्रण में कण्डू, शोथ, ललाई एवं अधिक स्राव होता है और गात्र भारी हो जाते हैं। उठने, बैठने, करवट बदलने, टहलने, जोर से बोलने आदि आत्म चेष्टाओं में सावधान रहता हुआ व्रण की रक्षा करे।

गम्य स्त्रियों को देखना, बोलना, एवं स्पर्श करना दूर से ही छोड़ दे।

भोजन व्यवस्था--जीर्णशालि, ओदन, स्निग्ध, अल्प ऊष्ण एवं द्रव प्रधान द्रव्य, जाङ्गल मांसादि, चौलाई, बथुआ, मूली, बैंगन, करेला, परवल, मूंग आदि का सेवन करना चाहिये तथा नवधान्य, माष, तिलादि तक्रान्त वर्ग, दोष पैदा करने वाला एवं पूय को बढ़ाने वाला होने के कारण व्रणी को छोड़ देना चाहिये। मद्यपेयी को, अम्ल, रूक्ष, तीक्ष्णादि गुणों से युक्त मद्य, मैरेय, आसवारिष्ट तथा सीधु विकारों को छोड़ देना चाहिय।

परिश्रम करने से व्रण में शोथ हो जाता है। जागरण से शोथ एवं ललाई दोनों ही जाते हैं। दिन में सोने से शोथ, ललाई तथा पीड़ा ये तीनों और मैथुन से शोथ, ललाई, पीड़ा तथा मृत्यु तक हो जाते हैं। इसीलिये व्रणी को पथ्य सेवी रहना चाहिये।

सामान्य रूप से व्रण की ६० चिकित्साएँ होती हैं---

अपतर्पण, आलेप, परिषेक, अभ्यङ्ग, स्वेद, विमलापन, उपनाह, पाचन, विस्रावण, स्नेह, वमन, विरेचन, छेदन, भेदन, दारण, लेखन, एषण, आहरण, व्यधन, सीवन, सन्धान, पीड़न, शोणितस्थापन, निर्वापण, उत्कारिका, कषाय, वर्ति, कल्क, सर्पिः, तैल, रसक्रिया, अवचूर्ण, व्रणधूपन, उत्सादन, अवसादन, मृदुकर्म, दारुणकर्म, क्षारकर्म, अग्निकर्म, कृष्णकर्म, पाण्डुकर्म, प्रतिसारण, रोमसञ्जनन, लोमापहरण, बस्ति कर्म, उत्तर बस्ति कर्म, बन्ध, पत्रादान, कृमिघ्न, वृंहण, विषघ्न, शिरोविरेचन, नस्य, कवलधारण, धूम, मधुसर्पि, यन्त्र, आहार और रक्षा विधान।

संक्षेप से---व्रण के, वात, पित्त, कफ, रक्त, सन्निपात और आगन्तुक ये छः कारण होते हैं। गन्ध, वर्ण, आश्राव, वेदना और आकृति अथवा वात, पित्त, कफ, सन्निपात और आगन्तुक इन पांच लक्षणों से युक्त त्वचा, मांस, शिरा, स्नायु, सन्धि, अस्थि, कोष्ठ और मर्म इन आठ अधिष्ठानों वाला, अपतर्पणादि ६० उपक्रमों वाला तथा वैद्य, रोगी, औषध और परिचारकों से सिद्ध होने वाला होता है।

विस्तारपूर्वक--लिङ्गनाश, अर्म, पक्ष्मकोप, वर्त्मरोग, सद्योव्रण, भग्न, अर्श, अश्मरी, भगन्दर, मूढ़गर्भ, कोष्ठनिर्गतान्त्र, वृद्धिरोग, शिराव्यध एवं जलोदर में जलस्रावादि की शस्त्र क्रिया तत्तत्स्थानों में स्पष्ट एवं सरल रूप से दी हुई है।

इनमें से भी उदाहरणार्थ केवल लिङ्गनाश (कटरैक्ट) की शस्त्र चिकित्सा निम्न निर्दिष्ट है:--

व्यधयोग्य लिङ्गनाश--अच्छी प्रकार से घनीभूत, अर्थात् कफ के पिण्ड की तरह से दृश्यमान्, जिससे दिखलाई देना बन्द हो गया हो, कफ का हो और आवर्तकी, शर्करा, राजीमती, छिन्नांशुका, चन्द्रकी, छत्रकी इन उपद्रवों से रहित हो।

अव्यध्यलिङ्गनाश के रोगी---बाल, जीर्ण, रूक्ष, क्षतक्षीण, भीरु, परिश्रान्त, मद्य-मार्ग तथा स्त्री से कर्षित, वमन किया हुआ, विरेचन लिया हुआ, निरूह एवं अनुवासित वस्ति लिया हुआ, जगा हुआ, कृशगर्भिणी, कास, श्वास, शोष, अधिक ज्वर, आक्षेपक, पक्षाघात, उपवास, प्यास एवं मूर्च्छा से पीड़ित, पीनस का रोगी, अजीर्णी, शिर, कान और आंख में शूल वाले का व्यध न करे।

व्यध विधि--बादल इत्यादि से रहित साधारण समय में, शुद्ध आहार कराके मध्याह्न पूर्व के समय में रोगी को मुलायम विस्तरों पर सूर्य की ओर मुंह करके दोनों पैर फैलाकर बिठा दे। वैद्य घुटनों जितनी ऊंचाई वाले आसन पर बैठ जाय। रोगी को अच्छी प्रकार से यन्त्रित करके मुख की वायु से आंख को स्विन्न कर दे। अंगूठे से आंख को मलने पर मल को ऊंचा उठा हुआ देखकर अपनी नाक को देखते हुए रोगी को शिरःकम्पादि से वर्जित करके काले भाग से आधी और अपाङ्ग से चौथाई अंगुल छोड़ कर शलाका को अंगूठे, तर्जनी और मध्यमा से निश्चल पकड़कर दैव छिद्र के पास से ऊपर की ओर खिसकाते हुए की तरह से बायें को दाहिने और दाहिने को बायें हाथ से वेधन करे।

ठीक विद्ध होने पर कुछ शब्द-सा होता है और पीड़ा न होते हुए थोड़ा-सा पानी निकलता है। इतना होने पर रोगी को सान्त्वना देते हुए नेत्र को दूध से सींचे। फिर शलाका के अग्रभाग से नेत्र मण्डल को लेखन करता

हुआ उस कफ को नासा की ओर लेजाकर रोगी से उच्छिङ्घन करवा कर निकलवा दे। यदि वह कफ न निकले या विशेष निकल जाये तो आंख को बाहर से स्वेदित करे।

जब आंख से रूप (अंगुली इत्यादि) दिखलाई देने लगे तब धीरे से शलाका को निकाल कर आंख पर घृत से भीगी हुई रूई रखे और पट्टी बांधकर निवात स्थान में शिर और पैरों को घी से चुपड़ कर व्यध के विपरीत पार्श्व से सुला दे। यदि एक साथ दोनों नेत्रों को व्यध करे तो सीधा सुला कर हिताचार का सेवन कराये।

विशेष यन्त्रणा— सात दिन तक, छींक, खाँसी, उद्गार, थूकना, जलपान, नीचा मुंह करके बैठना, स्नान, दतौन और दांतों से चबाकर खाना इत्यादि की मनाही कर दे।

साधारण यन्त्रणा—स्नेह पीत की तरह रखे, यथाशक्ति लङ्घन कराये। यदि पीड़ा हो तो कोष्ठ घृत से सेंके। खिचड़ी इत्यादि घृत सहित पतले द्रव्यों का सेवन करें। तीसरे दिन खोलकर वातघ्न द्रव्यों के क्वाथ से आंख को सींचकर पूर्ववत् पट्टी बांध दे। इस प्रकार करते हुए सातवें दिन पट्टी सर्वथा खोल दे। जबतक दृष्टि स्थिर न हो जाय तब तक इसी प्रकार से रहे और सूक्ष्म एवं दीप्त रूपों को सहसा न देखें।

अहित द्रव्यों के सेवन से अथवा व्यध के दोष से आंख में शोथ, ललाई, पीड़ा तथा अधिमन्थ (घूबा) इत्यादि हो जाते हैं, उनकी यथोक्त चिकित्सा करें।

इसी प्रकार तत्तत्स्थानों में उपर्युक्त प्रत्येक व्याधि का शस्त्र कर्म दिया हुआ है। केवल इतना सा उदाहरण रूप में दिखलाया है। इस समय आयुर्वेद में जो इस विषय का लोप-सा दिखलाई दे रहा है, उसका मूल कारण सरकार की उपेक्षा ही है। मध्यकाल में भी इस पर अनेकानेक वज्रपात हुए हैं। भारतीय शासक भी बौद्धमतानुयायी होने के कारण शल्यकर्म तथा शवच्छेदादि से घृणा करने लग गये थे और धीरे-धीरे इस विद्या का लोप होता चला गया और आज वह लुप्त प्रायः सी हो गई।

अब हमारी सरकार से प्रार्थना है कि इसके साथ विमाता का सा वर्ताव छोड़कर इस शाश्वत आयुर्वेद रूपी गुप्तनिधि में छिपे हुए अनेक जाज्वल्यमान रत्नों को ढूंढकर देश के लाभार्थ प्रयुक्त करे जिससे कि ऐहिक और आयुस्मिक श्रेयान् मार्ग की प्राप्ति हो।

शेषांश] **नेत्र रोगों के कारण और चिकित्सा** [५८३ पृष्ट का

जिन लोगों को कब्ज नहीं रहता हो, केवल नेत्र-ज्योति ही कमजोर हो तो उनको त्रिफला जल से केवल आँखें ही धोनी चाहिये, पीना नहीं चाहिये। इस प्रयोग के लगातार एक, दो, तीन अथवा रोग अधिक हो तो चार-छः मास के सेवन से ही इतना अधिक लाभ होता है कि चश्मा लगाने की शिकायत बिलकुल ही दूर हो जाती है और नेत्र ज्योति अत्यन्त बढ़ जाती है। इसके सिवा पढ़ते समय आँखों से पानी ढलना, आँखों का दुखना, आँखों का हमेशा सुर्ख बने रहना, आँखों में रोहे पड़ जाना और पलकों का भारी पड़ जाना, आदि-आदि बीमारियाँ इस प्रयोग के सेवन से समूल नष्ट हो जाती हैं। यह वैद्यक का अनेकों बार नहीं अपितु हजारों बार परीक्षित किया हुआ प्रयोग है। प्रयोग करने पर इसके जितने लाभ मालूम होंगे वे लिखे नहीं जा सकते। इसका प्रयोग करके अनुभव करना चाहिये।

प्रयोग नं० ३—जिनकी आँखें बहुत कमजोर हो अथवा आँखों के अनेक रोग हों उन्हें त्रिफला जल के प्रयोग के साथ-साथ "त्रिफलाद्यघृत" का प्रयोग भी करना चाहिये। आँखों को धोने के पश्चात प्रातःकाल "त्रिफलाद्यघृत" २ तोला को पाव भर गर्म दूध में मिश्री मिलाकर अथवा यदि दूध नहीं मिले, तो उस घृत में २ तोले मिश्री मिलाकर खा लेना चाहिये।

इसी प्रकार इस घृत का प्रयोग रात्रि को सोने से एक घण्टा पूर्व भी करना चाहिये—अर्थात् त्रिफलाद्यघृत प्रातः और रात्रि को दोनों समय खाना चाहिये। इस घृत के प्रयोग से न केवल नेत्र रोगों को ही लाभ होगा अपितु मस्तिष्क और वीर्य विकारों (प्रमेह स्वप्नदोष आदि) को भी लाभ होता है। स्मरण-शक्ति बढ़ती है, शरीर में बल-वीर्य का संचार होता है। इस घृत का प्रयोग नवयुवकों को, जो विद्यार्थी अवस्था में हों, अवश्य ही करना चाहिये। यह घृत अच्छे-अच्छे वैद्यराजों के यहां हर समय बना हुआ तैयार मिलता है, अथवा यदि समय पर नहीं हो तो शीघ्र ही तैय्यार कराया जा सकता है। हम तो यहाँ इस "त्रिफलाद्यघृत" का योग (नुसखा) भी लिख देते परन्तु नुसखा लिखने पर भी वैद्यों के सिवा उसे हर एक मनुष्य तय्यार नहीं कर सकता, इस कारण लिखना आवश्यक नहीं समझा।

पथ्य—त्रिफला जल से आँखों को धोने और त्रिफला घृत का प्रयोग करते समय तक अजीर्णकारक आहार, गुड़, तेल, खटाई, लाल मिर्च और बासी, इन पदार्थों का प्रयोग नहीं करना तथा मैथुन का परित्याग करना चाहिये।

सूर्य-नमस्कार और राजयक्ष्मा

श्री वासुदेव भा० घाणेकर

राजयक्ष्मा के प्रतिषेध में फुप्फुसों का आरोग्य जितने महत्व का है, उतना ही इस रोग की चिकित्सा में सूर्य-देवता का महत्व है। सब जानते हैं कि यक्ष्मा के दण्डाणु (Bacillus) निर्बल फुप्फुसों पर सरलतापूर्वक आक्रमण करते हैं। ऐसे फुप्फुस जो व्यायाम द्वारा सबल नहीं हुए रहते या जिन पर किसी प्रकार के शारीरिक परिश्रम का संस्कार नहीं हुआ रहता, उनके शीर्ष (Apex) में रोग के जीवाणु बहुधा डेरा जमा लेते हैं। शुद्ध वायु में, योग्य मात्रा में व्यायाम करने वालों के फुप्फुसों का प्रत्येक भाग कार्यरत रहता है। परंतु कभी व्यायाम न करने वालों के फुप्फुसों का शीर्ष निष्क्रिय ही रह जाता है। इससे वहाँ रोग के जीवाणु सरलता से पनप सकते हैं।

सूर्य-भगवान रोगों के शत्रु और मनुष्य जाति के महान मित्र[1] हैं; यह बात हमारे प्राचीन पूर्वजों को स्पष्ट रूप से ज्ञात थी। इस बात के अनेक उदाहरण ऋग्वेद, अथर्ववेद, उपनिषद् आदि आर्ष ग्रंथों में मिलते हैं। यह देखा गया है कि यक्ष्मा के दण्डाणु सूर्य-किरणों में अधिक काल तक जीवित नहीं रह पाते और सरलता से मर जाते हैं। यह भी अब सिद्ध हो चुका है कि सूर्य-किरणों के कारण हमारे शरीर में (त्वचा में) विविध रासायनिक परिवर्तन (जैसे Ergosterol का Vitamin D में) होते हैं, जो स्वास्थ्य के लिये हितकर होते हैं।

इन सब बातों को ध्यान में रखकर ही कदाचित हमारे ऋषियों ने 'सूर्य नमस्कार' जैसे दिव्य व्यायाम को दिन-चर्या में स्थान दिया। सूर्य-नमस्कार केवल शारीरिक व्यायाम ही नहीं है, अपितु उसमें मानसिक-सक्रियता का भी समावेश है। सूर्य नमस्कार के समय जो विविध मन्त्र उच्चारित होते हैं, उनके अर्थ पर यदि ध्यान दिया जाय तो स्पष्ट हो जायेगा कि सूर्य-नमस्कार करने वाले को केवल व्यायाम ही नहीं करना है, बल्कि मन को भी उस कार्य में लगाना है।". "आदित्यस्य नमस्कारान्. . .।।"' 'अकालमृत्युहरणं. . .।।" आदि मंत्र कहकर श्रद्धापूर्वक ग्रहण किया हुआ जल निश्चित रूप से इप्सित फल देता है। आजकल की प्राण-चिकित्सा (Psychotherapy) मेस्मेरिज्म, में कोई नयी बात नहीं होती हैं। उनमें भी ये ही सिद्धांत हैं। अतः निष्ठापूर्वक सूर्य-नमस्कार का व्यायाम करने वाले को किसी भी रोग का, विशेषतः यक्ष्मा का भय क्यों रहे? उसका मन और शरीर दोनों इस अनुकूल नहीं कि रोग आक्रमण कर पनप सके।

सूर्य-नमस्कार ऐसा व्यायाम है, जिसमें श्वास-निश्वास की पद्धति और शरीर की विविध झुकने की स्थितियों के कारण पूरे फुप्फुसों को व्यायाम मिलता है, और उनका कोई भाग निष्क्रिय नहीं रह पाता। यही कारण है कि सूर्य-नमस्कार, यक्ष्मा से बचने की दृष्टि से, एक महत्व का साधन है। आजकल यक्ष्मा प्रतिबन्धक जो अनेक आन्दोलन या योजनाएं चल रहीं हैं, उनमें सूर्य-नमस्कार को भी योग्य स्थान मिलना तथा पाठशालाओं, विद्यालयों में उसका उचित उपयोग होना अत्यंत आवश्यक है।

सूर्य-रश्मियों द्वारा यक्ष्मा की चिकित्सा सर्व-ज्ञात है। सूर्य किरणों में स्थित नीललोहितातीत (Ultra violet) किरणों का शरीर तथा फुप्फुसों पर बहुत हितकर परिणाम होता है। इसी परिणाम का उपयोग सूर्य-नमस्कार में होता है। प्रातःकाल के शुद्ध वातावरण में, पूर्वाभिमुख होकर सूर्य-किरणों में सूर्य-नमस्कार का व्यायाम करना कितना आरोग्यदायक तथा हितकर है, यह कोई भी साधारण पाठक कल्पना कर सकता है। हमारे महान् पूर्वजों ने इस व्यायाम में अनेक दृष्य-अदृश्य तत्वों का समावेश किया है। धार्मिक कार्य का रुप देकर

---

(१) उद्यन्नद्यमित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्। हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय।। —ऋग्वेद

यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहंत्वत्।। —अथर्व०

मित्र, रवि, सूर्य इत्यादि द्वादश नामों के अर्थ से भी इस बात की पुष्टि होती है।

आदित्यस्य नमस्कारान्ये कुर्वंति दिने दिने।
जन्मांतर सहस्रेसु दारिद्यंनोपजायते।।
अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधि विनाशन्।
सूर्यपादोदकं तीर्थं जठरे धारयाम्यहम्।।

शारीरिक और मानसिक (आत्मिक) आरोग्य प्राप्त करने की इस युक्ति को देखकर मति दंग रह जाती है।

यक्ष्मा के सहायक कारणों में कभी-कभी अति-व्यायाम भी बड़े महत्व का होता है। मर्यादा से अधिक मात्रा में या अपनी शक्ति से बहुत अधिक बल का व्यायाम करने का प्रयत्न करने वालों को उरःक्षत या यक्ष्मा होने की संभावना होती है। प्राविण्य (Championship) पाने के हेतु मल्लयुद्ध, भारोद्वाहन (Weight lifting) आदि में "अतियोग" करके अपना स्वास्थ्य खो बैठने वालों के उदाहरण लोग जानते हैं। सूर्यनमस्कार एक सौम्य प्रकार (Mild type) का व्यायाम है, जो व्यक्तिगत (Individualisic) होने के कारण, यह व्यायाम करने वाले को उपर्युक्त हानियाँ होने का भय बहुत कम रहता है। यह व्यायाम अधिक होने पर भी हानि कम मात्रा में होती है, अर्थात् अधिक व्यायाम न करना, सदा उत्तम मार्ग है।

देश में अब शारीरिक-शिक्षण (Physical Education) का कार्य धीरे-धीरे उन्नति के पथ पर है। उस कार्य के अन्तर्गत, अन्य व्यायाम पद्धतियों के साथ ही, हमारी देशी (Indigenous) व्यायाम-पद्धति को भी योग्य स्थान मिल रहा है। देशी-पद्धति में सूर्य-नमस्कार का स्थान बहुत ऊँचा होने के कारण, उसको योग्य महत्व मिल भी रहा है। यक्ष्मा का दैत्य देश में दिन दूना रात चौगुना हाथ-पैर पसार रहा है, ऐसी परिस्थिति में बालकों तथा नवयुवकों को इस रोग के चंगुल से बचाने के लिये, सूर्य-नमस्कार का साधन लाभदायक होगा इसमें कोई भी संदेह नहीं।

अतः यह बात स्पष्ट हो जाती है कि देश के आरोग्य-विषयक कार्यक्रम में 'सूर्य-नमस्कार' को योग्य स्थान मिलना आवश्यक है। यक्ष्मा की दृष्टि से, यह व्यायाम पाठशालाओं के युवकों को कराने की विशेष आवश्यकता है। पाठशालाओं में शारीरिक-क्रीडाओं का जो घण्टा होता है, उसमें अन्य शारीरिक-योगों (Calisthenics) के साथ ही सूर्य नमस्कार का भी समावेश होना चाहिये। साथ ही, योग्य नेतृत्व और मार्ग दर्शन का महत्व भी है। शारीरिक-शिक्षक इस दृष्टि से बहुत महत्व का कार्य करता है। उसे चाहिये कि वह विद्यार्थियों को सूर्य-नमस्कार का व्यायाम, आवश्यक शारीरिक और मानसिक सक्रियता के साथ करावे, जिससे वे अधिक से अधिक लाभ उठाकर जीवन सफल बना सकें। व्यायाम कराने के साथ ही विद्यार्थियों को उस विषय में बातें बताकर समझाना भी उतने ही महत्व का है। व्यायाम की विशिष्ट कार्य-पद्धति की चर्चा, उसके लाभ, अशुद्धियाँ आदि समझाने और उस पर चर्चा करने से भी विद्यार्थियों का तद्विषयक ज्ञान बढ़ता है और वे अधिक लाभ उठा सकते हैं।

जटाशंकरी

वैद्यरत्न कविराज प्रताप सिंह

भारतवर्ष में वनस्पतियों की पूर्णरूप से खोज की जाय तो अनेक वनस्पतियाँ ऐसी चमत्कारगुण विशिष्ट प्राप्त हो सकती है, जिनके रोग नाशक प्रभाव को देखकर जगत् के चिकित्सक आश्चर्य चकित हो सकते हैं। ऐसी एक वनस्पति का यहाँ परिचय दिया जाता है। जटाशंकरी का उल्लेख प्राप्य निघण्टु ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं हैं। यह वनस्पति मरुभूमि की रूक्ष स्थलियों में पाषाणों को दरारों में उत्पन्न होती है। इसके पत्र यव सदृश दीर्घ हरितवर्ण एक मध्य डंठल के उभय पक्षपर लगते हैं और फोड़-फोड़ पर वृद्धिशील होकर जटा-सी आकृति बना लेते हैं। इसीलिये किसी विज्ञ ने इस का नामकरण जटाशंकरी किया है। अतसी पुष्पवत् सुन्दर छोटा-सा फूल अग्रभाग में निकलता है, फल इसके अभीतक देखे नहीं गये हैं। यह वनस्पति गमलों में लगाई जा सकती है। प्रायः अनेक बागों में और बागवाले बंगलों में भी यह लगाई जाती है। कहीं-कहीं लोग इसे बिछुआबूटी कहते हैं। बिच्छू के काटने पर यह लगाने से कुछ शान्ति मिलती हैं।

मुझे इस बूटी का ज्ञान एक रिटायर्ड पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट से मारवाड़ में आयुर्वेद विभाग के अध्यक्षीय दौरे में प्राप्त हुआ। उक्त सज्जन को डाकुओं के सरदार से इस वनस्पति का ज्ञान हुआ था। तब से वे इस का प्रचार करते हैं और हजारों रोगियों का उपकार किया है।

मैं इस वनस्पति का ३-४ वर्षों से उपयोग करर हा हूँ। छः-छः इंच गहरे नाडीव्रण इसके उपयोग से शुद्ध होकर पूर्ण हो गये हैं। केवल इतना ही करना पड़ता है कि शुद्ध शिला पर इसके पत्र को पीस कर शलाका यन्त्र से नाड़ीव्रण के अन्दर भर दिया जाय और ऊपर से केले का पत्र देकर पट्टी बाँध दी जाय। धीरे-धीरे घाव अन्दर से भरता चला आयगा। समय रोगी की शक्ति और रोग की जीर्णता पर निर्भर है। मेने इसका प्रयोग क्षय रोगियों के नाड़ीव्रणों पर भी सफलता के साथ किया है। क्षय रोगियों को मैं विश्वेश्वर रस, स्वर्णभूपति और गांगेरू की मूलत्वक का प्रयोग भी उचित मात्रा में कराता हूँ।

इस समय मैं आतुरालय में रोगियों को रखकर इस वनस्पति का विशेष अनुसन्धान कर रहा हूँ पर महर्षि आत्रेय के उपदेशानुसार "परीक्षकैर्बहुभिः परीक्षितमाप्त वाक्यम्" वैद्य समाज अनुभव कर के सचित्र आयुर्वेद द्वारा अपना-अपना अनुभव प्रकाशित करें तदर्थ इस का प्रकाशन कर रहा हूँ। इस वनस्पति में एक यह विशेषता है कि इसके काण्ड पर पीछे की परफ श्वेतवर्ण के रोम होते हैं और यह वनस्पति १०-१५ दिनों तक हरी बनी रहती है। इसी प्रकार की एक वनस्पति मध्य भारत में प्रयुक्त होती है उसे "साबर बेला" कहते हैं। यह केवल हरे रंग के कांड में ही होती है। किसी प्रकार के पत्र नहीं आते। यह जंगलों में पाई जाती है पर उखाड कर लगाने से गमलों में भी लग जाती है। स्नही की तरह इस के पतले-पतले हरे कांडों से श्वेत वर्ण का दुग्ध का-सा द्रव निकलता है। वात नाडियों और सन्धियों के शोथ युक्त शूल पर यह अच्छा कार्य करता हैं। एक तोला से ढाई तोला तक इसे २० काली मिर्च के साथ पीसकर पिलाने से शोथ शूल शीघ्र दूर हो जाता है। यहाँ प्रसिद्ध मेडिकल कालेज के एक सर्जन को पादशूल सव्रण हो गया था, जिस का निदान यहाँ के धुरंधर शल्य चिकित्सक नहीं कर सके और इंग्लेण्ड अमेरिका जाकर चिकित्सा कराने का निश्चय किया गया। पर एक वैद्य की कृपा से इस वनस्पति के सेवन कराने से पूर्णरूप से रोग नष्ट हो गया। यात्रा के कष्ट के साथ-साथ सहस्रों के व्यय की रक्षा हो गई और आयुर्वेद पर विश्वास हो गया।

यहाँ के प्रसिद्ध आयुर्वेदीय जगत के ख्यातनामा वैद्य ख्याली रामजी महाराज भी इस वनस्पति का अनुभव कर चुके हैं। इसकी प्राप्ति का विशद वर्णन उन से प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ के वनस्पति उपवन में इस के लगाने का प्रयत्न किया जा रहा है। देखने में यह वनस्पति अत्यन्त हरे वर्ण की नयानभिराम होती है। इसकी जीवन शक्ति भी अत्यधिक हैं। अत्यल्प जल में भी यह जीवित रह सकती है। यह कन्द रोहिणी है।

श्री धन्वन्तरि-मन्दिर-यात्रा

आयुर्वेदाचार्य पं० वासुदेव शास्त्री

कुछ मास पूर्व मुझे उज्जैन जिला आयुर्वेद मंडल के तहसील वैद्य मंडल के संगठनार्थ महत्पुर जाना पड़ा था। वहां मुझे एक अति प्राचीन महत्वपूर्ण धनवन्तरि मंदिर के दर्शन का सुयोग प्राप्त हुआ।

महित्पुर क्षिप्रा के तट पर बसा हुआ एक सुन्दर नगर है। यहाँ क्षिप्रा का विशाल तट गंभीर निर्मल जल से बड़ा ही रमणीय एवं चित्ताकर्षक मालूम पड़ता है। यह नगर प्राचीन एवं ऐतिहासिक महत्व प्राप्त है। प्राचीन नाम इसका मणिपुर है। यहां भस्म टेकरी नाम से अति प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ राजा बब्रुवाहन ने अश्वमेध यज्ञ किया था। उसी की यज्ञ शेष यह भस्म टेकरी है। आज भी बड़ी श्रद्धा से जनता यह भस्म धारण करती है। पास ही वह स्थान है जहां गुरूकुल में कृष्ण-सुदामा अध्ययन करते थे और गुरू के लिये जंगल से मूली लाते थे। मुख्य तो यहां प्राचीन दर्शनीय धन्वन्तरि मंदिर है, जिसके लिये अनेक दिनों से दर्शन की इच्छा थी।

धन्वन्तरि मंदिर का यह स्थान महित्पुर से उत्तर को ओर पक्की सड़क से ६ मील तथा कच्ची सड़क से ५ मील पड़ता है। हमलोगों ने प्राकृतिक सौंदर्य बन शोभा तथा बन-ओषधियों के अवलोकन के लिये पैदल ही कच्चे रास्ते से यात्रा प्रारंभ की।

बन को पार करते हुए बनओषधियों के गुण-धर्म परिचय की चर्चा करते हुए लता प्रतानोदग्रथित बन बीथियों को पार करते हुए करमर्द के नवविकसित शुभ्र पुष्पों की सुरभि का आनन्द लेते हुए हम धन्वन्तरि मंदिर पर पहुंचे। मन्दिर सघन बीहड़ बन की पर्वत चोटी के कक्ष में शिखराकार अवस्थित है। मंदिर का बाहर का दृश्य भव्य एवं मनोरम है। मार्ग में हमें बनस्पतियां मेषशृंगी शंख-पुष्पी गुड़मार, अधोपुष्पी, वलाचतुष्टय, रक्तमुंडी, शालूक कन्द, दन्ती आदि देखने को मिली। आश्चर्य हुआ कि इस भयंकर बीहड़ बन में इस धन्वन्तरि मंदिर का निर्माण क्यों हुआ, कब हुआ और यह कौन से धन्वन्तरि हैं आदि जिज्ञासा उत्पन्न होने लगी।

मंदिर का निर्माण बहुत प्राचीन मालूम पड़ता है। जीर्ण मंदिर के प्राचीन पत्थरों से ही वर्तमान नवीन सुन्दर मन्दिर का निर्माण हुआ है जिसको लगभग १२ वर्ष हुए हैं। मन्दिर की प्राचीनता विक्रमकालीन प्रतीत होती है। मन्दिर पर आते ही सघन छाया एवं रमणीय वातावरण से हमारी सारी कठिन यात्रा आनन्द, शान्ति एवं प्रसन्नता में परिणत हो गई। मंदिर भीतर से अधिक विस्तृत नहीं है। मंदिर के सम्मुख ही भगवान धन्वन्तरि की सुन्दर पाषाणमयी प्रतिमा बड़ी ही भव्य तेजस्वी एवं सुन्दर कलापूर्ण है। मस्तक पर मुकुट, गले में माला, हस्त में अमृत कलश तथा वनौषध धारण किये हुये हैं। मंदिर प्राचीन कालीन संस्कृति का परिचय दे रहा है। सम्भवतः भारतवर्ष भर में धन्वन्तरि की इतनी प्राचीन एवं प्रतिमा सहित यह मंदिर प्रथम स्थान अधिकार करता है। यहां एक गुंसाईनाथ नामक मंदिर का पुजारी है जो दिन को यहां रहता है, रात्रि को २ मील दूर ग्राम में चला जाता है। उससे जानकारी प्राप्त की। मंदिर की पूजा के निमित्त सरकार से जमीन मिली हुई है। मंदिर से दो मील दूर और एक ग्राम है जिसका नाम बैद्यनाथ है। इस मंदिर के विषय में हस्त लिखित प्राचीन पुस्तक है, वह हमें प्राप्त न हो सकी; परन्तु मालूम हुआ कि धन्वन्तरि ने अवन्तिका खण्ड से यहां आकर गम्भीर वनओषधियों से भरपूर इस महावन में चातुर्मास निवास किया था। १२०० वनोषधियों की यहां शोध की थी। अनुमान होता है 'शरद्याखिल कार्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम:' के अनुसार बनोषधियों की परिपक्वावस्था तक धन्वन्तरि का निवास यहां रहा हो। हेमन्त विसर्ग काल तक यहां निवास रहा हो क्योंकि पौष मास में यहां एक बड़ा मेला लगता है। संभवतः विसर्ग काल में धन्वन्तरि के निवास के समय जनता ने रोग निवारण के लिये तथा शक्ति वर्धन के लिये दिव्य ओषधियों का उपयोग एवं लाभ लिया होगा और उसी निमित्त से यह मेले की परम्परा चल रही हो। मंदिर सघन वृक्षावलि के मध्य में स्थित है। मंदिर के पास ही एक जल स्रोत है जो सदैव अविरल सुन्दर स्वच्छ सुस्वादु एवं आरोग्य वर्धक है। यहां की वायु अत्यंत सुख स्पर्श शान्ति प्रसन्नता एवं स्वास्थ्य वर्धक प्रतीत होती है। अतः ऐसे प्राचीन ऐतिहासिक धन्वन्तरि के स्मृति रूप में इस मंदिर की गवेषणा एवं खोज होनी चाहिये। पुरातत्व विभाग द्वारा इसका शोध किया जावे तो अवश्य महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त होगा, यद्यपि यहां कोई शिलालेख प्राप्त नहीं हुआ। यदि इसका पूर्ण प्राचीन इतिहास प्राप्त हो जाय, तो यह स्थान वैद्यों तथा जनता के लिये एक पवित्र तीर्थ-स्वरूप धारण कर सकता है। यह उज्जैन जिले के लिये एक गौरवमय स्थान प्राप्त करेगा। उसी प्रकार उज्जैन जिले के झोंकर ग्राम में एक धन्वन्तरि टेकारी नाम से प्रसिद्ध है जहां नाग-पंचमी को मेला लगता है। यह स्थान भी पहाड़ी के अति उच्च शिखर पर मन्दिर के रूप में अवस्थित है। ऐसे प्राचीन ऐतिहासिक स्थानों का अन्वेषण और शोध होना अत्यन्त आवश्यक है।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के रायगढ़ बिक्री-केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के पुरुलिया बिक्री-केन्द्र में धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह का एक समूह चित्र।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के कांकीनाड़ा स्थित बिक्री केन्द्र में अनुष्ठित धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर गृहीत चित्र में (बायें से), पं० सभाकान्त झा वैद्यशास्त्री, श्री [illegible]मावतार शर्मा, पं० वेणीप्रसाद वैद्य, श्री गंगाधर [illegible] दिख रहे हैं।

तम्बाकू का स्वास्थ्य पर प्रभाव

आचार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा, विद्यावाचस्पति

तमाल (तम्बाक) एक विदेशी वस्तु है। १४९२ ई० तक इसका उपयोग अमेरिका निवासियों तक ही था। अमेरिकी तम्बाकू की बड़ी इज्जत करते थे, क्योंकि उन्हें यह विश्वास था कि इसमें अनेक गुण हैं। १५०२ ई० में दक्षिण अमेरिका में स्पेनिश लोगों ने भी तम्बाक खाना आरम्भ कर दिया था। इस तरह स्पेन में इसका प्रचुर प्रचार हुआ। इंगलैंड में इसका प्रवेश १५८६ ई० में हुआ। वहाँ पर सर वाल्टर रैले ने इसका प्रचार किया। उन्होंने वर्जिनियाँ में इसकी खेती प्रारम्भ की और वहाँ से तम्बाकू यत्र-तत्र भेजा जाने लगा।

भारत में तम्बाकू का प्रचार पुर्तगीजों ने किया। अरब, फारस, चीन प्रभृति देशों में भी इन्हीं के द्वारा प्रचार हुआ। नवाब खाँ आजज ने सर्व प्रथम पुर्त्तगीजों से तम्बाकू लिया और अकबर बादशाह को औषध रूप में भेंट की। 'तोजक जहाँगीर' में जहाँगीर ने लिखा है कि मेरे पिता बादशाह अकबर के समय अमेरिका से एक पादरी आया था। वह अपने साथ में तम्बाकू का बीज यहाँ ले आया था। कहा जाता है कि शाह अकबर ने इसे कभी न पीया, पर जनता में प्रचार हो गया। सन् १८२९ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने तम्बाकू का बहुत प्रचार किया। तब से भारत में सर्वत्र तम्बाकू दृष्टिगोचर होता है।

प्रश्न होता है कि तम्बाकू क्या है? कहते हैं तम्बाकू पौधे की एक जाति, जिसे आंग्ल भाषा में (Volaceos) कहते हैं, महाभयंकर विषैला पौधा है। भूमण्डल में इसकी कोई ५० जातियाँ हैं और सभी न्यूनाधिक परिमाण में विषैली होती है। संसार में इस समय पाँच-छः तरह का यह पाया जाता है परन्तु भारत में केवल दो तरह का ही होता है भारत में १० लाख एकड़ भूमि पर तम्बाकू की खेती होती है।

सम्प्रति भारत में ६५०० कारखाने तम्बाकू निर्माण करते हैं। भूमण्डल के सबसे बड़े कारखानों में एक कारखाना भारतवर्ष में बिहार प्रान्त के मुँगेर में है। संसार के मनुष्य जितना तम्बाकू पीते हैं, उनका मूल्य अनुमानतः ५० करोड़ रुपए हैं। तम्बाकू में निकोटाइन नामक विष होता है। एक पौण्ड तम्बाकू से ३८० ग्रेन यह विष निकलता है जो तीन सौ व्यक्तियों का प्राण हरण कर सकता है। तम्बाकू से एक महाविषैला तैल निकलता है। इसकी एक बूंद बिल्ली के पेट में चली जाए तो वह ५ मिनट में मर जायगी। इसके अतिरिक्त तम्बाकू के धुएँ में कई तरह के भयंकर विष भी होते हैं। तम्बाकू में इनके अतिरिक्त निम्नलिखित विष होते हैं:—

कार्बन मोनोक्साइड, पुसिक एसिड, पीरीडाइन, एमोनिया, कार्बोलिक एसिड, सल्फेटेड हाईड्रोजन, मैथिलामाइन, मर्शसगे, निकोलाइन, ल्युटिडाईन, कोलीडाईन, पारेवोडाईन, कोरीडाईन, रूपीडाईन, वीरीडाईन, पाईरोल, फोर्मिक बोल्डीक हाईट, फरफरोल।

इनमें चार-पाँच तो महाभयंकर विष हैं। इनकी थोड़ी-सी मात्रा शरीर में प्रविष्ट हो जाने से प्राणान्त हो जाना संभव है। जो कभी तम्बाकू नहीं पीता, उसको तम्बाकू के धुएँ से वमन होने लगता है।

प्रत्येक देश के राजाओं और धर्माधिकारियों ने इसके प्रचार का यथाशक्ति विरोध किया। तम्बाक की हानियों से परिचित होकर महारानी एलिजाबेथ नें अपने राज्य में तम्बाकू का पूर्ण निषेध करने की आज्ञा निकाल दी थी।

प्रथम राजा जेम्स ने तम्बाकू के प्रतिकूल एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक "कन्टरब्लेस्ट टू टोवाको" लिखी थी, इसमें उन्होंने विस्तार के साथ दर्शाया था कि "तम्बाकू नेत्रों के लिए घृणास्पद, नाक के लिए दुर्गन्धित, मस्तिष्क के लिए हानिप्रद, फेफड़ों के लिए शत्रु और इसका धुआँ जीवन के लिए गंभीर विपत्ति है।"

तुर्किस्तान में तम्बाकू पीने वालों के होंठ काट लिए जाते थे और सूँघने वालों की नाक।

रोम के पोप अर्बन अष्टम ने भी तम्बाकू का पीना अपराध घोषित कर दिया था।

कस्तुन्तुनियाँ में तम्बाकू पीने वाले व्यक्ति की नाक में नली को आरपार छेद कर बाजार में घुमाया जाता था।

रूस में मास्को के ग्राण्ड ड्यूक ने धूम्रपायी व्यक्ति को पहिले आर्थिक दण्ड और पुनः मृत्युदण्ड नियत किया था। स्विटजरलैण्ड में तम्बाकू पीना एक अपराध करार दिया गया था। फारस के बादशाह ने तम्बाकू के आवागमन पर अपने राज्य में रोक लगा दी थी।

अबीसीनिया के सम्राट् किंग जार्ज ने तम्बाकू सूँघने वाले की नाक काटने और पीनेवाले की गर्दन उतारने का दण्ड घोषित किया था।

भूमण्डल के सम्पूर्ण बड़े-बड़े राजे, महाराजे, डाक्टर, वैद्य, रसायन-शास्त्री और वैज्ञानिक एक स्वर से तम्बाकू का विरोध कर रहे हैं।

सिगार, सिगरेट, बीड़ी, हुक्का, गुड़गुड़ी, चिलम, आदि द्वारा तम्बाकू पीए जाते हैं। भारतीयों ने तो शरीर का कोई हिस्सा ही नहीं छोड़ा, जिससे तम्बाकू शरीर के अन्दर न पहुँचाया जा सके। इसे लोग खाने, पीने और सूंघने भी लगे। बिहार प्रान्त में तम्बाकू में चूना लगाकर खाया जाता है जिसे सुर्ती-खैनी कहते हैं। बंगाल में नस्य लेने की प्रथा है। उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों में "मैनपुरी तम्बाकू" खाई जाती है। बड़ी-बड़ी दुकानों पर "मैनपुरी तम्बाकू" की बिक्री प्रचुरमात्रा में होती है।

तम्बाकू पुरुषों की अपेक्षा नारियों के लिए हानिकर प्रमाणित हुआ है क्योंकि नारियों की वृत्तियाँ अधिक कोमल होती हैं। पुरुषों की अपेक्षा उनकी ग्राहिका-शक्ति तीक्ष्ण होती है। कई प्रयोगशालाओं में तम्बाकू से होनेवाले कुपरिणामों की परीक्षा की गई है।

डा० पेटिट ने नर और मादा दोनों प्रकार के मुर्गे और कुत्ते को भोजन के साथ मिलाकर तम्बाकू खिलाया और देखा कि उनकी जननेन्द्रिय की गाँठों को इससे क्षति पहुँची। डॉ० गी ने परीक्षा करके सिद्ध किया कि तम्बाकू से मुर्गे, कुत्ते आदि के बच्चे उत्पन्न होकर कुछ ही काल पश्चात् मर गए।

वियना के पास इगलाल नामक स्थान पर तम्बाकू के कारखानों में डा० कोस्टल ने देखा कि उन कारखानों में काम करनेवाली स्त्रियों के बच्चे अधिक जीवित नहीं रहते। एक तिहाई बच्चे प्रथम वर्ष में ही मर जाते हैं। सैकड़ा पीछे बीस के मस्तिष्क दुर्बल हो जाते हैं। उनकी नसों में विष रहता है और वे भी शीघ्र ही मर जाते हैं। डा० कोस्टल ने यह भी देखा कि बच्चों की माताओं के दूध में निकोटिन की गन्ध रहती है और उनके बच्चे निकोटिन विष के शिकार होते हैं।

पेरिस की स्त्रियाँ और स्थानों की अपेक्षा अधिक सिगरेट पीती हैं। इससे वहाँ स्त्रियों की जनेन्द्रियों की गाँठें असमय में ही निर्बल हो जाती हैं और स्त्रित्व शक्ति भी नष्ट हो जाती है। कहते हैं कि पेरिस में सिगरेट पीने वाली महिलाओं को मूँछें तक निकल आती हैं।

सिक्ख सम्प्रदाय में तम्बाकू पीना निषिद्ध है। पुराणों में धूम्रपान की अत्यन्त निन्दा की गई है :—

"प्राप्ते कलियुगे घोरे सर्वे वर्णाश्रमे नराः। तमालं भक्षितं येन स गच्छेन्नरकार्णवम्।" —ब्रह्माण्ड पुराण

अर्थात्—"कलियुग में सभी वर्णाश्रमियों में से यदि कोई भी मनुष्य तम्बाकू का सेवन करता है तो वह सीधा नरक में जाता है।

"धूमपानरते विप्रे दानं कुर्वन्ति ये नराः। दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्राम शूकरः।"

—पद्मपुराण, अ० २२

अर्थात्—धूम्रपान करने वाले ब्राह्मण को जो दान देता है वह तो नरक में जाता ही है पर उसके साथ ब्राह्मण भी गांव का सुअर बनता है।

तम्बाकू पीने वाले व्यक्ति का मस्तिष्क शुष्क हो जाता है। फेफड़े निर्बल हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त क्षय, हृदयरोग, उदरव्याधि, नेत्ररोग, नपुंसकता, उन्माद प्रभृति रोग का वह शिकार हो जाता है।

पाश्चात्य विद्वान् और धूम्रपान :—

"जब तक डाक्टर और मरीज दोनों इस बात को न समझ जायेंगे कि तम्बाकू ही उपद्रव की जड़ है, तब तक मुँह के कैन्सर का निराकरण नहीं हो सकेगा। मुंह में कैन्सर के रोग से पीड़ित होने वाले सौ में नब्बे व्यक्ति तम्बाकू पीने वाले होते हैं। मुँह के कैन्सर का एकमात्र उपचार यह है कि तम्बाकू पीना बिलकुल बन्द कर दिया जाय।" —जेम्सकोल ब्लडगुड

"वैज्ञानिक अनुसन्धान बतलाते हैं कि कैंसर-उत्पादक रसायन धूम्रपान से मुँह, पेट और फुंफ्फुसों में प्रवेश करते हैं।" —डॉ० लियोनाई एन्जिला

"कैंसर और सिगरेट का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि सभी कैंसर के रोगी बहुत अधिक सिगरेट पीनेवाले होते हैं।" —डॉ० इडविन जे० ग्रास

"ब्यूनिस आयर्स के कैंसर इन्स्टीटयूट में सहस्रों रोगियों की परीक्षा करने से ज्ञात हुआ कि फेफड़े, गले, मुँह या श्वास की नली के कैंसर के रोगियों में से ६० प्रतिशत रोगी तम्बाकू का प्रयोग करते थे।" —प्रो० रोफो

बर्कैलो विश्वविद्यालय द्वारा दिए गए डाक्टरों के एक सहभोज में जॉन्स होपफिन्स के डॉ० विलियम रेनहोफ ने बतलाया कि "स्त्रियों में फुफ्फुस के कैंसर या कर्कट के रोग में पर्याप्त वृद्धि हुई है। भविष्य में भी रोग वृद्धि की पर्याप्त आशंका दिखाई देती है, क्योंकि इधर बीस वर्षों से स्त्रियाँ भी तम्बाकू का यथेष्ट व्यवहार करने लगी हैं।"

"शीघ्र या देर से लगभग हर सिगरेट पीनेवाले को यह पता चल जाता है कि वह अपनी मर्जी से नहीं, बल्कि आदत के कारण तम्बाकू पीता है और यह आदत शायद हानिकारक है। इसलिए वह इस आदत से अपना पिण्ड छुड़ाना चाहता है, लेकिन उसे इसका रास्ता मालूम नहीं होता। कभी-कभी आधे मन से और कभी तहेदिल से वह इस आदत से झगड़ता है, लेकिन इसका कोई नतीजा नहीं निकलता।"—डॉ० हेनरी सी० लिंक, पी-एच० डी०

"तम्बाकू का विष दाँतों को हानि पहुँचाता है।" —डॉ० रशबारन

"जो स्त्रियाँ एक समय प्रसिद्ध सुन्दरी थीं, तम्बाकू के व्यसन से उन्हें शीघ्र ही वृद्ध होकर लावण्य खो देना पड़ा।" —प्रो० लाराण्ड

"केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के **डॉ० डब्ल्यू० ई० डिक्सन** ने ऐसी ५० से अधिक बीमारियों या उनके लक्षणों का वर्णन दिया है, जिनका तम्बाकू एक कारण थी।

"तम्बाकू से पाचन यन्त्रों की शुद्ध रक्त उत्पन्न करने की शक्ति कम होकर सब प्रकार के अजीर्ण सम्बन्धी रोग हो जाते हैं।" —डॉ० रगलेंस्टर

"इस बात का प्रचुर विश्वसनीय प्रमाण है कि धूम्रपान का गले, वायु नालियों और फेफड़ों पर दो तरह का असर होता है—वह स्थानीय प्रदाह उत्पन्न करता है और शरीर-गठन पर भी इसका बुरा असर होता है। स्थानीय असर धुएँ में रहे रासायनिक पदार्थों द्वारा उत्पन्न किए जाने वाली जलन से होता है। शरीर-गठन सम्बन्धी असर दो प्रकार का होता है। धूम्रपान से फेफड़ों के तन्तुओं तक रक्त के पहुँचने में रुकावट आती है और शरीर के सामान्य पोषण और बीमारी को रोकने की शक्ति पर उसका बुरा असर होता है।"—डॉ० एफ० एल० बुडकी

"तम्बाकू में निकोटिन नामक विष होता है। यदि निकोटिन की एक बूंद भी फर्श पर पड़ जाय तो कमरे भर की हवा खराब हो जाती है। फिर न जाने उन घरों की क्या हालत होती होगी, जहाँ तम्बाकू के धुएँ के बादल उमड़ा करते हैं।" —प्लेटन

"तम्बाकू पीने से श्वास-नली और फेफड़े सड़ जाते हैं।"— —प्रो० सीलीमेन

"इसके खाने से स्वर बिगड़ जाता है"—डॉ० रश।

"निकोटीन इतना भयानक विष है कि उसकी एक बूंद भी उदर में पहुँच जाए तो मनुष्य का प्राणान्त हो जाए। यह प्रयोग करके देखा गया है कि निकोटीन की आधी बूंद से बिल्ली और १ बूंद से कुत्ता तुरन्त मर गया और आठ बूंदों से घोड़ा आठ घंटों में मर गया" —डॉ० मॉथ।

"जो माता-पिता तम्बाकू का सेवन करते हैं, उनकी सन्तान अवश्य ही मानसिक और शारीरिक दुर्बलताओं का शिकार होगी।" —डॉ० रिचार्डसन

फ्रांस के प्रसिद्ध **डॉक्टर जी० सेन** ने धूम्रपान करनेवाले बालकों का परीक्षण किया तो इन बच्चों का रक्त प्रवाह बहुत क्षीण दिखाई दिया। उन्हें हृदयरोग हो चुका था, पाचन-शक्ति बिगड़ गई थी और पारी का ज्वर आने लग गया था। रक्त के लाल परमाणु नष्ट हो गए थे तथा नासिका से रक्त गिरता था। रात्रि को भरपूर निद्रा नहीं आती थी और मुँह का स्वाद बिगड़ गया था। डॉक्टर ने इन बच्चों से तम्बाकू छुड़वाया और वे छः मास के उपरान्त स्वस्थ हो गए"।

"धूम्रपान फेफड़ों के केन्सर का एक बहुत बड़ा कारण है। लगातार तम्बाकू पीनेवाले को २५ वर्ष के पश्चात् फेफड़ों का केन्सर अनिवार्य रूप से होता है"—डॉ० मैसीनने

"तम्बाकू पीने से आँखों को भारी हानि पहुँचती हैं।" —विलियम अलकाट

"जननेन्द्रिय पर इसका बुरा असर होता है। स्त्रियाँ बन्ध्या और पुरुष नपुंसक बन जाते हैं।"—डॉ० निकोलस

(शेषांश ५६८ पृष्ठ पर)

अदरक, नींबू और मूली

वैद्य सुरेन्द्रदत्त शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

'सचित्र आयुर्वेद' के पाठकों को उपर्युक्त खाद्य-पदार्थों में कई एक का फलाफल पढ़ने को मिल चुका है। फिर भी इन तीनों का संमिश्रित गुण वर्त्तमान हेमंत ऋतु में लिखना उचित समझा ताकि मनुष्य ताजे रूप में इन खाद्य पदार्थों का सेवन कर सके। अदरक-नींबू और मूली—ये तीनों सुलभ रूप में गरीबों से लेकर धनिकों को भी प्रायः मिल जाया करते हैं और सभी लोग छोटे बच्चे से लेकर बूढ़े तक इन्हें बड़े ही चाव से खाते हैं।

अदरक के गुण

अदरक को आप जहाँ चाहें, घर के आँगन से लेकर खेत तक, उसके बीज (गाँठ) को दवा दीजिये। बस कुछ ही दिनों में हाथ-डेढ़ हाथ का पौधा उग जाता है। इसे कुछ माह में ही तैयार समझिये। उखाड़ कर इस के कच्चे गाँठ को छिलका हटा कर सेवन कीजिये। इसी गाँठ के सुखे हुए पदार्थ को सोंठ कहते हैं। अदरक खाने की सामग्री होने के साथ-साथ हमारी आयुर्वेदिक दवाइयाँ प्रायः शत प्रतिशत अदरक के ही अनुपान से सेवन की जाती हैं। नित्य-प्रति कच्चा अदरक ही सब्जी-चटनी आदि के उपयोग में आता है।

निघण्टू में लिखा है—'अदरक का रस पाक में शीतल, मधुर, चरपरा, गरम, हृदय को हितकारी, अग्नि को दीपन करनेवाला, रुखा और रुचि को बढ़ानेवाला है। वीर्य-वर्द्धक, कंठ को हितकारक, मन्दाग्नि, खाँसी, श्वास, पेट फूलना, मलबंध, वमन और शूल का नाश करता है।'

भावप्रकाश में तो लिखा है कि 'सर्वदा भोजन के पूर्व अदरक और लवण का सेवन करना चाहिए। इसका सेवन अग्नि का दीपन, रुचिप्रद तथा जीभ और गले के लिये अत्यधिक हितकारी है।' इससे स्वयं सिद्ध होता है कि अदरक हमारी जीवन-नौका के लिये श्रेष्ठ उपादान पदार्थ है।

अजीर्ण रोग पर

अदरक को नींबू के रस में सेंधा नमक मिलाकर चाटना चाहिये। इससे अजीर्ण दूर होकर अग्नि प्रदीप्त होती है।

खाँसी रोग पर

अदरक-मिश्री-घृत तीनों सम मात्रा में लेकर अग्नि पर पकावे। इससे एक छोटा-सा अवलेह तैयार हो जाता है। सवेरे सायं सेवन करने से सर्दी-जुकाम और खाँसी आराम हो जाती है।

कफ रोग पर

अदरक का रस, शहद और मिश्री समभाग में एकत्र करे और उसे एक-एक चम्मच दिन में तीन बार सेवन करने से कफ बढ़ने नहीं पाता है।

शीतांग सन्निपात पर

केवल अदरक का रस एक-एक भर उष्णोदक द्वारा या मकरध्वज चार रत्ती की मात्रा में मिलाकर सेवन करावे तो शीतांग दूर हो जाता है।

सर्वशूल पर

अदरक का सूखा सोंठ १ भर, हींग दो पैसा भर, सेंधानमक मिलाकर उष्ण जल से देवें तो पेट का शूल आराम होता है।

मूर्छा पर

केवल सोंठ को घिस कर नेत्र में आँजन करने से बेहोशी दूर हो जाती है।

नींबू के गुण

प्रभावशाली सुन्दर पेय नींबू के गुणों का दिग्दर्शन पिछले अंकों में प्रकाशित हो चुका है, फिर भी इस लेख के संमिश्रण में कुछ गुणागुण लिखना आवश्यक है। नींबू इतना सुन्दर और सस्ता पदार्थ है कि इस फल के समान दूसरा शायद ही कोई फल हो। प्रायः बारहो मास यह मिला करता है, परन्तु जाड़े के दिनों में इस की अत्यधिकता रहती है। भोजन के साथ नींबू का सेवन बहुत ही लाभदायक है। इसके रस में विटामिन बहुत रहता है। शक्तिदायक भोजन सदा अम्ल प्रतियोगी होते हैं। नींबू का रस भी भोजन के द्वारा रक्त को अम्लप्रतियोगी बनाकर विषैले अम्ल द्रव्यों को नष्ट कर देता है। प्रतिदिन २ नींबू से ८ नींबू का आवश्यकतानुसार सेवन करने से रक्त शीघ्र अम्ल-मुक्त हो जाता है। अतएव नींबू अम्ल द्रव्यों की अधिकता

को रोक देता है। फिर रस के साथ रक्त में प्रविष्ट होकर यकृत् और श्लेष्मा स्थान में पहुँच जाता है और वहाँ पहुँच कर शारीरिक विकारों को छिन्न-भिन्न कर देता है, जिस से शीघ्र ही शारीरिक विकार मल-मूत्र और पसीने द्वारा बाहर हो जाते हैं।

नींबू के रस के साथ रक्त का विशेष सम्बन्ध है। रक्त को शुद्ध करने में नींबू बहुत ही प्रभावशाली अस्त्र है। नींबू कई जाति के होते हैं और प्रायः उनके गुणों में किसी न किसी प्रकार की विशेषता रहती है, किन्तु औषधियों एवं खाद्यपदार्थों में कागजी नींबू, बिजौरा नींबू और जम्बीरी नींबू का ही प्रयोग अधिक देखा जाता है और यही उपादेय तथा शक्ति वर्द्धक भी हैं।

जिस नींबू का प्रयोग किया जाय, वह खूब पका होना चाहिये। नींबू निचोड़ने के पूर्व यदि थोड़ा सा गरम कर लिया जाय तो पूरी मात्रा में रस निकल आता है और इस तरह से तो आम जनता व्यवहार करना जानती ही है। पानी में डुबाकर रख छोड़ने से नींबू सूखते नहीं है और वे ताजे बने रहते हैं। किसी तरह से सेवन करे–खाने के पहले, खाने के मध्य में या केवल पानी पीने के समय–उसका गुण सर्वदा मानव जीवन के लिए अच्छा ही रहेगा। फिर भी प्रकृति, समय और ऋतु काल आदि का ध्यान भी रखना बहुत ही जरूरी है। निघण्टु में लिखा है त्रिदोष युक्त रोग, तत्काल के ज्वर, अनेक प्रकार के मन्दाग्नि-ज्वर, मुख से पानी आना, कृमि, मलग्रह, कब्जियत और विशूचिका (हैजा) रोगों में नींबू का सेवन अत्युपयोगी है।'

साथ ही नींबू गरम-पाचक-खट्टा-दीपन नेत्रों को हित-कारी अत्यन्त रुचिकारक और भूख बढ़ानेवाला है।

दो नींबू का रस प्रतिदिन सेवन करने से विशूचिका होने का भय नहीं रहता।

पित्तज रोग पर

नींबू का रस १ भर, मिश्री अठन्नी भर मिला सेवन करने से पित्तज रोग आराम होते हैं।

नींबू के रस में चीनी का शर्बत मिलाकर सेवन करने से पित्तज शिरदर्द और वमन आराम होते हैं।

हैजा की प्यास पर

सेंधा नमक २ तोला ४ सेर पानी में औटे और उतारकर छान करके कागजी नींबू का रस २ छटांक डाल कर रखे। इसके सेवन से हैजे की प्यास की शान्ति हो जाती है।

बुखार के शिरदर्द पर

नींबू का रस, अदरक का रस, सेंधानमक, तीनों बराबर मात्रा में मिलाकर सूँघने से शिरदर्द आराम होता है।

चढ़े हुए बुखार पर

नींबू का रस खूब चूसने को देवें। इस से प्यास कम होकर बुखार उतर जाता है।

संग्रहणी-पेचिश पर

एक नींबू के दो फांक कर मूँग बराबर अफीम रख छोड़े और फिर दोनों को एकत्र कर अग्नि पर पकावे, इसे ठंढा कर रोगी को चूसने को देवे तो पेचिश दूर हो।

ज्वर में वमन हो तो

नींबू को दो फांक कर काली मिर्च और मिश्री डालकर अग्नि पर पका कर चूसे तो वमन दूर हो जाता है।

पेटदर्द पर

नींबू का रस, अदरक का रस और जरा शहद मिलाकर देवे तो पेट दर्द आराम हो जाता है।

खुजली तथा मुख की झाँई पर

फिटकिरी के साथ कागजी नींबू को रगड़ कर लगाने से ये रोग दूर होते हैं।

नींबू इस तरह का उपादेय पदार्थ है कि यह भलाई छोड़कर बुराई नहीं कर सकता।

केवल कागजी नींबू को रगड़ कर सैंधव नमक में रख छोड़े और धूप में रखे, यह वर्षों तक ऐसा ही पड़ा रहता है। इसे भोजन के समय सेवन करे। यह सुन्दर रुचिदायक पदार्थ बन जाता है।

मूली के गुण

खाद्य पदार्थों में यदि सस्ता और बहुतायत से मिलने-वाला पदार्थ है तो यही सफेद मूली है। इसे भी आम जनता बड़े ही चाव से खाती है। गरीबों के लिये तो यह अमृत तुल्य है। थोड़े से परिश्रम और कुछ ही दिनों में सुलभता से तैयार होनेवाला यह पदार्थ हेमन्त ऋतु में सर्वत्र मिलता है और आये दिन हो भी जाता है, सुन्दर-सुन्दर मोटे-मोटे और सफेद तथा लाल दो तरह के होते हैं। खाने में स्वादिष्ट सफेद मूली ही होती है। इसके पत्ते और लम्बी-लम्बी गाँठे सभी

खाद्य पदार्थ में आ जाते हैं। कच्चा खाइये या पका कर, हर तरह से स्वादिष्ट और सुन्दर पदार्थ है। इस का तीतापन अजीब होता है जिससे आँखों से पानी भी आने लगता है। कच्ची मूली कड़वी, चरपरी, गरम, रुचिकारक, हल्की, अग्निप्रदीपन, हृदय को बल देने वाली, तीक्ष्ण, पाचक, सारक, मधुर, बलकारक, मूत्रदोष, बवासीर गुल्म, क्षय, श्वास, शूल, आदि रोगों का नाश करती है।

मूली को चटनी बनाकर खाइये, कच्चा यों ही नमक के साथ खाइये, पका कर खाइये, सभी प्रकार से शरीर के दोषों का नाश कर अग्नि को बढ़ाती है और इस के सेवन से भूख खूब लगती है।

अब आप इन तीनों खाद्यपदार्थों को एकत्र कीजिये। प्रथम अदरक को छिल कर पतला-पतला टुकड़ा कर लेवें। मूली को गोल-गोल काट लेवें। उसमें कागजी या बिजौरा नींबू का रस डाल कर शीशे के अमृतवान में रख छोड़ें और चाहें तो हरा मिरचा भी भरकर उसमें रख छोड़े। फिर दो दिन तक धूप में रख दें। पश्चात् भोजन के समय सेवन करें। बड़ा ही सुन्दर अचार तैयार हो जाता है। दो टुकड़ा सेवन करने से पाचन शक्ति ठीक रहती है। इस जाड़े के ऋतु में यह उपादेय पदार्थ सभी व्यवहार कर सकते हैं। अदरक, कुष्ठ, पाण्डु ववासीर एवं मूत्र-कृच्छ्र के रोगियों के लिये त्याज्य है।

शेषांश] तम्बाकू का स्वास्थ्य पर प्रभाव [५९५ पृष्ठ का

प्राच्य विद्वानों के मत :--

"हमारे यहाँ भारत में पान के साथ जर्दा खानेवाली स्त्रियों की बहुत बड़ी संख्या है। उनके इस व्यसन से उनका अपना स्वास्थ्य और सौन्दर्य तो नष्ट होता ही है, भारत के भावी उत्तराधिकारी उनके बच्चे भी रोगग्रस्त होकर अकाल ही काल ग्रसित हो जाते हैं।"

--श्री दुलारे लाल भार्गव

"परीक्षा से भलीभाँति निर्णय हो चुका है कि इसे खाने से आँख, दाँत एवं मस्तिष्क निर्बल पड़ जाते हैं तथा बुद्धि भी मन्द हो जाती है।"

--पं० लक्ष्मीधर शर्मा वैद्यराज

"तम्बाकू खाने और सूँघने से वीर्य बिगड़ कर पतला पड़ जाता है और स्वयं बिना इच्छा के गिरकर ब्रह्मचर्यव्रत को खण्डित कर देता है।" --स्वामी रामानन्द

"आमाशय रोग, अपच, अजीर्ण आदि रोग चाय पीने से होते हैं। मज्जा-तन्तु विकार, अजीर्ण का कारण भी चाय, कॉफी, तम्बाकू है।"

--डॉ० महादेव भट्ट, एम. बी० बी० एस

"चाय, काफी, तम्बाकू, चुरट, शराब आदि नशे की चीजों के सेवन करने से धमनी रोग हो जाता है जिससे हाई ब्लडप्रेशर हो जाता है।"

--डॉ० पञ्चानन वसु एम. डी.

"अजीर्णता, कास, फेफड़ों के तमाम रोग, त्वचारोग, निद्रानाश, दुःस्वप्न, चक्कर, नेत्र रोग, हृदय और मस्तिष्क की निर्बलता और उन्माद आदि कितने ही रोग तम्बाकू पीने से होते हैं।" --कवि विनोद पं० ठाकुरदत्त शर्मा

मेरी सम्मति में जो लोग इसका सेवन करते हैं, वे राष्ट्र के शत्रु हैं। शराब, तम्बाकू, भङ्ग और चरस--ये चारों वस्तुएँ मानव समाज के घातक शत्रु हैं। वर्तमान भारतीय सरकार को 'मादक द्रव्य निषेध' विधान का निर्माण करना चाहिए।

पाठकों के विचार

क्षीणा अपि दोषा रोगकराः भवन्ति

बह्वतीतकालाद्दोषाणां वृद्धिं गतानां रोगकर्तृत्वं क्षीणानां चारोगकर्तृत्वम् विवादः प्रचलति । विवादश्च परां काष्ठा-मगमदिति महाराष्ट्रियपत्रिकाणामवलोकनेन ज्ञायते । आर्षत्रये तु क्षीणवृद्धयोर्द्वयोरपि कारणता प्रतिपादिता ।

तयोरपि क्षीणावस्था तु वृद्धेः सकाशात् विशेषपीडा-कर्त्रीति । (अ० हृ० सू० अ ११) "मलो चितत्वाद्देहस्य क्षयो वृद्धेस्तु पीडनः ।।" इति । एतादृशानि बहूनि सूत्राणि सन्ति । साम्प्रतं तु प्रतिवादिनः लेखमतानुसारेणात्र विमर्शः ।

अत्र च प्रश्नकर्तुः श्रीवागेवाडीकरमहोदयस्य आयुर्वेद-शास्त्रे प्रकुपितानां स्वगुणोत्कर्षात् वृद्धिं गतानां दोषाणां रोगकर्तृत्वे यथा सविस्तरं वर्णनमस्ति, तथा क्षीणानां दोषाणां रोगकर्तृत्वे सविस्तरं वर्णनम् नास्ति । रोगकारण-तायां तु "रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता" इति वाग्भट्टमतानुसारेण वृद्धिं गता अपि दोषाः विषमगाः भवन्ति, क्षीणा अपि दोषाः विषमगाः भवन्ति । अनेन वृद्धिं गता अपि दोषाः रोगकर्तृत्वे यथा हेतवः भवन्ति, तथैव क्षीणा अपि दोषाः भवन्ति ।

एषः प्रश्नस्य मूलभूतः सिद्धान्तोऽस्ति ।

अस्मिन् विषये प्रथमं तावत् श्रीडेग्वेकरमहोदयेन सुयुक्त्या प्रामाण्येन वृद्धिं गतानां दोषाणां रोगकर्तृत्वं क्षीणानां चारोगकर्तृत्वं स्वलेखे प्रतिपादयता स्वस्य प्रतिवादितायाः रूपमपि प्रकटितम्, पश्चाच्च वैद्यराजश्रीपाण्डुरंग-हरिदेशपाण्डेमहोदयः प्रतिवादितायाः रूपमग्रहीत् । अस्तु-तावत्, किन्तु प्रश्नकर्तुर्यथाभिप्रायोऽस्ति तथा प्रतिवादि-प्रदत्तं प्रश्नानामुत्तरं यथोक्तं नास्ति । प्रश्नोत्तरकाले प्रश्नकर्तुरभिप्रायस्य ज्ञानमावश्यकम् । मया पूर्वं तु ज्ञातं यत् शास्त्रार्थस्य प्रज्ञानायैषा संभाषा । सम्भाषा हि परस्परं सौमनस्यकरी । तथा जनेषु प्रभावोत्पादिका च भवति । श्रीदेशपाण्डेमहोदयस्य लेखालोचनेन तु स्पष्टं प्रतीयते यदेषा वितण्डा सम्भाषा । वितण्डा अपि शास्त्रोत्कर्षकरी चेत्तदा तु वरा, शास्त्रार्थस्य न्यूनताप्रति-पादिका अवरा, परस्परं वैमनस्यकरी च भवति ।

श्रीवागेवाडीकरमहोदयस्य त्वभिप्रायः स्पष्टतया प्रतीयते––यथा प्राधान्येन प्रवृद्धानां दोषाणां रोगकर्तृत्वे वर्णनं गौणत्वेन च क्षीणानां दोषाणां रोगकर्तृत्वे वर्णनम् । एषः प्रश्नस्तथा प्रश्नाभिप्रायश्च श्रेष्ठः, सर्वत्रैव प्रधानस्य प्राधान्येन वर्णनम् भवति गौणस्य तु गौणरूपेण । प्रश्नेऽस्मिन् जिज्ञासा-वादित्वं नास्ति । यश्च निर्बन्धेन स्पर्धया वा प्रतिवादी भवेत्तदा वादी भवितुं शक्यः एव ।

अत्र प्रतिवादिनः श्रीदेशपाण्डेमतानुसारेणापि क्षीणानां-दोषाणां गौणत्वेन रोगकर्तृत्वं प्रतिभाति । यथा––"एकस्मिन् दोषे क्षीणे सति द्वौ दोषौ प्रवृद्धौ भवतः" । अत्र चिकिसायां व्याघातो प्रदर्शितः, चिकित्सा तु क्षीणदोषस्य वृंहणरूपा लिखिता । रोगोत्पादने द्वौ प्रवृद्धौ दोषौ हेतू-इति कथं युज्यते । अन्यच्च यः खलु क्षीणो दोषः स विकारकरणे सर्वथाऽसमर्थ एव ।

तेन हेतुना केवलं रोगोत्पादकपरिस्थितेरानुकूल्यमेव । क्षीणाः दोषाः रोगोत्पादकपरिस्थितेरुत्पादका इति । समा-धानम्––उत्पादकपरिस्थितिजनका अपि गौणत्वेनोत्पादकाः व्यपदिश्यन्ते । यथा रामः कथमभवत् । पुत्रेष्टियज्ञेना-भवदिति शास्त्रप्रसिद्धं लोकप्रसिद्धञ्च । अत्र नहि तावत् पुत्रेष्टियज्ञ उत्पादकः, किन्तु पुत्रजन्मपरिस्थित्युत्पादकः । व्यपदेशस्तु पुत्रेष्टियज्ञेन रामोऽभवत् । एवमेव रोगो-त्पादकपरिस्थित्यनुकूलताकर्तृणां क्षीणानां दोषाणां विषय-कर्तृत्वं ज्ञेयम् । यथा संज्ञामोहः कथमभवत्, वातेन क्षीणेन अभवदित्युत्तरमेव, न हि तावत् पित्तकफवृद्ध्याभवदिति व्यपदेशो भवति ।

पुनश्च श्रीदेशपाण्डेयमहोदयैः क्षीणदोषाणाम् "रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता" इत्यरुणदत्तटीकानु-सारेण रोगकर्तृत्वेन कारणता मन्यते । अत्र कारणता नाम किम् ? कारणता हि हेतुता, हेतुस्तु निदानम् । हेतुविपरीता-एव चिकित्सा भवति । सा चोपशायात्मिका । सा चिकित्सा षड्विधा––हेतुविपरीता, व्याधिविपरीता, हेतुव्याधि-विपरीता, हेतुविपरीतार्थकारिणी, व्याधिविपरीतार्थकारिणी, हेतुव्याधिविपरीतार्थकारिणी चेति । यासु भवन्मतानुसारेण हेतुः–क्षीणवातस्य चिकित्सा बृंहणात्मिका हेतुविपरीता युज्यते । एतेन ज्ञातुं शक्यते यद् क्षीणाः दोषाः रोग-कर्तारः भवितुं शक्यन्ते न वा इति ।

पुनश्च द्विविधचिकित्सायाः का गतिः इति प्रसङ्गे बृंहणन्तु क्षीणावस्थायामेव, न रोगेषु ; असमीचीनमिदं मतम्। क्षीणावस्था केन भवति। रोगणेति चेदत्र ब्रूमः। रोगेष्वेव दोषाणां वृद्धावस्था क्षीणावस्था च भवति। यथा सन्निपातादौ प्रवृद्धदोषस्यापतर्णरूपायाः क्षीणदोषस्य संतर्पण-रूपायाः चिकित्सायाः निर्देशत्वात्। अतः रोगेष्वेवापतर्पण-सन्तर्पणरूपा चिकित्सा भवति। वाग्भट्टस्यैतन्मतं तु "बृंहयेद् व्याधिभैषज्यमद्यस्त्रीशोककर्षितान्। भाराध्वोरः-क्षतक्षीणरूक्षदुर्बलवातलान्॥ गर्भिणी सूतिकाबालवृद्धान् ग्रीष्मेऽपरानपि॥" इति सामान्यादेतद्विशिष्टं वचनम्। कस्यामप्यवस्थायामेतांस्तु बृंहयेदेव, न च वमनविरेचनादिना कर्षयेदिति। अतः श्रीदेशपाण्डेमतानुसारेण प्रदर्शितचिकित्सा-क्रमानुसारेणापि क्षीणानां दोषाणां रोगकर्तृत्वं तु सिद्धत्वमेव।

अत्र च श्रीवागेवाडीकरमहोदयस्य मतानुसारेण आयुर्वेदस्य पूर्णता गूढार्थता च प्रतिभाति। श्रीडेंग्वेकरमतानुसारेण श्रीदेशपाण्डेमतानुसारेण च आयुर्वेद-शास्त्रस्यापूर्णता—अगूढार्थता च प्रतिभाति। साम्प्रतिके वर्तमानसमये यथा आयुर्वेदस्य तज्ज्ञातॄणां चोत्कर्षस्य व्यपदेशो भवेत्तथैव विचारपुरःसरं स्व-स्वमतं प्रकाशनीयमिति।

चरक-वाग्भट्ट-सुश्रुत-ग्रन्थत्रयेषु क्षीणदोषाणां रोगकर्तृत्वे बहूनि सूत्राणि सन्ति। बहुस्थानेषु टीकाकर्तॄणां तु व्यामोहो दृश्यते। अतः मूलपाठमवलम्ब्य विवेचनं विदध्युरिति। पुनः विद्वांसो वैद्या निवेद्यन्ते यत् मौनं परित्यज्य शास्त्रार्थ-मवलम्ब्यास्मिन् विषये स्व-स्वमतं **सचित्रआयुर्वेद** मासिकपत्रे प्रकाशयन्तु।

—वैद्य महाबीरप्रसाद मिश्र, बम्बई।

आयुर्वेद का जीर्णोद्धार एवं विकास

भारतीय चिकित्सा-विज्ञान आयुर्वेद पूर्णरूपेण वैदिक एवं वैज्ञानिक है। समय के कुठाराघातों एवं वज्र प्रहारों के कारण वर्तमान आयुर्वेद अव्यवस्थित यत्र-तत्र बिखरा हुआ है। आयुर्वेदीय साहित्य को यथोचित् विधि से व्यवस्थित करना ही स्थाई साहित्य निर्माण करना है। शोध एवं अन्वेषण की भी आयुर्वेद में आवश्यकता है। कुछ समय से इन विषयों पर विज्ञजनों की तूलिका चल रही है और आयुर्वेदिक पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा हमें विद्वानों के अन्तर्भावों से परिचित होने का अवसर भी मिल रहा है।

इसमें सन्देह नहीं कि आयुर्वेदिक पत्र-पत्रिकायें आयुर्वेदीय स्थायी साहित्य का निर्माण कार्य में अवश्य ही हाथ बंटा रही हैं। किन्तु प्रायः आयुर्वेद के विकास की साधना करनेवाले विद्वान् आयुर्वेद के विकास के हेतु अभी भी भारत सरकार का मूँह ताक रहे हैं।

पर भारत सरकार आयुर्वेद विकास पर वास्तव में कोई रुचि पूर्वक कदम नहीं उठा रही है और भविष्य की आशा के विषय में क्या कहा जा सकता है। यह सही है कि राज्य की सहायता के विना आयुर्वेद का सर्वतोमुखी विकास वास्तव में नहीं हो सकता। मगर हम फ़िलहाल अभी सरकार से विशेष कोई आशा नहीं करते, जब तक हम स्वयं एक शक्तिशाली संगठन बना कर अपना आयुर्वेद सम्बन्धी विकास कार्य प्रारम्भ नहीं करते।

मैं भी प्रायः देखता हूँ कि आजकल बहुतेरे वैद्य आयु-र्वेदाचार्य तथा कविराज लोग आयुर्वेद को छोड़कर ऐलोपैथी के भक्त बनते जा रहे हैं। ऐसा क्यों हो रहा है? यह वैद्य समाज को सोचना चाहिये। शायद पेन्सिलीन स्ट्रेप्टोमाइसीन तथा सल्फाड्रग्स ने उन्हें आकर्षित कर लिया है। वैद्यराज जी की अपेक्षा डाक्टर साहब-शब्द से अधिक आदर की सूचना मिलती है। इन सब बातों का कारण अब हमें ढूंढना पड़ेगा। जन साधारण में एक सिद्धान्त प्रचलित है कि आयुर्वेदिक औषधियाँ शीघ्र लाभ तो नहीं करतीं किन्तु स्थायी लाभ अवश्य करती है और ऐलोपैथिक मेडिसिन्स शीघ्र लाभकारी हैं किन्तु उनका प्रभाव हानिप्रद सिद्ध हुआ है। कोई औषध एक रोग का शमन कर कालान्तर में अन्य रोग को उभाड़ने का कारण बन जाती है। ऐलोपैथिक औषध प्रस्तुत रोग का शीघ्र शमन करने वाली हैं शायद इसलिये ही वैद्य लोग भी रोगियों को उक्त औषधियों का प्रयोग करके धन और यश कमाने का उद्योग करते हैं।

कुछ भी हो, एक तो आयुर्वेद पर समय के वज्रपात ने भयंकर प्रहार किया है, फलस्वरूप वर्तमान आयुर्वेद का साहित्य अस्त-व्यस्त तथा प्रायः नष्ट-सा हो गया है और वैद्यों के इस प्रकार के परिवर्तित रुख से आयुर्वेद की भयंकर हानि होने की सम्भावना प्रतीत होती है। अतः आयु-र्वेद के जीर्णोद्धार के हेतु समस्त आयुर्वेद के विद्वानों को सजग हो कर तन-मन-धन तथा मनसा-वाचा-कर्मणा आयुर्वेद के प्रति कर्त्तव्य करना पड़ेगा। इसके पश्चात् ही आयुर्वेद का जीर्णोद्धार एवं विकास हो सकता है।

—वैद्य नर्मदाप्रसाद श्रीवास्तव

अनुचित आरोप

आयुर्वेद के प्रति श्रद्धा रखने वालों तथा युगानुरुप आयुर्वेद की उन्नति चाहने वालों का ध्यान आपके विख्यात पत्र द्वारा आयुर्वेद जगत में फैली हुई असहिष्णुता और वर्ग भेद की भावना की ओर, जो वैद्यों के संगठन और आयुर्वेद की प्रगति के लिये अत्यंत घातक है, आकर्षित करना चाहता हूं। हाल ही में दिल्ली के एक पत्र में बी० आई० एम० एस० स्नातकों के विषय में जो आरोप लगाया गया है, वह एक आयुर्वेदज्ञ के लिये अत्यन्त ही अशोभनीय तथा आयुर्वेद के आविष्कर्ता महर्षियों की विशाल-हृदयता के प्रति उनकी अनभिज्ञता तथा अयोग्यता का परिचायक है। उक्त पत्र ने लिखा है कि "बी० आई० एम० एस० पास करनेवाले छात्र न तो आयुर्वेद के ग्रंथों का ज्ञान रखते हैं और न एलोपैथी का। बी० आई० एम० एस० स्नातक तपेदिक के कीटाणुओं से किसी प्रकार कम नहीं हैं और यह तपेदिक के कीटाणु आयुर्वेद और डाक्टरी के लिये अत्यन्त घातक हैं। स्वास्थ्य विभाग इन कीटाणुओं को रोक दे। बी० आई० एम० एस० में शुद्ध आयुर्वेद चलाकर सरकार आयुर्वेद की प्रगति करे।" मेरी समझ में नहीं आता कि उक्त पत्र को केवल बी० आई० एम० एस० उपाधि से क्यों चिढ़ है। यदि वह मिश्रित शिक्षा-पद्धति का विरोधी है तो सम्पूर्ण मिश्रित कोर्स यथा ए० एम० एस०, डी० एस० एफ० ए०, जी० ए० एम० एस० तथा नवीन उपाधि बी० एम० बी० एस० आदि का भी उसे विरोध करना चाहिये था। विचार करने से प्रतीत होता है कि या तो उन्हें किसी बी० आई० एम० एस० व्यक्ति विशेष से विरोध है, जिससे उन्होंने सम्पूर्ण बी० आई० एम० एस० समाज को अपने कोप का लक्ष्य बना डाला है अथवा केवल बी० आई० एम० एस० को बदनाम करने का प्रपंच मात्र है।

बी० आई० एम० एस० स्नातकों की योग्यता आयुर्वेद में किसी भी संस्था के उपाधिधारियों से किसी अंश में कम नहीं होती। इसका प्रमाण यदि जानना हो तो किसी भी योग्य वैद्य के द्वारा निष्पक्ष भाव से संभाषण कराके संभाषा पद्धति द्वारा परीक्षण करा लें। बिना प्रमाण निराधार गालियों से तो कोई अयोग्य नहीं हो जा सकता। आयुर्वेद न तो शुद्ध है और न मिश्र। वह तो आयुर्वेद ही है। उसका क्षेत्र संकीर्ण बनाना एवं उसमें शुद्धादि विशेषण लगाना भ्रमोत्पादक एवं अनार्ष है। आयुर्वेद में जन-कल्याण के लिये नवीन ज्ञान को आत्मसात करते जाना चरकादि ऋषियों को अनुमत है एवं भावमिश्रादि ने उनकी इस विशालहृदयता का निष्पक्ष भाव से अनुसरण किया है। अस्तु; नव्य ज्ञान द्वारा तथा उसमें युगानुरूप आधुनिक साधनों का उपयोग करके मिश्रित आयुर्वेद अशुद्ध आयुर्वेद नहीं बनता। प्रचलित पाठ्य क्रमों में बी० आई० एम० एस० स्नातक किसी भी तत्सम उपाधिधारी वैद्य की अपेक्षा आयुर्वेद की योग्यता में कम नहीं, अध्यापन, चिकित्सा आदि क्षेत्रों में उनकी योग्यता व प्रतिभा किसी से भी अविदित नहीं है।

उत्तर प्रदेश के स्वास्थ्य विभाग के डाइरेक्टर को चाहिये कि इस प्रकार के सुशिक्षित समाज पर मिथ्या आरोप तथा अनर्गल प्रचार करने वाले पत्र के प्रति वैधानिक कार्यवाही करें। क्योंकि ऐसे लेखों से वर्ग विद्वेष फलते हैं और कटु वातावरण उत्पन्न करके हिंसा को प्रोत्साहन मिलता है।—**रामप्रताप शर्मा**, प्रधान मंत्री—आयुर्वेद संभाषा परिषद, ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज, हरिद्वार।
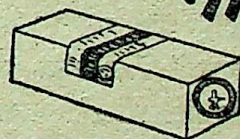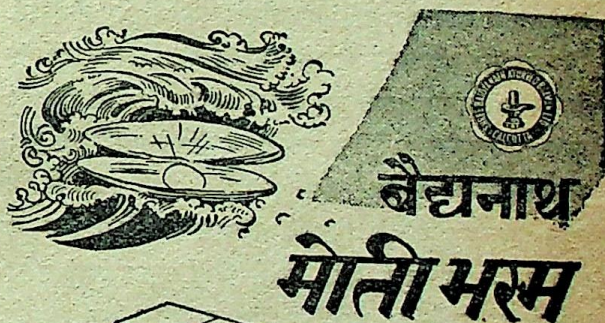
आयुर्वेद-जगत्
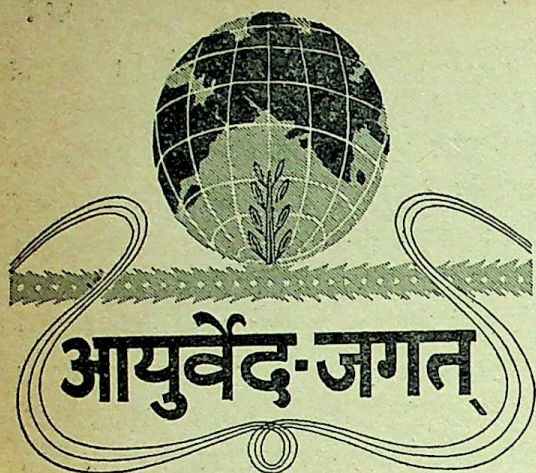
आयुर्वेद विद्यापीठ में पं० शिवशर्मा का भाषण

निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के सभापति वैद्यरत्न पंडित शिवशर्मा ने आयुर्वेद विद्यापीठ (ऋषिकेश) में भाषण करते हुए कहा कि यह सौभाग्य की बात है कि जीवित रहने के लिए आयुर्वेद को एलोपैथी की भांति अति-व्ययपूर्ण संरक्षण की आवश्यकता नहीं। अनश्वरता के गुणों से यह इतना भरपूर है कि सैकड़ों वर्षों की राजकीय उपेक्षा सहन करके भी यह विज्ञान मृत नहीं हुआ। आपने आयुर्वेद में आये हुए गतिरोध और उसके विरुद्ध होनेवाले मिथ्याप्रचार की चर्चा की ओर भारत की स्वास्थ्य मंत्राणी के रुख को गलत बताते हुए उनपर आरोप लगाया कि वह जनता की इच्छा के विरुद्ध उस पर एलोपैथी थोप रही हैं। शर्माजी ने उस अवांछनीय परिस्थिति की भी चर्चा की कि राजकीय आयुर्वेदिक शिक्षण-प्रशिक्षण नीति-निर्माण में वैद्य-समाज को हाथ नहीं लगाने दिया जाता, वहां सर्वत्र एलोपैथी वालों का हाथ है और राजकीय सहायता से चलनेवाले आयुर्वेदिक संस्थाओं में एलोपैथी का ही कार्य हो रहा है। आयुर्वेदिक सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए शर्माजी ने कहा कि अनेक सुशिक्षित व्यक्तियों के लिए यह वास्तविक किन्तु क्षम्य विस्मय का विषय है कि इस ३००० वर्ष पुराने आयुर्वेद विज्ञान और आधुनिक चिकित्सा की न्यूनतम कृतियों में क्या प्रतियोगिता हो सकती है। इस आश्चर्य का आधार आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्तों का अपरिचय है। यह लोग इस साधारण तथ्य को भूल जाते हैं कि जिस प्रकार कई एण्टिबायोटिक अथवा जीवाणु नाशक औषधें कीटाणुओं को मारने के प्रयत्न में ऐसे औषध सहिष्णु कीटाणु समूहों को उत्पन्न कर देती हैं जिनकी उत्पत्ति इन औषधों के मौलिक उद्देश्य को ही विफल कर देती है, ठीक इसी प्रकार मनुष्य समूहों में भी रोक प्रतिबन्ध की शक्ति अर्थात् संक्रमण-सहिष्णुता इतनी बढ़ाई जा सकती है कि वह कीटाणु-संक्रमण को सर्वथा विफल कर दे। विरोधी भावों को सहन कर लेने की यह विशिष्ट क्षमता मनुष्य और कीटाणु दोनों में ही समान है और सृष्टि के आरम्भ से ही युगों के बीत जाने पर भी यथावत् अमिट रही है। यह तथ्य ऐलोपैथों के ध्यान से ही छूट गया प्रतीत होता है। ऐलोपैथी कीटाणुओं का वर्गीकरण करती है और उनको मारने का प्रयत्न करती हैं। आयुर्वेद मनुष्यों का वर्गीकरण करता है और उनकी रक्षा करने का प्रयत्न करता है। कीटाणु-नाशक द्रव्यों की घातकता एक विशेष सीमा से आगे नहीं बढ़ाई जा सकती। इस सीमा से आगे बढ़ जाने पर वे द्रव्य अपने कार्य क्षेत्र का उल्लंघन करके मनुष्य के जीवन पर ही आघात पहुंचाने लगते हैं। यही कारण है कि जैसे-जैसे आधुनिक विज्ञान की प्रगति हो रही है, उसी अनुपात से चिकित्सा पर व्यय, चिकित्सक की आय और नाड़ी-दौर्बल्यकर तथा जीवन-शक्तिनाशक व्याधियां भी साथ-साथ ही बढ़ती जा रही हैं। यह अतिशयोक्ति नहीं कि अनेक रोगी, जिनकी चिकित्सा सल्फ़ेनामाइडों और बार्बिट्युरेटों द्वारा की गई, यदि सर्वथा उपचार-रहित ही रहने दिये जाते तो आज कहीं अधिक स्वस्थ, सुखी और और चिकित्सा-व्यय की दृष्टि से मितव्ययी जीवन व्यतीत कर रहे होते। परन्तु यदि मनुष्य की सामान्य रोग सहिष्णुता तथा विविध विशिष्ट व्याधियों के प्रति विशिष्ट रोग प्रतिबन्ध की शक्तियों के निर्माण को ही लक्ष्य रखा जाये तो मानव बुद्धि की अपनी सीमा के अतिरिक्त औषधोपचार की उन्नति की कोई भी सीमा नहीं। आयुर्वेदिक औषधों की आश्चर्यजनक शक्ति और निर्विषता का कारण इसी व्याख्या में स्पष्ट हो जाता है। आज चिकित्सक की आय का मुख्य स्रोत चिकित्सा से हटकर द्रुतगति से औषध प्रतिक्रियाओं की चिकित्सा की ओर जा रहा है। रोग चिकित्सा इतनी लम्बी और महंगी नहीं होती जितनी कि औषधजन्य विकारों की चिकित्सा। उदाहरणार्थ सल्फा औषध साधारण प्रतिश्याय को तीन दिन में अच्छा कर लेती है परन्तु रोगी पर इसकी विषैली प्रतिक्रिया हो जाने पर उसकी चिकित्सा तीन वर्ष भी चल सकती है। अनेक सुशिक्षित आधुनिक अपनी व्युत्पन्नता और बुद्धिमत्ता के मद में भ्रान्त होकर बहुत ही

भोले और अन्धभक्त सिद्ध होते हैं और उनके शरीर इन-इन और उर्द्धाविगत तीव्र विषों के प्रयोग के लिए सुलभ आखेट-क्षेत्र बन जाते हैं। उन बेचारों को यह ज्ञात ही नहीं होता कि पाश्चात्य चिकित्सक न केवल इन भयंकर विषैले कीटाणुमारक और जीवननाशक द्रव्यों के दुष्प्रभावों की पूर्ण संभावनाओं से अपरिचित हैं प्रत्युत पेनिसिलिन, थायोयुरेसिल, एण्ड्रोजन्ज तथा ईस्ट्रोजंज जैसी प्रचलित औषधों के निःशेष क्रियाज्ञान भी इनके लिए अभीतक एक गुप्त रहस्य हैं। तीन वर्ष हुए चिकित्सा संसार में कोर्टिसोन का अवतरण युग की उत्कृष्टतम औषध के रूप में हुआ। तीन वर्ष में इसने अनेक व्यक्तियों को हानि पहुँचाई, निकम्मा किया और मौत के घाट उतारा। कुछ लोगों को कुछ शान्ति भी मिली, परन्तु पूर्ण स्वास्थ्य किसीको प्राप्त न हुआ। फिर बुलबुला फट गया और चारों ओर से वैज्ञानिकों के क्षमायाचना मूलक लेख प्रकाशित होने लगे, जिनमें यह स्वीकार किया गया कि रोग निवारण के उद्देश्य से इस औषध का प्रयोग करना व्यर्थ है, यह तो केवल एक शामक द्रव्य है तथा इस अत्यन्त महंगी औषध और अत्यन्त सस्ती एस्पिरिन में गुण-भेद केवल इतना ही है कि एस्पिरिन इतनी अधिक हानि नहीं करती जितनी कि कोर्टिसोन? आश्चर्य इस बात का है कि परम अन्धविश्वासी भोले व्यक्ति, जिन्होंने अपने शरीरों को इस तीन वर्ष की आयु की औषध के लिए प्रयोगशालाएँ बन जाने दिया, उन लोगों पर भोले और अन्धविश्वासी होने का आरोप लगाते हैं, जो उन औषधों का प्रयोग करना पसन्द करते हैं, जिनकी निरापद उपयोगिता तीन वर्ष नहीं, तीन सहस्त्र वर्ष के सतत प्रयोग द्वारा सिद्ध हो चुकी है। ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक विषों के प्रयोग से उत्पन्न होनेवाली नाड़ी दौर्बल्यकर व्याधियां रसमय न्याय का ही स्वरूप हैं जिन्हें प्रज्ञापराधी मिथ्याज्ञानी स्वयं मोल लेते हैं। जहाँ डाक्टरों के व्यवस्थापत्रों पर से कोर्टिसोन का नाम उड़ रहा है वहाँ ऐलोपैथिक कम्पनियों की निर्माण की हुई वातनाशक औषधों के पैकटोंपर मुद्रित योगों में गूगल का नाम दृष्टिगोचर होने लगा है। निःसन्देह पुनः तीन सहस्त्र वर्ष की औषध तीन वर्ष की औषध पर विजय प्राप्त कर रही है।

अस्तु, उपर्युक्त कथन का यह तात्पर्य नहीं कि आयुर्वेद ऐलोपैथिक सिद्धान्तों तथा कीटाणुनाशक द्रव्यों का तिरस्कार करता है। उन सिद्धान्तों की स्वीकृति तो तीन सहस्र वर्षों के पहले लिखे हुए सूत्रों में भी स्पष्ट है। भेद तो केवल चिकित्सा की मुख्य शैली में ही है। अनिद्रा में ऐलोपैथ ब्रोमाइड, बार्बिट्युरेट, एल्डिहाइड, पैरेल्डिहाइड आदि का प्रयोग तुरन्त ही आरम्भ कर देते हैं और रोगी को औषध का व्यसन क्रमशः बढ़ता जाता है जो भयंकर, कभी-कभी तो मारक, सीमा तक पहुँच जाता है। आयुर्वेद बल्य और हितकर औषध, आहार और अभ्यंग आदि द्वारा, प्रकृति-स्थापन का प्रयत्न करता है। इसी प्रकार श्वास रोग में एफिड्रीन, एड्रिनलीन, एमीनोफिलीन, इत्यादि द्रव्य रोगी को तत्कालीन शान्ति प्रदान करते हैं परन्तु धीरे-धीरे व्यसन की प्रवृत्ति बढ़ाते हैं। आयुर्वेद पुनः इस व्याधि के प्रति रोगी की शारीरिक और मानसिक क्षमता की वृद्धि का प्रत्यत्न करता है। वास्तव में यदि ऐलोपैथिक द्रव्यों की क्रमशः बढ़ती हुई और आयुर्वेद की क्रमशः घटती हुई मात्राओं पर ध्यान दिया जाय तो इस दृष्टि से अवश्य ऐलोपैथिक औषध को प्रगतिशील और आयुर्वेदिक औषध को अवनतिशील कहा जा सकता है।

आयुर्वेद निःशेष और पूर्ण विज्ञान है यह हमारा दावा नहीं। न हम यह कहते हैं कि हमारे ग्रन्थ विज्ञान की चरम सीमा को पार कर चुके हैं। आयुर्वेद के शल्य-शालाक्यादि कई अंगों के पुनरुद्धार में जो सहायता ऐलोपैथी दे सकती है उसकी भी अवहेलना हम नहीं कर सकते हैं। ऐसी सहायता की तो हम खोज में हैं परन्तु वह अच्छी श्रेणी के डाक्टरों से ही मांगी जाएगी। उनकी संख्या भारतवर्ष में कम नहीं। उन्हें हम सम्मानपूर्वक निमन्त्रित करेंगे और जैसी सहायता की हमें आवश्यकता है वह हम लेंगे। वास्तव में आयुर्वेद तो ऐलोपैथी, होम्योपैथी, नैसर्गिक चिकित्सा आदि सभी के सिद्धान्तों को वैकल्पित चिकित्सामार्गों के रूप में स्वीकार करने का अपने सूत्रों द्वारा आग्रह करता है। अतएव इस शास्त्रपीठ के लिए तो इन सभी सिद्धान्तों का आदर करना अनिवार्य होगा।

तामिलनाड आयुर्वेद महामण्डल

तामिलनाड आयुर्वेद महामण्डल तथा तिरूची आयुर्वेद सभा का संयुक्त अधिवेशन सितम्बर मास के उत्तरार्द्ध में तिरुचिरापल्ली में हुआ, जिसमें मद्रास राज्य में आयुर्वेद की वर्तमान स्थिति तथा विशेषकर मद्रास के कालेज आफ इण्डियन मेडिसिन की गतिविधि पर विचार विमर्श किया गया। इस अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति

से स्वीकृत हुए और सरकार से इन प्रस्तावों को शीघ्रातिशीघ्र कार्यान्वित करने का अनुरोध किया गया।

(१) यह सभा मद्रास सरकार से अनुरोध करती है कि मद्रास राज्य में भारतीय चिकित्सा प्रणाली के शिक्षण और विकास के लिए वह निम्नलिखित सुझावों पर विचार कर उन्हें कार्य रूप में परिणत करें, क्योंकि आयुर्वेद की उन्नति के लिये यही एकमात्र उचित उपाय है:—

(अ) आयुर्वेद विभाग के डायरेक्टर, आयुर्वेद कालेज के डीन, अध्यक्ष और अन्य विभागीय प्रधान पदों पर ऐलोपैथों को नहीं, वरन् आयुर्वेदज्ञों को ही नियुक्त किया जाय।

(ब) पाठ्यक्रम और शिक्षाक्रम विशुद्ध आयुर्वेदीय पद्धति पर आधारित रहे। छात्रों को किसी एलोपैथिक विषय की शिक्षा नहीं दी जाय। जो विषय आयुर्वेद के अन्तर्गत नहीं हो और उसकी शिक्षा आवश्यक समझी जाय तो उसका आयुर्वेद के आधार पर सर्वप्रथम अनुसंधान एवं विश्लेषण कराया जाय और उसके बाद आयुर्वेद के पाठ्यक्रम में उक्त अनुसन्धान के सिद्धान्तों को शामिल किया जाय। एक कमेटी, जिसमें मात्र आयुर्वेदज्ञ रहें—एलोपैथ नहीं, अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ के आयुर्वेद शिरोमणि एवं मद्रास विश्वविद्यालय के आयुर्वेदीय डिग्री कोर्स के पाठ्यक्रम पर विचार कर एक पाठ्यक्रम निर्द्धारित करें। आयुर्वेदीय शिक्षा की यह योजना आगामी जुलाई १९५५ से लागू हो जाय।

(स) भारतीय ओषधि विज्ञान की तीनों पद्धतियों यथा—आयुर्वेद, युनानी और सिद्ध के मौलिक सिद्धान्तों में कोई पार्थक्य नहीं है, अतएव इन तीनों पद्धतियों को सम्मिलित कर एकरूपता दे दी जाय। आयुर्वेद की मूल परिभाषाओं को अक्षुण्ण रहने दिया जाय, जिससे समग्र भारत में उन शब्दों की एकरूपता कायम रहे। भारतव्यापी पाठ्यक्रम के अनुसार भारत की आंचलिक भाषाओं में पाठ्य पुस्तकों की रचना की जाय और उनमें उन पारिभाषिक शब्दों को स्थान दिया जाय। प्रत्येक राज्य में कम से कम एक कालेज ऐसा खोला जाय, जिसका पाठ्यक्रम अभिन्न और एकरूप रहे।

(द) मद्रास के वर्तमान आयुर्वेद कालेज को केन्द्रीय अनुसन्धानशाला का रूप दे दिया जाय। इस केन्द्र में मौलिक सिद्धान्तों, पाठ्यक्रमों, पाठ्य पुस्तकों की रचना आदि के विषय पर अविलम्ब अनुसन्धान आरम्भ कर दिया जाय। एलोपैथिक सिद्धान्तानुसार ओषधियों के विश्लेषण का कार्य व्यर्थ समझकर बन्द कर दिया जाय।

(२) यह सभा केन्द्रीय सरकार से अनुरोध करती है कि आयुर्वेदीय आसवारिष्टों पर आबकारी कर लागू करने का नियम नहीं बनाया जाय, क्योंकि इन ओषधियों का उपयोग साधारण मद्य की भांति नहीं किया जाता।

(३) यह सभा द्वितीय पंचवर्षीय योजना में आयुर्वेद के विकास का कार्यक्रम नहीं रहने के कारण घोर दुःख प्रकट करती है। मण्डल की यह मान्यता है कि हमारे देशवासियों का स्वास्थ्य आयुर्वेद की सर्वतोमुखी प्रगति के बिना अक्षुण्ण नहीं रह सकता। अतएव यह सभा सरकार से आयुर्वेद की उन्नति के लिए प्रयास करने तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इसको शामिल करने का अनुरोध करती है।

मध्यप्रदेश रजिस्टर्ड वैद्य-हकीम संघ

मध्यप्रदेश रजिस्टर्ड वैद्य हकीम संघ की सभा नागपुर में हुई। इसमें पं० गदाधर प्रसादजी शुक्ल तथा राजस्थान के आयुर्वेद विभाग के संचालक श्री नन्दकिशोरजी शर्मा के असामयिक देहावसान पर शोक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। संघ की विषय सूची के अनुसार जनपद वैद्यों की मांगों पर विचार हुआ। प्रान्त के विभिन्न भागों के जनपद तथा अन्य वैद्यराजों के आये हुए सुझाव सभा में उपस्थित किये गये। निम्न सुझावों को स्वतंत्र मांगों के रूप में स्वीकार कर लिया गया :—

मध्यप्रदेश के रजिस्टर्ड वैद्य—हकीमों को मान्यता देने की प्रदेश सरकार कृपा करें ताकि प्रान्त में शराबबन्दी कानून के अनुसार रजिस्टर्ड वैद्यों को अपनी चिकित्सा में आनेवाले दमा, खांसी, न्यूमोनिया आदि के रोगियों को ब्रंडी तथा रम के सर्टिफिकेट देने में सुविधा हो। वैद्य हकीमों को प्रवास-भत्ता दिया जाय। वैद्य हकीमों का ८०) रुपया वेतन निश्चित किया जावे। जनपद के वैद्य हकीमों के बच्चों को हाईस्कूल तक की शिक्षा मुफ्त दी जाय तथा वह यदि वैद्यकीय शिक्षा लेना चाहे तो उसे वैद्यकीय विद्यालयों में पहले प्रवेश दिया जावे तथा शिक्षा उन्हें मुफ्त दी जावे।

कुछ वैद्यों के नौकरी से हटाये जाने के विषय पर यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ। "मध्यप्रदेश सरकार के सन् १९४८ के आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सकों के

कानून की धारा २१ के अनुसार मध्य प्रदेश के रजिस्टर्ड वैद्य हकीमों को यह अधिकार स्पष्ट रूप में दिया गया है कि 'सरकारी सहायता प्राप्त या अन्य किसी भी अर्धसरकारी आयुर्वेदिक या यूनानी पद्धति के चिकित्सालय में वैद्य का काम करने का उन्हें अधिकार रहेगा।' कानून की इस धारा में सरकारी या अर्धसरकारी चिकित्सालय पर चिकित्सक के नाते नियुक्त होने के लिये वैद्य-हकीमों को अन्य शर्त नहीं रखी गई है। अतः संघ की यह सभा प्रदेश सरकार से प्रार्थना करती है कि उक्त वैद्यराजों को पुनः नौकरी देने की कृपा करें।'

'भारत सरकार के सेंट्रल बोर्ड ऑफ हेल्थ के २० अगस्त १९५४ के प्रस्ताव का यह सभा तीव्र विरोध करती है जिसके अनुसार हकीमों तथा होम्योपैथिक डाक्टरों पर पाबन्दी लगाने का निश्चय किया गया है। यह निर्णय देश में बहुत बड़ी संख्या में व्यवसाय करने वाले चिकित्सकों के मानवीय अधिकारों की हत्या करनेवाला है। रजिस्ट्रेशन के वगैर वैद्यक व्यवसाय करने की कानूनन छूट के कारण रजिस्ट्रेशन की आवश्यकता न प्रतीत होने से अन्य वैद्य हकीम भी आज मौजूद हैं। ऐसी दशा में अनरजिस्टर्ड वैद्य-हकीमों के रजिस्ट्रेशन का प्रबन्ध करने की अपेक्षा उन पर पाबन्दी लगाने की बात करना देश के लाखों वैद्यक व्यवसाइयों को समाप्त करना है। अतः यह सभा भारत सरकार से जोरदार शब्दों में मांग करती है कि ऐसा कोई भी निषेधात्मक कानून बनाने का सरकार तब तक प्रयत्न न करे जब तक देश का हर चिकित्सा-व्यवसाई रजिस्टर्ड न हो जावे। साथ ही केन्द्र सरकार यथाशीघ्र चोपड़ा कमेटी की सिफारिशों के अनुसार "सेंट्रल कौन्सिल ऑफ आयुर्वेदिक एंड यूनानी सिस्टम" की स्थापना करे। यह सभा अखिल भारतीय आयुर्वेद कांग्रेस से प्रार्थना करती है कि भारत सरकार के "सेंट्रल बोर्ड ऑफ हेल्थ" के अनरजिस्टर्ड वैद्य हकीमों पर पाबन्दी लगाने के सुझाव का निषेध करने के हेतु देश में सर्वत्र आन्दोलन आरम्भ करें तथा हर प्रान्त से लाखों की तादाद में सरकार को विरोध पत्र भेजे। आवश्यक हो तो प्रान्तीय कार्यकर्ताओं से वह परामर्श भी लेवें।

४. भारत सरकार की उस नीति का यह सभा विरोध करती है जिसमें एक ओर वैद्यों से आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को अपनाने का अनुरोध किया जाता है और दूसरी ओर व्यवसाय पर पाबन्दी लगाई जाती है। कोई भी विज्ञान केवल एक वर्ग या जमात के लिये ही नहीं होता। अतः यह सभा भारत सरकार से यह नम्र प्रार्थना करती है कि देश के चिकित्सक संप्रदाय पर ऐसी किसी चिकित्सा पद्धति के उपयोग पर प्रतिबन्ध का मार्ग न अपनाये।'

"संघ की यह सभा देश के सभी राज्यों के आयुर्वेद-यूनानी बोर्डों से नम्र प्रार्थना करती है कि भारत के अन्य प्रान्तों में रजिस्टर्ड वैद्य हकीमों को वे अपने प्रान्तों में वह सारी चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान करें जो उनके द्वारा रजिस्टर्ड चिकित्सकों को प्राप्त होती हैं। कारण रजिस्ट्रेशन प्रायः एक-सा ही है। इस कार्य के होने से एक ही देश में रहनेवाले किन्तु आवश्यकता पड़ने पर देश के एक हिस्से (राज्य) से दूसरे हिस्से (राज्य) में चिकित्सा व्यवसाय के लिये आने-जाने वाले चिकित्सकों की कठिनाइयां दूर होंगी।"

'उत्तर प्रदेश की सरकार ने रजिस्टर्ड वैद्य--हकीमों से प्रतिवर्ष टॅक्स लेने का जो निश्चय किया है उसका यह सभा तीव्र शब्दों में विरोध करती है।'

डा० केसरवानी की विजय

डा० केसरवानी के मामले में इलाहाबाद हाईकोर्ट के निर्णय के विरुद्ध उत्तर प्रदेशीय मेडिकल कौन्सिल ने सुप्रीमकोर्ट में विशेष अपील की प्रार्थना प्रस्तुत की थी जिसका निर्णय हो गया। मुख्य न्यायाधीश श्री महाजन ने अन्य चार न्यायाधीशों के साथ उसे अस्वीकृत कर दिया।

डा० धर्मानद केसरवानी गुरुकुल कांगड़ी से सन् २८ में स्नातक हुए और आयुर्वेदालंकार की उपाधि नवीन और प्राचीन चिकित्सा-शास्त्र में प्राप्त की। उसके बाद ३ वर्ष पर्यन्त बम्बई के अस्पतालों में क्रियात्मक अनुभव प्राप्त किया और बाद में ७ वर्ष सफलता के साथ देहरादून में प्रैक्टिस की। १९३८ के प्रारम्भ में उन्हें विदेशों में चिकित्सा के विशेष अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति प्राप्त हुई और इटली के रोम विश्व-विद्यालय में उन्होंने प्रवेश प्राप्त किया। वहाँ से ८८ प्रतिशत अंकों के साथ आवश्यक परीक्षाओं को उत्तीर्ण कर एम. डी. की उपाधि प्राप्त की। वहीं से श्वास-संस्थान के रोगों की विशेषज्ञ की परीक्षा में ९२ प्रतिशत अंक प्राप्त कर उत्तीर्ण हुए। तदनन्तर जर्मनी चले गए और वहाँ नए सिरे से जर्मन भाषा में चिकित्साशास्त्र का अध्ययन किया और समग्र परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर ससम्मान

एम. डी. की उपाधि प्राप्त की। वहाँ म्युनिच विश्व-विद्यालय में छाती के रोगों के विभाग के अध्यक्ष पद पर उन्हें नियुक्त किया गया एवं ५ वर्ष तक उसी विश्व-विद्यालय में व्याख्याता का कार्य किया। दक्षिणी जर्मनी के होल्ज-किरखन नगर के चिकित्साध्यक्ष के पद पर भी उन्हों ने कार्य किया एवं युद्धोपरान्त अमरीकन हवाई अड्डे में चिकित्सक नियुक्त हुए। डा० केसरवानी ने बर्लिन, विएना, म्यूनिच, जूरिच, रोम प्रभृति स्थानों के प्रख्यात सर्जनों के साथ कार्य कर छाती और मस्तिष्क की सर्जरी में विशेष दक्षता प्राप्त की। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद १९४७ में लगभग दस वर्ष का यूरोपीय अनुभव लेकर वह भारत लौटे और उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा प्रसिद्ध भुवाली सेनोटोरियम के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किए गए। इस नियुक्ति का कुछ व्यक्तियों ने विरोध किया और उत्तर प्रदेशीय मेडिकल कौन्सिल द्वारा रोम विश्व-विद्यालय को लिखा गया कि 'डा० केसरवानी ने भारतवर्ष में सरकार द्वारा अमान्य एक संस्था में शिक्षा पाई और केवल मृतप्राय पुरानी चिकित्सा पद्धति का अध्ययन किया था। उन्हें प्रवेश में रियायत देकर गलती की गई, अतः डा: केसरवानी की एम. डी. की उपाधि वापस ले ली जाय।' रोम विश्व-विद्यालय के अधिकारियों ने बगैर कुछ पूछताछ किए १२ वर्ष के बाद एम. डी. की उपाधि वापस कर ली। स्मरण रहे कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भी भारत में केवल अंग्रेजी डाक्टरी उपाधियों की कानूनन रजिस्ट्री होती है। उनकी एम. डी. (जर्मनी) उपाधि अभी तक रजिस्टर्ड नहीं हो पाई है। इलाहाबाद हाईकोर्ट ने मेडिकल कौन्सिल के इस कार्य को अत्यन्त अनुचित और उत्तरदायित्वशून्य उद्घोषित कर बड़ी भर्त्सना की और डा० केसरवानी को ५०० रुपयों का लम्बा खर्चा दिलवाया था। मेडिकल कौंसिल ने सुप्रीम कोर्ट में उसकी अपील की और सुप्रीम कोर्ट ने अपील को अस्वीकृत कर उपर्युक्त निर्णय की संपुष्टि की। डा० केसरवानी इस समय इलाहाबाद के राजकीय क्षय चिकित्सालय के अध्यक्ष और प्रान्तीय मेडिकल सर्विस के प्रथम कोटि के सदस्य हैं। इटली के दिल्ली स्थित राजदूत ने हाईकोर्ट एवं सुप्रीम कोर्ट के निर्णयों को हाथ में ले लिया है।

राजवैद्य पं० नन्दकिशोरजी का स्मारक

अखिल भारतीय आयुर्वेद विश्वविद्यालय के सभापति तथा राजस्थान के राजकीय आयुर्वेद विभाग के प्रधान संचालक स्वर्गीय प्राणाचार्य, आयुर्वेद-मार्तण्ड, राजवैद्य पं० नन्दकिशोर जी महाराज भिषगाचार्य के स्मारक के निमित्त योजनावद्ध कार्यक्रम प्रस्तुत करने की भारत के वैद्य समाज से अपील करते हुए श्री परशुरामपुरिया राजस्थान आयुर्वेद कालेज, सीकर के प्रिन्सिपल वैद्य श्री प्रभुदत्त शास्त्री भिषगाचार्य ने कहा है कि उक्त स्मारक के विषय में सभी प्रकार के सुझावों का स्वागत किया जायगा। यदि किसी के सान्निध्य अथवा जानकारी में स्वर्गीय वैद्यजी के कोई स्मृति-चिह्न सुरक्षित उपलब्ध हों, यथा पत्र-व्यवहार, लेख, काव्य, प्रयोग, चिकित्सा-शैली, चित्र आदि, तो उन्हें संग्रह कर स्मारक के उपयोग में लाने का भी आपने अनुरोध किया है।

वैद्य पं० प्यारेलालजी शर्मा का सम्मान

बम्बई के प्रमुख पीयूषपाणि सिद्ध चिकित्सक एवं आयुर्वेद विद्यालय के प्रिन्सिपल वैद्यराज पं० प्यारेलाल जी शर्मा आयुर्वेदाचार्य को धर्मार्थ औषधालय में १५ वर्ष में करीब २५ लाख रोगियों की चिकित्सा का कार्य करने के पश्चात् अवकाश ग्रहण करने के उपलक्ष में बम्बई के प्रमुख नागरिकों द्वारा मलाड म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष श्री चिमनलालजी जे० शाह की अध्यक्षता में अभिनन्दन पत्र समर्पण किया गया। आयुर्वेद महासम्मेलन के मनोनीत सभापति वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा जी आयुर्वेद वृहस्पति ने वैद्य जी की सेवा एवं व्यक्तिगत दृढ़ सम्बन्ध का उल्लेख किया। आपने यह भी घोषणा की कि बम्बई सरकार द्वारा युनिवर्सल हल्थ इन्स्टीस्यूट में २० बड आयुर्वेद के लिये निःशुल्क रखे जायेंगे। वैद्य पं० कन्हैयालाल जी भेड़ा आयुर्वेदाचार्य, वैद्य महावीर प्रसाद जी मिश्र, सेठ नटवर लालजी ने वैद्य प्यारेलाल जी शर्मा की चिकित्सा-पद्धति, शिक्षा-पद्धति एवं औषध निर्माण-कला तथा रिसर्च की प्रवृत्ति की अत्यन्त प्रशंसा की। अध्यक्ष चिमनलाल जे० शाह ने वैद्य जी की चिकित्सा, उनकी अध्यापन एवं औषध निर्माणकला की विशेषता के साथ बताया कि वे इतने सरल, सहृदय, एवं उदार हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि रोगी की आत्मा में वैद्य जी ने अपनी आत्मा डाल दी हो। इसके बाद हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मन्त्री श्री दाऊदत्त जी उपाध्याय ने अभिनन्दन पत्र पढ़कर सुनाया, जिसे अध्यक्ष महोदय ने वैद्य जी को समर्पित किया।

औषधालय की रजत जयन्ती

राजस्थान के स्वास्थ्य मंत्री चौ० कुंभारामजी की अध्यक्षता में विगत २९ वर्षों से जनता की निःस्वार्थ सेवा करनेवाले श्री नथमलजी सेठिया दातव्य औषधालय का रजत जयन्ती महोत्सव अत्यन्त समारोह के साथ सरदार-शहर में मनाया गया। संस्था के प्रधान मंत्री श्री जयचन्दलालजी सेठिया ने संस्था के इतिहास पर पूरा प्रकाश डाला। औषधालय के प्रधान चिकित्सक आयुर्वेदाचार्य सोहनलालजी वैद्य ने गत वर्ष की रोगी संख्या एक लाख से कुछ ऊपर बताते हुए कहा कि आयुर्वेद एक वैज्ञानिक चिकित्सा शास्त्र है और ९० प्रतिशत जनता इस विज्ञान के द्वारा स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त करती है। यदि इसे राज्याश्रय प्राप्त होकर अनुसंधान व शल्य चिकित्सा की व्यवस्था हो जाए तो यह राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति होने के उपयुक्त है। संस्था के संचालक सेठ श्री चंपालाल जी सेठिया ने स्वास्थ्य मंत्री को अभिनन्दनपत्र दिया और आयुर्वेद में रिसर्च की व्यवस्था करने की प्रार्थना की। गांधी विद्या मंदिर के अध्यक्ष आचार्य गौरीशंकर जी ने स्वास्थ्य मंत्री जी से राजस्थान में आयुर्वेद की प्रगति के लिए निवेदन किया तथा औषधालय द्वारा हो रही जन सेवा की सराहना की और राजस्थान में आयुर्वेद की प्रगति के लिए यथासंभव प्रयास करने का स्वास्थ्य मंत्रीने आश्वासन दिया।

इस महोत्सव पर जड़ी बूटियों की एक प्रदर्शनी सजाई गई थी, जिसका उदघाटन वैद्यराज पं० रामप्रसादजी ने किया था। प्रदर्शनी में सरदारशहर और उसके आसपास के इलाकों में होनेवाली सभी उपलब्ध वनस्पतियों का संग्रह किया गया था, जो संख्या में १२५ से कुछ अधिक थीं। स्वास्थ्य मंत्री व अन्यान्य सैकड़ों व्यक्तियों ने प्रदर्शनी देखकर उस पर प्रसन्नता प्रकट की।

देशी औषधियों पर गवेषणा

भारत सरकार ने पंचवर्षीय योजना की शेष अवधि के लिए ३७ लाख ५० हजार रु० की रकम मंजूर की है। इस रकम में से २२ लाख रु० आयुर्वेद, यूनानी, होमियोपैथिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा प्रणालियों में गवेषणा करने के लिये खर्च होगा और शष रकम जामनगर शाला पर खर्च की जायगी, जहाँ इस तरह की गवेषणा पहले से ही चालू है। राज्य सरकारों से कहा गया है कि जो संस्थाएँ यह काम कर सकती हैं, उनके सम्बन्ध में वे अपनी सिफारिश भेजें। समिति इस बात पर भी विचार करेगी कि इस सम्बन्ध में आगे क्या कार्रवाई जरूरी है।

विदेशी दवाओं की तीव्र निन्दा

बंगलौर में भाषण करते हुए भारत के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ० सी० बी० रमण ने विदेशी दवाइयों पर अनावश्यक रूप से निर्भर रहने की प्रवृत्ति की निन्दा की।

डॉ० रमण ने टुमकुर में मैसूर मेडिकल एसोशिएशन में कहा कि हमें दवाइयों के लिए विदेशों पर निर्भर करना छोड़ देना चाहिए। विदेशों में बनी पेटेण्ट ओषधियों, जो टिकियों व द्रव के रूप में आती हैं, का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि इन औषधियों को तब तक आश्चर्यजनक बताया जाता है जबतक कि आपको यह पता नहीं चल जाता कि ये भयंकर हैं।

डॉ० रमण ने खुद प्रकट किया कि विगत आधी शती में भारत ने विज्ञान व चिकित्सा शास्त्र की विभिन्न शाखाओं के बुनियादी ज्ञान की उन्नति में बहुत कम ही योगदान दिया। वैज्ञानिक अनुसंधान के आधार पर जो बुनियादी ज्ञान प्राप्त होता है, उसी से देश की उन्नति में सहायता मिलती है।

नासूर और धूम्रपान का जिक्र करते हुए डॉ० रमण ने कहा कि इन्सान का सबसे बड़ा दुश्मन खुद इन्सान है। कृत्रिम आनन्द ही आनन्द का शत्रु है। हरेक व्यक्ति को अपने शरीर को ईश्वर की बहुमूल्य देन समझनी चाहिए।

अधिवेशन के सभापति डॉ० सी० पी० नटराजन ने अपने भाषण में डाक्टरों को चेतावनी दी कि बाजार में आने वाली हरेक नई औषधि का सेवन न करने लग जायं। व्यापारिक संस्थाएँ इन ओषधियों के इश्तिहार बाजार में भेज देती हैं। हमारे डाक्टर इनके फेर में पड़ जाते हैं और ऐसी दवाइयों का इस्तेमाल शुरू कर देते हैं, जिनकी उपयोगिता और भयंकर परिणाम का उन्हें कुछ भी पता नहीं होता।

जड़ी-बूटियों से औषध-निर्माण

तीन साल पहले जम्मू की प्रयोगशाला में काश्मीर की घाटी से 'वसाका' नामक जंगली पौदा जांच के लिए लाया गया था। पर्यवेक्षण से पता चला कि इस पौदे से बनी दवा आन्त्रिक ज्वर (टाइफाइड) और यक्ष्मा में दी जाने वाली दवा 'स्ट्रेप्टोमाइसिन' के स्थान पर काम में लाई जा सकती है। जम्मू की औषध गवेषणशाला में इस समय पौदे की विस्तार पूर्वक परीक्षा हो रही हैं। परीक्षण से

जो जानकारी प्राप्त होगी उसे निर्माण विभाग में भेज दिया जायगा और निर्माण विभाग उसे तैयार कर के बाजार में बिक्री के लिए भेजेगा। यह प्रयोगशाला सन् १९४१ में स्थापित की गई थी। यहाँ की बनी करीब ३०० दवाइयाँ बाजार में बिक रही हैं। यह औषधशाला राज्य में उगनेवाली जड़ी-बूटियों से दवा बनाने और इस प्रकार राष्ट्रीय औषध उद्योग स्थापित करने के लिए बनी थी। इसने अनेक जड़ी-बूटियों का पता लगाया है और उनकी खेती करा कर दवाइयाँ तैयार कर के उन्हें किफायत दाम पर जड़ी-औषध निर्यातकों को दिया है। गवेषणाशाला से लगा हुआ औषध भण्डार भी है, जहाँ पिछले ३० वर्षों से परीक्षण के लिए जड़ी-बूटियाँ रखी जाती हैं। भारत में पैदा होने वाली लगभग २००० जड़ी-बूटियों में से १७०० से अधिक जड़ी-बूटियाँ यहाँ संग्रहीत हैं। औषध भण्डार में ३०० प्रकार की घास भी हैं जो जम्मू-काश्मीर के विभिन्न स्थानों से लाई गई हैं। परीक्षण से पता चलता है कि लगभग २० प्रकार की घासों में पोषक तत्व होते हैं जिन्हें काम में लाया जा सकता है। औषध, साबुन और प्रसाधन आदि तयार करने के लिए भी तैल वाले पदार्थों से काफी तेल निकाला जा सकता है।

औषधशाला में हकीमी और वैद्यक दवाइयों की भी परीक्षा की जा रही है। परीक्षण से मालूम हुआ है कि बाजार में बिकने वाली अधिकांश दवाइयाँ घटियाँ हैं और उनमें बहुत अधिक मिलावट होती हैं। मसलन 'रसौत' का एक भी नमूना उत्तम किस्म का नहीं मिला और कत्थे में काफी मिट्टी पाई गई। आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों से देशी चिकित्सा में काम आनेवाली लगभग एक दर्जन जड़ी-बूटियों और उनकी गुणकारिता की जांच की गई। कीड़े-मकोड़े मारनेवाली जड़ी-बूटियों की भी खोज जारी है और उन्हें जम्मू-काश्मीर में उगाया जा रहा है।

देश के बढ़ते हुए औषध उद्योग की जरूरतों को पूरा करने के लिए यह औषधशाला, राज्य बन विभाग की सहायता से, विभिन्न देशी विदेशी जड़ी-बूटियों को उगाने का काम कर रही है। मसलन औषधालय ने जापानी पुदीना उगाया है। इससे देश में ही 'मिन्थोल' और पिपरमेंट का तेल बनाने में सहायता मिलेगी और उन्हें विदेशों से नहीं मंगाना पड़ेगा। सरकार ने बेलेडोना, डिजीटाइलस, पाइरेथ्रम, लेवेण्डर आदि के पौदे लगाने के लिए पंच वर्षीय योजना के अन्तर्गत ६ लाख ५०० हजार रुपए स्वीकृत किए हैं। इन औषधों को काम में लाने के लिए कारखाने का विस्तार किया जा रहा है। इसके लिए श्रीनगर में इमारत तैयार हो चुकी है। केवल मशीन का आना बाकी है।

औषधशाला में तीन विभाग हैं। वनस्पति विभाग में जड़ी-बूटियों को खोजने, पहचानने और जाँचने का काम होता है। रसायन और जीव रसायन विभाग में उनके रासायनिक विश्लेषण और उनके दवाई के तत्व निकालने तथा निघंटु कीटाणु विद्या विभाग में जड़ी-बूटियों से बनी दवाइयों का प्राणियों पर प्रयोग करने का काम होता होता है। औषधालय से लगा हुआ एक आधुनिक पुस्तकालय भी है जिसमें औषध-गवेषणा सम्बन्धी ६००० पुस्तकें हैं। औषध गवेषणा शाला की गणना अब भारत की प्रमुख गवेषणाशालाओं में होती हैं। जम्मू-काश्मीर और भारत के अन्य राज्यों के औषधीय साधनों को अधिक विकसित करने के लिए इसका कार्यक्षेत्र बराबर बढ़ता जा रहा है।

कैंसर का प्रधान कारण किनोन

एक जापानी पैथोलॉजिस्ट डा० नुम्बाटरो ने यह प्रमाणित कर दिया है कि तम्बाकू और साबून में पाया जाने वाला एक मुख्य तत्व क्विनोन का प्रयोग कैंसर व्याधि का कारण होता है। जापानी डाक्टर का कथन है कि वह इस निष्कर्ष पर एक चूहे पर उक्त तत्व का प्रयोग करके पहुँचा है। चूहे को इस तत्व में सांस लेने पर बाध्य किये जाने पर उसे कैंसर हो गया। साथ ही इस तत्व को उसकी त्वचापर प्रयोग करने से उसकी त्वचा भी कैंसरयुक्त हो गई।

बम्बई में आयुर्वेद का अनुसन्धान

बम्बई सरकार शीघ्र ही बम्बई, पूना और अहमदाबाद में आयुर्वेद का अनुसन्धान-कार्य प्रारम्भ करेगी। बम्बई में आयुर्वेद में अनुसन्धान-कार्य यूनिवर्सल हेल्थ इन्स्टीच्युट के सहयोग से प्रारम्भ किया जायेगा। पूना और अहमदाबाद में यह कार्य बाद में प्रारम्भ होगा। आयुर्वेद के प्राचीन चिकित्सा विज्ञान को पुनर्जीवित करने में सहायता करने की दिशा में यह एक प्रयत्न होगा। बम्बई राज्य की सरकार उक्त संस्था को आर्थिक सहायता देगी। इन्स्टी-

च्युट शहर के अस्पतालों से बीमार चुन कर उनका इलाज करेगा। अनुसंधान योजना का तीन सूत्री लक्ष्य है। हाल में इस पर विस्तार के साथ विचार किया गया था। श्री नन्दा ने भी व्यक्तिगत रूप में उस समय विचार-विमर्श में भाग लिया था। संभवतः अनुसन्धान योजना को कार्यान्वित करने के लिये उक्त इन्स्टीच्युट केन्द्रीय सरकार से सहायता की मांग करेगा। अनुसंधान द्वारा यह जानने का प्रयत्न किया जायगा कि जिन रोगों की एलोपैथी से चिकित्सा संभव नहीं है उनका आयुर्वेद से इलाज हो सकता है या नहीं। यह भी जानने का प्रयत्न होगा कि किन रोगों में आयुर्वेद चिकित्सा एलोपैथी की अपेक्षा कम खर्चीली पड़ती है।

भोपाल में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की शाखा उद्घाटन सम्पन्न

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की भोपाल शाखा का उद्घाटन भोपाल के मुख्य मन्त्री डा० शंकर दयालु शर्मा ने नवम्बर मास के द्वितीय सप्ताह में किया। आपने आयुर्वेद की औषधियों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आयुर्वेद में वर्णित औषधियों का यदि वैद्यगण सचाई से प्रयोग करें तो जनता शीघ्र रोगमुक्त हो सकती है और इससे आयुर्वेद का महान उपकार हो सकता है। आपने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा निर्मित शास्त्रीय औषधियों की सद्यः गुणकारिता की प्रशंसा करते हुए कहा कि वैद्यों को सदैव शुद्ध शास्त्रीय ढंग से निर्मित औषधियों का अपने रोगियों पर उपयोग करना चाहिये। जो वैद्य ऐसा नहीं करते, वे आयुर्वेद के समर्थक होकर भी आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रणाली को पीछे ढकेलते हैं। अनर्गल औषधियों का प्रयोग करने से जनता को नुकसान उठाना पड़ता है और आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रणाली की बदनामी होती है।

उदयपुर कमिश्नरी वैद्य सभा

उदयपुर कमिश्नरी वैद्य सभा का चुनाव हाल ही में सम्पन्न हुआ। इसमें १९५४-५५ साल के लिये पदाधिकारियों का निम्नप्रकार निर्वाचन हुआ :—

अध्यक्ष—श्री भवानी शंकर जी वैद्य, उपाध्यक्ष-श्री गिरिधर जी शर्मा वैद्य, कार्यवाहकाध्यक्ष—डा० प्रमोद शंकर जी, प्रधान मन्त्री—श्री वैद्य मिश्री प्रसाद शास्त्री, संयुक्तमंन्त्री—श्री वैद्य परशुराम जी, श्री हकीम आत्माराम जी, अर्थ-मन्त्री—श्री वैद्य नवतीलाल जी, सं० अर्थ-मन्त्री —श्री श्रीकान्ता टाली।

उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन का चुनाव

उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन के सभापति का चुनाव दिसम्बर मास में होने जा रहा है। मनोनयन पत्र दाखिल करने की तिथि ३० नवम्बर निर्धारित हुई है। प्रस्तावित नामों पर स्वीकृति मिलने के बाद १० दिसम्बर से मत-पत्र भेजे जायंगे। उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्य श्री मदनगोपाल जी वैद्य ने उत्तर प्रदेश के वैद्य समाज से अपील की है कि इस वार वैद्य सम्मेलन के सभापति का चुनाव निर्विरोध करें। इसीसे आयुर्वेद का हित साधन होगा और प्रान्तीय सम्मेलन की प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

झुंझुनू जिला वैद्य सम्मेलन

झुंझुनू जिला वैद्य सम्मेलन का अधिवेशन वैद्यराज श्री पन्नालाल जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। आचार्य नित्यानन्द जी शर्मा ने अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए कहा कि सरकार एलोपैथी की चकाचौंध में फंसी हुई है। इसी से आयुर्वेद को पूरा संरक्षण नहीं मिल रहा है। वर्तमान चिकित्सक रोगी के भावी स्वास्थ्य को ध्यान में न रख कर केवल लक्षणों की चिकित्सा करते हैं और रोगी भी संयम से दूर रह कर स्वास्थ्य को बाजार की साधारण वस्तु की भाँति खरीदना चाहते हैं। यही कारण है कि पाश्चात्य चिकित्सक नित नई औषधि का आविष्कार करने में लगे हैं।

अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए श्री शास्त्री ने बताया कि हम सब को रागद्वेष से परे रह कर आयुर्वेद की सेवा करनी चाहिए। हमारे पास साधन सीमित हैं, फिर भी अपनी लगन से आयुर्वेद की उन कमियों को दूर करें जो कालक्रम से आज आयुर्वेद में घुस आई हैं। अपने भाषण के अन्त में सभापति जी ने झुंझुनू जिले में आयुर्वेद के प्रसार की योजना प्रस्तुत की। सम्मेलन के साथ ही आयुर्वेद वाचस्पति श्री पं० विरंची लाल शर्मा की अध्यक्षता में रहस्यमय रोग परिषद् हुई। परिषद् ने विचार विमर्श के बाद घोषणा की कि आयुर्वेद के अनुसार रहस्यमय रोग में रहस्य की कोई बात नहीं है। आयुर्वेद सिद्धान्त से यह वात पित्तोष्ण सन्निपात है। यह रोग कोई नया नहीं हैं किन्तु आजकल बच्चों में पोषक तत्वों की कमी के कारण यह रोग हो रहा है। लोहार्गल पर्वत की ११३ जड़ी-बूटियों का उद्घाटन बाबा जयरामदास द्वारा होने के बाद सन्दिग्ध बनौषधि परिषद हुई। सम्मेलन में कुल आठ प्रस्ताव स्वीकृत हुए जिनमें से एक के द्वारा वैद्यों का रजिस्ट्रेशन

शीघ्र किए जाने का अनुरोध किया गया। दूसरे में विगत तीन वर्षों से राजस्थान वैद्य सम्मेलन का वार्षिकाधिवेशन न होने पर तीव्र असन्तोष प्रकट किया गया। सम्मेलन के आगामी अधिवेशन के लिए बगड़, रतनसर और सुलताना के निमन्त्रणों में से सुलताना का निमन्त्रण स्वीकार किया गया।

सिरसा आयुर्वेद सम्मेलन

सिरसा आयुर्वेद मण्डल के तत्त्वावधान में जिला आयुर्वेद सम्मेलन श्री पं० नाथूराम जी मोद्गल आचार्य श्री सनातनधर्म प्रेमगिरि आयुर्वेदिक कालेज नई दिल्ली के सभापतित्व में हुआ। इसमें राज्य आयुर्वेद मंडल के अध्यक्ष तथा मन्त्री श्री प्रकाश नाथ जी तिवारी तथा कुंवर रामेश्वर सिंह जी के अतिरिक्त जिले भर के वैद्य भारी संख्या में उपस्थित थे। (१) वैद्यों को औषधोपयोगी अहिफेन सुलभ करने (२) कारखानों में आयुर्वेदिक औषधालय खोलने (३) रजिस्टर्ड देशी चिकित्सकों से रिन्यूअल फीस हटाने और (४) आयुर्वेदिक कालेज खोलने की पंजाब सरकार से मांग की गई। जड़ी बूटियों की प्रदर्शनी भी की गई तथा जटिल रोगियों का निरीक्षण किया गया। साथ ही अनुभूत योग वैद्य बन्धुओं ने प्रकट किये। जिले में वैद्यों के नवीन एवं सुचारु रूप से संगठित करने की योजना बनाई गई।

श्री चन्द्रचूड़ जी के निधन पर शोक

श्रीबैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के भेलसा स्थित बिक्री-केन्द्र में अनुष्ठित स्थानीय वैद्यमण्डल की एक सभा में मध्य-प्रदेशीय औषधि परिषद् के रजिस्ट्रार, आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध विद्वान् पंडित चन्द्रचूड़ जी शर्मा के असामयिक देहावसान पर हार्दिक शोक प्रकट करते हुए दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिये परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना तथा उनके समस्त शोक-संतप्त परिवार के प्रति अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट की गयी। श्री चन्द्रचूड़ जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य दर्शन, सांख्य, साहित्य आदि के प्रकाण्ड विद्वान् थे। आपके महान् गुणों एवं महान् कर्तव्य से समस्त मध्यभारत के वैद्यगण प्रभावित थे। आप अपने पीछे एक पुत्र तथा पुत्रियाँ छोड़ गये हैं। ईश्वर आप की आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

अवन्तिका वैद्यमंडल

श्री अवन्तिका वैद्य मण्डल की एक विशेष बैठक श्री राममन्दिर, उज्जैन में श्री गोपीनाथ जी व्यास भिषगाचार्य की अध्यक्षता में हुई। इस में मध्य भारत आयुर्वेद वोर्ड के रजिस्ट्रार श्री पं० चन्द्रचूड़ जी शास्त्री एवं खाद्य मन्त्री श्री रफी अहमद किदवई के असामयिक निधन पर शोक प्रकट किया गया एवं शोकसंतप्त परिवारों को धैर्य देने के लिये परमात्मा से प्रार्थना की गई।

श्री बैष्णव आयुर्वेद शोध संस्थान

श्री बैष्णव आयुर्वेद शोध संस्थान का वार्षिकोत्सव वैद्य विरञ्चीलाल जी आयुर्वेद वाचस्पति की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। संस्थान के कार्यवाहक अध्यक्ष बाबा जयरामदास जी ने वार्षिक विवरण में बताया कि शेखावाटी में सब से अधिक पैदा होनेवाली शमी (जाँट) वृक्ष पर हमारा अन्वेषण पूरा हो गया है। पहले पहल शमी की जड़ की अन्तर्छाल में तीसरा भाग कालीमिर्च डालकर गोलियाँ बनाई गई। उनका प्रयोग विभिन्न रोगों पर किया गया। यह पक्वातिसार को रोकने में सफल सिद्ध हुआ। फिर शमी के केवल पत्रों की ही गोलियाँ बनीं। आगामी वर्ष में फोगले पर इसी प्रकार के प्रयोग होंगे।

वैद्य विरंचीलाल जी ने सभापति पद से शोध संस्थान की विभिन्न प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि इस प्रकार के प्रयत्नों से ही आयुर्वेद में लुप्त अनेक प्रक्रियाओं और जड़ी बूटियों को पुनः प्रचलित किया जा सकेगा।

इसी अवसर पर अष्टांग आयुर्वेद परिष्कार परिषद् का अधिवेशन आचार्य नित्यानन्द जी की अध्यक्षता में हुआ। आचार्य जी ने बताया कि आयुर्वेद के प्रत्येक अंग के विद्वानों को एक स्थान पर इकट्ठा करना उतना सरल नहीं जितना कि 'श्री आयुर्वेद शोध संस्थान' ने समझा था। फिर भी यह कार्य अत्यन्त आवश्यक है और प्रत्येक अवस्था में हमें करना ही है। प्रारम्भिक योजना पर विचार विमर्श के बाद एक प्रतिष्ठित मण्डल स्थापित किया गया जो कि आयुर्वेद के आठ अंगों के प्रसिद्ध विद्वानों के मौखिक विचार भारत भर में घूम कर जानेगा और अपना विवरण प्रस्तुत करेगा।

जापानी आयुर्वेदज्ञ के अनुभव

जापान के प्रख्यात आयुर्वेदज्ञ श्री जार्ज ओशावा ने कलकत्ते के गड़िया शिवगुरु मठ में अनुष्ठित एक सभा में 'आयुर्वेद चिकित्सा' विषय पर भाषण करते हुए बताया कि जापान में कुछ शताब्दी पूर्व तक आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति प्रचलित थी, पर अब जापान में इसका कोई स्थान नहीं है। ६१ वर्षीय जार्ज ओशावा ने बताया कि २१ वर्ष

की उम्र में उन को यक्ष्मा रोग हुआ था और आयुर्वेदीय चिकित्सा से वे रोग मुक्त हुए थे। उसके बाद उन्होंने आयुर्वेद का अध्ययन किया और जापान में आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति के पुनरुद्धार में काफी महत्त्वपूर्ण अंश ग्रहण किया। उन्हों ने आयुर्वेद पद्धति से चिकित्सा कर कैन्सर, यक्ष्मा, दमा, वातरोग, पायोरिया, अपांग आदि अनेक जटिल रोगों के रोगियों को नीरोग किया है। प्रसंगवश उन्हों ने बताया कि जलपद्म के मूल के एक चम्मच भर रस का दैनिक तीन बार सेवन सात दिन तक करने से यक्ष्मा और दमा रोग दूर हो जाता है। आपने बताया कि प्राकृतिक जलवायु और संतुलित भोजन की सहायता से मनुष्य नीरोग, स्वास्थ्यवान् और दीर्घजीवी हो सकता है। गीता में वर्णित सात्विक, राजसिक और तामसिक खाद्य के अनुसार ही मनुष्य का स्वभाव और स्वास्थ्य बनता है। मनुष्य के स्वस्थ जीवन-धारण के लिए दैनिक पांच औंस चावल, ३ औंस तरकारी, आधा सेर दूध और आधा सेर जल पर्याप्त होता है। श्री ओशावा ने भारत में रह कर आयुर्वेद की सेवा करने की इच्छा प्रकट की।

नकली दवाएँ बनाने पर रोक

राज्य सभा में दो सरकारी विधेयक स्वीकार किये गये हैं, जिनका उद्देश्य दन्त चिकित्सा कानून तथा औषध कानून में संशोधन करना है।

पहला विधेयक जम्मू व काश्मीर को छोड़कर अन्य राज्यों में लागू होगा। इसके अधीन भारतीय दन्त चिकित्सकों को जो सुविधाएँ दी जाती हैं, वही सुविधाएँ पाकिस्तान से आने वाले चिकित्सकों को भी दी जाने की व्यवस्था की गयी है।

औषध कानून की आवश्यकता पर बल देते हुए स्वास्थ्य मंत्राणी राजकुमारी अमृतकौर ने बताया कि औषध कानून का मूल उद्देश्य नकली दवाइयों का उत्पादन रोकना है जो मानवता के विरुद्ध एक घृणित अपराध है। इस विधेयक का उद्देश्य औषध अधिनियम की धाराओं को कड़ा करना है, जिससे सन्तति-निरोध व जीव-जंतुओं को मारने के लिए प्रयुक्त रसायन भी औषध की परिभाषा में आ सकें। फर्जी दवा बनाने वालों को अधिक कड़ा दण्ड देने तथा उनकी सामग्री की जांच करने वाले अधिकारी के अधिकार बढ़ाने का इस विधेयक में उल्लेख है।

गर्भस्थ शिशु की पहचान

चिकित्सा विज्ञान ने अब यह मालूम करने का उपाय ढूंढ़ लिया है कि गर्भस्थ शिशु बालक है या बालिका। यह उपाय अत्यन्त सरल है। 'लिटमस' कागज को माता १५ सेकेण्ड तक अपनी जीभ पर रखने के बाद उसे सुखाकर एक मुहरबन्द नली में रखकर डाक्टर के पास भेज देती है। तब उस लिटमस कागज की प्रयोगशाला में परीक्षा की जाती है। यदि कागज बैंगनी भूरे रंग का हो जाए तो शिशु बालक होगा और यदि वह पीला हो जाए तो बालिका। इस सम्बन्ध में ब्रिटेन में जो परीक्षण किए गए, वे ९० प्रतिशत सही निकले।

जावरा वैद्य सभा

जावरा (मध्य भारत) "वैद्य सभा" का नवीन निर्वाचन निम्न प्रकार हुआ। अध्यक्ष—वैद्य जगदीश प्रसाद जी शास्त्री, उपाध्यक्ष—वैद्य भारद्वाज जी शास्त्री, मन्त्री—वैद्य लक्ष्मी नारायण जी पाण्डे, स० मंत्री—वैद्य रणछोड़ प्रसाद व्यास, प्रचार मंत्री—वैद्य बालकृष्ण जी, कोषाध्यक्ष—सेठ किशन चन्द्र जी।

चिड़ावा में आरोग्य केन्द्र

गत २८ सितम्बर को राजस्थान के शिक्षा एवं चुंगी विभाग के मंत्री श्री भोलानाथजी के करकमलों द्वारा चिड़ावा में आरोग्य केन्द्र का सानन्द उद्घाटन समारोह सम्पन्न हुआ। उद्घाटन समारोह अवसर पर स्थानीय जन एवं ओफिसर्स एवं सेठ मक्खनलालजी शेखसरिया, शेठ जमनादासजी अडूकिया, मजिस्ट्रेट चिड़ावा, चैयरमैन म्यू० चिड़ावा तथा अध्यापक वर्ग सभी उपस्थित थे। इसीके तत्वावधान में एक धर्मार्थ औषधालय भी खोला गया है। शीघ्र ही श्री यादव चिकित्सा मन्दिर (सेनिटोरियम) का भी आरम्भ होने वाला है।

नेपाल आयुर्वेदीय संस्था का चुनाव

नेपाल सरकार आयुर्वेदीय औषधालय, नरदेवी में नेपाल आयुर्वेदीय संस्था के सभापति के निर्वाचन के लिए श्री मुक्तिनाथ शर्मा के सभापतित्व में एक आमसभा हुई। सभापति पद के लिए उम्मीदवारों में श्री लम्बोदर शर्मा, श्री धर्मादित्य धर्माचार्य, वैद्य जगत मान, श्री समशेर बहादुर मिश्र और श्री वैद्य पन्ना प्रसाद जोशी सहित ५ व्यक्ति थे। श्री पन्ना प्रसाद जोशी ५० प्रतिशत से भी ज्यादा वोट प्राप्तकर विजयी हुए। निर्वाचन समिति

ने श्री वैद्य पन्ना प्रसाद जोशी को सभापति घोषित कर दिया। इसके बाद नव निर्वाचित माननीय सभापति महोदय ने उपस्थित समस्त वैद्य वन्धुओं को धन्यवाद देते हुए समस्त चिकित्सक वर्ग से सहयोग के लिए अपील करते हुए एक सामयिक भाषण दिया।

जड़ीबूटी से सूजाक का इलाज

झुंझनू जिले की बरसाती नदी काटली के किनारे उपजने वाली जड़ी बूटियों की अनुसंधान यात्रा से वापस लौटने के बाद आचार्य नित्यानन्दजी ने एक वनस्पति के बारे में बताया कि इस यात्रा में एक बड़ी ही चमत्कार पूर्ण और प्रत्यक्ष फलप्रद जड़ी हाथ लगी है। इसके सेवन से गर्मी-सूजाक जैसी पाजी बीमारी आसानी से मिट जाती है। यह वनस्पति गूढ़े के पास खटकल में मिलती है। इसके डंठल पर कांटे होते हैं और पत्ते स्वर्णक्षीरी से मिलते जुलते हैं। मैंने इसके सम्बन्ध में करीब पचास आदमियों की गवाही ली। एक वैद्यराज ने एक ऐसे रोगी की चर्चा की जो सूजाक की व्याधि से परेशान था तथा डाक्टरों एवं वैद्यों की दवा खाकर थक चुका था। रोग से उसकी मूत्रेन्द्रिय चार टुकड़ों में बंटी हुई थी, किन्तु इस वनस्पति के पत्तों का केवल पांच दिन तक सेवन करने से बीमारी जड़ से जाती रही। उक्त इलाके में यह वनस्पति 'आतशक की जड़ी' के नाम से मशहूर है।

नकली दवाओं पर रोक के लिए सुझाव

भारत सरकार ने गत वर्ष मार्च में जो औषध निर्माण जाँच समिति नियुक्त की थी, उसने औषध निर्माण उद्योग का क्षेत्र विस्तृत करने, कच्ची सामग्री की उपलब्धि में सुधार करने एवं नकली और घटिया दवाओं की बिक्री के खतरे को रोकने के लिए देशी व आयातित दवाओं पर अधिक कड़े नियन्त्रण की सिफारिशें की हैं।

समिति की मुख्य सिफारिशें संक्षेप में इस प्रकार हैं—(१) औषध निर्माण उद्योग और डाक्टरों में परस्पर अधिक सहयोग होना चाहिए ताकि भारत में निर्मित औषधों के प्रति जनता में भरोसा पैदा किया जा सके। (२) देशी औषध निर्माण उद्योग में निर्मित औषधों के प्रमाणीकरण के लिए प्रयोगशालाएँ स्थापित की जायँ। (३) देश में बाहर से दवाएँ बहुत अधिक फालतू आ रही हैं, अतः केवल आवश्यक दवाएँ ही मंगवाई जायँ ताकि भारत की विदेशी मुद्रा व्यर्थ खर्च न हो। (४) रोगाणु नाशक और अन्य पेटेंट दवाओं के बन जाने से डाक्टरों के पेशे पर बहुत बुरा असर पड़ा है। वे नुस्खे लिखने के बजाय अब सिर्फ पेटेंट दवाएँ ही देते हैं। इससे डाक्टरी शिक्षा देने वाली संस्थाओं में भी शिक्षण का स्तर गिरा है। यदि यही स्थिति रही तो कुछ समय बाद डाक्टर सिर्फ पेटेंट दवाएँ बेचने वाले एजेण्ट ही रह जायेंगे। (५) भारत के औषध निर्माता सिर्फ बड़ी मात्रा में तैयार औषधें लेकर उनकी गोलियाँ और खुराकें बनाने का ही काम न करें, बल्कि खुद दवाएँ व रासायनिक पदार्थ भी तैयार करें। यदि प्राइवेट फर्में ऐसा न करें तो खुद सरकार ही अपने कारखाने में ऐसा करे। (६) विदेशों से आने वाली कुनीन व अन्य मलेरियानाशक दवाओं का आयात घटा कर व उस पर कस्टम ड्यूटी लागू की जानी चाहिए ताकि भारत के कुनीन के कारखानों को सहारा मिल सके। (७) पिम्परी में पेनिसिलीन बनाने के लिए जो कारखाना तैयार किया जा रहा है, उसका विस्तार कर उसमें स्ट्रैप्टोमाइसिन आदि अन्य रोगाणुनाशक दवाएँ, सल्फा दवाएँ, मलेरिया-निरोधक औषधें एवं विटामिन आदि तैयार किये जायँ। (८) जो विदेशी फर्में विदेशों से बड़ी मात्रा में दवाएँ मंगाकर भारत में सिर्फ उनकी गोलियाँ व खुराकें आदि बनाने का काम करती हैं, वे भारत में ही कारखाने खोलकर दवाएँ बनायें, विदेशों से न मंगवाएँ।

बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय, पटना

श्रीबैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, पटना द्वारा संचालित बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय में गत ३१ अक्टूबर १९५४ को समाप्त होनेवाले वर्ष में कुल ५५९२७ रोगियों को मुफ्त दवा दी गई। इनमें नये रोगियों की संख्या १४२४१ थी, बाकी ४१६८६ पुराने रोगी थे। साल भर की दैनिक उपस्थिति का औसत १५३.२ रहा। नये रोगियों में पुरुष रोगी ६५५०, बालक रोगी ४२७७ तथा स्त्री रोगी ३४१४ थे। रोगानुसार नये रोगियों की संख्या नीचे लिखे मुताबिक है :—

ज्वर ६८२, मलेरिया ज्वर १९७, मंथरज्वर १००, हब्बाडिब्बा १३६, उदर रोग १६०८, आमातिसार ४६८, कास ११३६, श्वास १७३, बवासीर ५२, प्रमेह १६६, स्त्री रोग २२१, कुष्ठ ३३, क्षुद्रकुष्ठ ६४३, आमवात १०, कृमि ३०, श्लीपद व वृद्धि ५५, व्रण ८२५, रक्तपित्त ३, पाण्डु ७, शोथ १०८, वातव्याधि ७४४, गुल्म ५, प्रतिश्याय

५२३, वातरक्त ६, शीतपित्त ५, जलोदर २, मसूरिका २, मृगी १, गलगंड १, मूर्च्छा १, विसर्प २, मूत्रकृच्छ्र २, शिरोरोग २१०, कर्णरोग ४८६, नेत्र रोग ६६६, मुखरोग ६६८, नासारोग १७६ एवं विविध १००७।

कार्यालय में आए हुए रोगियों को न केवल मुफ्त औषध दी जाती है, बल्कि उन्हें स्वस्थ रहने के नियम और उपाय भी बतलाए जाते हैं। यहाँ कठिन से कठिन रोगों की चिकित्सा सफलतापूर्वक की जाती है। इसके लिये कार्यालय की ओर से विद्वान एवं पूर्ण अनुभवी वैद्यराज नियुक्त हैं।

बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय पटना में गत अक्टूबर मास में कुल ४२४६ रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गयी। इनमें ७११ नये एवं ३५३८ पुराने रोगी थे। इनमें पुरुष रोगियों की संख्या ४१७, स्त्री रोगियों की १३३ तथा बालक रोगियों की संख्या १६१ थी। इस मास की दैनिक उपस्थिति का औसत १३७ रहा। नये रोगियों की संख्या नीचे लिखे मुताबिक है:—

ज्वर ३६, मलेरिया २०, मंथरज्वर १४, हब्बा डब्बा ८, उदर रोग ८६, पेचिश २२, कास ८१, श्वास १२, अर्श ६, प्रमेह ४, स्त्रीरोग १७, क्षुद्रकुष्ठ ६१, आमवात १, कृमिरोग ३, श्लीपद ३, व्रण ५१, शोथ ३, शीतपित्त २, वृद्धिरोग २, हिचकी १, उपदंश १, शिरोरोग १०, कर्णरोग २०, नेत्ररोग १८, मुखरोग ३६, नासा रोग ६६, वातव्याधि २७, गुल्म १ एवं विविध ६०।

बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय, झाँसी

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० झाँसी द्वारा संचालित श्री धर्मार्थ औषधालय में गत अक्टूबर मास में ६४०२ रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई जिसमें ६६६ नये रोगी आये। नये रोगियों का रोगानुसार विवरण इस प्रकार है:—ज्वर ६७, कास ६०, टाइफाइड ३, मलेरिया ४०, डब्बा ५, अतिसार ६०, पेचिश, ५०, श्वास ५२, प्रतिश्याय ६२, अर्श ८, प्रमेह, ३५, वातव्याधि १८, रक्तविकार १४, कृमि ५, शोथ ४, उदररोग ८, वृषण शोथ १०, रक्तपित्त ७, पाण्डु ४, गुल्म ५, कर्णरोग ३०, सूतिकारोग ८, स्त्री रोग ५०, हृद्रोग ४, परिणामशूल ६, प्रमेह ३३, जीर्णज्वर ८, शिरोरोग ८, उपदंश ४ पार्श्वशूल १८, राजयक्ष्मा २, मन्दाग्नि १०, यकृतवृद्धि ८, बालरोग ३८, पामा ३०, स्नायुदौर्बल्य १३, भ्रम १६, अम्लपित्त १५, व्रण १३, विविध १६।

आयुर्वेद विभाग, उत्तर प्रदेश की सूचनाएँ

उत्तर प्रदेशीय आयुर्वेदिक विभाग में चिकित्सालयों के लिए वैद्य हकीमों की नियुक्ति पब्लिक सर्विस कमीशन, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद द्वारा ही होती है। उप-संचालक, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य, आयुर्वेद, उत्तर प्रदेश को भी इन रिक्त स्थानों की अस्थाई रूप से पूर्ति के लिए अधिकार है। अतः वैद्यगण इस कार्यालय में भी आवेदन-पत्र भेजा करते हैं। अभी गत मास में पब्लिक सर्विस कमीशन द्वारा ३० वैद्यों के रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए प्रार्थना पत्र मांगे गए हैं तथा उक्त कमीशन द्वारा चुने गए वैद्यों की सूची प्राप्त हो जाने पर आगामी एक वर्ष तक अस्थाई रूप से वद्यों की नियुक्ति की आवश्यकता न रहेगी। अतः वैद्यों को सूचित किया जाता है कि वे कम-से-कम एक वर्ष तक अपने आवेदन-पत्र इस कार्यालय में भेजने का कष्ट न करें।

उत्तर प्रदेशीय आयुर्वेदिक विभाग के आयुर्वेदिक चिकित्सालयों में कम्पाण्डरों की नियुक्ति के लिए 'बोर्ड ऑफ इण्डियन मेडीसन उत्तर प्रदेश' द्वारा निर्धारित सहायक वैद्यों की परीक्षा में उत्तीर्ण व्यक्तियों को नियुक्त किए जाने के लिए शासकीय आदेश है, अतः अन्य प्रकार की योग्यता प्राप्त किए हुए व्यक्ति कृपया कम्पाउण्डर के पद पर नियुक्ति के लिए अपने आवेदन पत्र न भेजें। इस सम्बन्ध में प्रार्थियों को यह भी सूचित किया जाता है कि इस समय न तो कोई कम्पाउण्डरों के स्थान रिक्त है और न निकट भविष्य में भी संभावना है।

उपसंचालक, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य, आयुर्वेद, उत्तर प्रदेश एवं उनके अधीनस्थ जिलों में कार्यालयों में लिपिकों की नियुक्ति उपसंचालक आयुर्वेद द्वारा इम्प्लाइमेण्ट एक्सचेंज के द्वारा आए हुए आवेदन-पत्रों पर ही प्रायः होती है तथा रसद विभाग से छटनी में आए हुए लिपिकों के प्रार्थना-पत्रों पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है। अतः सम्बन्धित प्रार्थीगण पहले अपना नाम इम्प्लाइमेण्ट एक्सचेंज लखनऊ के कार्यालय में रजिस्टर्ड करा लिया करें तथा अपने आवेदन-पत्र सीधे उपसंचालक आयुर्वेद के कार्यालय में भेजने का कष्ट न किया करें।

भारत के विभिन्न स्थानों में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह

बेलियाघाटा (कलकत्ता)

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के बेलियाघाटा (कलकत्ता) बिक्री-केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह वैद्यराज दूधनाथ जी के सभापतित्व में मनाया गया। बेलियाघाटा अंचल के सभी वैद्य एवं कविराज तथा डाक्टर और प्रतिष्ठित व्यक्तियों के समक्ष पं० चिरंजीलालजी जोशी के शान्ति पाठ से पूजा प्रारम्भ की गयी। पश्चात् बिक्री-केन्द्र के अध्यक्ष कविराज केदारनाथ शर्मा आयुर्वेदाचार्य द्वारा स्वागत भाषण पढ़ा गया। अन्त में सचित्र आयुर्वेद की प्रतियाँ व स्वागत भाषण की प्रतियाँ तथा प्रसाद वितरण किया गया। वैद्य श्री झावरमल शर्मा ने आगत वैद्य एवं सज्जनों को धन्यवाद दिया और सभा विसर्जित हुई।

दारंग (आसाम)

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के दारंग (आसाम) जिलान्तर्गत चारआली स्थित बिक्री केन्द्र में संचालक श्री रामप्रसाद राम गौरीशंकर द्वारा धन्वन्तरि जयन्ती धूमधाम से मनायी गयी। आसपास के इलाकों के अनेक गण्यमान्य वैद्य-विद्वान और सम्भ्रान्त नागरिक काफी संख्या में उपस्थित थे। सर्वप्रथम भगवान् धन्वन्तरि का विधिवत पूजन हुआ। इसके बाद कविराज श्री त्रिलोचन शर्मा फूकन कविरत्न के सभापतित्व में सभा हुई, जिसमें श्री जगत नारायण सिंह ने स्वागत भाषण पढ़ा। इसके बाद कई विद्वान वक्ताओं ने अपने भाषण में स्वास्थ्य, आयुर्वेद आदि विषयों पर महत्वपूर्ण विचार प्रकट किए। स्थानीय वैद्य समाज के संगठन का भी सभा में निर्णय हुआ। सभापति जी ने अपने भाषण में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के संचालकों की आयुर्वेद-सेवाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की। बिक्री-केन्द्र के संचालक श्री गौरीशंकर जी ने समागत सज्जनों को धन्यवाद दिया तथा प्रसाद वितरण के बाद समारोह समाप्त हुआ।

पुरी

पुरी में निखिलोत्कल वैद्य सम्मेलन की तरफ से श्री धन्वन्तरि जयन्ती उत्सव महा समारोह के साथ मनाया गया। सर्वप्रथम धन्वन्तरि जी की पूजा और प्रार्थना के बाद पं० श्री आनन्द महापात्र के सभापतित्व में सभा का कार्य आरम्भ हुआ। विज्ञ कविराजों ने श्री धन्वन्तरि के आदर्श से अनुप्राणित होकर रुग्ण जन की सेवा और आयुर्वेद के महत्व की रक्षा करने के लिए कविराजों को सलाह दी।

भागलपुर

श्रीमती दयाराम पोद्दार अष्टांग आयुर्वेद अस्पताल भवन में श्री धन्वन्तरि जयंती एवं अस्पताल का चतुर्थ वार्षिकोत्सक बड़े समारोह के साथ मारीसस में भारत के हाई कमिश्नर तथा मेडागास्कर में भारत के वाणिज्य दूत श्री आनन्द मोहन सहाय के सभापतित्व में मनाया गया। अस्पताल के मंत्री कविराज श्रीनारायण शर्मा ने धन्वन्तरि जी को श्रद्धांजलि दी। श्री रामनारायण जी वर्मा ने अस्पताल की उन्नति की कामना करते हुए देशी चिकित्सा के महत्त्व एवं उपयोगिता को अपनाने पर जोर दिया। सभापति जी ने भी आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए अस्पताल की उन्नति की कामना की।

—श्री धन्वन्तरि लेबोरेटरीज रसायनशाला में श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव बड़े धूमधाम से मनाया गया। लेबोरेटरीज के मैनेजर कविराज अर्जुनदेव शर्मा एवं अन्य कर्मचारीगण आगत सज्जनों के स्वागतार्थ विशेष दिलचस्पी ले रहे थे।

राँची

गुमला सबडिविजनल वैद्य एसोसियेसन के अध्यक्ष श्री पं० राजेन्द्रनाथ जी वैद्य की अध्यक्षता में स्थानीय वैद्यों की सभा एवं श्री धन्वन्तरि प्रतिमा की अर्चना सम्पन्न हुई।

—करोन्दी (गुमला) के श्री देवनन्दन दातव्य औषधालय में श्री धन्वन्तरि प्रतिमा की अर्चना श्री चन्द्रशेखर शास्त्री के द्वारा विधिवत् सम्पन्न की गई।

—रायडीह (रांची) के जिलाबोर्ड आयुर्वेदिक डिस्पेन्सरी में स्थानीय वैद्य श्री पं० श्रीधर पाण्डे द्वारा श्री धन्वन्तरि पूजा विधिवत् सम्पादित हुई।

—आचार्य श्री देवनारायण मिश्र साहित्य, आयुर्वेद, सांख्य योगाचार्य, के सभापतित्व में राँची नगर के वैद्यों एवं नागरिक बन्धुओं की उपस्थिति में धन्वन्तरि जयन्ती मनायी गयी। इसमें अनेक प्रमुख वैद्यों ने

भगवान धन्वन्तरि के प्रति श्रद्धांजलियां अर्पित कीं और प्रसाद वितरण के बाद सभा विसर्जित की गयी।

गया

धन्वन्तरि जयन्ती यहां श्री शत्रुघ्न शरण सिंह की अध्यक्षता में मनायी गयी। नगर के सभी प्रमुख वैद्यों और नागरिकों ने समारोह में भाग लिया। वक्ताओं ने अपने भाषण में भगवान धन्वन्तरि के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए आयुर्वेद को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार से अपील की।

बक्सर (शाहाबाद)

श्री कालिकेश्वर कार्यालय, बक्सर (शाहाबाद) के कर्मचारियों की ओर से प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी आयुर्वेद के परमाचार्य श्री धन्वन्तरि भगवान की जयन्ती मनायी गई। इस अवसर पर एक साँस्कृतिक सभा का भी आयोजन किया गया था। विधिवत् पूजन, कथा एवं हवन के पश्चात् कार्यालय के संस्थापक आचार्य पं० गिरिजादत्त जी पाठक वैद्य ने अपना एक लिखित भाषण पढ़ा। इस अवसर पर गण्य-मान्य व्यक्तियों के अतिरिक्त स्थानीय सभी वैद्य, हकीम, एवं डाक्टर भी उपस्थित थे। अन्त में प्रसाद वितरण एवं प्रीतिभोज का कार्य सम्पन्न हुआ।

पलामू

श्री धन्वन्तरि भगवान की शुभ जयन्ती श्री नरसिंह आयुर्वेदिक औषधालय मेराल में श्री राजकिशोर सिंह जी एम० एल० ए० के सभापतित्व में मनायी गयी। सभापति महोदय ने कहा कि सरकार शीघ्र ही आयुर्वेद की उन्नति करेगी। उन्होंने यह भी बताया कि आयुर्वेद में रोग-परीक्षा तथा चिकित्सा ऐसी सुगम तथा साधन सम्पन्न है, जैसी दूसरी किसी पद्धति में नहीं। लगभग ५०० व्यक्तियों के बीच बैद्यनाथ हनुमान चालीसा, सचित्र आयुर्वेद और प्रसाद वितरित हुआ।

सिमडेगा (रांची)

सिमडेगा के श्रीसीताराम मन्दिर में पं० सुधाकर जी त्रिवेदी, कविराज के सभापतित्व में भगवान् धन्वन्तरि जी की जयन्ती सानन्द मनाई गई।

भगवान् धन्वन्तरि जी के पूजनोपरान्त समागत सज्जनों को प्रसाद वितरण किया गया। ...

डा० श्री रास बिहारी मुखर्जी ने भगवान धन्वन्तरि के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की।

बांदा

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के बिक्री-केन्द्र बाँदा में धन्वन्तरि जयन्ती वैद्यरत्न श्री कालूराम जी की अध्यक्षता में मनायी गयी। भगवान धन्वन्तरि के पूजनोपरान्त स्वागत भाषण श्री शीतल प्रसाद जी ने पढ़ा। तत्पश्चात् प्रसाद वितरण करके समारोह समाप्त हुआ।

रामगढ़ (मिर्जापुर)

धन्वन्तरि जयन्ती बड़े ही धूम धाम से राजकीय चिकित्सालय रामगढ़ में मनायी गई। भगवान धन्वन्तरि की सम्यक् पूजा आदि समाप्त करने के बाद सामयिक भाषण हुए और धन्यवाद के साथ कार्यवाही समाप्त हुई।

देवरिया

नगर आयुर्वेद मंडल द्वारा सामूहिक रूप से धन्वन्तरि जयन्ती समारोह बड़े ही उत्साहपूर्ण वातावरण में सुसम्पन्न हुआ। जयन्ती समारोह की उपयोगिता आयुर्वेद का शास्त्रान्तरों से अधिक महत्व इत्यादि विषयों पर श्री कविराज विद्याधर शुक्ल का सारगर्भित भाषण हुआ। नागरिकों की भी उपस्थिति सन्तोष-जनक थी—इस अवसर पर जुलूस एवं नगर कीर्तन भी किया गया।

बनारस

श्री वल्लभ राम शालिग्राम साङ्गवेद दातव्य औषधालय रामघाट, काशी में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक (आयुर्वेद विभाग) पं० राजेश्वर दत्त शास्त्री के सभापतित्व में धन्वन्तरि जयन्ती बड़े समारोह से मनायी गई। पण्डित राजेश्वर दत्त जी शास्त्री द्रविड़ ने उपदेशात्मक भाषण दिया। तदनन्तर स्थानीय आयुर्वेद विभाग के चिकित्सक श्री पं० विश्वनाथ पाण्डेय ने समागत व्यक्तियों को एवं सभापति महोदय को धन्यवाद देते हुए भगवान धन्वन्तरि के श्री चरणों में यह प्रार्थना की कि यह प्रेरणा प्रत्येक आयुर्वेद प्रेमी के हृदय में जागरित हो कि अपनी संस्कृति का प्रतीक यह आयुर्वेद दिनोदिन अभिवृद्ध हो। अन्त में प्रसाद वितरण हुआ और सभा विसर्जित हुई।

—काशी नगरपालिकार्जुन दर्शनानन्द आयुर्वेद महाविद्यालय में पं० शिव विनायक मिश्र वैद्य के सभापतित्व में धन्वन्तरि जयन्ती उत्सव सम्पन्न हुआ। श्री शम्भुनाथ

वृचके द्वारा धन्वन्तरि पूजन एवं श्री व्रजलाल मेहता तथा श्री मुनिश्वर जी मिश्र द्वारा मंगलाचरण से कार्यवाही का श्री गणेश हुआ। प्रधानाचार्य श्री गौरीशंकर भार्गव ने स्वागत किया। श्री काशीनाथ जी पाण्डेय, श्री आद्याशंकर जी, श्री गौरीनन्दन उपाध्याय, श्री यदुनन्दन उपाध्याय, श्री विन्ध्येश्वरी पाठक, श्री प्रियव्रत शर्मा, श्री त्रिवेणी प्रसाद वरनवाल, श्री ताराशंकर मिश्र वैद्य एवं श्री सरजू प्रसाद दूबे एवं सभापति जी के भाषण हुए। श्री पं० लालचन्द वैद्य जी ने सबको धन्यवाद दिया। अन्त में प्रसाद वितरण के पश्चात् समारोह समाप्त हुआ।

रायबरेली

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय हरचन्दपुर (रायबरेली) में धन्वन्तरि जयन्ती बड़े उत्साह के साथ मनायी गयी। हरचन्दपुर क्षेत्र की प्रतिष्ठित जनता तथा आयुर्वेदज्ञों ने अपना सक्रिय सहयोग देते हुए उत्सव को सम्पन्न किया। विधान सभा के सदस्य श्री राम शंकर जी द्विवेदी के सभापतित्व में एक सुव्यवस्थित सभा का आयोजन हुआ। सभा में आये हुए गण्यमान्य विद्वानों ने आयुर्वेद की महत्ता पर सविस्तार प्रकाश डाला। सभापति जी ने कहा कि स्वतंत्र भारत में आयुर्वेदिक अनुसंधान शालाएं पर्याप्त संख्या में खुलनी चाहिये। देश का हित और पूर्ण स्वास्थ्य लाभ आयुर्वेदिक चिकित्सा द्वारा ही हो सकता है। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के स्थानीय प्रतिनिधि श्री श्रीधर शुक्ल शास्त्री ने आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों एवं स्वास्थ्य लाभ के व्यावहारिक तत्त्वों का प्रतिपादन विद्वत्तापूर्ण शैली से किया।

—रायबरेली जिला वैद्य सभा के तत्वावधान में श्री मार्तण्ड दत्त जी वैद्य के सभापतित्व में श्री धन्वन्तरि जयन्ती-महोत्सव समारोह पूर्वक मनाया गया, जिसमें जिला बोर्ड चिकित्सालय एवं राजकीय चिकित्सालयों के वैद्य सम्मिलित थे। धन्वन्तरि पूजन के बाद कई विद्वानों के ओजस्वी भाषण हुए। अन्त में प्रसाद वितरण आदि कर कार्यवाही समाप्त हुई।

हाथरस

हाथरस में जिला आयुर्वेद सम्मेलन की ओर से धन्वन्तरि जयन्ती विशेष समारोह के साथ पं० दरबारीलाल जी वैद्य, बी० ए०, अध्यक्ष, भारतीय चिकित्सा-परिषद, उत्तर प्रदेश, के सभापतित्व में मनाई गई। नगर के अनेक प्रतिष्ठित विद्वान पंडितों तथा प्रमुख वैद्यों ने आयुर्वेद की प्राचीनता और वैज्ञानिकता पर विशेष प्रकाश डाला। अन्त में अध्यक्ष महोदय का विद्वत्तापूर्ण भाषण हुआ और कार्यवाही समाप्त हुई।

बहराइच

नन्दवल (जिला बहराइच) के राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय में भगवान धन्वन्तरि की जयन्ती मनाई गई, इसमें भाषण, कीर्तन और ग्राम वासियों द्वारा पूजा के बाद प्रसाद वितरण किया गया। आयुर्वेद तथा भगवान धन्वन्तरि की जय हो आदि नारों से सभा समाप्त हुई।

राजामऊ

धन्वन्तरि त्रयोदशी के शुभ अवसर पर राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय राजामऊ द्वारा धन्वन्तरि जयंति बड़े धूम-धाम से मनायी गयी।

गोण्डा

तुलसीपुर (गोण्डा) में श्री पाटेश्वरी आयुर्वेद भवन के अध्यक्ष वैद्यभूषण भगवती प्रसाद गुप्ता वैद्य की अध्यक्षता में श्री धन्वन्तरि महोत्सव बड़े समारोह के साथ मनाया गया।

हमीरपुर

राजकीय आयुवद चिकित्सालय (जिला हमीरपुर) में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह बड़े उत्साह पूर्वक मनाया गया। सम्पूर्ण ग्राम की सफाई कराई गई। शाम को सभा का आयोजन हुआ, जिस में आस पास के गावों की जनता भी उपस्थित थी। आयुर्वेद की प्राचीनता, उसकी महत्ता और वैज्ञानिकता पर प्रकाश डाला गया तथा मिष्टान्न वितरण किया गया।

अल्मोडा

राजकीय आ० चिकित्सालय सौला, जि० अल्मोड़ा में श्री धन्वन्तरि जयन्ती बड़े समारोह के साथ मनाई गई। चिकित्सालय के नवयुवक चिकित्साधिकारी कविराज श्री अशोक कुमार थपल्याल, बी० आई० एम० एस० आयुर्वेदाचार्य ने समस्त ग्राम सभापतियों को सहयोग देकर २२ अक्टूबर से २८ अक्टूबर तक ग्राम में स्वास्थ्य सप्ताह मनाने का सुन्दर एवं सफल आयोजन किया। २४ अक्टूबर को ग्रामीणों के एक विशाल जन समूह में सभापति पद से भाषण देते हुए कविराज जी ने आयुर्वेद के इतिहास एवं उपयोगिता पर प्रकाश डाला और कहा कि

आयुर्वेद एक प्राचीन चिकित्सा-विज्ञान है और सदियों से देश को स्वास्थ्य लाभ पहुँचाता रहा। अब जनता की सरकार द्वारा इसे राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति का सम्मान प्रदान किया जाना चाहिए।

काशीपुर

काशीपुर (नैनीताल) में श्रीराधेहरि सत्संग आयुर्वेदिक औषधालय की ओर से श्रीवैद्य सीताराम जी पन्त आयुर्वेद शास्त्राचार्य, सभापति उत्तर प्रदेश वैद्य सम्मेलन की अध्यक्षता में ससमारोह धन्वन्तरि जयन्ती मनायी गयी। सर्वप्रथम श्रीधन्वन्तरि तथा सिद्धौषधों का पूजन हुआ। इसी समय एक औषध प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया था। तत्पश्चात् एक ग्राम सभा हुई जिसमें वक्ताओं द्वारा श्री धन्वन्तरि-जयन्ती तथा आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया।

गढ़वाल

श्री उत्तराखण्ड विद्यापीठ गढ़वाल में श्री धन्वन्तरि जयन्ती मनाई गई। प्रातःकाल छात्रों द्वारा प्रभातफेरी निकाली गयी। तत्पश्चात् वेदोक्त मन्त्रों द्वारा धन्वन्तरि पूजन तथा हवन हुआ। श्री शेर सिह शाह, सदस्य, जिला-बोर्ड तथा मैनेजर, आयुर्वेद विभाग के सभापतित्व में सभा हुई। समस्त विद्यापीठ परिवार, निमंत्रित वैद्य समाज तथा स्थानीय जनता इसमें उपस्थित थी। वक्ताओं ने उपस्थित जनता को इस पूण्यपर्व का महत्व समझाया। अन्त में सभापति महोदय के भाषणोपरान्त सभा विसर्जित हुई। छात्रों को मिष्ठान्न वितरण किया गया।

सिद्धसौड़ (टिहरी गढ़वाल)

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, सिद्धसौड (टिहरी गढ़वाल) में श्री धन्वन्तरि-जयन्ती श्री परमानन्द जी शास्त्री के सभापतित्व में मानई गई।

सर्वप्रथम भगवान धन्वन्तरि का पूजन किया गया। श्री कुलानन्द नौटियाल आयुर्वेदाचार्य ने श्री धन्वन्तरि जयन्ती मनाने का महत्व और आयुर्वेद के उद्देश्यों को बताते हुए स्वास्थ्य सम्बन्धी भाषण दिया। आपने कहा कि गरीब जनता की रक्षा व सेवा आयुर्वेद ही कर रहा है।

चन्द्रापुरी, (गढ़वाल)

राजकीयायुर्वेद चिकित्सालय, चन्द्रापुरी, गढ़वाल में श्री शयनसिंह जी जंगवान की अध्यक्षता में श्री धन्वन्तरि जयन्ती मनायी गयी। सर्व प्रथम धन्तरि भगवान की पूजा की गई। सभापति महोदय ने कहा कि आयुर्वेद विरोधियों द्वारा जो यह कहा जाता है कि आयुर्वेद अधूरा है, वह ठीक नहीं है। सरकार को चाहिये कि आयुर्वेद-चिकित्सा पर ऐलोपैथी के समान ही खर्च करें।

कोड़ा-जहानाबाद (फतेहपुर)

तिलक औषधालय, कोड़ा-जहानाबाद (जिला फतेहपुर) में धन्वन्तरि-जयन्ती-उत्सव, बड़े समारोह के साथ आयुर्वेदालंकार पं० शम्भूनाथ जी पाण्डेय, आचार्य श्री आयुर्वेद महाविद्यालय, कानपुर की अध्यक्षता में मनाया गया। ग्राम निवासी जनता से बड़े उत्साह पूर्वक भाग लिया। पं० रामऔतार त्रिपाठी शास्त्री ने स्वस्तिवाचन पूर्वक उत्सव का उद्घाटन कार्य सम्पन्न किया। श्री पं० जगलाल प्रसाद जी आयुर्वेद पंचानन ने श्री भगवान धन्वन्तरि का पूजन-हवन आदि किया। उत्सव पूर्ण सफल रहा। ग्रामीण जनता को आयुर्वेद की महत्ता भी बतायी गयी। प्रसाद वितरण के बाद कार्यवाही समाप्त हुई।

पिलानी

पिलानी स्थित विड़ला संस्कृत कालेज के आयुर्वेद विभाग द्वारा धन्वन्तरि जयन्ती वैद्यराज पं० सागरमल मिश्र की अध्यक्षता में मनायी गयी। अनेक प्रमुख विद्वान-वैद्यों के भाषणोपरान्त दानवीर बाबू युगलकिशोर बिड़ला ने भगवान् धन्वन्तरि के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा कि "आयुर्वेद संसार का आदि चिकित्सा शास्त्र है। यह हजारों वर्षों से मानव जाति की अपूर्व सेवा करता आ रहा है। आज आयुर्वेद को राज्याश्रय प्राप्त नहीं है, फिर भी आयुर्वेद की नींव इतने सुदृढ़ आधार पर है कि वह अपने गुणों के कारण अमर रहेगा। मैंने जीवन में आयुर्वेद के कितने ही चमत्कार देखें हैं। ऐसे गुण विशिष्ट आयुर्वेदिक औषधियों में ही नहीं, अपितु सामान्य समझी जानेवाली दवाएँ भी कई गुणों से ओतप्रोत हैं। भुनी हुई अजवायन की गंध से जुखाम नहीं होता है, जब कि आज कल इसी कार्य के लिये अधिक कीमत की एलोपैथिक दवाएँ चालू हैं। बिड़ला जी ने अपनी जेब से अजवायन की छोटी सी पोटली सूंघते हुए यह शब्द कहे। बिड़लाजी ने कहा कि वैद्यों को अपने पूर्व परम्परागत ज्ञान के आधार पर ही अपने को सीमित नहीं रखना चाहिए। आयुर्वेद को वर्तमान युग के अनुकूल बनाने के लिए अपने प्रयत्न चालू रखने चाहिए। पाश्चात्य चिकित्सक जैसे

किसी वनस्पति के हानिकर द्रव्य को दूर कर उपयोगी तत्त्व रख लेते हैं, उसी प्रकार वैद्यों को भी आगे बढ़ना चाहिए। इस दौड़ में भी वैद्य लोग गरीबों की सेवा, सादा जीवन और स्वच्छता का प्रचार न छोड़े।"

आचार्य जीवक के तीन दृष्टान्तों का उल्लेखकर आयुर्वेद के अनुसन्धान के विषय में एक मौलिक मार्ग बताते हुए आपने कहा कि हिंगुल और पारद में दूसरे द्रव्य के उत्कृष्ट गुण ग्रहण करने की शक्ति है। जिस प्रकार "सिद्धग्रहणी कपाट" में मिलावे, मधु आदि के गुण हिंगुल में आ जाते हैं, उसी तरह हिंगुल या पारद में सर्पगन्धा जैसी वनस्पतियों के गुण भी मेरे खयाल से आ जाने चाहिए। इस दिशा में बढ़ने से आयुर्वेद में अनेक चमत्कारी प्रयोग बढ़ेंगे। इसी तरह मल्ल, अभ्रक, गन्धक आदि सद्यः फलप्रद योग वैद्यों को बरतना चाहिए।

अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए वैद्य सागरमलजी मिश्र ने बताया कि प्राचीन काल में आयुर्वेद का पठनपाठन बड़े मनोयोग से होता था। हमें प्रायोगिक चिकित्सा की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए और तत्कालीन वैद्यों की तरह निःस्वार्थ भाव से रोगियों की सेवा में जुट जाना चाहिए। भगवान् धन्वन्तरि को प्रसन्न करने का इससे अच्छा दूसरा कोई मार्ग नहीं हैं। अन्त में धन्यबाद देकर कार्यवाही समाप्त हुई।

उदयपुर

उदयपुर कमिश्नरी वैद्य सभा द्वारा आयोजित धन्वतरी महोत्सव बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। सभा के मंत्री वैद्य मिश्री प्रसाद जी ने इस सांस्कृतिक पर्व पर प्रकाश डाला। बाद में राजस्थान आयुर्वेदिक विभाग के उप-संचालक वैद्य प्रेम शंकर जी ने कहा कि आयुर्वेद के इतिहास में आयुर्वेद ने वनस्पति शास्त्र के साथ अपना जन्म लिया और फिर रसायन शास्त्र, खनिज शास्त्र आदि कई नवीन नवीन खोजों को आत्मसात करता गया। आज भी आयुर्वेद के विद्वानों को अपनी इस पुरानी परम्परा के अनुसार सभी अच्छी बातों को अपना कर देश की मदद करनी चाहिए। आपके वक्तव्य के बाद डाक्टर आसोपा एफ० आर० सी० एस०, पं० जगन्नाथ जी वैद्य, पं० मोहन लाल जी आदि विद्वानों के भाषण हुए। सभा की अध्यक्षता वैद्य श्यामसुन्दर जी आयुर्वेदाचार्य ने की।

जोधपुर

श्री धन्वन्तरि त्रयोदशी महोत्सव मारवाड़ आयुर्वेद प्रचारिणी सभा, जोधपुर द्वारा अति आनन्दपूर्वक सम्पन्न किया गया। प्रथम मंगलाचरण के पश्चात् उदयचन्द जी आ० मार्तण्ड ने श्री भगवान् धन्वन्तरि की पूजा की और कई भाषण भी हुए।

भीलवाड़ा

औषधालय बरुन्दनी, जिला, भीलवाड़ा (राजस्थान) में धन्वन्तरि जयन्ती श्री रामगोपाल जी भट्ट की अध्यक्षता में मनाई गई, जिसमें धन्वन्तरि जयन्ती व उसके इतिहास पर वैद्यों एवं सभापति के भाषण हुए। इसके बाद औषधालय बरुन्दनी की वार्षिक रिपोर्ट सुनाई गई और प्रसाद वितरण कर सभा का विसर्जन किया गया।

सीकर

श्री परशुरामपुरिया आयुर्वेदिक कालेज के प्राङ्गण में राष्ट्रीय पर्व एवं स्वास्थ्य दिवस के रूप में श्री धन्वन्तरि भगवान की पूजा एवं कथा के साथ उत्सव का कार्य प्रारम्भ किया गया। प्रसिद्ध अध्यात्म वेत्ता पं० श्री बजरंगलाल जी जोशी की अध्यक्षता में सभा आयोजित की गयी। प्रमुख विद्वान वैद्य श्री हनुमत्सहाय जी तथा श्री मदनकुमार जी शास्त्री भिषगाचार्य के ओजस्वी भाषण; छात्रों के कविता पाठ, सामयिक गायन आदि के साथ प्रिंसिपल महोदय का उपदेश अतीव उत्साहवर्द्धक रहा।

चूरू

चूरू जिले में धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर जनपद-व्यापी स्वास्थ्य सप्ताह समारोह किया गया। सरदार शहर, सुजानगढ़, रतनगढ़ की वैद्यसभाओं के द्वारा उक्त सप्ताह बहुत व्यवस्थित रूप से क्रियान्वित किया गया। सामूहिक रूप से निःशुल्क रोगी निरीक्षण किया गया, असहाय और आने में असमर्थ रोगियों के घर पर जा कर निःशुल्क चिकित्सा की व्यवस्था की गई। भिन्न-भिन्न मुहल्लों में जा कर स्वास्थ्य सम्बन्धी भाषण व प्रचार किया गया। देहातों में सामूहिक रूप से जाकर वहाँ होनेवाले रोगों की जानकारी तथा चिकित्सा की व्यवस्था की गई। श्री धन्वन्तरि त्रयोदशी के दिन भगवान् धन्वन्तरि का पूजन कर साप्ताहिक कार्य-क्रम सम्पन्न किया गया।

जम्मू

जम्मू के प्रसिद्ध अमरेश्वर मन्दिर के सुन्दर पुष्पोद्यान में ब्रह्मचारी शिवप्रसाद त्रिपाठी प्राणाचार्य के तत्त्वावधान में श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव बड़ी धूम धाम से मनाया गया। प्रान्तीय तथा जम्मू के नागरिक नर-नारियों ने अधिक संख्या में [illegible] समारोह को अत्यन्त प्रवर्धित किया।

मधुर गीत, अनेक ललित कविता पाठ और वैद्यों के अनेक महत्वपूर्ण व्याख्यान हुए तथा एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास करके जम्मू काश्मीर सरकार के पास भेज दिया गया। रात्रि में अखिल जम्मू काश्मीर वैद्य सभा के प्रधान ब्रह्मचारी शिवप्रसादजी की ओर से समागत सर्व सज्जनों को स्वादिष्ट मिष्टान्न भोजन देकर सम्मानित किया गया।

शिवपुरी

शिवपुरी वैद्य सभा मण्डल के तत्वावधान में श्री धन्वन्तरी जयन्ती बड़े उत्साह व उल्लास के साथ मध्य भारत प्रदेश कांग्रेस के प्रधान मन्त्री श्री वैदेही चरण जी पाराशर की अध्यक्षता में सदर बाजार स्थित सेठ श्री शिवलाल तातू लाल जी खंडेलवाल की दूकान के सामने समारोह पूर्वक मनायी गयी।

सर्व प्रथम भगवान धन्वन्तरि की पूजा-अर्चना व स्तुति के उपरान्त श्री प्रहलाददास जी वैद्यभूषण का स्वास्थ्य के नियमों पर, वैद्य श्री प्रभु दयाल जी प्रधान का भगवान् धन्वन्तरि के प्रादुर्भाव तथा आयुर्वेद की उत्पत्ति पर, श्री सत्यनारायण जी मिश्र प्रजावैद्य का भगवान के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर, श्री नरहरि प्रसाद जी शर्मा एम. एल. ए., वैद्य श्री रामेश्वर प्रसादजी वैद्य, श्री घुवर दयालजी वैद्य के आयुर्वेद चिकित्सा के महत्व पर भाषण हुए। अन्त में अध्यक्ष श्री पाराशर जी ने आयुर्वेद-चिकित्सा की आवश्यकता व उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए मध्य भारत में आयुर्वेद चिकित्सा को राज्याश्रय मिलने पर शासन की प्रशंसा की और शिवपुरी जिले के बनों में बिखरी हुई जड़ीबूटियों का उपयोग करने के हेतु शिवपुरी में सहकारिता के आधार पर एक रसायन शाला स्थापित करके देश के निर्माण में तन, मन, धन, से जुट जाने की वैद्य समाज से अपील की।

डींडवाना

श्री टाड आरोग्य सदन डीडवाना द्वारा धन्वन्तरि, जयन्ती का आयोजन तथा एक विशाल चित्र का भी उद्घाटन पं० रामेश्वर प्रसाद जी शर्मा साहित्यायुर्वेदाचार्य के कर-कमलों से करवाया गया। आपके भाषण तथा अन्यान्य वैद्यों तथा आयुर्वेद प्रेमियों के भाषणों के पश्चात् सदन के अध्यक्ष वै० पं० रविशंकरप्रसाद शर्मा आयुर्वेदाचार्य के द्वारा सदन की सेवाओं का संक्षिप्त विवरण सुनाया गया तथा वैद्यों और जनसमाज से प्रार्थना की गई कि आयुर्वेद को समुन्नत व राष्ट्रीय चिकित्सा के स्थान पर आरूढ़ करने के लिये पूरा-पूरा सहयोग प्रदान करें।

हिंगणघाट

धन्वन्तरि पूजन महोत्सव वैद्य सभा हिंगणघाट की तरफ से सेवा समिति औषधालय में श्री विनायकराव जी चौधरी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। वैद्य समाज तथा नागरिक काफी संख्या में उपस्थित थे। वैद्य सभा के अध्यक्ष श्री शोभालालजी शर्मा आयुर्वेदाचार्य, प्रधान मंत्री श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी शास्त्री, श्री वैद्यराज बनवारी लालजी आदि वैद्यों के भाषण हुए। श्री विनायक राव जी चौधरी का अध्यक्षीय भाषण समाप्त हो जाने पर प्रसाद और पान सुपारी देकर धन्यवादानन्तर सभा का विसर्जन हुआ।

सरगुजा

सरगुजा जिला वैद्य सम्मेलन की ओर से श्री धन्वन्तरि पूजन के पश्चात श्री पं० जगदीश दत्त शर्मा की अध्यक्षता में एक सभा हुई। सम्मेलन के प्रधान मंत्री श्री धीरेन्द्र मोहन भट्ट ने स्वागत भाषण में धन्वन्तरि जयन्ती की महत्ता और आवश्यकता एवं आयुर्वेद की उपयोगिता पर प्रकाश डाला। अंत में सभापति के भाषण के पश्चात प्रसाद वितरण कर सभा की कार्यवाही समाप्त हुई।

जाबरा

धन्वन्तरि त्रयोदशी के पुनीत पर्व पर "वैद्य सभा जाबरा' की ओर से 'श्री धन्वन्तरि' जयन्ती" का आयोजन, मध्यभारत के आयुर्वेद विभाग के निरीक्षक श्री कृष्णानन्द जी मिश्र आयुर्वेदाचार्य की अध्यक्षता में बड़े समारोह पूर्वक किया गया। धन्वन्तरि पूजन के पश्चात वक्ताओं ने अपने महत्त्वपूर्ण भाषण में आयुर्वेद के अतीत का दिग्दर्शन कराकर, धन्वन्तरि भगवान को विनम्र पुष्पांजलि अर्पित करते हुए आयुर्वेद की चतुर्मुखी उन्नति के हेतु शुभकामना प्रकट की। अन्त में सभापति जी ने संक्षिप्त भाषण द्वारा वैद्यों से आवेदन किया कि वे आयुर्वेद में आवश्यक अन्वेषण कर इसकी अभिवृद्धि करें। आभार प्रदर्शन के पश्चात सभा समाप्त हो गयी।

बम्बई

श्री हरि प्रपन्न जी आयुर्वेद विद्यालय, बम्बई में नि० भा० वैद्य हकीम कांग्रेस, आयुर्वेद चिकित्सक मण्डल,

बम्बई उपनगर जिला वैद्य परिषद्, आयुर्वेद हितैषिणी सभा, आयुर्वेद संरक्षक मण्डल, आदि के संयोजकत्व में वैद्य कन्हैयालालजी भेंडा के सभापतित्व में धन्वन्तरि महोत्सव मनाया गया।

सर्वप्रथम भगवान धन्वन्तरि का पूजन वैदिक मंत्रों से विधिपूर्वक किया गया। वैद्य पं० काशीनाथ जी शास्त्री का वैदिक मंत्रों से आयुर्वेद की महत्ता तथा भगवान धन्वन्तरि का स्तवन उच्चारित हुआ। वैद्य पं० महावीर प्रसाद मिश्र ने अपने भाषण में धन्वन्तरि शब्द की व्याख्या करते हुए कहा कि अब वह जमाना आगया है जैसे कि पूर्व जमाने में भी समय-समय पर आचार्यगण इस आयुर्वेद विषय में विचार किया करते थे। लोगों की दृष्टि में आयुर्वेद का उन्नत मार्ग दिखाई दे रहा है, किन्तु है इससे विपरीत। अतः नि० भा० वैद्य हकीम कांग्रेस के झण्डे के नीचे हम यह प्रतिज्ञा करें कि हम आयुर्वेद को सर्वतोमुखी उन्नति करने में कभी पीछे न रहेंगे। सभापति जी के भाषण के बाद धन्यवाद देकर सभा समाप्त हुई।

पाल्पा (नेपाल)

नेपाल देश अन्तर्गत पाल्पा नगर में आयुर्वेद के प्रवर्तक श्री धन्वन्तरि भगवान की जयन्ती बड़ी धूमधाम से मनायी गयी। शहर के यशस्वी वैद्य गण तथा जन समूह उपस्थित थे। भगवान धन्वन्तरि की आराधना एवं गुणगान के पश्चात् आयुर्वेद की वर्तमान परिस्थिति पर विचार विमर्श हुआ। इसमें यह निश्चित हुआ कि वैद्य वर्ग को पाश्चात्य विज्ञान का भी अध्ययन करना अनिवार्य है। धीरे-धीरे आयुर्वेद को उसी ढांचे मे ढालने का वैद्यों को प्रयत्न करना चाहिए। हमें पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति पर नहीं निर्भर रहना चाहिये। वैद्यों को चाहिए कि जहां तक हो सके एकता कायम करें। नवीन औषध द्रव्य तथा जड़ी-बूटी की खोज और आशुफल प्रद औषध द्रव्यों का आविष्कार करें।

आयुर्वेद विश्वविद्यालय ऋषिकेश में स्थापित किया जाय अथवा नहीं ?

वैद्यसमाज का मत-संग्रह

आयुर्वेद विश्वविद्यालय ऋषिकेश, का शिलान्यास कैसे स्थगित हुआ, इस विषय पर मेरा वक्तव्य वैद्य-समाज ने **आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका** के अक्तूबर मास के अंक में पढ़ा होगा, और विश्वविद्यालय स्थापना-सम्बन्धी भविष्य की गतिविधि पर कुछ विचार भी किया होगा। अब इसी विषय में अपने वैद्यबन्धुओं का निश्चित मत जानने के लिये मैं यह वक्तव्य प्रस्तुत कर रहा हूँ तथा आशा रखता हूँ कि सभी वैद्य-बन्धु इसका गम्भीरतापूर्वक मनन करके अपना निश्चित मत मुझे यथासम्भव शीघ्र ही भेजने की अनुकम्पा करेंगे।

इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम मैं कुछ तथ्यों का उल्लेख करना उचित समझता हूँ—

१—अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन को स्थापित हुए ४७ वर्ष तथा निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ को स्थापित हुए ४३ वर्ष बीत चुके हैं। प्रारम्भ से ही इन का एक मुख्य उद्देश्य आयुर्वेद विद्यालय की स्थापना रहा है। परन्तु यह विश्वविद्यालय नहीं बन सका, इसका मुख्य कारण मेरे मत में वैद्य समाज की उदासीनता मात्र है अन्यथा इतने धुरन्धर एवं प्रतिष्ठित तथा अधिकतर वैद्यों के शक्ति-सम्पन्न होते हुए यह कार्य अबतक अवश्य हो जाता। हम वैद्यों पर यह एक प्रकार का अरोप है।

२—मैंने इस जीवन में जितनी भी उन्नति की और जितना भी धनोपार्जन किया वह केवल इस पुनीत आयुर्वेदिक चिकित्सा के फलस्वरूप ही सम्भव हुआ, अतएव विगत दस वर्षों से गृहस्थी एवं सांसारिक जीवन से उपराम लेकर बानप्रस्थी जीवन को व्यतीत करते हुए मैंने "आयुर्वेद" के इस ऋण से उऋण होने के ध्येय से आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना में निमित्तमात्र बनने का विचार किया। एकमात्र आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापनार्थ मैंने विद्यापीठ-मन्त्रित्व स्वीकार किया अन्यथा इस पद को प्राप्त करने का मुझे कभी चाव न था और न अब है। केवल आयुर्वेद विश्वविद्यालय स्थापनार्थ ही नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यालय दिल्ली से ऋषिकेश लाया गया था अन्यथा इसे मैं क्षण भर के लिये भी यहाँ रखने को तैयार नहीं।

इस अवस्था में भी यदि आयुर्वेद विश्वविद्यालय न बने तो मैं विद्यापीठ मन्त्री रहने के लिये तैयार नहीं हूँ।

३—ऋषिकेश में ७५ एकड़ के लगभग जिस भूमिखण्ड पर आयुर्वेद विश्वविद्यालय बनाने का प्रस्ताव है उसे विश्वविद्यालय के लिये दे देने की स्वीकृति उत्तर प्रदेश की सरकार ने दे दी है। बाबा काली कमली वाला पंचायत-क्षेत्र की कार्यकारिणी समिति ने कानूनी परामर्श प्राप्त करने के लिये जो समिति बनाई थी उसकी सम्मति आयुर्वेद विश्वविद्यालय के निर्माण के पक्ष में है। मैं आशा भी रखता हूँ कि श्री बाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र इस कार्य में सहयोग देगा, परन्तु मैं निश्चित रूप से अब कदापि नहीं कह सकता कि उनका सहयोग मिलेगा या नहीं, क्योंकि एक बार भयंकर बाधा उस में कुछ अग्रणी सदस्यों द्वारा डाली जा चुकी है। परन्तु यदि क्षेत्र ने अपने पूर्व निश्चित प्रस्तावों को पलटने का यत्न किया तो मैं इसके संयुक्तमन्त्रित्व से त्यागपत्र देकर क्षेत्र से भी पृथक् हो जाऊँगा।

४—आयुर्वेद सेवासमिति, ऋषिकेश के मन्त्रिपद से मैंने त्यागपत्र दे दिया है। आयुर्वेद सेवासमिति इस महान् कार्य में सहयोग देगी, ऐसी मैं आशा रखता हूं परन्तु; निश्चित रूप से उसका सहयोग मिलेगा, ऐसा विश्वास मैं नहीं दिला सकता, क्योंकि विद्यापीठ के उपाध्यक्ष श्री स्वामी दयानिधि जी महाराज जो मेरे परम प्रेमी मित्र है विश्वविद्यालय-योजना को पूर्ण करने में आवश्यक सहयोग नहीं दे रहे। अन्यथा आयुर्वेद सेवासमिति के ता० २०—१०—५० तथा १४—६—५१ एवं काली कमली क्षेत्र के ता० १—८—५३ के प्रस्तावों के अनुसार और विद्यापीठ कार्यालय के ऋषिकेश में आने के बाद मेरे बारम्बार आग्रह करने पर वे सेवासमिति के आयुर्वेद विद्यालय को विश्व-विद्यालय के लिये निर्धारित स्थान आत्मविज्ञान भवन, रामनगर में ले आते, जिसको कि अबतक भी वे नहीं लाये।

५—अब अपने महासम्मेलन विद्यापीठ के सदस्यों का ध्यान विशेष रूप से इस ओर दिलाना चाहता हूं। यदि वे वास्तव में ही विश्वविद्यालय को स्थापित हुआ देखना चाहते हैं तो उन्हें निष्क्रियता का परित्याग कर सक्रिय सहयोग देना होगा। सम्मेलनों में प्रस्ताव पास कर देने, सभा में कुछ बोल देने, किसी समिति पर अपना नाम रखा लेने, तर्क कर देने या छिद्रान्वेषण करते रहने में ही उनके कर्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती—इस अवस्था के विद्यमान रहते तो विश्वविद्यालय की स्थापना मात्र एक स्वप्न ही बन कर रह जायेगी। वैद्यबन्धु अधिक उपयोगी निर्माणात्मक प्रवृत्ति को अपनायें तभी विश्व-विद्यालय की स्थापना सम्भव हो सकती है।

६—उत्तर प्रदेश की सरकार आयुर्वेद विश्वविद्यालय के निर्माण के पक्ष में है और इस कार्य में पूर्ण सहयोग देने को तैयार है, ऐसा विश्वास मैं आपको दिला सकता हूं। उक्त सरकार से आप बहुत बड़ी सहायता की आशा भी रख सकते हैं, परन्तु सर्वप्रथम वह वैद्य समाज का कम से कम १० लाख रुपया किसी बैंक में देखना चाहती है। इतना रुपया आप उन्हें जमा दिखला सकेंगे तो उससे भी अधिक रुपया आपको एक मुश्त उस सरकार से मिलने की आशा है, और अच्छी निरन्तर वार्षिक ग्रान्ट भी।

७—यदि विद्यापीठ अपना स्वतन्त्र विश्वविद्यालय बनाना चाहें तो उसके लिये भी हरिद्वार—ऋषिकेश रोड पर ही नाम-मात्र लीज पर भूमि मिल सकती है। अन्यत्र कई स्थानों पर भी प्रायः निःशुल्क ही भूमि मिल सकती हैं। परन्तु भूमि-प्राप्ति के ये सभी कार्य जितने शीघ्र हो सकें उतना ही अच्छा है; क्योंकि विभिन्न निर्माणात्मक कार्यों के लिये बहुत वेग से जमीनें रुक रही हैं।

८—परम कृपालु राष्ट्रपति स्वनामधन्य श्री डा० राजेन्द्र प्रसाद जी की सद्भावना आपके साथ है। वे आपके विश्वविद्यालय का शिलान्यास करना सदैव स्वीकार करेंगे ऐसी मुझे पूर्ण आशा है। राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास जी टण्डन एवं कुछ अन्य महापुरुष आपके पृष्ठ पोषक हैं, परन्तु मुद्दई से गवाह चुस्त नहीं हो सकता, इसलिये अग्रसर सर्वप्रथम आपको होना है।

उपर्युक्त परिस्थिति में आयुर्वेद विश्वविद्यालय के बनने या न बनने का सर्वप्रमुख उत्तरदायित्व एकमात्र वैद्य-समाज पर है। जैसा कि मैं ऊपर लिख आया हूं, मैं इस कार्य में निमित्तमात्र बनना चाहता हूं, परन्तु इस कार्य में सम्पूर्ण वैद्यसमाज का सक्रिय सहयोग परमापेक्षित है। मैं इसे हास्यास्पद बनाना नहीं चाहता, अतएव आपसे कुछ पीछे प्रश्न पूछता हूं तथा आपसे सानुरोध प्रार्थना करता हूं कि आयुर्वेद के इस पुनरुत्थान के कार्य में आप अपने महान् उत्तरदायित्व को लघु न समझते हुए अपना सुविचारित

मत एवं निश्चय मुझे शीघ्र ही पत्र द्वारा सूचित करने की अनुकम्पा करेंगे।

१—क्या आप आयुर्वेद विश्वविद्यालय बनाने की आवश्यकता समझते हैं ?

२—क्या आप ऋषिकेश में आयुर्वेद विश्वविद्यालय बनाना चाहते हैं ?

३—यदि ऋषिकेश में विश्वविद्यालय बनाना चाहते हैं तो क्या बाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र एवं आयुर्वेद सेवा समिति से सहयोग प्राप्त होने पर ही बनाना चाहते हैं अथवा न होने पर भी ?

४—यदि आप प्रश्न संख्या ३ में लिखित संस्थाओं के बिना भी ऋषिकेश में विश्वविद्यालय बनाना चाहते हैं तो क्या आप समझते हैं कि आयुर्वेद महासम्मेलन और विद्यापीठ इस भार को सफलतापूर्वक सम्भालने में समर्थ हो सकेंगे ?

५—विश्वविद्यालय का शिलान्यास विद्यापीठ की सम्मति के बिना सहसा रुकवाने से विद्यापीठ की विभिन्न प्रकार की जो विविध हानि हुई है उसकी क्षति पूर्ति के लिए आप क्या कार्यवाही करना उचित समझते हैं ?

६—यदि आप ऋषिकेश में विश्वविद्यालय बनाना नहीं चाहते हैं तो और किस स्थान को इस कार्य के लिए उपयुक्त समझते हैं ?

७—यदि विश्वविद्यालय बनने की स्थिति बन जाय तो क्या इस योजना को कार्यान्वित करने में शुद्ध सात्विक भाव से आप तन, मन और धन से सहायता करने के लिये तैयार होंगे ?

८—यदि विश्वविद्यालय बनने की स्थिति बन जाय तो आप अधिक से अधिक कितना दान दे सकेंगे, अथवा क्या आप कम से कम अपने एक मास की आय इसके लिये दान कर सकेंगे ?

९—यदि विश्वविद्यालय की स्थिति बन जाय तो इस योजना के साफल्यार्थ आप अन्य धनीमानी या अपने प्रभाव वाले व्यक्तियों से कितना दान इस कार्य के लिये प्राप्त कर सकेंगे।

विशेष—निजी ओर से मैं इतना लिख देना चाहता हूं कि जितने लाख रुपया वैद्यसमाज एकत्रित करके विश्व-विद्यालय के कोष में भेजेगा उतने ही लाख रुपया मैं वैद्येतर सज्जनों से एकत्रित करके विश्वविद्यालय के कोष में जमा कराता रहूंगा, परन्तु सर्वप्रथम वैद्य समाज को ही आगे आना होगा। मेरा आपसे आग्रहपूर्वक निवेदन है कि प्रत्येक वैद्य-बन्धु अपने हृदय को टटोल कर उपर्युक्त ९ (नव) प्रश्नों का अपना उत्तरदायित्वपूर्ण उत्तर दें। जिन वैद्य बन्धुओं के उत्तर नहीं मिलेंगे उन्हें मैं सर्वथा उदासीन समझूँगा। शेष उत्तरों को भली प्रकार संकलित करके ही मैं इस कार्य में अग्रसर होने का निश्चय करूंगा और आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के दिसम्बर मासीय अंक द्वारा अपने निश्चय से आपको सूचित करूंगा। मैं करने या मरने में विश्वास रखता हूं, परन्तु आपसे इतने मात्र न्याय की माँग करता हूं कि उपर्युक्त प्रश्नों का अपना हार्दिक उत्तर भेज कर कृतार्थ करें।

निवेदक

श्रीदत्त शर्मा

आयुर्वेदमार्तण्ड, रायबहादुर,

मंत्री, नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ

आत्मविज्ञान भवन,

ऋषिकेश, देहरादून।

विशेष—जिस पत्र द्वारा आप अपना मत भेजें उस पर प्रारम्भ में ही लाल स्याही से "मतसंग्रहपत्रम्" ये शब्द अवश्य ही लिखने की कृपा करें।

भूल सुधार

सचित्र आयुर्वेद के गत नवम्बर १९५४ अंक ५ में "जीवक.कथा" शीर्षक लेख "आयुर्वेद विज्ञान" के सौजन्य से प्रकाशित किया गया था, भूल से उक्त पत्र का नाम देने से रह गया था।

—सम्पादक

भगवान धन्वन्तरि

वैद्य दुर्गाप्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य

भारतीय पौराणिक गाथाओं में धन्वन्तरि अवतारी-पुरुष माने गये हैं। इन का द्वितीय अवतार काशीपति दिवोदास के रूप में हुआ, ऐसा पौराणिक बचनों एवं सुश्रुत के प्रारम्भिक श्लोक से ज्ञात होता है। यथा "प्राप्तोऽस्मिगांभूय इहोपदेष्टुम्" इस श्लोक समाप्ति पद में "भूयः"यह शब्द दुबारा पृथ्वीपर आने का सूचक है और इससे क्षत्रिय होने के कारण "राजस" गुण भी प्रकट होता है। क्योंकि यदि महर्षि होते तो उनके मुख से यह अहंकार युक्त बचन नहीं निकलते; सात्त्विक गुणों से युक्त ही वचन निकलते यथा :—

अथ ते शरणं शक्रं ददृशुर्ध्यान चक्षुषा ।
सवक्ष्यति शमोपायं यथावदमरप्रभुः ।
कः सहस्राक्षभवनं गच्छेत्प्रष्टुंशचीपतीम् ।
अहमर्थे नियुज्येऽयमत्रेति प्रथमं वचः ।
भरद्वाजोऽब्रवीत्तस्मादृषिभिः स नियोजितः ।।

सब मुनिगण एकत्रित हुए और जब उन्हों ने ध्यान से देखा और विचार किया तब एक इन्द्र ही उनको रोगों की शान्ति का उपाय बतलानेवाला है यह निश्चय किया।

"व्याधयो हि समुत्पन्नाः सर्वप्राणि भयंकराः ।
तद्ब्रूहि मे शमोपायं यथावदमरप्रभो ।।

भारद्वाज ऋषि इन्द्र के पास गये और उनसे नम्रतापूर्वक प्रजा की कष्टदायक व्याधियों की शान्ति का उपाय उन्हों ने पूछा। इन्द्र ने भारद्वाज को हेतु, लिंग औषध आदि त्रिस्कंध आयुर्वेद को यथावत् पढ़ाया। भारद्वाज ने ऋषियों की सभामें आकर जैसा पढ़ा था वैसा प्रकट कर दिया। इन उदाहरणों से यही मालूम होता है कि इस में कोई भी ऐसा शब्द नहीं है जिससे राजस गुण का प्रकाश पड़ता हो। इस प्रकरण में धन्वन्तरि के वाक्यों से स्पष्ट गर्वसूचक वाक्य प्रकट होता है कि मैं दानी हूँ, पृथ्वी पर प्रजा की रक्षा के लिए ऐसा दान देने आया हूँ जैसा आज तक किसी ने नहीं दिया और वह ज्ञान था शल्य-शालाक्य के आठ अंग।

सुश्रुत के कथानक में राजवैभव क्षात्र तेज है। उसमें दया का भाव नहीं अभिमान की उक्ति है। मैं मांगनेवालों को प्रजाकी भलाई के लिये यह दान दे रहा हूँ। यह उनका कहना ठीक भी था क्योंकि यहाँ दानी काशीपति दिवोदास राजा था और क्षत्रिय होने के कारण ऐसा कहना न्याय-संगत था। भारद्वाज से दान लेनेवाले ६ शिष्य अग्निवेश, भेल, जतू, कर्ण, पराशर, हारीत और क्षारपाणि, इन शिष्यों में भी शारीरिक, मानसिक और आगन्तुक रोगों से पीड़ित प्रजा को सुखी करने के लिये शल्य प्रधान आयुर्वेद की दान लेने की उत्कण्ठा हुई। इस प्रकार धन्वन्तरि दिवोदास ने उनको सर्वकल्याणकारी आयुर्वेद का उपदेश दिया और उनसे स्पष्ट कहा कि सब अंगों में शल्य-शालाक्य प्रधान है क्योंकि इससे यथेष्ट क्रिया होने पर वह रोग फिर दुबारा नहीं होता।

वैदिक काल में देव और असुरों का युद्ध हुआ उसमें भगवान धन्वन्तरि को सफलता मिली। इसी शल्य कर्म के द्वारा अश्विनी कुमारों ने दक्ष का सिर जोड़ा। दासों द्वारा शिर छाती काटने पर दीर्घतपस् ऋषि को पुनः जिन्दा किया। दधीचि ऋषि का शिर काट कर घोड़े का सिर जोड़ कर उनसे 'मधु-विद्या' प्राप्त की, फिर पहलेवाला शिर जोड़ दिया। खेल राजा की पत्नी विश्वला की युद्ध में टांग टूट गई थी। उसे लोहे का पैर जोड़ा गया। अन्धे ऋजाश्व को दृष्टि दान दी। बहरे नार्षद को सुनने की शक्ति प्रदान की। इस तरह की आयुर्वेद की बहुत सी चमत्कारी चिकित्साएँ मिलती है और यह देन थी हमारे महापुरुष भगवान धन्वन्तरि की। भगवान धन्वन्तरि ने स्वयं कहा है :;

अहं हि धन्वन्तरिरादिदेवो जरारुजा मृत्युहरोऽमराणां
शल्यांगमंगैरपरैरूपेतं प्राप्तोऽस्मि गां भूय इहोपदेष्टुम् ।

शल्य से मतलब है सर्जरी-चीरफाड़, जिससे शरीर में पीड़ा हो वह शल्य है। ये शल्य अनेक प्रकार के होते हैं जैसे कांटा गड़ना, फांस लगना, काष्ठ, पत्थर, लोहा धातु, ढेला, हड्डी की ठोकर लगना आदि पीड़ाओं के लिए अन्य शस्त्रास्त्र, अग्निकर्म तथा व्रण के निश्चय (व्रण पका है या नहीं) करने के लिये शल्य-चिकित्सा का प्रादुर्भाव

किया। शालाक्य से नेत्र, कान, नाक, मुख और शिरो रोग के उपयोग में आनेवाली शलाका से हैं क्योंकि इन रोगों में विशेष शलाका कार्य में आती है इसलिये शालाक्य नाम है। शल्य-शालाक्य के और भी बहुत से तथ्य हैं किन्तु वे नहीं मिलते हैं। इसीसे धन्वन्तरि के कहे हुए सुश्रुत की प्रधानता है। इन्हीं धन्वन्तरिभगवान की जयन्ती कार्तिककृष्ण त्रयोदशी को मनाते हैं। जनता यह नाम भूलती-भूलती इसको धनतेरस कहने लग गई। आज भी जनता उनका नाम चाहे जिस रूप में ले किन्तु लेती है। यह हमारी संस्कृति से सम्बन्धित हैं। भगवान धन्वन्तरि ने लोक को जीवन-दान दिया और रास्ता बतलाया। इन्हींके कहे हुए रास्ते से चलने के कारण यह भारतवर्ष समस्त देशों से चिकित्सा में आगे था। यहाँ के चिकित्सक मोतियाबिन्द (लिंगनाश) विद्रधि (केन्सर) वृद्धि (हाइड्रोसील) का इलाज करते थे। इसके लिये मैसोपोटामिया एवं अरब और चीनवालों ने यहां से चिकित्सक बुलाये। खलीफा हारून ने यहाँ आयुर्वेद पढ़ने के लिये विद्यार्थी भेजे। यहाँ का एक वैद्य मनका (माणिक्य) वहाँ के सुलतान की चिकित्सा करने गया और "राज वैद्य" पद प्राप्त किया। वहाँ उनकी देखरेख में अस्पताल, औषधालय खोले गये, वैद्यक ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद करवाया गया। हम यह भूल नहीं सकते कि यह भगवान् धन्वन्तरि की देन थी। भगवान धन्वन्तरि को आदि प्रवर्तक इसीलिए मानते हैं। उनके द्वारा दिया गया आयुर्वेद शास्त्र समुद्र की तरह अगाध है।

समुद्र इव गम्भीरं नैव शक्यं चिकित्सितम्।
वक्तुं निरवशेषेण श्लोका नाम युतैरपि॥

(आकाशवाणी पटना के सौजन्य से।)

वैद्यों का संगठन

वैद्यों के संगठन के विषय पर सभी लोग काफी जोर दे रहे हैं। 'सचित्र आयुर्वेद' के अक्तूबर अंक में मध्यप्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल श्री मंगलदास जी पकवासा ने जो विचार प्रकट किये हैं कि वैद्यों में बहुत दोष हैं, उसको मैं मानता हूँ। वैद्यगण एक ओर तो अपने अहंकार, बड़प्पन, मिथ्यादम्भ और आडम्बर से इस विज्ञान के युग में आयुर्वेद को पीछे धकेलने की चेष्टा में लगे हैं और दूसरी ओर आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के साथ आयुर्वेद के समन्वय की बात कह रहे हैं। इससे आयुर्वेद का कोई हित नहीं हो सकता। आयुर्वेद के क्षीण अंगों की पूर्ति के लिए इसमें अनुसन्धान होना चाहिए, शल्य-शालाक्य चिकित्सा पद्धति का पुनरुद्धार होना चाहिए तथा सभी वैद्यों को पूर्ण विश्वास के साथ जनता की सेवा करनी चाहिए। इसी से आयुर्वेद प्राचीन सुयश पुनः प्राप्त करने में समर्थ होगा। आज केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रिणी भी आयुर्वेद को कोस रही हैं। राज्यों में आयुर्वेद विभाग कायम हैं, पर उनके द्वारा आयुर्वेद की वास्तविक उन्नति का विशेष काम नहीं हो रहा। आयुर्वेद के प्रसार और विकास का नाम लेकर नारे लगानेवाले लोग वास्तव में आयुर्वेद-प्रेमी नहीं है। वे तो इसी से अपना स्वार्थ-साधन करना चाहते हैं। अतएव, जब कभी संगठन आदि की चर्चा होती है तो इस में भी किसी स्वार्थ-सिद्धि की चेष्टा की गंध मुझे मिलती है। सम्भव है, मेरी यह शंका निर्मूल हो, पर वैद्यों के संगठन मात्र से आयुर्वेद का कोई कल्याण नहीं हो सकेगा, जबतक वैद्यगण अपनी योग्यता, क्षमता और सत्यता से जनता पर आयुर्वेद का प्रभाव जमाने की चेष्टा नहीं करेंगे। अतः इस समय यह आवश्यक है कि आयुर्वेद के सच्चे भक्त आगे बढ़कर आयुर्वेद की महत्ता सिद्ध कर दिखायें। आयुर्वेद की शिक्षा के स्तर को समुन्नत और संतुलित बनाकर आयुर्वेद की शुद्धशास्त्रीय औषधों की सद्यः गुणकारिता से जनता को परिचित करायें। ऐसा होने पर ही वद्यों का संगठन सार्थक होगा।

—कविराज पं० गजेन्द्रकुमार, आयुर्वेदाचार्य
श्रीकल्याणी आयुर्वेदभवन,
डोंगरगढ़ (मध्यप्रदेश)